किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों
का
वस्तुगत और रूपगत विवेचन

कृष्णा नाग, एम० ए०, पी एच० डी०, साहित्यरत्न
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शासकीय गृहविज्ञान एवं कला महाविद्यालय,
जबलपुर ।

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
उच्च शिक्षा-साहित्य के प्रकाशक, आगरा ।

प्रकाशक :
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल,
अस्पताल मार्ग, आगरा ।

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी०
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध

१ ६ ६ ६

मूल्य १६·०० रुपया

मुद्रक :
मॉडर्न प्रस,
नमक मण्डी आगरा ।

शुभाशंसा

श्रीमती डॉ० कृष्णा नाग ने मेरे निरीक्षण में पी एच० डी० का शोध कार्य सम्पन्न किया और उन्हें उपाधि भी प्राप्त हो गयी है। इनके शोध का विषय किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों का वस्तुगत और रूपगत विवेचन था। अपना शोध कार्य करते हुए श्रीमती नाग ने उपन्यास के स्वरूप तत्त्व और शिल्प विधियों पर भी यथेष्ठ अध्ययन और विवेचन किया। श्रीमती नाग अतिशय अध्ययनशील और सन्तुलित कार्य करने में निष्णात हैं अतएव इनकी पुस्तक में सुव्यवस्थित सामग्री प्रस्तुत की गई है। इसके द्वारा साहित्य के विद्यार्थियों और विचारकों को उपन्यास सम्बन्धी अनेक तथ्य अवगत होंगे तथा उपन्यास कला के सम्बन्ध में नयी जानकारी प्राप्त होगी।

मैं इसके प्रकाशन का स्वागत करता हूँ।

नन्ददुलारे वाजपेयी
उप कुलपति,
विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन।

पंडित किशोरी लाल गोस्वामी

आमुख

"किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों का वस्तुगत और रूपगत विवेचन" विषय की महत्ता को प्रतिपादित करने की आवश्यकता अनेक वर्षों से हिन्दी जगत म अनुभव की जा रही थी। विगत कालों के पृष्ठों को पलटने मे तथा गुप्तप्राय रत्नों को खोज निकालने मे आधुनिक युग का व्यस्त मानव अपने आपको असमर्थ पाता रहा है। वैज्ञानिक प्रगति तथा नाना प्रकार के वर्तमान मनोरजन क साधनो ने उसे चकाचौंध में डाल रखा है कि वह आगे (भविष्य) की ओर तो देखने को उत्सुक है, पर पीछे (भूत के खण्डहरों में) दृष्टि डालने से घबराता है। हिन्दी साहित्य के शोध-छात्र होने के नाते मुझे यही विषय चुनना अधिक श्रेयस्कर लगा, जिससे उन गद्य-निर्माताओं को प्रकाश मे लाया जा सके जिन्होने हिन्दी उपन्यास को रीढ़ प्रदान की है। गोस्वामी किशोरीलालजी उपन्यास साहित्य के महान् युगप्रवर्तक हैं जिन्होंने इसी क्षेत्र को चुनकर अपनी साधना समग्र रूप से वहीं पर पुजीभूत कर दी है। राष्ट्र धर्म तथा सस्कृति के प्राण गोस्वामीजी की प्रतिभा को पारदर्शी बनाने के लिए ही यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है।

गोस्वामीजी की रचनाओं को आधुनिक युग की मान्यताओं तथा समीक्षा-प्रणाली की कसौटी पर कसना नितान्त भूल होगी। उनकी सृजन-शक्ति अपनी युगीन परिपाटियों के आधार पर ही अपनी उन्मुक्त कल्पना को लुटा रही थी। प्रत्येक साहित्यकार स्वच्छन्द विचारधारा तथा दृष्टिकोण से बाध्य होकर अपनी प्रति-मूर्ति अपनी रचनाओं मे अकित करता है, अतः वर्तमान साहित्य-समीक्षक उनके उपन्यासों का परीक्षण उस युग की मान्यताओं तथा उनके विचारों की कड़ियों को समझ कर करें तभी गोस्वामीजी के साथ न्याय होगा, अन्यथा ऐसी महान् विभूति की रचनाओं को ससार अपनी अज्ञानतावश ओझल कर देगा। हमें उस मुस्लिम संस्कृति के युग मे पहुँच कर सूक्ष्म निरीक्षण करना है, जबकि यवन सभ्यता हिन्दू धर्म की जडे उखाड़ने म निरन्तर प्रयत्नशील थी। उनकी काम वासनाएँ तथा ऐयाशी हिन्दू नागरिकों पर भी अनैतिक प्रभाव डाल रही थी तथा सारा हिन्दू समाज विशृंखल होकर पतित कार्य-कलापों मे डूबा रहता था।

"किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों का वस्तुगत और रूपगत विवेचन" इस विषय को ग्रहण करते समय मुझे अनेक विषमताओं का सामना करना पड़ा है—प्रथम तो इस महान् मनीषी के विषय में हिन्दी जगत का मौन रहना, द्वितीय, उनकी रचनाओं को प्राप्त करने मे गहन निराशा का हाथ आना, फिर भी असीम साहस और धैर्य के साथ प्रस्तुत प्रबन्ध को ग्रहण किया गया है। प्रेमचन्द और उनके पश्चात् के उपन्यासकारों की सम्पूर्ण जीवन सामग्री तथा रचनाएँ आधुनिक युग मे सहज सुलभ हैं, पर उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों का पता लगाना दुःसाध्य हो रहा है। इस

निबन्ध का मूल उद्देश्य गोस्वामी किशोरीलाल की रचनाओं की खोज तथा उनकी महत्ता से वर्तमान युग को परिचित कराना है। यह समीक्षात्मक प्रबन्ध है, जो भूत के गर्भ में से अमूल्य रत्नों को खोज कर प्रकट करने की चेष्टा कर रहा है।

हमें हिन्दी साहित्य में उन मौलिक प्राचीन उपन्यासकारों की रचनाओं का नितान्त अभाव दिखाई दे रहा है जो विगत युगों की पृष्ठभूमि पर अवतरित हुए। अपनी बहुमुखी स्वच्छन्द प्रवृत्तियों के साथ निष्ठापूर्वक उपन्यासों की रचना में जुट गये तथा वहीं पर घर करके बैठ गये। वर्तमान समीक्षक इन प्राचीन जगमगाते उपन्यास विधायकों को एक दम भुला बैठे हैं, विशेष रूप में गोस्वामी किशोरीलालजी *का नाम उपन्यास जगत से अदृश्य सा होता जा रहा है।* इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर निष्पक्ष और प्रामाणिक रूप से स्फुट आलोचना के रूप में यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। इस निबन्ध का मूल उद्देश्य उपन्यास की कथावस्तु की उचित व्याख्या, उसकी उत्पत्ति तथा विकास का निर्देशन करना है तथा भारतेन्दु युग से पूर्व मौलिक एवं लिखित गद्य कथाओं में वर्तमान उपन्यासों के बीज को खोजना है। *हिन्दी उपन्यासों का क्रमिक विकास यथास्थान सुसज्जित करके एक ही स्थान पर* सुचारु रूप से यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

गोस्वामी किशोरीलालजी का हिन्दी उपन्यास की उत्पत्ति तथा विकास के क्षेत्र में वही स्थान है, जो नाटक के क्षेत्र में भारतेन्दु बाबू का चिरस्मरणीय महत्त्व है। भारतेन्दु तथा द्विवेदीयुगीन साहित्यिक, सामाजिक, पारिवारिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों और मान्यताओं के मध्य में गोस्वामीजी की रचनाओं का समीक्षात्मक अध्ययन करके एक निष्कर्ष यहाँ पर उपस्थित किया गया है।

इस अनुसन्धान-कार्य के लिए हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ संग्रहालय काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी विश्वविद्यालय का गायकवाड पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का पुस्तकालय, मथुरा का प्राचीन मनोहर पुस्तकालय, आगरा विश्व-*विद्यालय का हिन्दी रिसर्च इन्स्टीट्यूट इत्यादि स्थानों से सहायता लेकर ही मुझे अध्ययन* का कार्य करना पड़ा है। इतना ही नहीं, सागर विश्वविद्यालय के अनुसन्धान विभाग के पुस्तकालय से भी मुझे समय समय पर सहायता प्राप्त हुई है तथा गोस्वामी किशोरीलाल के पौत्र श्री बालकृष्ण गोस्वामी ने भी महत्त्वपूर्ण सामग्री देकर मेरा साहस बढ़ाया है। इतने पर भी गोस्वामीजी की जो रचनाएँ मेरे अध्ययन से छूट गयी हैं, उसका कारण उनकी अप्राप्ति है तथा उस विवशता के लिए मुझे अत्यन्त खेद है।

इस निबन्ध में 'उपन्यास' के समस्त अवयवों और विभागों की विस्तृत व्याख्या करके ही मैंने गोस्वामीजी के उपन्यासों को परीक्षण की कसौटी पर कसा है। मैंने शिल्प विधि तथा रचना कौशल की मान्यताओं के आधार पर उनका यथा-चेष्ट मूल्यांकन किया है। उपन्यासों का वर्गीकरण ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक और जासूसी उपन्यास-धारा के क्रम से किया गया है। उनके उपन्यासों में उस नूतन स्वरूप तथा शैली के दर्शन प्राप्त हुए हैं जिन्होंने प्रेमचन्द के आगमन के लिए *उपन्यास शैली का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।* गोस्वामीजी की भाषा की अनेकरूपता तथा उसका भिन्न भिन्न प्रकार का प्रचलन उनके उपन्यासों में प्राप्त हुआ है। कहीं-कहीं पर खड़ी बोली के बीज, कहीं पर संस्कृत तत्सम पदावली तथा उर्दू ए-मुअल्ला भाषाओं के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। उनके उपन्यासों का मूल आधार युगीन जन रुचि तथा उनकी मान्यताओं के सच्चे तथा सजीव चित्र हैं, जिन्हें यथार्थ रूप से

गोस्वामीजी ने आकत किये है। लेखक का दृष्टिकोण विशेषकर सामन्तीय परम्पराओ की ओर रहा है, जहाँ पर उन्होने नवाब, बादशाह, जमींदार और पूँजीपतियो को समाज का प्रधान घोषित करके उनकी फिजूलखर्ची, ऐयाशी, कामुकता, लम्पटता अत्याचार तथा पापो का खुलेआम वर्णन किया है। गोस्वामीजी के उपन्यासो म एक ओर भूतकाल का सजीव चित्र है तथा दूसरी ओर भविष्य का आगामी स्वरूप प्रतिभासित हो रहा है।

उपन्यासो के अतिरिक्त किशोरीलाल की अन्य रचनाएँ भी मुझे उपलब्ध हुई हैं जिनमे नाटक, काव्य रचनाएँ, इतिहास, वचनामृत, अध्यक्षीय भाषण, कजरी, जगनामा इत्यादि हैं। इन रचनाओ को हृदयगम करके मैंने उनका विश्लेषण किया है, जिससे यह प्रबन्ध सर्वागीण बन सके तथा गोस्वामीजी क सहयोगी लेखको की विचारधारा की पृष्ठभूमि म उनकी उपन्यास कला की महत्ता प्रतिपादित हो सक।

गोस्वामी किशोरीलाल हिन्दी के प्रथम मौलिक 'साहित्यिक उपन्यासकार' हैं, जिनकी रचनाए साहित्यिक सर्मक्षक शैली के आधार पर रखी जा सकती हैं। उनकी अटूट लगन एव साहित्य प्रम ने अनेक अनमोल कृतियो को जन्म दिया है। हिन्दू सस्कृति तथा सनातन धम के प्रति उन्हे अपूर्व निष्ठा रही है, जिसकी प्रतिष्ठा के लिए उन्होने विचारो की सफल अभिव्यक्ति अपने उपन्यासो में की है। भारतीय कर्मवाद की प्रतिष्ठा और वैष्णव धम की महत्ता का भी वणन उनकी रचनाओ म प्राप्त हुआ है। नायिका-भेद एव रीति साहित्य की परम्परा तथा सुसगठित प्रम कहानी उनके उपन्यासो म प्राप्त हुई है।

इस साहित्य स्रष्टा तथा युगदृष्टा कलाकार की रचनाओ का सूक्ष्म तथा गहन अध्ययन के लिए मुझे अनेक महानुभावो का हृदय से आभार मानना है। सर्व प्रथम सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष तथा 'डीन ऑफ दी फैकल्टी ऑफ आर्ट्स (अब उपकुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन) आचार्य प्रवर पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयी' की मैं सदैव अनुग्रहीत रहूँगी जिन्होने सदैव मेरी अमूल्य सहायता करक उत्साह बढाया है जिनके निर्देशन म यह शोध कार्य पूण हो सका है। उन्होने अपना अमूल्य समय देकर मुझ भूत को खोजने क लिए प्रेरणा दी है तथा मेरे सुझावो को सराहा है। इसके अतिरिक्त डॉ० विनयमोहन शर्मा की भी मैं आभारी हूँ जिन्होने यथासमय मुझ काय को पूर्ण करने के लिए उत्साहित किया है तथा मुझ गहन निराशा के क्षणो म ज्योतिपूर्ण मार्ग दिखाया है।

पूज्य किशोरीलाल गोस्वामी क पौत्र श्री बालकृष्ण गोस्वामी, भाई राधा-विनोद गोस्वामी तथा श्री पूरनगिरि गोस्वामी की भी अनुगृहीत हूँ जिनकी सहायता के बिना यह कार्य पूरा ही नहीं हो सकता था तथा आगरा विश्वविद्यालय क हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, डॉ० मुन्शीराम शर्मा क प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करूँगी, जिन्होने समय-समय पर मुझे अपना अमूल्य आशीर्वाद प्रदान करक इस काय को सम्पन्न बनाने मे सहायता प्रदान की है।

इस प्रबन्ध क मुख पृष्ठ पर गोस्वामीजी का चित्र लगा हुआ है। उसको मैंने प्राचीनतम पुस्तक *"हिन्दी कोविद रत्नमाला"*, जो बाबू श्यामसुन्दरदास के कर कमलो स १ जनवरी सन् १९०६ को सचित्र सम्पादित हुई थी, उसस आभारपूर्वक ग्रहण किया है। अन्त में डॉ० माताप्रसाद गुप्त एवं डॉ० राजबली पाण्डेय की भी म ऋणी रहूँगी जिनके "हिन्दी पुस्तक साहित्य" और "हिन्दी म उच्चतर साहित्य" क बिना यह कार्य अधूरा ही रह जाता। इस निबन्ध के परिशिष्ट म मैंने नागरी प्रचारिणी सभा 'काशी'

न प्राप्त पुस्तकों की सूची का वर्गीकरण सहित जोड दिया है, जिससे हिन्दी जगत गोस्वामीजी की रचनाओं से लाभ उठा सके। एतदर्थ मैं उन सभी आचार्यों तथा संस्थाओं एवं वहाँ के अधिकारियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर रही हूँ जिन्होंने समय समय पर मेरी सहायता करके इस प्रबन्ध को पूर्ण एवं सुसगठित बनाया है।

शासकीय गृह-विज्ञान एवं कला-महाविद्यालय,
जबलपुर (म० प्र०)
मकर-सक्रान्ति १९६६

कृष्णा नाग

विषय पृष्ठ संख्या

REFERENCE BOOKS

Croce	—	Aesthetics
Plakhnor	—	Art and Social Life
W H Hudson	—	An Introduction to the Study of Literature
E M Forester	—	Aspects of the Novel
E M Forester	—	A Treatise on the Novel
Dr S K Dey	—	History of Sanskrit Politics
Ralph Fox	—	Novel and the People
I A Richards	—	Principles of Literary Criticism
Zoad	—	Return to Philosophy
Cross	—	The Development of English Novel
C Reeve	—	The Progress of Romance
Tolstoy	—	What is Art
Legouis & Cazamian	—	History of the English Literature
Robert Liddell	—	A Treatise on the Novel
Dr Nagendra	—	Indian Literature
Scott Game	—	Making of Literature
Saintsbury	—	History of English Criticism
Ford	—	Social Problems and Social Policy
		Encyclopaedia Britannica
		Cambridge History of Literature

SIR WALTER SCOTT *SCOTTIST NOVELIST*
(Year 1771 1832)

' It was in the midst of these embarrassments that Scott opened up the rich new vein of the Waverly Novels Lockhard says that Scott considered the writing of novels beneath the dignity of a grave Clerk of Court of the Sessions ' (p 181)

"The Literature was to be the main business of Scott s life and he proceeded to arrange his affairs accordingly

(1) Waverly novel
(2) The Lady of the Last Minstrels
(3) Ivanhoe.
(4) The Two Drovers.

"The immense strain of this double or quadruple life as Sheriff and Clerk, hospitable lavied poet, novelist and miscellaneous man of letters publisher and printer, though the prosperous excitement sustained him for a time soon told upon his health " (p 181)

' But as a matter of fact Scott's romantic characters are vitalized, clothed with a verisimilitude of life, out of the author's deep, wide and discriminating knowledge of realities and his observations of actual life was coloured by ideals derived from Romance ' (p 182)

—*Encyclopaedia Britannica* vol. 20 (1768 ed)

प्रथम अध्याय

उपन्यास—स्वरूप, तत्व एवं मूल स्रोत

"साहित्य" का मूलाधार भाव है और भावनाओं की विस्तृत अभिव्यक्ति का माध्यम "उपन्यास" है। इसे श्रव्य काव्य की श्रेणी मे प्रतिष्ठित किया जाता है। "उपन्यास" शब्द की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की जाती है। संस्कृत साहित्य मे कथा, कथानक आख्यान, उपाख्यान तथा आख्यायिका, ये सारे शब्द छोटी-बड़ी सब प्रकार की कहानियों के लिए प्रयोग मे आते रहे हैं।

'कथा' शब्द 'कथ' धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'कहना' या 'बतलाना'। कथा कल्पित आख्यान के लिए प्रयुक्त होती है, पर साधारण रूप से सभी वेद, पुराण इत्यादि के आख्यानों की अर्थ-सहित व्याख्या करने को भी "कथा कहना" कहते हैं।

'आख्यान' शब्द भी 'ख्या' क्रिया से बना है, जिसका अर्थ है 'कहना' या वर्णन करना। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि आख्यायिका एवं उपाख्यान से तात्पर्य कथा, कहानी तथा वर्णन से है। आख्यायिका मे उपदेशपूर्ण शिक्षा देने वाली कहानी रहती है। 'उपन्यास' शब्द आधुनिक युग की उपज है। प्राचीन समय मे आख्यान और उपन्यास में कोई मूलभूत अन्तर नहीं था। मराठी साहित्य में 'कादम्बरी' से उपन्यास का संकेत प्राप्त होता है। "नवल कथा" भी इसका पर्यायवाची मान लिया गया है।

अंग्रेजी साहित्य मे नॉवेल (Novel) शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन (Latin) के "नोवस" या "नावेलस" तथा फ्रेन्च (French) "नोवो" से हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये संस्कृत के 'नव' शब्द के ही विकसित रूप हैं। 'नॉवेल' का अर्थ 'नया' होता है, जिसका संकेत असाधारण या विचित्र वस्तुओं या घटनाओं की ओर होता है। तात्पर्य यह है कि जिस कहानी मे नवीन, कल्पित, तथा रोमांचकारी वर्णन उपलब्ध हो, वही "नॉवेल" कहलाने का अधिकारी माना जावेगा।

अंग्रेजी शब्द "फिक्शन" (Fiction) का साधारणतः छोटी-बड़ी सभी कहानियों के लिए प्रयोग मे आता है तथा इसके उपभेद 'नॉवेल', 'रोमांस' तथा

'स्टोरी' इत्यादि के नाम से प्रचलित हैं।[1]

क्लोरीव ने अपनी पुस्तक "प्रोग्रेस ऑफ रोमांस" में कहा है कि "उपन्यास" अपने युग के जनजीवन और परम्पराओं का चित्र है, जिस समय वह रचा गया है। उसका कहना है कि उपन्यास की सफलता इसी में है कि वह जिन परिचित वस्तुओं तथा दृश्यों का चित्रण करे, वे सामान्य हो जावें और पाठकों को उपन्यास पढ़ते समय यथार्थ का आभास होने लगे।[2]

मिश्रबन्धुओं के शब्दों में "जितने परिश्रम से दस ग्रन्थ बनाये जाते हैं, उतने से यदि एक बने तो शायद अपने चमत्कार के कारण काल की करालता का वह चिरकाल तक सामना कर सके।"[3]

'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार "उपन्यास" एक वह कथा है, जो

---

१ Fictions The term used for false averments the truth of which is not permitted to be called in questions English law as well as Roman law abounds in fictions Some fictions are deliberate falsehoods, adopted as true for the purpose of establishing a remedy not otherwise attainable. Fictions form one of the agencies by which in progressive societies positive law is brought into harmony with public openion The others are equity and status Fictions in this sense include not merely the obvious falsities of the English and Roman systems but any assumption which conceals a change of law by retaining the old formula after the change has been made Many fictions must have begun their career as metaphors concealing principles Obsolute principles may be classed as fictions when they are quoted as having a present existence Thus the legal attributes of the kind and even of the House of lands are fictions
(Encyclopaedia Britannica *IVth Edition*, *volume 9*, p *220*)

२ "The novel is a picture of real life and manner and of times in which it is written The romance in lofty and elevated language describes which never happened nor is likely to happen The novel gives a familiar relation of such things as pass every day before our eyes, such as may happen to our friends or to ourselves and the perfection of it is to present every scene in so easy and natural manner and to make them appear so probable as to deceive us into persuasion (at least while we are reading) that all is real until we are affected by joys or distresses of persons in the story as if they were our own "(Progress of Romance)

३ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद", भाग चतुर्थ, पृ० १४१।

चाहे ऐतिहासिक रूप से सत्य नहीं हो पर जिसने जनसाधारण का मन मोहा हो, जिसके द्वारा कुछ चेतावनी मिली हो।[१]

"उपन्यास" गद्य साहित्य का वह भग है जो मानव चरित्रो का चित्र उपस्थित करते हुए उसके जीवन पर प्रकाश डालता है और रहस्यों का उद्घाटन करता है।[२] प्रसिद्ध उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द जी का उपर्युक्त कथन उपन्यास की मीमांसा करने में अत्यन्त सफल हुआ है। स्वत प्रमाणित है कि उपन्यास मानव-चरित्र के रहस्यों का उद्घाटन करता है। भिन्न भिन्न साहित्यकारों ने, देशी तथा विदेशी दोनों ने, उपन्यास की अपनी अपनी रुचि के अनुसार पृथक् पृथक् व्याख्या की है। ई० एम० फारस्टर के मत में "उपन्यास गद्य में लिखी हुई लम्बी कहानी है।"[३]

हैरल्ड निकोलसन ने कहा कि "उपन्यास कुल मिलाकर एक कहानी ही है, जिसे लेखक मिश्रित और विस्तृत जन-समुदाय की प्रसन्नता, शिक्षा या मनोविनोद के लिए ही रचता है।"[४]

सस्कृत-साहित्य के ग्रन्थों के आधार पर "उपन्यास" शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं है, यहाँ तक कि प्रसिद्ध पुस्तकें "वासवदत्ता, दशकुमार चरित्र और कादम्बरी" तक को, जो श्रेष्ठ गद्य काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं, उनके लिए भी किसी समीक्षक तथा साहित्यिक के द्वारा 'उपन्यास" शब्द का प्रयोग व्यवहृत नहीं हुआ है।

सस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों में किसी विषय के निरूपण मे जो भी युक्तियुक्त अर्थ या अभिप्राय प्रस्तुत किया जाता है, उसे ही उपन्यास की श्रेणी में स्थान दिया जाता है तथा उनमे अन्तर प्रदान करने की शक्ति होती है। यह कथन इस उक्ति के आधार पर कहा जाता है—

"उपपत्ति कृतोह्यर्थं उपन्यास: सकीर्तित:"[५]

---

१ Novel The name given in literature to a sustained story which is not historically true, but might very easily be so. The novel has been made the vehicle for stature, for instructions, for political or religious exhortation, for technical information, but these are side issues Its plain and direct purpose is to amuse by a succession of scenes painted from nature and by a thread emotional narrative "

—(Encyclopaedia Britannica, volume 16, p 572)

२. प्रेमचन्द : "कुछ विचार," पृ० ४१.

३. E. M Forster *Aspects of Novel*, VIIth Impression, Arnold Co., London

४ Harold Nicholson : *Hindustan Times*, New Delhi, Dated 19th Sept, 1954

५. क्षेमेन्द्रकुमार और योगेन्द्रकुमार मल्लिक : "साहित्य विवेचन", पृ० १५४ (सन् १९५२ का संस्करण)

इसलिए की तेलगू भाषा में 'व्याख्यान' या 'वक्तृता' के अर्थ में "उपन्यास" शब्द का प्रयोग होता है। यह प्रयोग संस्कृत साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त उचित जान पड़ता है क्योंकि संस्कृत के प्रसिद्ध कवि "अमरुक" ने अपने रचे हुए ग्रन्थों में इसका इसी अर्थ में प्रयोग किया है।

"नियति: शत-कैर लोक वचनोपन्यासमाला जनर:"[1]

अत: हमारा यह निष्कर्ष है कि आज "उपन्यास" नामक जो स्वरूप प्रचलित है, उसका परिचायक "उपन्यास" नामक कोई भी शब्द "संस्कृत" में, यहाँ तक कि उसके गद्य साहित्य के लिए भी प्रयोग में नहीं आया। अत: संस्कृत भाषा की दृष्टि से "उपन्यास" शब्द आजकल कथा-साहित्य के लिए रूढ अर्थ में प्रयुक्त होगा। आधुनिक अर्थ में संस्कृत शैली पर उपन्यास शब्द की निरुक्ति इस प्रकार से युक्तिसंगत होगी—"उप" और "न्यास" इन दोनों शब्दों के मेल से इस शब्द की रचना मान लेनी पड़ेगी—"उप" धातु का अर्थ है 'समीप', 'निकट' या 'उपस्थित करना,' अर्थात् प्रभावोत्पादक कल्पना के आधार पर वास्तविक तथ्य को हृदयग्राही बनाकर रखना या या उपस्थित करना "उपन्यास" है। जो वस्तु सुशिक्षित समाज के समक्ष उपस्थित की जावे, उसमें कुछ नवीनता होनी चाहिए और स्वाभाविकता। कहा भी इसी अभिप्राय से जाता है कि 'नवीन' का पर्यायवाची 'नवल' है।

संस्कृत शब्द का समानार्थी तथा समान ध्वनि वाला 'नाविल' शब्द अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त हुआ है। उसका अभिप्राय भी वही 'नवीनतायुक्त' है, यह ताजा साहित्यांग है, जिसमें नूतनता है। इतना ही इससे मिलता-जुलता गुजराती भाषा में 'उपन्यास' के लिए 'नवल' शब्द प्रयोग में लाया जाता है। यह कहना भी सार्थक जान पड़ता है कि 'उपन्यास' से तात्पर्य होगा कि जो साहित्य व्यक्तिगत नवीन मत-युक्त कल्पना बहुलतया साहित्य होगा, वही इस श्रेणी में आ सकेगा।

पं० माधवप्रसाद मिश्र की राय है कि यह शब्द बंगला भाषा से ही आया है। है उन्होंने लिखा है कि "उपन्यास शब्द यद्यपि संस्कृत भाषा का है तथापि आजकल वह जिस अर्थ में प्रसिद्ध है, उसका कहीं ठौर-ठिकाना नहीं है। उपन्यास का शब्दार्थ "समीप रखना" है, परन्तु अमर कोष के इस वाक्यानुसार कि "उपन्यास वाङ्मुखे" इसका अर्थ भूमिका अथवा प्रस्तावना होता है। यदि इसके शब्दार्थ पर ध्यान देकर पुराने टीकाकारों की तरह हम भी "समीप-रखने" का यह अभिप्राय निकालें कि जिस गद्य-काव्य के पाठ से तद्वर्णित वृतान्त समीप रखा हुआ (सामने होता हुआ सा) जान पड़े, उसका नाम उपन्यास है, तो इसमें सन्देह नहीं कि उक्त व्युत्पत्ति-लभ्य शब्दार्थ की प्रचलित 'उपन्यास' शब्द के साथ सुचारुरूप से संगति हो जाय और साथ ही हमारे सहृदय भाइयों को यह कहने का अवसर मिल जावे कि हमने यह शब्द बंगला के

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी: साहित्य सन्देश, उपन्यास अंक, पृ० ४२-४३, (सन् १९४०)।

उच्छिष्ट से नहीं, संस्कृत के विशुद्ध भण्डार से ग्रहण किया है; परन्तु कठिनता यह है कि संस्कृत में "वासवदत्ता, कादम्बरी और दशकुमारचरित" आदि अनेक गद्य काव्यों के होते हुए भी संस्कृत के किसी कवि ने उनमें उपन्यास शब्द का प्रयोग नहीं किया। इससे सिद्ध होता है कि उनके समय में 'उपन्यास' शब्द का अधिकार गद्य काव्य पर नहीं हुआ था। परिशेष में न्यायानुरोध से यही मानना पड़ता है कि हिन्दी में यह शब्द बंगला से आया है और अनुकरणप्रिय रचना चतुर बंगाली ग्रन्थकारों ने आधुनिक लक्षण से अंग्रेजी के 'नॉवेल' शब्द को पर्याय बना लिया है।[१]

साहित्य दर्पण में काव्यनिरूपण के प्रसंग में पण्डितराज जगन्नाथ ने मणिका के सात अंगों में से 'उपन्यास' को एक अंग कहा है।[२]

'उपन्यास प्रसंगेन भवेत् कार्यं स्वकीर्तनम्"

अर्थ यह हुआ कि किसी प्रसंग से किसी कार्य का कहना। वास्तव में संकेत दृश्य काव्य की ओर है, श्रव्य काव्य की ओर नहीं।

नाटक की पाँचवीं अन्तिम 'निर्वहन सन्धि" के चौदह अंगों में से तीसरा अंग 'उपन्यास' कहलाता है। इस प्रसंग में उसका अर्थ 'कार्यों का ग्रथन' है।

'अमरकोष' नामक सर्वमान्य संस्कृत कोष ग्रन्थ में "उपन्यास" के लिए 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्"[३] कहा गया है, जिसका अर्थ है कि किसी बात को कहने का उपक्रम बनाना, पर वर्तमान उपन्यास इस अर्थ के सूचक नहीं हैं, इससे तो केवल उनकी भूमिका या संकेत की सूचना मिलती है।

"उपन्यास" कार्य शृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक व काल्पनिक घटनाओं के द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।[४]

"उपन्यास ऐसी कृति है, जिससे मन की महती शक्तियों का प्रदर्शन होता है, जिसमें मानव-स्वभाव का विस्तृत चित्रण, उसकी अनेकरूपता का सुखदतम विवेचन, विविध वाक्यचातुर्य तथा हास्य की सजीव राशियाँ, चुने हुए सर्वोत्तम शब्दों में संसार के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं।"[५]

---

१ पं० माधवप्रसाद मिश्र : 'श्री माधव निबन्ध माला", खण्ड ४, साहित्य, पृ० १००, सं० १९९२ का प्रकरण।

२. पण्डितराज जगन्नाथ . "गद्य काव्य मीमांसा" (अनुवादक—पण्डित अम्बिकादत्त व्यास) पृष्ठ ५।

३. पं० अम्बिकादत्त व्यास . "गद्य काव्य मीमांसा' पृ० ५, सन् १९१५।

४ क्षेमेन्द्र सुमन और मल्लिक · "साहित्य विवेचन में डा० गुलाबराय का कथन", पृ० १५४।

५. Gane Auston : Self Educator, Part IV, *A Study for English Fiction*, p 2435.

"उपन्यास" से मेरा अभिप्राय है समाज-धारा और विचार-धारा के आधार में तारतम्य को प्रकट करना। उपन्यास मे जिन घटनाओं की हम कल्पना करते हैं, वे *स्थान और पात्रों के परिवर्तन से प्रायः घटती ही रहती हैं।*[1]

"उपन्यास" जीवन का सजीव चित्र होने के नाते उसमें मानव-जीवन की कठिनाइयाँ, विषमताएँ आदि उसके विषय हैं। उसमें मनुष्य के सभी कार्यकलाप और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्राप्त होते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और जीवन सम्बन्धी *कितने ही संघर्ष और विचार तथा अन्तर्द्वन्द्व, जो प्रतिदिन और* प्रतिक्षण घटित होते रहते हैं, उनका चित्रण तथा मार्मिक अभिव्यंजना उपन्यासों में सफलता से होती है। उपन्यासों के सृजन में प्रधानतया चार प्रकार के उपादान कारणों के अनुकूल भवनति आवश्यक है—

(१) उपन्यास की रचना में उन वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो हमारे जीवन को सचेष्ट, गम्भीर, आहार, निद्रादि पशुसामान्य धरातल के ऊपर उठाती हैं, जिन पर हमारी मानवता अवलम्बित है।

(२) मानव की वासनाएँ, द्वन्द्व, समस्याएँ जो उसके जीवन को जटिल बनाये हुए हैं।

(३) व्यवहार्य वस्तुओं का सच्चा प्रत्यक्ष ज्ञान, जिसे दूसरे रूप में साहित्यिक ईमानदारी कहते हैं, उपन्यास में वस्तु, देश-काल, व्यक्ति और समाज का वर्णन होगा, उनका यथेष्ट ज्ञान हो।

(४) उपन्यास-लेखक को सांगोपांग वर्णन करना है; कल्पना-शक्ति को वस्तुओं को भौतिक रूप देना है।[2]

मार्मिक कल्पना के आधार पर जो लेखक जीवन के वास्तविक तथ्यों को हृदयग्राही बनाकर रखेगा, वही सच्चा उपन्यासकार कहा जायगा। आधुनिक अर्थ में 'उपन्यास' की उत्पत्ति रोमांस से मान लेना उचित जान पड़ता है। यद्यपि रोमांस का पृथक् अस्तित्व है, फिर भी उपन्यास का मूल स्रोत रोमांस तथा गद्य और *पद्य-गाथाओं* में अबाध गति से प्रवाहित होता रहता है। १८वीं शताब्दी के बाद जैसे-जैसे देश का औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास होता गया, उसके मूल स्वरूप हमारी सभ्यता ने नया बाना पहिनना प्रारम्भ किया है। हमारी चिरन्तन आर्य-संस्कृति एक नूतन मोड़ पर है। उसमें असीम अविरत उद्वेलन है। यह उसी की प्रतिक्रिया है कि *'उपन्यास'* ने अपनी काया पूर्णरूप से बदल डाली है। आज तो उसके समस्त 'अवयवों' पर नया रंग चढ़ गया है कि उसे पहिचान लेना भी दूभर हो गया है। प्राचीन काल में यूरोप में ही नहीं, भारतवर्ष में भी उन पद्य-कथाओं अथवा वीर-गीतों (बैलेड्स) को 'रोमांस'

---

१. यशपाल : "साहित्य संदेश", आधुनिक उपन्यास अंक, पृ० ७४, सन् १९५६।
२. यशपाल : "साहित्य संदेश", आधुनिक उपन्यास अंक पृ० ७४, सन् १९५६।

के नाम से पुकारा जाता था, जिनमें प्रेम अथवा रोमांचकारी साहसपूर्ण अद्भुत वर्णनों का समावेश रहता था। आधुनिक युग में इसके विपरीत वास्तविक जीवन-गाथाओं को उसकी दुरूह समस्याओं को गद्य-कथाओं के रूप में स्थान दिया जाने लगा, अर्थ यह है कि प्राचीन युग का सारा गद्य और पद्य साहित्य—आख्यान, उपाख्यान और कथाओं के रूप में प्रचलित था, जिनमें 'उपन्यास साहित्य' के बीज स्पष्टत: दृष्टिगोचर होते हैं।

यदि 'फिक्शन' का अर्थ झूठी कहानी है तो उसी प्रकार रोमांस उन बोलियों को कहते हैं, जो पहले दक्षिणी यूरोप में बोली जाती थी और इन भाषाओं में लिखी हुई कहानियाँ रोमास कहलाने की अधिकारिणी हुईं। 'रोमांस' की कहानियाँ कल्पित होती थीं तथा वास्तविक जन-जीवन की सीमाओं से अत्यधिक परे रहीं।

"रोमासपूर्ण कहानियाँ कल्पित होती थीं तथा वास्तविक मानव-जीवन की सीमाओं से बहुत परे होती थी।"[१]

इनमें केवल विचित्र रोमाचकारी कथाओं का वर्णन रहता था, जिनमें हृदय को चकित करने वाली घटनाओं का समावेश रहता था। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में योरोपियन साहित्य के प्रभाव के कारण जब कहानियाँ लिखी जाने लगीं तब प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इस प्रकार के साहित्य को किस श्रेणी में रखा जाय। संस्कृत साहित्य में 'न्यास' अर्थात् "नि + अस" शब्द के कई अर्थ ग्रहण किये जाते हैं, जैसे "धरोहर, थाती आदि सौंपना, मन्त्रों से अंगप्रत्यंग देवताओं को सौंपना, त्यागना, मानसिक संतोष" इत्यादि, 'उपन्यास' के अर्थ भी "उप + न्यास" के समान "धरोहर, थाती, उपदेश" इत्यादि हैं, जिससे 'बड़ी कहानी' का भावार्थ लिया जा सकता है। "उपन्यास शब्द का तात्पर्य कथा, कल्पित आख्यायिका तथा नॉवेल माना जाना चाहिए।"[२]

हिन्दी साहित्य में "भारतेन्दु युग" पुनरुत्थानवादी काल माना जाता है। कई सज्जनों ने उपन्यास का अर्थ "नवन्यास" ग्रहण किया है, पर इस शब्द का प्रचार अधिक नहीं होने पाया।

बंगला साहित्य में 'रोमास' के लिए 'रमन्यास' शब्द बना पर उसका प्रचार भी अधिक नहीं हुआ।

उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी ने 'प्रणयिनी परिणय' के उपोद्घात में उपन्यास की व्याख्या करते हुए लिखा है : "जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अगों में 'नाटक' का प्रचार प्रथम यहाँ हो हुआ था, उसी तरह उपन्यास की सृष्टि भी प्रथम यहीं ही हुई थी, यह अयोक्तिक नहीं है, परन्तु किसी-किसी महाशय का यह कथन है कि 'उपन्यास' पूर्व समय में यहाँ प्रचलित नहीं था, वरन् यह अंग्रेजों की देखादेखी लोगों ने (नाविल) के स्थान में उपन्यास की कल्पना कर ली है इत्यादि। परन्तु उन महात्माओं को प्रथम इसकी मीमांसा कर लेनी चाहिए क्योंकि 'उपन्यास' उप-नी

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका।
२. नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, "हिन्दी शब्द सागर," पृ० १४८।

उपसर्ग पूर्वक 'ग्रास' धातु इन शब्दों से बना है, यथा (उप) समीप, (नी) न्यास, (ग्रास) रखना, अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक एवं कुछ छिपी हुई कथा क्रमशः समाप्ति में स्फुटित हो और अमरकार भी 'उपन्यासस्तु-वाङ्मुखम्', अर्थात् 'वाङ्मुखी वाधा' यह अर्थ उपन्यास के तात्पर्य से ही घटता है, इत्यादि प्रमाणों से उपन्यास भी प्राचीन काल से भारतवर्ष में प्रचलित है और दशकुमारचरित, वासवदत्ता, हर्षचरित, कादम्बरी आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता में जाज्वल्यमान प्रमाण हैं।"[1]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'उपन्यास' की व्याख्या करते हुए कहा है: "उपन्यास नाम साहित्यांग आधुनिक युग की देन है और यद्यपि यह शब्द संस्कृत भाषा का है तथापि प्राचीन संस्कृत साहित्य में उस अर्थ में वह कभी प्रयुक्त नहीं हुआ, जिस अर्थ में हम आज इसका प्रयोग करने लगे। भारतवर्ष की कई प्रान्तीय भाषाओं में यह शब्द अन्य अर्थों में प्रयुक्त होता है। ..."

"......'उपन्यास वस्तुतः ही 'नवल' अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने 'कथा', 'आख्यायिका' आदि शब्दों को छोड़ कर अंग्रेजी 'नावेल' का प्रतिशब्द 'उपन्यास' माना था, उसकी सूझ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। जहाँ उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांग पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है, वहाँ इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप—निकट, न्यास—रखना) यह भी सूचित किया कि इस विशेष साहित्यांग के द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इसीलिए यद्यपि यह शब्द पुरानी परम्परा के प्रयोग के अनुकूल नहीं पड़ता, तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिलकुल बेमेल नहीं कहा जा सकता।"[2]

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने 'उपन्यास' के लिए कहा: "किसी उपन्यास में वर्णन केवल समय, स्थान या समाज के सामाजिक वातावरण का ही चित्रण उपस्थित नहीं करता, वरन् वह कथा के पात्रों का भी परिचय देता है और कथावस्तु की प्रगति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का भी निराकरण करता चलता है, अर्थात् वर्णन से कथा को शरीर ही नहीं प्राप्त होता, वरन् वह उस अविश्वास से भी जान-बूझकर दूर रखने में सहायता करता है, जो इस अनन्त काल और अनन्त स्थान के संसार में बाह्य सत्यता स्थापित करता है।"[3]

बाबू गुलाबराय ने कहा: "अंग्रेजी शब्द नॉविल (Novel) में, जिसका अर्थ 'नवीन' है, ऊपर की कहानी का तत्व भरा हुआ है। मराठी भाषा में अंग्रेजी शब्द के

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी · "प्रणयिनी परिणय—उपोद्घात", पृ० १।
२. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : "साहित्य सन्देश",—उपन्यास अंक पृ० ४१-४२, अक्तूबर-नवम्बर सन् १९४०।
३ आचार्य सीताराम चतुर्वेदी: "समीक्षाशास्त्र", पृ० ६६६.

आधार पर 'नवल कथा' शब्द गढ लिया गया है। मराठी में उपन्यास को 'कादम्बरी' भी कहते हैं। यह एक व्यक्तिवाचक नाम जातिवाचक बनाने का अच्छा उदाहरण है। उपन्यास शब्द प्राचीन नहीं है, कम से कम उस अर्थ में, जिसका आजकल व्यवहार होता है। संस्कृत लक्षण-ग्रन्थों में 'उपन्यास' शब्द है। यह नाटक की सन्धियों का एक उपभेद है (प्रतिमुख सन्धिक)। इसकी दो प्रकार से व्याख्या की जाती है—'उपन्यास प्रसादनम्', अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं। दूसरी व्याख्या इस प्रकार है—'उपपत्ति कृतोह्यर्थ उपन्यासः सकीर्तित', अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप में उपस्थित करना 'उपन्यास' कहलाता है। सम्भव है कि उपन्यासों में प्रसन्नता देने की शक्ति तथा युक्तियुक्त रूप मे अर्थ को उपस्थित करने की प्रवृत्ति के कारण इस प्रकार की कथात्मक रचनाओं का नाम उपन्यास पडा हो, किन्तु वास्तव में नाटक साहित्य के उपन्यास शब्द और आजकल के उपन्यास मे नाम का ही साम्य है। उपन्यास का शब्दार्थ है, सामने रखना।[1]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी 'उपन्यास' को आधुनिक युग का महाकाव्य माना है। "पश्चिमी देशों मे भी उपन्यास आधुनिक युग की देन है और उसका आरम्भ नये युग के आगमन का सूचक है। उपन्यास मे आजकल गद्यात्मक कृति का अर्थ लिया जाता है। पद्यबद्ध उपन्यास नही हुआ करते। उपन्यास के विकास से ग्रन्थ के विकास का भी सम्बन्ध है। प्रायः वही परिस्थितियाँ गद्य के विकास में सहायक हुई, जो उपन्यास के विकास में योग दे रही थीं। यूरोप में गद्य उपन्यासों के पूर्व कुछ प्रभाख्यात्मक कविताएँ प्रचलित थीं। उन्हें ही आधुनिक उपन्यास की जननी कहा जा सकता है।"[2]

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 'उपन्यास के विषय' की व्याख्या करते हुए कहा है "हिन्दी मे साधारणत. जो उपन्यास प्रकाशित होते हैं, उनमें विषय की महत्ता पर विशेष ध्यान दिया गया है। विषय महत्वपूर्ण होने से ग्रन्थ भी महत्वपूर्ण हो, यह कोई बात नहीं है, परन्तु इसमे सन्देह नहीं कि इससे लेखकों की महत्वाकांक्षा सूचित होती है। हिन्दी के उपन्यासों, नाटकों और आख्यायिकाओं तक का विषय-क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि उसमे एक बार निपुण ग्रन्थकारों की बुद्धि भी चक्कर खा जाय। आदर्श ऊँचा रखना बुरा नहीं, परन्तु उस आदर्श को मनुष्य जीवन मे दिखलाने के लिए अनुभूति चाहिए।"[3]

यूरोपीय विद्वान् रॉल्फ फॉक्स ने कहा है कि 'उपन्यास' केवल गद्य में लिखी हुई कथा ही नहीं है। वरन् उसमें सारा मानव-जीवन निहित है। उन्होंने उपन्यास-

---

१. डॉ० गुलाबराय : "काव्य के रूप", पृ० १६५।
२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : "आधुनिक साहित्य", पृ० १२३।
३. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : "साहित्य-परिचय", पृ० १०१।
(प्रकाशन—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई)

कला का प्रथम रूप गद्य माना है, जिससे मानव का सम्पूर्ण जीवन समझा जा सकता है।[1]

दूसरे विद्वान् क्लोरा रीव ने 'उपन्यास' को यथार्थ जीवन का उस युग का चित्र माना है, जिस काल में वह उपन्यास रचा गया है। वह कहता है कि किसी भी उपन्यास की सफलता के लिए उसमे वर्णित वस्तुओं तथा दृश्यों का वर्णन इतना सामान्य हो जावे, जिससे पाठकों को भ्रम हो जावे कि उन्हें जीवन की यथार्थता से परिचित कराने मे उपन्यास सफल हो सकता है।[2]

रॉबर्ट लिडेल ने 'उपन्यास' को नया साहित्यांग माना है।[3]

लॉर्ड डेविड सेसिल ने 'उपन्यास' को एक कलाकृति के रूप में देखा है।[4]

बख्शीजी ने लिखा है : "इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन है ; परन्तु मनोविनोद के लिए मनाचार से पूर्ण उपन्यासों की ही जरूरत है, यह कहना अनुचित है। कुछ लोग ऐसे अवश्य होते हैं, जिन्हें ऐसी ही बातें पसन्द आती हैं, जो समाज की दृष्टि में हेय हैं, पर अधिकांश लोगों का ऐसी बातों से मनोविनोद होता है, जो बिलकुल स्वच्छ रहती हैं। उपन्यासों में जो यथार्थ चित्रण के पक्षपाती हैं, वे केवल समाज के अन्धकारमय भाग को ही प्रकाशित करना चाहते हैं। वे अपने ही आदर्श को सर्वोत्तम समझ कर जगत का धर्मगुरु बनने का दावा करते हैं। वे धर्मशास्त्र के आचार्य बनकर समाज का पथ-निर्दिष्ट कर देना चाहते हैं।"[5]

---

१. रॉल्फ : "नॉवेल एण्ड दी पीपुल," पृ० २०।

"The novel is not merely fictional prose, it is the prose of man's life, the first art to attempt to take the whole man and give him expression"—Rolf Fox : *"Novel and the People"*, p. 20.

२. क्लोरा रीव : "दी प्रोग्रेस ऑफ रोमांस"।

"The novel is a picture of real life and manner and of times in which it is written. The novel gives a relation of such things as pass every day before our eyes, such as happen to our friends or to ourselves and the perfection of it is to present every scene in so easy and natural a manner and to make them appear so proba- [illegible] (at least while we are read- [illegible] affected by joy or distress of [illegible] our own.

—Clora Reave : *The Progress of Romance*.

३ The novel as a literary form has still a flavour of newness.
—Robert Liddell : *A Treatise on the Novel*, p. 13.

४. A novel is a work of art in so far as it introduces us into a living world, in some respects resembling the world we live in but with an individuality of its own.

—Lord David Cecil : *'Hardy, the Novelist.'*

५. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : "साहित्य परिचय", पृ० ६४।

उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द ने 'उपन्यास' की परिभाषा करते हुए लिखा है : "उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है, लेकिन यह कायदा है कि जो चीज जितनी सरल होती है, उसकी परिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है। कविता की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी। जितने विद्वान् हैं, उतनी ही परिभाषाएँ हैं। किन्हीं दो विद्वानों की रायें नहीं मिलतीं। उपन्यास के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। इसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है, जिस पर सभी लोग सहमत हों। मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[१]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उपन्यास को हिन्दी-साहित्य का नया अंग माना है। उन्होंने लिखा है : "उपन्यास इस युग का बहुत ही लोकप्रिय साहित्य है। शायद ही कोई पढ़ा-लिखा नौजवान इस जमाने में ऐसा मिले, जिसने दो चार उपन्यास न पढ़े हों। यह बहुत मनोरंजक साहित्यांग माना जाने लगा है। आजकल जब किसी पुस्तक को बहुत मनोरंजक पाया जाता है तो प्रायः कह दिया गया कि इस पुस्तक में उपन्यास का सा आनन्द मिल रहा है। किसी-किसी यूरोपियन समालोचक ने उपन्यास का एकमात्र गुण उसकी मनोरंजकता को ही माना है। इस साहित्यांग (उपन्यास) ने मनोरंजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओं का ही नहीं, नाटकों का भी रंग फीका कर दिया है क्योंकि पाँच मील दूर से ऐसी किताब मँगा लेना कहीं आसान हो गया है जो अपना रंगमंच अपने पन्नों में ही लिये हुए हो।"[२]

हेनरी जेम्स ने 'उपन्यास' के विषय में कहा है : "उपन्यास एक प्रकार का इतिहास है। यह केवल एक सामान्य विवरण है, जो इसके साथ न्याय करता है और जो हम उपन्यास के सम्बन्ध में दे सकते हैं। किन्तु इतिहास भी जीवन का प्रतिनिधित्व कर सकता है और करने को स्वतन्त्र है। उपन्यासकार का काम ज्यादा कठिन इसलिए है कि उसे जीवन में से घटनाओं का चयन करना पड़ता है। उसका कार्य इसलिए अधिक महत्वपूर्ण भी है। कुछ लोग समझते हैं कि उपन्यास की विषय-वस्तु कल्पित होती है, यह गलत है। कुछ लोग समझते हैं कि कला नैतिकता की विरोधिनी है और मात्र विरोध के लिए है, यह भी अन्धविश्वास है। कुछ का विचार है कि उपन्यास में केवल अच्छे पात्रों की सृष्टि होनी चाहिए। कुछ चाहते हैं कि अन्त सुखद रहना चाहिए, जैसे भोजन के अन्त में मीठी चीज। मुख्य वस्तु यह है कि उपन्यास कलात्मक हो।"[3]

---

१. प्रेमचन्द : "साहित्य का उद्देश्य," पृ० ५४।
२. हजारीप्रसाद द्विवेदी : "साहित्य का साथी," पृ० ६३।
३. प्रतापनारायण टण्डन : "आधुनिक साहित्य उपन्यास-कला पर हेनरी जेम्स के विचार" शीर्षक निबन्ध, पृ० ३४।

फिर भी उपन्यासकारों ने कहा कि उपन्यास का मूल तत्व 'कथा कहना' है।[1]

राॅल्फ फॉक्स ने 'उपन्यासकार के क्षेत्र' के विषय में सही कहा है कि उसका क्षेत्र विस्तार उसके स्वय के विषय ज्ञान पर निर्भर करता है।[2]

डॉ॰ श्यामसुन्दरदास ने लिखा है : "उपन्यासों को कथा कहने के तीन ढंग हैं—पहले में तो उपन्यासकार इतिहासकार का स्थान ग्रहण करके और वर्णनीय कथा से अपने को अलग रख कर अपने वस्तु विधान का क्रमश: उद्घाटन करता हुआ पढने वालों को अपने साथ लिये हुए अन्तिम परिणाम तक पहुँचा कर अपना अभिप्रेत भाव उत्पन्न करता है। दूसरे ढग में उपन्यासकार नायक का आत्म-चरित्र उसके मुँह से अथवा कभी-कभी किसी उप पात्र या गौण पात्र के मुँह से कहलाता है। तीसरा ढग वह है, जिसमें प्राय चिट्ठियों आदि के द्वारा कथा का उद्घाटन किया जाता है। तीसरा ढग बहुत कम और पहला ढग बहुत अधिक काम में लाया जाता है। पहले ढग का अनुसरण करने में ग्रथकार को अपना कौशल दिखाने का पूरा पूरा अवसर मिलता है। दूसरे और तीसरे ढग का अनुसरण करने में उसे कई कठिनाइयों का सामना करना पडता है। इनमें से सबसे बडी कठिनाई यह है कि वह अपनी समस्त सामग्री का यथोचित उपयोग नहीं कर सकता है।"[3]

और आगे कहा ' उपन्यास के अतर्गत वह सम्पूर्ण कथा साहित्य आ जाता है जो गद्य की प्रणाली से व्यक्त किया गया हो। हमने यह भी उल्लेख किया है कि उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है और वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसी की कथा कहता है। यदि हम ऊपर की पक्तियों का निष्कर्ष निकाल कर उपन्यास की व्याख्या करें और कहें कि उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की कल्पित कथा है तो यह अधिक असंगत न होगा।"[4]

'नॉवेल' शब्द से मिलता-जुलता शब्द प्रसिद्ध लेखक बंकिम बाबू के समय मे प्रयोग में आया पर यह भी अप्रचलित रहा। मराठी साहित्य का 'कादम्बरी' का अर्थ हिन्दी के 'उपन्यास' के समकक्ष निकलता है। आधुनिक युग में हिन्दी और बगला साहित्य मे 'उपन्यास' शब्द का ही प्रयोग अधिक हो रहा है।

---

१. "We shall all agree that the fundamental aspect of novel is its story-telling aspect"

—E. M Forster Aspects of Novel, p 27.

२. For the novel will always have the advantage of being able to give a complete picture of a man, being able to show that important inner life, as distinct from the purely dramatic man, the acting man which is beyond the scope of cinema.

—Ralph Fox.

३. श्यामसुन्दरदास, "साहित्यालोचन," पृष्ठ १६२।

४. वही, पृष्ठ १८०।

'हिन्दी साहित्य का सबसे नया और शक्तिशाली रूप उपन्यासों में प्रकट हुआ।"[1]

उपन्यास साहित्य मानव जीवन की व्याख्या और आलोचना है। अत वह चिरन्तन है, अविरल है तथा शाश्वत है। जीवन और जगत के शाश्वत सम्बन्ध का ही नाम उपन्यास है। 'उपन्यास' का माध्यम लेकर प्रत्येक कलाकार अपनी संचित अनुभूतियों तथा जीवन पर होने वाले घात प्रतिघातों का अपनी लेखनी के द्वारा उसका रसास्वादन पाठकों को कराता है।

परम्परा

कथा कहानियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सृष्टि के प्रारम्भ से, आदि मानव की उत्पत्ति से ही इसका क्रम अबाध गति से चला आ रहा है। यह मानव की अमर कौतूहल वृत्ति की परिचायक है। प्रत्येक प्राणी जड चेतन जगत में भ्रमण करके अपने मनोवेगों का समाधान खोजता है और यह मूल वृत्ति ही सहज रूप से कथा कहानियों को जन्म दे देती है। नानी और उसके प्रिय बालक ने कहानी को जन्म दिया। नानी ने कहा और बालक ने 'राजावाली' कहानी सुनी।

"माँ, वह एक कहानी।
बेटा, समझ लिया क्या तूने,
मुझको अपनी नानी।।"[2]

प्राचीन समय से लेकर आज भी सब राहुल' के सहधर्मी हैं—कथा रसिक हैं और कहानी सुनने की यह उत्सुकता हम सबमें भी उसी मात्रा में वर्तमान है जैसी यशोधरा के पुत्र में थी। चाहे युग बदल जावे और समाज नवीनतम रूप धारण करले, पर कथा को कहने व सुनने की प्रवृत्ति उसी क्रम से अबाधगति चलती रहेगी।

'कथा' के बीज हमें संसार के प्राचीनतम ग्रन्थों में मिलते हैं। 'पंचतन्त्र' के संवादों में कथा साहित्य के अवयव निहित हैं। वार्त्तालाप के द्वारा कथावस्तु की पृष्ठ-भूमि उपलब्ध होती है। शुन शेप की कथा, सरमा संवाद, यमयमी संवाद, पुरूरवा-उर्वशी संवाद इसके जीते जागते उदाहरण हैं। वेदों में कथा' का प्राचीनतम रूप उपलब्ध है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अनुपम अटूट कहानियाँ हैं। ऐतरेय और शतपथ में भी इन्हें विशेष स्थान दिया गया है, यहाँ तक कि सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा का मूल स्रोत भी ये ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। उपनिषदों में भी याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी तथा नचिकेता की कथाएँ अमर हो गयी हैं। रामायण, महाभारत, हितोपदेश, पंचतन्त्र, जातक कथाएँ इत्यादि समस्त रचनाएँ हमारे हिन्दी के कथा साहित्य के अक्षय स्रोत हैं, जिनके द्वारा पाठकों का बराबर मनोरंजन होता आ रहा है और उनके अन्तर्गत एक नैतिक आदर्श की रूपरेखा परिलक्षित होती है।

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी, "हिन्दी साहित्य," पृ० ४१२।
२ मैथलीशरण गुप्त, "यशोधरा," पृ० ८०।

परिवर्तित रूप

जैसे-जैसे शिक्षा और संस्कृति का विकसित रूप उपलब्ध हुआ, प्राचीन कथा-कहानियों का भी रूप और रंग बदला। युग के साथ जीवन की धारणाएँ बदल गयीं। इस कथा साहित्य के मूल में जो भाव निहित रहते थे, उनमें प्रमुख रूप से दो भाव विद्यमान थे—प्रथम, धार्मिक भावना तथा द्वितीय, वीर-पूजा का लक्ष्य। रामायण और महाभारत की कथाओं के द्वारा धार्मिक भावना प्रसारित हुई तथा वीरगाथाओं की ऐतिहासिक प्रवृत्ति के कारण धार्मिक वीर-पूजा के विचारों ने जन-साधारण के हृदय में घर कर लिया। देव और दानवों के कार्य-व्यापार मानव-विचारों तथा कार्यों को प्रभावित करने लगे। भारत में पूजा-भावना की अटूट वृद्धि हुई। गिरि, कन्दरा, वृक्ष, नदी, सरोवर सबकी पूजा श्रद्धापूर्वक होने लगी। धरती की सम्पन्नता के लिए, अनाज की उत्पत्ति के लिए जनसाधारण के द्वारा भगवान इन्द्र की पूजा की जाने लगी। धार्मिक भावनाओं ने जनजीवन पर प्रभाव डाला। इन धार्मिक कथाओं ने नीति-कथाओं को जन्म दिया। फल यह हुआ कि मानव के कार्य-व्यापारों के अलावा पशु-पक्षी से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ मानव जगत में प्रचलित हुईं। पंचतन्त्र, हितोपदेश, वैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, कथासरित्सागर, शुकसप्तति तथा पैशाची प्राकृतक की वृहत्कथा या 'वड्ड कहा' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं, जिनमें मानव स्वभाव के कथाप्रेमी होने के स्पष्ट संकेत हैं। इन कथाओं में भी उपन्यास के बीज प्राचीन काल में हमें उपलब्ध हुए।

इसी प्रकार के यूरोप में भी प्राचीन यूनानी साहित्य में ईसा से पहले और बाद की अनेक प्रचलित कथाओं के संकेत उपलब्ध होते हैं। लैटिन साहित्य में भी कुछ रचनाएँ पायी जाती हैं, जिनमें रूप, विधान तथा कथावस्तु, चाहे विशृंखल हो तथा वर्तमान समीक्षा के मापदण्डों के आधार पर वे आख्यान-साहित्य की श्रेणी में न आ सकें, पर यह निश्चित है कि आधुनिक उपन्यास की विकास-धारा में इन परम्परागत प्रचलित कथाओं का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। प्राचीन साहित्य के कथानक का मूल आधार प्रारम्भिक प्रेम, साहसपूर्ण, रोमांटिक, नैतिक तथा पौराणिक कहानियाँ हैं, जिनके सूत्र पतित नारियाँ, दुराचारी एवं कामुक पादरी तथा कुलीन परन्तु पाशविक प्रवृत्ति वाले जमींदारों और सामन्तों से मिले हैं। इसके अन्तर्गत रोमानी तथा यथार्थवादी कथा साहित्य रचा जाता रहा। उसके उपरान्त एक नवीन क्रान्ति हुई, जिसने आधुनिक अर्थ में "उपन्यास" को जन्म दिया जो आज अपने प्रौढ़ रूप में प्राप्त है। इस प्रकार से हिन्दी उपन्यास साहित्य का इतिहास लगभग पच्चीस वर्ष के घेरे में घिरा पाया जाता है, जबकि विदेशों के समकक्ष भारतीय कथा साहित्य की विकसित नवीन परम्परा यहाँ जन्म ले रही थी। यह स्पष्ट हो गया कि उपन्यास के माध्यम से मनुष्य की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिक समस्याओं तथा भावों का सूक्ष्म विश्लेषण हो सकता है। प्रत्येक उपन्यास में मानव जीवन की तत्कालीन परम्पराओं और

अभिरुचियों के सच्चे यथार्थ चित्र उपस्थित किये जा सकते हैं। इसलिए उपन्यासकार का यह प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह देश, काल तथा युगीन परम्पराओं, शिष्टाचार तथा रूढ़ियों से अपने आपको परिचित रख कर उसके सजीव तथा प्रभावोत्पादक चित्र उतारे। लेखक का दायित्व रचनाकार के रूप में अत्यन्त बढ़ जाता है कि एक ओर वह अपने विचारों को साकार रूप दे तो दूसरी ओर युगीन मान्यताओं की रक्षा करे। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है तथा यह शाश्वत धारा प्रत्येक देश तथा तीनों कालों में प्रवाहमान रहती है। जिस समाज ने अपने साहित्य के निर्माण में योगदान नहीं दिया, वह कालक्षेप के साथ संसार में अदृश्य हो जाती है।

उपन्यास के मूल तत्व

उपन्यास का शरीर प्रमुख रूप से छः अवयवों से निर्मित हुआ है—

(१) वस्तु,
(२) चरित्र-चित्रण,
(३) कथोपकथन;
(४) भाषा शैली,
(५) देश काल और
(६) उद्देश्य।

वस्तु

यदि उपन्यास मानव जीवन की प्रतिछाया है, तब उसका सहज सम्बन्ध मनुष्य के समस्त कार्य व्यापारों और घटनाओं से ही होना चाहिए। मानव के सारे कार्य-कलाप उपन्यास के क्षेत्र की दृष्टि से 'कथावस्तु", 'कथानक" या "वृत्त" कहलाते हैं। इसी को अंग्रेजी साहित्य में "प्लाट" (Plot) कहा जाता है। "वस्तु" उपन्यासकार की प्रतिभा की कसौटी है। कलाकार अपनी कथा का सूत्र किस प्रकार और कहाँ से खोजकर लाता है, इसका संकेत "वस्तु" से प्राप्त होता है। घटनाओं को क्रम से सजाना अथवा उनकी विशिष्ट आयोजना ही उपन्यास साहित्य की "कथावस्तु" है। वह अपनी प्रौढ़ अनुभूति के आधार पर जीवन के विशेष क्षणों में से वह अवसर खोज लेता है और अपनी विचारधारा को अपने उपन्यास में चित्रित करता है। केवल मनोरंजन का कार्य उपन्यासकार के लिए वाञ्छनीय नहीं है। वह मानव-जीवन के विशिष्ट क्षणों के चित्र उतारेगा और उसके साथ ही यदि पाठकों का मनोरंजन हो जावे तो वह अपना सौभाग्य मानेगा। अतएव यह स्पष्ट है कि प्रत्येक कलाकार के दोमुखी कर्त्तव्य हैं—एक ओर तो जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाने में जनसाधारण की सहायता करे और दूसरी ओर उसे पाठकों का मनोरंजन करना भी आवश्यक हो जाता है। मानव हित की भावना से प्रेरित होकर उसे उपन्यासों का निर्माण करना है। वह अपनी कला को साकार तथा सजीव बनाता है। अतः यह निर्विवाद है कि उपन्यासकार का प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह श्रान्त, थके,

उदास मन वाले पाठक को कुछ क्षणों के लिए इस लोक से दूर, किसी कल्पित स्वर्गिम लोक की ओर ले जावे, जहाँ पहुँच कर वह प्रत्यक्ष जीवन के संघर्षों को सदा के लिए नहीं तो कुछ क्षणों के लिए तो भूल जावे।

उपन्यासकार की अनुभूतियाँ उसके सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं बौद्धिक ज्ञान पर आधारित होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि उपन्यास का रचयिता पुरुष है तो वह नारी-हृदय की भावनाओं, उसके व्यवहार, उसके क्रिया-कलापों, उसके शिष्टाचार, यहाँ तक कि उसके जीवन में उत्पन्न होने वाले मनोवेगों को एक नारी-उपन्यासकार के समान व्यक्त करने में अधिक सफल नहीं होगा।

श्रीमती इलियट ने एक बार स्त्री-लेखिकाओं को फटकारते हुए कहा था कि उन्हें कभी भी पुरुषों की भाँति, उनके दृष्टिकोण के अनुसार लिखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

"कथावस्तु" में सफल सम्बन्ध-निर्वाह भी एक विशेष कला होती है और प्रत्येक उपन्यासकार में उसका होना अत्यन्त आवश्यक है।

अतः उपन्यासों को दो भागों में बाँट लेना उचित जान पड़ता है—प्रथम, वे उपन्यास जिनकी कथावस्तु विशृंखल है तथा दूसरे, वे उपन्यास जिनकी कथावस्तु में शृंखलाबद्धता पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रथम श्रेणी में प्रेमचन्द से पूर्व कुछ उपन्यासकार रखे जा सकते हैं, जैसे—देवकीनन्दन खत्री, दुर्गाप्रसाद खत्री इत्यादि और द्वितीय श्रेणी में श्री किशोरीलाल गोस्वामी तथा गोपालराम गहमरी, हरेकृष्ण जौहर इत्यादि आ सकेंगे। वस्तु का चुनाव लेखक की प्रतिभा की कसौटी है।

चरित्र-चित्रण

"उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र है", प्रेमचन्द जी का यह कथन सत्य के बहुत निकट है। चरित्र चित्रण के लिए पात्रों की आलोचना होगी, देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार उनका मूल्यांकन होगा। उपन्यास, यदि मानव जीवन की एक झाँकी है तो यथार्थ का चित्र उतार कर वह आदर्श की ओर हमें प्रेरित करता है। "वस्तु" के बाद सहज में ही पाठकों का ध्यान "पात्रों" की ओर बढ़ता है। उसके साथ ही चरित्र चित्रण की ओर भी वे दृष्टिपात करने लगते हैं। प्रत्येक उपन्यासकार अपनी रचना का स्वयं एक जीता-जागता पात्र है। उसके जीवन की सत्य अनुभूतियाँ एवं प्रगाढ़ कल्पनाएँ उसके पात्रों के चारों ओर लिपटी रहती हैं। उपन्यासकार के मनोवेगों का सच्चा निदर्शन उसके पात्रों के जीवन क्रम में पाया जाता है। जब पाठकगण पात्रों के कार्य व्यापारों में स्वयं रस लेने लगते हैं, तब उपन्यासकार के चरित्र-चित्रण का सफल परीक्षण हो जाता है। आदि से अन्त तक उपन्यास पढ़ लेने के उपरान्त पात्रों के चरित्र हमें इतना प्रभावित कर सकें कि हमारी कल्पना-शक्ति में वे सदैव विचरण करने लगें तब समझना चाहिए कि उपन्यासकार का चरित्रांकन सफल है।

"नाटक" की सीमा में पात्रों का चरित्र-चित्रण करना नाटककार के लिए अधिक सहज कार्य है। वहाँ पर वेश-भूषा, हाव-भाव, शृंगार के द्वारा पात्र अपने व्यक्तित्व को सरलता से स्पष्ट कर पाता है, पर उपन्यास के अन्तर्गत लेखक की रचना-शैली पर ही सारा चरित्र-चित्रण आधारित रहता है। प्रत्येक उपन्यासकार का यह परम कर्त्तव्य है कि चरित्र-चित्रण के लिए अभिव्यंजना और नाटकीय प्रणाली का आश्रय हो। अभिव्यंजना वह रीति है, जिसके द्वारा लेखक पात्रों के भावों, प्रवृत्तियों तथा विचारों का सफल प्रकन कर सकता है और नाटकीय वह प्रणाली है, जिसके द्वारा उपन्यास के पात्रों में सजीवता, स्वाभाविकता तथा अभिनयपटुता आ जाती है और जो पाठकों को सहज में ही अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। नाटकीय प्रणाली के द्वारा उपन्यास के पात्र सजीव होकर जीवन के घात प्रतिघातों को सहने के लिए तत्पर होते दिखाई देते हैं। लेखक की लम्बी-चौड़ी व्याख्या उपन्यास के आकर्षण को कम कर देती है, यहाँ तक कि उसके क्रमिक विकास में भी अवरोध उत्पन्न होने का भय रहता है।

उपन्यासकार का सबसे पहला कर्त्तव्य है कि उसके उपन्यास जनसाधारण की वस्तु हैं। उसके पात्र इसी भौतिक जगत के प्राणी हैं, जो मानवमात्र के समान खाते-पीते, पहिनते, विचरण करते, हँसते और रोते हैं। जो इस व्यावहारिक जगत में चौबीसों घण्टे अपना समययापन करते हैं। वे 'रामायण' के हनुमान के समान आकाश में उड़ जाने वाले और समुद्र को लाँघने वाले प्राणी नहीं हैं; अतः पात्रों के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य द्वन्द्व सफलतापूर्वक आँका जाना उपन्यास में आवश्यक है। कथावस्तु और पात्र एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक घटना का मूल पात्रों के चरित्र में निहित होता है, अतः चरित्र चित्रण स्वाभाविक और सजीवतापूर्ण होना चाहिए। चरित्र का विकास और पतन सहज गति से आगे की ओर बढ़े, जहाँ पाठकों को उन पात्रों के जीवन में रस आने लगे, उनके दुःख में दुखी और सुख में सुखी होने लगें।

कथोपकथन

पात्रों के चरित्र-चित्रण में "कथोपकथन" का अपना विशेष स्थान होता है। अंग्रेजी में इसे डायलाग (Dialogue) कहते हैं। यह वह बातचीत नहीं, जो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से करता है। उपन्यास की सफलता के लिए कथोपकथन की सजीवता और सार्थकता ध्यान में रखी जानी चाहिए। प्रत्येक कथोपकथन सरल, मार्मिक तथा पात्रों की सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल हो; साथ ही देश और काल का भी ध्यान रखा जावे। "कथोपकथन" को आयोजना उपन्यासकार की प्रतिभा की सूचक है—उसकी अनुभूतियों की परिचायक है। कथोपकथन प्रभावशाली और नाटकीय होने चाहिए, जिसका पाठकों पर अद्भुत प्रभाव पड़ेगा। कथोपकथन शृंखला-बद्ध तथा हृदय के नैसर्गिक उद्गार हों, जिनमें तनिक सा भी कृत्रिम आवरण न हो।

पात्रों के भावों, मनोनुकूल प्रवृत्तियों तथा मनोवेगों का सच्चा सफल निदर्शन उपन्यासों के क्षेत्र में सम्भव है। घटनाओं के उत्थान-पतन के साथ कथोपकथन की योजना होनी चाहिए। यह वह सूत्र है, जिसके द्वारा पात्रों का व्यक्तित्व साकार हो उठता है और पाठकों के लिए मूल्यांकन करना सरल हो जाता है।

भाषा और शैली

भाषा के प्रसंग पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। संस्कृत की शिक्षा पाये हुए पण्डितगण तथा आधुनिक शिक्षा-दीक्षा-प्राप्त साधारण जन की भाषा में बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। इतना ही नहीं, ग्रामों में निवास करने वाली सामान्य जनता की लोकभाषा अपना अपूर्व लालित्य लेकर प्रकट होती है। सभ्य कहलाने वाले पात्रों की भाषा में बनावटी तथा मिश्रित शब्दों के प्रयोग भी दिखाई देंगे। उपन्यासकार का प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग हो। वातावरण में सजीवता लाने के लिए भी भाषा पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू का प्रयोग आवश्यक है तथा अंग्रेजी पढ़ा-लिखा विद्वान् अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी बोलेगा। वयस्कता और अनुभूति तथा देश की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि पर ही भाषा का प्रयोग करना उपन्यासकार का महान् लक्ष्य है।

लेखक के भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम शैली है। शैली वह माध्यम है, जिसके द्वारा उपन्यास रोचकता को प्राप्त होता है। शैली भाषा का आधार है। ठीक ही कहा गया है कि उपन्यासकार का व्यक्तित्व उसकी शैली में चमकता है। 'Style is the man' इस दृष्टि से उपन्यास की रचना में शैली का प्रमुख स्थान है। जिन उपन्यासों में आदि से अन्त तक एक ही प्रकार की शैली है, उनमें लोच नहीं आने पाती। उपन्यासकार की योग्यता का खोखलापन प्रकट होने लगता है। "रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शैली में असीम विविधता मिलेगी, पर शरत् में नहीं।"[1]

"बाणभट्ट" की कादम्बरी में घटना और चरित्र की अपेक्षा शैली का अधिक महत्त्व है। कथानक के परिवर्तन के साथ शैली में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। जिस प्रकार सर्दी के महीनों में मलमल का कुर्ता पहिनना व्यर्थ है, उसी प्रकार पात्रों की भाषा के अनुकूल शैली का होना वाञ्छनीय है। शैली की स्वाभाविकता और सरलता उसके विशेष गुण हैं, जो उपन्यासकार की कला में निरन्तर स्थान पा लेते हैं। स्वाभाविकता के साथ ही साथ मनोवैज्ञानिकता को स्थान देना आवश्यक है। जब मनोविज्ञान और उपन्यास एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं तो पाठकों के हृदय में अपूर्व आकर्षण उत्पन्न होता है कि कोई भी रचना को आद्योपान्त पढ़े बिना वे पीछे नहीं हटते। शैली के अन्दर ही भाषा का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसको प्रेमचन्द ने सबसे अधिक समझा, जिसका सफल प्रयोग उनके "सेवासदन" नामक उपन्यास में

---

१. त्रिभुवनसिंह : "हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद", पृ० ४६।

परिलक्षित हुआ। हिन्दू घरों में हिन्दी पढ़े-लिखे मुसलमानों से उर्दू उन्होंने ही बुलवायी है। गांव का चमार अपने गांव की भाषा के प्रयोग में अपना गौरव समझता है। ठेठ भाषा के प्रयोग में तो उपन्यास की स्वाभाविकता और भी बढ़ जाती है। घरेलू भाषा की बोल-चाल के शब्दों से उपन्यास में सजीवता आ जाती है। जहाँ तक भाषा के प्रयोग की समस्या है, सब एकमत हैं कि उपन्यास की भाषा पात्रों के अनुकूल हो। यद्यपि विज्ञान की प्रगति ने देश, काल और स्थान की दूरी कम कर दी है, पर अपनी-अपनी संस्कृति और परम्पराएं चिरन्तन हैं। फिर भी हमें भाषा का प्रयोग पात्रों के सामाजिक रहन-सहन तथा विद्या-बुद्धि के अनुकूल ही कराना चाहिए, जिससे उपन्यास की स्वाभाविकता, धारा-प्रवाहकता और क्रमबद्धता नष्ट न होने पावे। हो सकता है, इस दृष्टि को प्रयोग में लाने से कहीं-कहीं पात्रोनुकूल भाषा का प्रयोग रुक जावे। मद्रासी से 'मद्रासी' का प्रयोग न कराया जावे और अंग्रेज से 'अंग्रेजी' का और दोनों को ही सरल हिन्दुस्तानी बोलना पड़, पर उपन्यास की सजीवता और प्रभावोत्पादकता बनी ही रहेगी, जो भाषा और शैली का प्रमुख लक्ष्य है। मार्मिक और सरल शैली पाठकों को सदा के लिए आकृष्ट कर लेती है।

देश-काल

प्रत्येक साहित्यकार अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि है और उसकी रचनाओं में उस काल के जन-जीवन का सच्चा चित्र उपस्थित रहता है। इसी प्रकार उपन्यास की रचना देश और काल के घेरे में बंधकर आगे बढ़ती है। प्रत्येक उपन्यास के चरित्रों का जीवन शून्य में न होकर समाज के रहन-सहन, आचार-विचारों तथा बाह्य परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होगा। जीवन की स्मरणीय दशा और घटना उपन्यासकार के समस्त व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। प्रगतिवादी कलाकार की रचनाओं में पूंजीपति और मजदूर, कृषक और जमींदार, शोषित और शोषक की समस्याएं आदि से अन्त तक प्रवाहित होती रहेंगी। सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रश्नों का निदान उपन्यास के विस्तृत क्षेत्र में सरलता से प्राप्त हो जाता है। देश-काल का चित्रण करते समय यह आवश्यक हो जाता है कि उस युग-विशेष का दुष्प्रभाव पात्रों पर न पड़े, पर यथार्थवादी चित्रण में पात्रों को उस युगीन धारणाओं से बचाकर रखना लेखक के लिए कठिन है। कथा का धारावाहिक क्रम इस प्रकार आयोजित हो कि घटनाओं का उत्थान और पतन सजीव तथा स्वाभाविक प्रतीत होने लगे। ध्यान रखिये कि देश-काल उपन्यास के प्रमुख अंग न होकर गौण हैं और उनके कारण रचनाओं की सामाजिक महत्ता बढ़ जाती है। पर यह भी सत्य है कि प्रत्येक रचना अपने युग का प्रतिनिधित्व करती है, उसमें जन-जीवन का इतिहास निहित रहता है।

उद्देश्य

उपन्यास में मानव-जीवन का समस्त प्रतिबिम्ब नहीं तो कम से कम उसकी

आलोचना तो अंकित हो ही जाती है। प्रत्येक उपन्यासकार, अपने साहित्य-जगत में किसी न किसी उद्देश्य के साथ, अवतरित होता है। उसके जीवन का लक्ष्य उसके उपन्यास में केन्द्रीभूत हो जाता है। उसके आवेगों और भावों की अच्छी प्रतिच्छाया है। वह सृष्टा है तथा स्वयं सृष्टि भी है। साधारण से साधारण उपन्यास भी जीवन की कोई न कोई मार्मिक दशा का चित्र उतारने के लिए तत्पर दिखाई देता है। प्रत्येक कलाकार गूढ़ विचारक है और सच्चे जीवन-दर्शन का प्रतिपादक है। वह अपनी प्रौढ़ अनुभूतियों के आधार पर अपने उपन्यास में नये-नये सफल चित्र उतारता है। उसकी मानव-जीवन-सम्बन्धी 'नीर-क्षीर विवेक' शक्ति तथा सृजन-प्रणाली उसके उद्देश्य को सफल बनाती है। अतः यह स्पष्ट है कि कोई भी उपन्यास निरुद्देश्य नहीं होगा। यद्यपि उपन्यासकार उपदेशक नहीं है, पर फिर भी पर्दे की आड़ से अप्रत्यक्ष रूप से वह एक सूत्रधार के समान समस्त मानव-जीवन को उपन्यास के रंगमंच पर अभिनीत कराता रहता है। आज युग के साथ-साथ मानव-जीवन का लक्ष्य और उसकी गतिविधियाँ दोगुनी से बदलती जा रही हैं। मानव की धारणाओं से तथा उसके जीवन-सम्बन्धी उद्देश्यों में नित्य नयी नूतनताएँ अनुप्राणित हो रही हैं। राजनैतिक, राष्ट्रीय, आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, अन्तर्राष्ट्रीय आदि अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं और उपन्यासकार उनका निदान अपनी रचनाओं में अंकित करने की चेष्टा करता है। यद्यपि मूल समस्याएँ शाश्वत हैं, जैसे रोटी, वस्त्र तथा यौन सम्बन्धी (Sex) इच्छा, और आवश्यकता; केवल उनका बाह्य रूप बदला हुआ दिखाई देता है। उपन्यासकार जीवनद्रष्टा है। वह ऐसा सफल कलाकार है, जो भाषा के माध्यम से जीवन के मार्मिक क्षणों को अंकित करने में संलग्न है।

उपन्यास शाश्वत है, उपन्यासकार का जीवन चिरन्तन है और उसका उद्देश्य भी शाश्वत है, जो जीवन की मूलभूत समस्याओं को भिन्न-भिन्न रंगों में रंग कर जग के सामने प्रदर्शित करता रहता है।

उपन्यासों के प्रकार

उपन्यासों की विधाओं का वर्णन करने के उपरान्त हमारा लक्ष्य उनके प्रकारों से है। साधारण रूप से "उपन्यास" को चार प्रकारों में विभाजित करना सत्य जान पड़ता है। यह विभाजन उपन्यासों का मूल्यांकन करने के लिए अत्यन्त सहायक होगा—

(अ) घटना-प्रधान (वस्तु-प्रधान),
(ब) चरित्र प्रधान (पात्र-प्रधान);
(स) नाटकीय उपन्यास;
(द) ऐतिहासिक उपन्यास।

घटना-प्रधान

वे उपन्यास हैं, जिनमें कथावस्तु ही वह केन्द्र-बिन्दु है, जिसके चारों ओर

उपन्यास का चक्र चलता रहता है। हिन्दी का कथा साहित्य, यहां तक कि "दादी-नानी वाली" कहानी में भी मूल रूप से घटना की प्रधानता रहती है। घटना प्रधान कथानक पाठकों में वह कौतूहल जाग्रत करता है, जिसके द्वारा उनका ध्यान उपन्यास के आदि से अन्त तक (एक) एकसूत्र में बंधा रहता है। बाबू देवकीनन्दन खत्री के सारे उपन्यास—भूतनाथ, चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति नाम से भले ही चरित्र प्रधान आभासित होते हैं, पर उनमें घटना की प्रधानता है। जहाँ यदि एक ओर हमारा ध्यान उपन्यास के प्रधान पात्र चन्द्रकान्ता, इन्द्रजीतसिंह इत्यादि पर लगा रहता है वहीं हम साथ ही साथ घटनाओं के उत्थान पतन की ओर भी जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से निरन्तर देखते रहते हैं। अत यह आवश्यक है कि प्रत्येक उपन्यास मे घटनाएं एक निश्चित क्रम से आयोजित हो यहाँ तक कि कड़ी जोड़ने की दृष्टि से एक घटना दूसरी घटना का पूर्वाभास अवश्य करादे। घटना प्रधान उपन्यासो म ओजपूर्ण तथा वीरतापूर्ण घटनाओ का वर्णन रहता है, जिसके द्वारा पाठको का अपूर्व मनोरंजन होता रहता है। चमत्कारपूर्ण प्रसंगों की भी अवतारणा लेखक की इच्छानुसार होती चलती है।

"चन्द्रकान्ता" और "भूतनाथ" की कपोलकल्पित कथाओ ने पाठकों को इतना आकर्षित किया है कि व पढते जाते हैं और ठगे से रह जाते हैं और कल्पना लोक म विचरने लगते हैं। घटनाओ का क्रम उनके मस्तिष्क मे निरन्तर हलचल मचाये रहता है। एक बार उपन्यास हाथ म लेने क बाद बिना पूरा पढे हुए पाठको को विश्रान्ति नही मिलती है। पात्रों के जीवन का उतार-चढाव भी घटनाओ के साथ ही अकित किये जाते हैं। तिलस्मी, ऐयारी और समस्त जासूसी उपन्यास इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। घटना प्रधान उपन्यासो म रोमांचकारी कौतूहलवर्द्धक, सनसनी उत्पन्न करने वाली घटनाओ की आयोजना निरतर उपन्यासकार को करनी पडती है। विपत्तियाँ, दुर्घटनाएँ, मार काट, वीरोचित काय, उन पर विजय-प्राप्ति—यह सब उपन्यासो म निहित रहता है।

बाबू देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी और हरेकृष्ण जोहर घटना-प्रधान उपन्यासकारो की श्रेणी मे सफलता से रखे जा सकते हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास 'घटना प्रधान" और "चरित्र प्रधान" दोनो प्रकारो के समन्वित रूप हैं। वह पडाव है, जहाँ पर आकर दोनो विधाएँ एक रूप हो जाती हैं।

चरित्र-प्रधान

जिन उपन्यासों में लेखक 'चरित्र' को ही प्रधानता देता है, जिनमें सारा लक्ष्य केवल चरित्र, उनके कार्यकलाप और उनके व्यवहार तक केन्द्रित होता है, वे उपन्यास चरित्र-प्रधान कहलाते हैं। वर्तमान युग में चरित्र प्रधान उपन्यास घटना-प्रधान रचनाओं की तुलना में अधिक ख्याति प्राप्त करते जा रहे हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल इत्यादि अधिकांश चरित्र-प्रधान उपन्यासकार हैं। प्रेमचन्द से पूर्व के

उपन्यासों में घटना और चरित्र दोनों को समान महत्ता प्रदान की गयी है। घटनाओं की विशेष प्रकार की आयोजना चरित्र-प्रधान उपन्यासों में की जाती है, जिससे घटना की अपेक्षा चरित्र को विशेष स्थान प्राप्त हो सके। कथावस्तु तो पात्रों के जीवन को प्रकाश मे लाती है और घटनाएँ जीवन को निखार देती हैं। खत्रीजी की 'चन्द्रकान्ता' और गोस्वामी किशोरीलाल का 'कुसुम कुमारी' दोनों चरित्र-प्रधान उपन्यास हैं, जिनमे घटनाओं को भी समकक्ष स्थान प्राप्त हुआ है। आधुनिक युग ने समीक्षा के आधार पर उपन्यासों के भिन्न-भिन्न प्रकार निश्चित कर डाले हैं। प्राचीन काल में तो केवल कथा कही जाती रही, सुनी जाती रही और उपन्यासों की रचना होती रही। उपन्यास जीवन का एक सहज अभिन्न अग था। यदि उपन्यासकार के सामने चरित्र-प्रधान वर्गीकरण रख दिया जावे तो हो सकता है कि घटनाओं के उत्थान-पतन में शिथिलता आ जावे, यदि घटना-प्रधान उपन्यास लिखे जावें तो चरित्रों के विकास मे शिथिलता आ जावे, इसलिए प्राचीन युग में कथावस्तु और चरित्र का भेद प्रायः उपन्यासो म नही रखा जाता रहा। दोनो का लक्ष्य एक ही रहा और उपन्यास रचे जाते रहे।

नाटकीय उपन्यास

इसे भी आधुनिक युग की मनोस्थिति ने जन्म दिया है। वे उपन्यास जिनके अन्दर अधिक पात्रो का समावेश किया जावे तथा कथावस्तु का कोई निश्चित रूप उपलब्ध न हो, केवल चरित्र और घटनाएँ एक दूसरे के निकट सम्पर्क म रह कर इस प्रकार के नाटकीय उपन्यासों को सृष्टि करते हैं। उनमे घटनाओं का स्वरूप बदलता जाता है, यहाँ तक कि अत्यधिक गतिशीलता और प्रवाहमानता आ जाती है। इन उपन्यासो के पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए सम्वादो (कथोपकथन) की आयोजना करनी पड़ती है। नाटकीय आनन्द की प्राप्ति के लिए कथोपकथन की विदग्धता और प्रभावोत्पादकता आवश्यक हो जाती है।

इन उपन्यासो को अधिक से अधिक मार्मिक और मनोरजक बनाना आवश्यक हो जाता है। नाटकीय उपन्यासों की घटनाओं का क्रम-विकास देख कर ऐसा जान पड़ता है कि समय चक्र भी पात्रों के जीवन के साथ निरन्तर चल रहा है। इस श्रेणी के उपन्यास "नाट्य-रस" का रसास्वादन करा देते हैं। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द के आगमन से ही नाटकीय उपन्यासों का जन्म हुआ। उनका "सेवासदन" कुछ नाटकीय पात्रों की अवतारणा करता हुआ दिखाई देता है। धीरे-धीरे 'रगभूमि', 'कर्मभूमि', 'गबन' और 'गोदान' में भी नाटकीय तत्व पाये जाने लगे।

प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासकारों मे केवल गोस्वामी किशोरीलाल ने अपने उपन्यासों में नाटकीय तत्वों को लाने की चेष्टा की है।

ऐतिहासिक उपन्यास

ये भी नाटकीय प्रणाली पर रचित उपन्यास हैं। यद्यपि इनका आख्यान

इतिहास की पृष्ठ-भूमि पर से लिखा जाता है, फिर भी उपन्यासकार घटना और चरित्र का अद्भुत सामंजस्य ऐतिहासिक उपन्यास (उपन्यास) के माध्यम से स्थापित करता है। इन उपन्यासों में 'देश-काल' को प्रधानता दी जाती है। ऐतिहासिक सत्यता उपन्यास में खोजना तो हमारा दुरूह प्रयास है, फिर भी देश, काल और पात्र सब ऐतिहासिक होते हैं।

प्रेमचन्द से पूर्व सर्वप्रथम किशोरीलाल गोस्वामी ने ऐतिहासिक उपन्यास रचे हैं। आधुनिक युग में श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों को एक नवीन दिशा प्रदान की है। 'गढ़कुण्डार', 'झाँसी की रानी,' 'माधवजी सिन्धिया' ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जिनके पात्र तथा घटनाएँ सब शुद्ध ऐतिहासिक हैं। केवल कल्पना की कूँची से कलाकार ने उपन्यास का रंग उनमें भरा है। किशोरीलाल गोस्वामी ने यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, जैसे 'लखनऊ की कब्र' पर उनमें इतिहास और काल की उपेक्षा पायी जाती है, जिससे उन्हें शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास कहने मे सकोच होता है। "तारा" यद्यपि उनका ऐतिहासिक उपन्यास है, फिर भी देश और काल का सही समावेश नहीं होने पाया है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय मे गोस्वामी किशोरीलाल की निश्चित धारणा है।

'देखिये जैसे' इतिहास की मूल भित्ति सत्य है, वैसे ही 'उपन्यास की मूल भित्ति कल्पना है'। सत्य घटना बिना जैसे इतिहास 'इतिहास' नहीं, वैसे ही योग्य कल्पना बिना उपन्यास भी 'उपन्यास' नहीं कहला सकता। इतिहास में जैसे 'वास्तविक घटना' बिना काम नही चलता, वैसे ही उपन्यास में भी कल्पना का आश्रय लिये बिना प्रबन्ध नही लिखा जा सकता। ऐसी अवस्था मे 'ऐतिहासिक' उपन्यास लिखने के लिए इतिहास के सत्यांश के साथ तो कल्पना की थोडी ही आवश्यकता पडती है; पर जहाँ इतिहास की घटना जटिल, सत्याभासमात्र और कपोलकल्पित भासती है, वहाँ लाचार हो इतिहास को बाँध कर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार फैला लेती है।[१]

उपन्यासकार अपने ऐतिहासिक उपन्यासो में नवीन घटनाओ की आयोजना तो कर सकता है, पर इतिहासप्रसिद्ध घटनाओं में अपने मन से विशेष काट-छाँट नही कर सकता है; फिर भी गोस्वामीजी ने कल्पना का रंग पूरी तरह से चढ़ाया है। ऐतिहासिक उपन्यास भी अपने युग को प्रतिनिधि रचना है, अपने काल की सच्ची घटनाओं की प्रतिच्छाया है, अतः उपन्यासकार को बडी सावधानीपूर्वक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना का कार्य करना चाहिए।

"कहा जाता है कि उपन्यास मे केवल नाम और तारीखों को छोड कर सब सत्य है और इतिहास में नाम और तारीखो को छोड कर सब असत्य है।"[२]

---

१. किशोरलाल गोस्वामी : "तारा"—उपन्यास का निवेदन, पृ० १।

२. An Introduction to Literature by Hudson, p. 166.
"A wit has said" : In fiction every thing is true except name and dates; in history nothing is true except names and dates."

डॉ॰ श्यामसुन्दरदास की दी हुई उपन्यास-की परिभाषा इस प्रकार है : "*उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।*"[1]

और भी दूसरा उदाहरण है, जिससे ऐतिहासिक उपन्यास के ढाँचे का सबत मिलता है।

देश-काल के चित्रण के अन्तर्गत इतिहास झाँकता रहता है। सम्पूर्ण ऐतिहासिक ज्ञान की अपेक्षा प्रत्येक उपन्यासकार से की जाती है। "उपन्यास जीवन का चित्र है, प्रतिबिम्ब नहीं।" उपन्यासकार अपने पात्रों को मानव सृष्टि से सम्बद्ध करता है, पर इतिहासकार राष्ट्र के साथ नाता जोड़ कर चरित्र चित्रण करके उसे प्रकाश में लाता है।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपने 'ऐतिहासिक उपन्यास" नामक निबन्ध मे कहा है कि "*उपन्यास में इतिहास मिल जाने से एक विशेष रस सचरित* हो जाता है, उपन्यासकार एक मात्र उसी ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हें कोई विशेष परवाह नही होती। काव्य में जो भूलें हमें ज्ञात होंगी, इतिहास में हम उनका संशोधन कर लेंगे, किन्तु जो व्यक्ति काव्य ही पढ़ेगा और इतिहास को पढ़ने का अवसर नहीं पायेगा, वह हतभाग्य है और जो व्यक्ति केवल इतिहास को ही पढ़ेगा और काव्य के पढ़ने के लिए अवसर नहीं पायेगा, सम्भवत उसका भाग्य और भी मन्द है।'[2]

"ऐतिहासिक उपन्यासो को सचाई के साथ राष्ट्रीय जीवन के महान् आन्दोलनो का सजीव चित्र उपस्थित करना चाहिए।'[3]

ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य दुगुना रहता है—एक ओर उसे इतिहास के तथ्यो की रक्षा करनी होती है तथा दूसरी ओर उसे कल्पना के रंगीन चित्र उतार कर पाठकों का मनोरंजन करना पडता है। इतिहास का आधार जितना अधिक ठोस तथा सबल होता है, उपन्यासकार को उतना ही कल्पना के माध्यम के द्वारा कलापक्ष *को अधिक से अधिक सुचारु रूप में प्रकट करने का अवसर मिलता है। केवल कठोर* सत्य ही नहीं, वरन् सम्भावित सत्यों को भी इतिहास की श्रेणी में रखकर ही कलाकार को चलना आवश्यक हो जाता है। ऐतिहासिकता का रंग चढाकर पात्रो एवं कथानकों को कल्पना करने की उपन्यासकार को वहीं तक छूट है, जब तक वह ऐतिहासिक आधार को पकड़ कर चलता है।

रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रसिद्ध इतिहासलेखक ने कहा है: "किसी ऐतिहासिक उपन्यास में यदि बाबर के सामने हुक्का रखा जायगा, गुप्तकाल में गुलाबी और फिरोजी रंग की साड़ियाँ, इत्र, मेज पर सजे गुलदस्ते, झाड़फानूस लाये जावेंगे; सभा

---

१. डॉ॰ श्यामसुन्दरदास : "साहित्यालोचन", पृ॰ १८०।
२. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : "ऐतिहासिक उपन्यास निबन्ध", पृ॰ १२५ और १२७
३. त्रिभुवनसिंह : "हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद", पृ॰ १३६.

के बीच खड़े होकर व्याख्यान दिये जावेंगे और उन पर करतलध्वनि होगी, बात-बात में धन्यवाद, सहानुभूति ऐसे शब्द तथा सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना, ऐसे फिकरे पाये जावेंगे तो काफी हँसने वाले और नाक-भौं सिकोड़ने वाले मिलेंगे।"[1]

हिन्दी साहित्य में सफल ऐतिहासिक उपन्यासों का आज भी नितान्त अभाव है। बंगला साहित्य में लिखे गये राखालदास बन्द्योपाध्याय के ऐतिहासिक उपन्यास उच्चकोटि के हैं और बंकिमचन्द्र का "आनन्दमठ" भी तत्कालीन युग की सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का जीता-जागता उदाहरण है। प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों में ऐतिहासिकता खोजने के लिए समीक्षकों को उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाना होगा। उदाहरण के लिए, किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है : "गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों से भिन्न-भिन्न समयों की—सामाजिक और राजनैतिक अवस्था का अध्ययन और संस्कृति के स्वरूप का अनुसंधान नहीं सूचित होता। कहीं-कहीं तो काल-दोष तुरन्त ध्यान में आ जाते हैं—जैसे जहाँ जहाँ अकबर के सामने हुक्के या पेचवान रखे जाने की बात कही गयी है।"[2]

जिस ऐतिहासिक उपन्यास-धारा को जन्म देने वाले गोस्वामी किशोरीलाल थे, उसका विकसित रूप वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री में प्राप्त हुआ। आज भी ऐतिहासिक उपन्यासकारों के लिए साहित्य का क्षेत्र खुला पड़ा है। वे आवें और अटूट लगन के साथ अपनी लेखनी को निर्माण में लगा दें।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय में कहा है : "ऐतिहासिक उपन्यासों में देश काल जन्म परिस्थितियों का प्राधान्य रहता है। उपन्यासकार इतिहास के ढाँचों और संकेतों से उस काल के जीवित रूपों की कल्पना कर सभी सम्भावित जीवन-वृत्तों को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में लेखक का काम तात्कालिक घटनाओं की सूची देना नहीं, तात्कालिक समाज प्रवाह का वेग दिखलाना होता है।"[3]

श्री एच० बटरफील्ड ने कहा है : "ऐतिहासिक उपन्यास आख्यायिका और इतिहास दोनों का एक समन्वित रूप है, उसमें कहानी का एक नया रूप है तथा मृत काल के मानव-जीवन के तथ्यों का चित्र अंकित है।"[4]

---

१. रामचन्द्र शुक्ल "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५३७-५३८।
२. वही, पृ० ४३५।
३. चतुरसेन शास्त्री : "हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, सन् १९४८, पृ० ७०।
४. The Historical Novel, 1924 edition, p. 4.

(See next page)

बख्शीजी ने कहा है : "श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों से भी इतिहास का काम नहीं लिया जा सकता। उनमें ऐतिहासिक घटनाओं का अनुसरण कर पात्रों का वर्णन भले ही किया जाय, पर उनकी जीवन-धाराएँ ऐतिहासिक घटनाएँ नहीं होती।"[1]

उपन्यासकार के गुण

उपन्यासकार की सच्ची प्रतिभा और गहन अनुभूति पर ही उपन्यास की सफलता निर्भर है। उसकी प्रौढ़ अनुभूति तथा जीवन के उतार-चढ़ावों के द्वारा उसकी विचारधारा का निर्माण होता है, जो उपन्यास की जन्मदात्री और प्रेरक शक्ति है। हेनरी फील्डिंग ने उपन्यासकार के चार प्रमुख गुण बतलाये हैं—प्रथम, प्रतिभा, जो सम्पूर्ण उपन्यास की केन्द्र-बिन्दु है, जिसके द्वारा उपन्यासकार मानव-रहस्यों का उद्घाटन करता है। द्वितीय, 'विद्वत्ता', यह उसकी अपनी मौलिक हो, जिसका निर्माण साहित्य और इतिहास के अध्ययन द्वारा हो। उसमें "नीर क्षीर विवेक" की शक्ति हो, जिसके कारण वह दूसरे के अनुभवों से लाभ उठाकर अपनी रचनाओं में समस्याओं का निदान खोजे। तृतीय गुण उसका लोक-व्यवहार-ज्ञान है, जो केवल अध्ययन से प्राप्त नहीं होगा। इसके लिए उसे सामाजिक शिष्टाचार और व्यवहार-कुशल होना पड़ेगा। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का ज्ञान उपन्यासकार के लिए आवश्यक है। चतुर्थ गुण "सहृदयता" है, वह भावना, जिसके द्वारा उसके हृदय में सहानुभूति उत्पन्न हो और वह दूसरे के सुख-दुःख का स्वयं अनुभव कर सके। दूसरे को रुलाने के पूर्व उसकी आँखों से अश्रु धारा बहने लगे और हँसाने के पूर्व उसमें हँसने की सामर्थ्य आ जावे। प्रत्येक उपन्यासकार अपनी-अपनी रुचि तथा प्रतिभा और आवश्यकताओं के आधार पर अपने उपन्यास का ढाँचा तैयार करता है और साहित्य का सृजन करता है। उपन्यासकार युग-सृष्टा है—वह सृजनकार है, जो वस्तु का आधार लेकर "उपन्यास" का विशालतम भवन तैयार करता है।

उपन्यास और आख्यायिका का सम्बन्ध

मानव-जीवन की जटिलताओं तथा उसकी व्यस्तता ने कहानी को जन्म दिया है। परिस्थितियों के थपेड़ों से आक्रान्त होकर वह मनोरंजन का मार्ग खोजता है। छोटी कहानी वह माध्यम है, जो मानव-मात्र का मनोरंजन करने में सहायक होती है। उपन्यास को पढ़ने में अधिक लम्बा समय चाहिए, पर कहानी तो एक बैठक में पूरी पढ़ ली जाती है।

पाश्चात्य देशों में "एडगर एलन पो" कहानी के जन्मदाता है। उन्होंने कहा

The historical novel is a 'form' of fictions as well as of history. It is a tale, a piece of invention, only, it claims to be true to the life of the past. —H. Butterfield.

१. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : "हिन्दी कथा साहित्य", पृ० २२८।

कि "कहानी वह संक्षिप्त वर्णन है, जो एक ही बैठक मे पढी जा सके।" एक ही भाव तथा अनुभूति के आधार पर कथाकार नाना प्रकार से कहानी को सँवारने तथा आकर्षक बनाने में अपनी लेखनी की सफलता आँकता है।

साधारण रूप से उपन्यास और आख्यायिका मे केवल आकार का ही भेद मानना चाहिए, इसलिये "चन्द्रकान्ता" उपन्यास है और "रानी केतकी की कहानी" एक कथा है। उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानव-जीवन का चित्र अकित किया जाता है। कहानी जीवन का एक विशिष्ट रूप है—जीवन व्यापक है, उपन्यास के घेरे मे उसका लम्बा-चौडा रूप प्रकट होता है। कथानक की दृष्टि से उपन्यास की अपेक्षा कहानी सरल, सक्षिप्त तथा स्पष्ट होती है, पर उपन्यास में घटनाओ का क्रम अवाधगति से चलता रहता है। अनेक पात्रो के समन्वय के रूप मे उपन्यास रचा जाता है। उपन्यास मे उनका चरित्र-चित्रण भी एक विशिष्ट लक्ष्य को ध्यान म रखकर ही किया जाता है। कथा का वस्तु एक विशिष्ट स्थिति मे निर्मित होती है, पर उपन्यास म एक प्रमुख घटना के साथ ही साथ प्रायः अनेक गौण घटनाएँ भी चलती रहती हैं। हिन्दी के प्रमुख कथाकार प्रेमचन्द ने कथा को गल्प के रूप मे ग्रहण किया है। प्रेमचन्द ने कहा है: "साहित्य में कहानी का स्थान इसीलिये ऊँचा है कि वह एक ही क्षण मे बिना किसी घुमाव-फिराव के, आत्मा के किसी न किसी भाव को प्रकट कर देती है और चाहे थोडी ही मात्रा मे क्यो न हो, वह हमारे परिचय का, दूसरो मे अपने को देखने का, दूसरे के हर्ष या शोक को अपना बना लेने का क्षेत्र बढा देती है।"[1]

उपन्यासो के समान ही कुछ कहानियाँ घटना-प्रधान होती हैं तथा कुछ चरित्र-प्रधान—पर दोनों का मुख्य लक्ष्य मानवमात्र को मानसिक तृप्ति प्रदान करना है। उपन्यासकार और कहानीकार—दोनों का मूल लक्ष्य साहित्य का सृजन है, जिससे "स्वान्तः सुखाय और बहुजनहिताय" दोनों लक्ष्यो की पूर्ति हो सके।

डॉ० गुलाबराय ने भी बताया है कि "कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में अनुजा।"[2]

यह कहना बडा कठिन कार्य है कि कहानी छोटा उपन्यास है अथवा उपन्यास बड़ी कहानी है। कहानीकार केवल एक ही घटना को मूल आधार मानकर अपनी कूँची से उसको अधिक से अधिक प्रकाश मे लाने की चेष्टा करता है, पर उपन्यासकार अनेक घटनाओ को एक सूत्र में पिरोकर, सँजोकर ही अपनी रचना को प्रस्थापित करता है। यही कारण है कि शिल्प-विधि (Technique) की दृष्टि से दोनो के रचना-विधान में अन्तर दिखाई देने लगता है।

---

१. प्रेमचन्द: "कुछ विचार", पृ० ३६।
२. बा० गुलाबराय: "काव्य के रूप", पृ० २१६।

प्रायः सब जातियों, सब देशों तथा प्रत्येक काल में कहानी कहने और सुनने की प्रथा आदिकाल से चली आ रही है। युग की गतिशीलता ने कथा के आकार और उसकी रूपरेखा में योडा-बहुत अन्तर ला दिया है। उपन्यास के समान कहानी के शरीर-विज्ञान में भी एक ही समान अवयव उद्‌भूत होते हैं।

अतः यह सत्य प्रतीत होता है कि कथाओं में ही उपन्यासों की वस्तु का आभास मिलता है।

कहानी के शरीर के अवयव निम्नलिखित हैं—

(१) कथानक (वस्तु) ;
(२) चरित्र-चित्रण ;
(३) कथोपकथन ;
(४) भाषा और शैली ;
(५) देश-काल , और
(६) उद्देश्य ।

कथा, आख्यायिका, आख्यान, गल्प सब वर्तमान कहानी के ही पर्यायवाची हैं। कथाकार का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह कहानी के शीर्षक, प्रारम्भ और अन्त पर ध्यान रखकर ही कथा की रचना करे। साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त से ही कथा-साहित्य का विकास होने लगता है। फ्रान्स में थेयोफिलेगोहेय प्रोसपरमेरी भी, अलकडिन्स डाउदेन के बाद गुस्तेवालाकर और शिष्य मोपासा प्रिय कथाकार हुआ है। जनता ने मोपासा की कहानियाँ बड़े प्रेम से पढ़ीं। मानव जीवन का यथार्थ चित्र अंकित करने में वह अत्यन्त प्रवीण था। समस्त यूरोप में उसकी ख्याति फैली। उसकी कथाओं ने यूरोपीय सामाजिक जीवन को प्रकाश में लाने में सहायता पहुँचायी। रूस के महान् कलाकार टाल्सटाय ने मोपासा की कहानियों में वासनापूर्ण उद्‌गार खोजे। टॉल्सटाय स्वयं नैतिकतावादी कलाकार था। उसने नैतिक आदर्श से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ लिखीं। टॉल्सटाय, तुर्गनेव और डोस्टावेस्की, चेखव जैसे रूस के महान् कथाकारों ने ढेरों कहानियाँ संसार को भेंट में दीं। इसका फल यह निकला कि मोपासा की शृंगारिक कहानियाँ जन-जीवन से बाहर की सामग्री बन गयीं। रूसी कथाओं ने मनोविज्ञान को जन्म दिया, जिसने मानव-आवेगों को समझने की चेष्टा की है। जीवन का सत्य प्रकट हुआ, मार्मिकता ने कथा की आत्मा में प्रवेश किया, यहाँ तक कि कथाओं के द्वारा सामाजिक अत्याचार और अन्यायपूर्ण चित्र जनता के सामने प्रकट हुए।

प्रेमचन्द ने भी कहा है : "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार

किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना मनोवैज्ञानिक सत्य है।"[1]

मेक्सिम गोर्की रूसी कहानियों का अगुआ कहलाया। उसने टॉलस्टाय तथा तुर्गनेव के विरुद्ध नई क्रान्तिजनक कथा-साहित्य को जन्म दिया। सोवियत कथाकारों ने मानव जीवन के अन्तर्द्वन्द्वों को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। इसके साथ ही साथ फ्रान्स, जर्मनी, स्पेन, इटली इत्यादि देशों में भी कथा साहित्य का जन्म हो चुका था।

"हेरोडोट्स" ने अपनी पुस्तक में अपने से एकसौ सात वर्ष पहले के कथाकार 'ईसॉप' का उल्लेख किया है, यद्यपि यह कल्पित नाम है, जिसका प्रभाव भारतीय कथाओं पर भी अमिट है। हेरोडोट्स के बाद थियोक्राइट्स, लूसियम, हैलिजोडरस ने भी अनेक कथाएँ रची। ईसाइयों के धर्म-ग्रन्थ 'ओल्ड एण्ड न्यू टैस्टामेण्ट' (Old and New Testament) में भी कथा साहित्य का भण्डार उपलब्ध होता है। मिस्र देश का प्राचीन कथा साहित्य अभी भी पत्थरों पर खुदा हुआ प्राप्त होता है।

उपन्यास साहित्य से पहले भारत का प्राचीन गद्य साहित्य भी आख्यायिका, आख्यानक जातक एवं पौराणिक तथा दन्तकथाओं के रूप में उपलब्ध है। वैदिक, संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश इत्यादि भाषाओं में कथा साहित्य खोजने पर उपलब्ध हो सकता है। यद्यपि ऋग्वेद में वास्तविक रूप में कथाएँ नहीं प्राप्त होती हैं, फिर भी उनके मूल संकेत तो उपलब्ध हो ही जाते हैं। दैवी शक्तियों की आराधना, पूजा में जपे हुए अनेक मन्त्र तथा श्लोक आज भी प्राप्त हो जाते हैं। ये सूत्र इस प्रकार रचे गये हैं, जो कथोपकथन के माध्यम से जोड़ दिये जाते हैं। कुछ इस प्रकार के भी आख्यान उपलब्ध हैं, जिनमें देवताओं के जीवन के अनेक मनोरंजक प्रसंगों के संकेत प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध "अँपोलो की कथा" का एक सूत्र उपलब्ध होता है कि वह रोगिनी होने के कारण अत्यन्त दुखी है, फिर भी उसका निष्ठुर पति उसे त्याग देता है, तब भगवान इन्द्र प्रकट होकर उस अबला अनाथ नारी की सहायता करते हैं। "ऋग्वेद" में इस प्रकार की अनेक कहानियाँ प्राप्त होती हैं, जिनके आधार पर उपन्यास साहित्य के मूल स्रोतों का पता सहज में लग जाता है। उपन्यास के बीज इन कहानियों में छिपे हुए पड़े थे।

"संहिता" में केवल इस प्रकार के आख्यानों का यथावत् सूक्ष्म उल्लेखमात्र मिलता है। निरुक्ति में यास्क तथा सायण ने अपने भाष्य में इन कथाओं के रूप तथा उनके प्राचीन आधार को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत कथा साहित्य का अटूट भण्डार "ऋग्वेद" है।

इक्ष्वाकुनरेश राजा हरिश्चन्द्र तथा पुरूरवा और उर्वशी की कथाएँ तो मात्र

---

१. प्रेमचन्द "कुछ विचार", पृ० ३०।

भी जग-प्रसिद्ध हैं। हिन्दी कथा साहित्य के मूलबीज तो संस्कृत के ही कथा साहित्य में प्राप्त होते हैं। इन्होंने ही नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठ-भूमि हिन्दी कहानियों के लिए तैयार की है।

उपनिषदों में भी शान्तिदायिनी सूक्तियों के बीच-बीच में अनेक आख्यान प्रकट होते हैं। शास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर तो ये कथाओं की श्रेणी में नहीं आ सकेंगी। इनके अन्तर्गत तो हिन्दू धर्म के मूल तत्व प्रवाहित हो रहे हैं, पर फिर भी पाठकों की जिज्ञासा का समाधान करने के लिए उपनिषदों ने हिन्दी कथा-भण्डार को मौलिक रूप में नहीं तो कम से कम अनूदित रूप में निम्नलिखित कथा साहित्य प्रदान किया है।[1] जैसे—

(१) केनोपनिषद् में	—	देवताओं की शक्ति-परीक्षा की कथा।
(२) छान्दोग्य उपनिषद् में	—	सत्य काम की गौ सेवा, उपस्ति की कठिनाई, महात्मा रैक्व और राजा जानश्रुति आदि की कथाएँ।
(३) कठोपनिषद् में	—	नाचिकेता के साहस की कथा।
(४) बृहदारण्यक में	—	गार्गी और याज्ञवल्क्य की कथा।
(५) छान्दोग्य में	—	श्वेतकेतु और उद्दालक की कथा।
(६) तैत्तिरीय में	—	आश्वनीकुमार और उनके गुरु दध्यग की कथा।
(७) प्रश्नोपनिषद् में	—	कबन्धी, वैदर्भि, कौशल्य सत्य काम, गार्गी और सुकेशा की कथाएँ।
(८) मुण्डकोपनिषद् में	—	महाशल्य शौनक और अंगिरा की कथा।

उपनिषदों की कथाओं की धार्मिक पृष्ठ-भूमि के आधार पर रचित है, जिनके द्वारा प्राचीन भारत की नैतिक परम्पराएँ सूचित होती हैं। ये सब वर्णात्मक प्रणाली में लिखी गयी हैं। जरा, यौवन, जन्म, मरण, सुख, दुःख, मोक्ष, नर्क इत्यादि विषयों की मार्मिक व्याख्या की गयी है, जिसका मूल उद्देश्य जन-साधारण को सचेत कर उसे सत्य मार्ग पर चलने के लिए तत्पर करना है। यह वह समाज-व्यवस्था है, जब भारतीय जनता पाप और पुण्य के झूले में झूला करती थी, पाप करने से नर्क योग और पुण्य करने से स्वर्ग की छाया उसके साथ निरन्तर लगी रहती थी। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की चर्चा, चौरासी लाख योनि भुगतने सम्बन्धी कथाएँ, पुनर्जन्म की कल्पना, ऊँच-नीच का प्रश्न-सम्बन्धी विषय ही जन-साधारण के जीवन पर निरन्तर अपना प्रभाव डाले रहते थे। संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषदों के कथा-तत्वों से

---

१. डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल : "हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास", पृ० ८-९।

अनेक कहानियाँ और गल्प रच ली गयी, जो जनसाधारण के मुख से सदा मुखरित होती रहती थीं। अनेक खोजों के पश्चात सूत्र प्राप्त होते हैं कि रामायण, महाभारत तथा पौराणिक कथाओं का समय बौद्ध-काल की जातक कथाओं से भी बहुत पहले आता है।

आचार्य बुद्ध घोष ने महाभारत और रामायण का समय ईसा से ५०० वर्ष पूर्व ठहराया है। ये दोनों स्वयं भी पौराणिक आख्यान हैं, जिनमें विभिन्न अवतारों, सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओं के व्रत तथा महोत्सव-सम्बन्धी कथाएं पारित की गयी हैं।

धीरे-धीरे मानव-रुचि बदली, उसमें परिष्कार हुआ और ये पौराणिक आख्यान दन्तकथाओं के रूप में प्रसारित होने लगीं। सारा कथा साहित्य मौखिक साहित्य बन गया। महर्षि बाल्मीकि ने राम-कथा महाकाव्य में रची, जिसमें कथाओं का शाश्वत भण्डार एकत्रित हो गया। उसके बाद जातक-कथाओं का युग आता है, जिनकी रचना ईसा की प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी तक हुई होगी।

"जातक शब्द का अर्थ होता है जन्म-सम्बन्धी"। ये कथाएँ भगवान बुद्ध के जन्म से सम्बन्ध रखने वाली हैं। हिन्दू शास्त्रों में मान्यता है कि चौरासी लाख योनि भुगतने के बाद मानव देह प्राप्त होती है। भगवान बुद्ध को भी इस भव-जाल में फँसना पड़ा। गौतम को "बुद्ध" होने से पूर्व अपने सब पिछले तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा "बोधिसत्व" रही। "बोधि" का अर्थ होता है "प्राणी"। इस तरह जातक-कथाओं में "पाँच सौ सैंतालीस" जन्मों का उल्लेख मिलता है। इन जातक-कथाओं का वर्गीकरण डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ने इस प्रकार से किया है—[1]

(१) पंचुपन्नवत्थु कथा	—	वर्तमान कथा
(२) अतीत वत्थु	—	पुनर्जन्म की कथा या अतीत की कथा
(३) अत्थ वाण्णान	—	गाथाओं की व्याख्या
(४) समोधान	—	अन्त में आने वाला भाग, जिसमें बुद्ध बताते हैं कि पात्रों में कौन क्या था?

इन चारों विभागों को हम "पाँच सौ सैंतालीस" जातक-कथाओं में से किसी भी कथा में पूर्णरूपेण प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, 'खरादिय जातक' की एक कथा है। यह कथा भगवान बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय एक कटुभाषी भिक्षु के सम्बन्ध में कही थी।

(अ) वर्तमान कथा

वह कटुभाषी भिक्षु किसी का उपदेश न ग्रहण करता था। भगवान बुद्ध ने उससे पूछा: "भिक्षु! क्या तू सचमुच कटुभाषी है? किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करता?"

१. [1] डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल: "हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास", पृ० १२।

उसने उत्तर दिया - "भगवान यह बात सच है।"

बुद्ध ने कहा : "पहले भी तूने बटुभाषिता के कारण पण्डितों का उपदेश ग्रहण नहीं किया।"

इतना कह कर उन्होंने उसको अतीत की कथा कह सुनाई।

(ब) अतीत कथा

जिसका वर्णन जातक-कथाओं में इस प्रकार है—[1]

"पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा होकर मृग गण के साथ जंगल में रहा करते थे। एक दिन उसकी बहिन ने उन्हें हरिण-पुत्र दिखा कर कहा, 'भाई, यह तुम्हारा भांजा है, इसे मृगमाया सिखाना", यह कर उसे 'मृग पुत्र' सौंप दिया। उसने भांजे को कहा कि अमुक समय पर आकर सीखना। पर वह निश्चित समय पर नहीं आया। बस यह हुआ कि एक दिन उसी प्रकार सातों दिनों तक सात्ता उपदेशों का उल्लंघन करके वह मृगमाया को बिना सीखे हुए चरता हुआ एक पाश में बंध गया। माता ने भाई से आकर पूछा, "क्यों भाई तूने भांजे को मृगमाया सिखा दी।"

बोधिसत्व ने कहा, 'उस बात न मानने वाले का मोघ मत करना, तेरे पुत्र ने मृगमाया नहीं सीखी।' कह कर उसे सिखाने की अनिच्छा प्रकट की।

"अट्ठखुरं खारादिये, मिग वंकातिवंकिनं
सत्तहि कलाहति वक्कन्तं, नतं ओवदितुस्स है।"

(स) गाथाओं की व्याख्या

अट्ठखुरं एक-एक पांव में दो-दो खुर खरादिये, इस नाम से सम्बोधन करता है। मिग मव (मृगों) के लिये एक शब्द है। 'वंकातिवंकिनं' म-आरम्भ में टेढे, इस प्रकार से अर्थ हुआ, जिसके सींग ऐसे हों। 'सत्तहि कलाहति वक्कन्तं' का अर्थ है, उपदेश के सात समयों पर अनुपस्थित रहना तथा नियमों का उल्लंघन करने वाला तथा "नतं ओवदितुस्स" का अर्थ है कि इस प्रकार से बटुभाषी मृग को उपदेश देने की मेरी प्रवृत्ति नहीं है। ऐसे को उपदेश देने तक का मुझे विचार नहीं होता।

(द) समोधान

सो शिकारी उस पाश में बंधे हुए बटुभाषी मृग को मार कर मांस लेकर चल जाते हैं।

भगवान बुद्ध ने कहा "भिक्षु, तू केवल अब ही बटुभाषी नहीं है, तू तो अतीत से बटुभाषी रहा है।" समोधान में सारी कथा का निष्कर्ष निकल आया।

---

१. भदन्त आनन्द कौशल्यायन : "जातक कथा संग्रह—सम्पादित" (प्रथम खण्ड), पृ० २०७ २०८।

साराश यह है कि उस समय का मांजा मृग (उनका) कटुभाषी मृग था। बहन भ्रबकी उपलवर्णा (भिक्षुणी) थी, लेकिन उपदेश देने वाला मृग तो मैं ही था।"

ये जातक-कथाएं भगवान बुद्ध की जन्म सम्बन्धी कथाएं हैं। इनका मूल उद्देश्य बौद्ध धर्म के उपदेशो को प्रकाश मे लाना है, जिससे जनसाधारण इसकी ओर आकर्षित हो सके। प्राचीन धार्मिक कथाओ के समान ये वर्णनात्मक नही हैं। इनके कई उपभेद हैं, जैसे—प्रतीत कथा-गाथा की व्याख्या और समोधान।

जातक-कथाओ ने कथा साहित्य के भण्डार को अपूर्व भरा है। इसके बाद संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कथा-सग्रह 'कथा सरित्सागर' और 'पचतन्त्र' मिलते हैं। बौद्ध और हिन्दू धर्म के विकास के साथ ही साथ कहानियो का भण्डार तीव्र गति से भरता गया। जातक-कथाओं से कथाओ को कलात्मक रूप मिला। प्राचीन उपन्यासो का बीज किसी न किसी रूप में इनमे सदैव उपस्थित रहा है। गुण-अवगुण, उद्वेगो का साधारणीकरण तथा उसका निदान इन कथाओ में यथोचित हुआ है। इन कथाओ ने राजा, दरिद्र, चोर, साहूकार, अपराधी, पापी, पुण्यात्मा, चर, अचर, नदी, पहाड, पशु, पक्षी, इत्यादि सब पर घटित होने वाली समस्याओ को ग्रहण किया है। भावी सस्कृति और साहित्य पर इन कथाओ का अमिट प्रभाव छोड़ा है।

संस्कृत साहित्य में गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' को कहानी की दृष्टि से अपूर्व स्थान है। ईसा की प्रथम शताब्दी में आन्ध्र राजाओ के समय म गुणाढ्य नामक एक अपूर्व ज्ञानी पण्डित के होने का आभास मिलता है। इसने पैशाची भाषा मे 'बृहत्कथा' को लिखा, जिसकी रचना ईसा की छठी शताब्दी स पूर्व मान लेना उचित जान पड़ता है। कुछ प्रमाण हमे क्षेमेन्द्र को 'बृहत्कथा मन्जरी' और सोमदेव के 'कथासरित्सागर' मे उपलब्ध हो जाते हैं, यहाँ तक कि बुद्ध स्वामी का 'बृहत्कथा श्लोक सग्रह' भी गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' के आधार पर परिलक्षित प्रतीत होता है। पर यह ग्रन्थ अप्राप्य है, इसलिए अधिक कहना सम्भव नहीं है।

(अ) बुद्ध स्वामी का 'बृहत्कथा श्लोक-सग्रह' अभी उपलब्ध है। इसकी कुछ कथाएं 'पंचतन्त्र' और 'बैताल पच्चीसी' मे मिल जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये दन्त-कथाएं उस समय बहुत प्रचलित रही होंगी, जिनका उल्लेख दोनो स्थानो पर प्राप्त है।

(ब) 'कथासरित्सागर' के रचयिता सोमदेव हैं। ऐसा सकेत मिला है कि ईसा की ११ वी शताब्दी में यह रचित हुआ। यह एक विशाल ग्रन्थ है, जिसमें अनेक कथाएँ हैं, जिनको 'लम्बको' में विभाजित किया गया है, जो अनेक तरग के माध्यम से प्रकट की गयी हैं। प्रत्येक 'लम्बक' कथा की सम्वेदनाओं के अनुकूल हैं, जिनका सकेत मानव मनोभावों की ओर है, जैसे—(१) कथा पीठ ; (२) कथा मुख ; (३) लावण्यक ; (४) नरवाहन दत्तोपत्ति , (५) चतुर्दारिका ; (६) मदनमञ्चुका ; (७) रत्नप्रभा ; (८) सूर्यप्रभा आदि।

कथा पीठ लम्बक को इसलिए प्रकाश में लाया गया है क्योंकि इन्हीं के द्वारा 'कथा सरित्सागर' की पृष्ठभूमि तैयार हुई है, जिसको लेकर अनेक कथाएँ रची गयी हैं, जिनमें 'शिव-पार्वती' के जीवन सम्बन्धी कथा का भी प्रमुख स्थान है।

'कथा सरित्सागर' की सारी कथाएँ पौराणिक आख्यान हैं, जिनमें मानव के मूल धार्मिक सिद्धान्तों का निर्देश है। इनकी शैली उपदेशात्मक है, जिनमें धारावाहकता क्रमपूर्वक चलती है। एक मूल कथा की प्रायोजना रहती है, साथ में कुछ गौण कथाएँ अपने आप प्रकट होती रहती हैं, पर ये गौण कथाएँ भी अपने आप में पूर्ण हैं। नैतिकता और धार्मिकता की दृष्टि से 'कथा सरित्सागर' की तुलना 'जातक-कथाओं' से की जा सकती है। जैन साहित्य में भी कथा के कुछ सूत्र खोजन पर प्राप्य होते हैं। इन समस्त कथाओं की संवेदनाएँ वररुचि के जीवन के धरातल से सम्बन्धित हैं, अत. 'कथा सरित्सागर' के आधार पर प्राचीन भारत का एक सांस्कृतिक और धार्मिक चित्र हमारे सम्मुख आ जाता है। आधुनिक युग में इस ग्रन्थ का विकृत रूप प्राप्त होता है, फिर भी राजा, मन्त्री, पुरोहित, संस्कृति, समाज, नागरिक, शासन इत्यादि की ऐतिहासिक और राजनैतिक कथाओं का क्रम तो मिल ही जाता है, साथ में पौराणिक सूत्र भी उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण के लिए राजा वत्सराज, नरवाहनदत्त, राजा सूर्यप्रभ, विक्रमादित्य और इन्द्र, कुबेर तथा मय दानव और महासुर इत्यादि की अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। 'कथा सरित्सागर' लाखों कथाओं का अनुपम संग्रह है, जो आज लोककथाओं के रूप में समाज में प्रचलित है।

(ई) वैताल पच्चीसी

हिन्दी साहित्य में सन् १८०१ के लगभग लल्लूलाल जी ने इस ग्रन्थ की रचना की। फोर्ट विलियम कॉलेज के महानुभावों ने खड़ी बोली के गद्य के विकास में बहुत सहायता की है, यहाँ तक कि कथा कहानियों का परिवर्तित रूप भी गद्य के क्षेत्र में प्राप्त हुआ। 'सिंहासन बत्तीसी' सन् १८०१ में, 'वैताल पच्चीसी' सन् १८०१ में, 'माधवानल-काम कन्दल' सन् १८०१ में, 'शकुन्तला' सन् १८०१ में तथा 'प्रेमसागर' सन् १८०१ से १८०३ तक लिखा गया। संस्कृत के 'वैताल विंशतिका' का हिन्दी अनुवाद 'सिंहासनबत्तीसी' है। इसमें २५ कथाओं का संकलन है। इन कथाओं का कहने वाला एक वैताल था, जो राजा विक्रमादित्य को प्रतिदिन दुःखी करता था। अतः वक्ता वैताल है और श्रोता स्वयं महाराजा हैं। यह वैताल प्रत्येक बार एक नवीन रहस्य का स्पष्टीकरण करता है, जिसको सुनने से महाराजा विक्रमादित्य की बहुत भलाई होती है। उदाहरण के लिए, कोई ठग राजा विक्रमादित्य को ठगने की चाल से उन्हें आज्ञा देता है कि वे अमुक वृक्ष से लटकती हुई लाश को उसके पास ले आवें, जैसे ही राजा उस लाश को वृक्ष पर से उतार कर ले चलने लगता है तो मार्ग में वह लाश बोलने लगती है। वैताल स्वयं अपने आपको उस लाश में प्रतिष्ठित कर लेता है। वह वैताल राजा से प्रतिज्ञा कराता है कि वे मार्ग पर चलते समय चुप रहेंगे

और अगर बोले तो वैताल फिर से उसी पेड पर जा लटकेगा। राजा जैसे ही प्रतिज्ञा कर लेता है, वैताल राजा को फिर से कथा सुनाने लगता है। वह प्रश्न करता है और राजा उसका उत्तर दे देता है। राजा के मुख से जैसे ही बोली निकलती है, वैसे ही वैताल फिर दुबारा उसी डाल से जा लटकता है। एक के बाद एक, इसी प्रकार वैताल ने राजा विक्रमादित्य को कुल चौबीस स्वतन्त्र कथाएँ सुनाई और पच्चीसवीं कथा को कह कर उसने राजा के सामने फिर कोई प्रश्न नहीं रखा। उसके विपरीत राजा विक्रमादित्य ने स्वय उस ढोंगी वैताल का सारा रहस्य जगत के सामने खोल दिया।

'वैताल पच्चीसी' की कथाएँ हिन्दी-ससार मे बहुत प्रसिद्ध हुई। वे मौखिक और लिखित दोनो ही रूपो में प्रकट हुई।

(उ) सिंहासन बत्तीसी

लल्लूलाल जी ने सन् १८०१ मे सस्कृत के मूल ग्रंथ 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' का हिन्दी भाषा मे अनुवाद किया। इस कथा-सग्रह में भी राजा विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी हुई बत्तीस पुतलियों द्वारा कही गयी कथाएँ हैं। पुतलियाँ वक्ता और राजा भोज श्रोता हैं। पुतलियो की कथाओं के कारण राजा भोज उस सिंहासन पर बैठने से भयभीत होते हैं। यही कारण है कि महाराज विक्रमादित्य का सिंहासन जो भगवान इन्द्र ने उन्हें प्रदान किया था, उनकी मृत्यु के उपरान्त अपने आप पृथ्वी के गर्भ मे विलय हो गया था। कुछ समय के उपरान्त राजा भोज ने अपनी योग्यता और बल से उसको पुन: प्राप्त किया था और परोपकारी कार्यों के लिए इसका उपयोग किया। पर जैसे ही राजा भोज उस पर आसीन होने की चेष्टा करते, वैसे ही उस सिंहासन मे से एक पुतली बाहर निकलती और उन्हे सिंहासन पर बैठने से सदा रोकती। यहाँ तक कि राजा से विक्रमादित्य की प्रशसा करती और उनके शौर्य से भरी हुई कथाएँ राजा भोज को सुनातीं। इस प्रकार इस कथा सग्रह मे कुल बत्तीस पुतलियो द्वारा सुनायी हुई बत्तीस कथाएँ हैं। इन कथाओ के वृत्तो में प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों की वस्तु का आभास यतकिंचित और सहज में ही प्राप्त हो जाता है।

शुक-सवाद

यह भी 'शुकसप्तति' का हिन्दी अनुवाद है। इस कथा सग्रह में भी सत्तर कथाएँ हैं। एक शुक वक्ता है, जिसने अपनी पत्नी मैना को श्रोता मानकर सारी कथाएँ सुनायी हैं। सारी कथाएँ नारी विषयक हैं, जिनका मूल सम्बन्ध कुलटा नारी के जीवन से है। ये वे नारियाँ हैं जो अपने पति से छल करती हैं, पर पुरुषों के साथ गुप्त यौन-सम्बन्ध स्थापित करती हैं। वे दुष्टा हैं, निष्ठुर हैं तथा अपवित्र हैं। वे अपने नाना हथकण्डो और क्रियाओ के द्वारा पुरुषो के साथ छल करती हैं और उनको वश में कर लेती हैं। 'शुक-सवाद' की कथाओ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनका मूल

उद्देश्य नारी जाति को पतन के मार्ग पर जाने से रोकना और उन्हें सद् तथा पवित्र मार्ग दिखाना है।

इसका कथानक इस प्रकार है कि एक व्यवसायी मदनसेन परदेश व्यापार के लिए जाता है और जाते समय अपने घर का सारा भार अपने प्रिय तोते को दे जाता है। यह शुक (तोता) मूल रूप में एक गन्धर्व था। जब वह देखता है कि इस व्यवसायी की धर्मपत्नी अपने सतीत्व के मार्ग से दूर हट रही है, उसका पतिव्रत धर्म नष्ट हो रहा है तो यह शुक उस स्त्री को सन्मार्ग पर लाने के लिए सत्तर रातों में बड़ी लगन और साहस के साथ सत्तर कथाएं उसे कह कर सुनाता है। ज्यों ही शुक अन्तिम कथा की समाप्ति करता है, उसी रात्रि को व्यवसायी मदनसेन अपने घर वापस लौट आता है और इस प्रकार तोता अपने स्वामी के प्रति पूर्ण कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय देता है। जन-साधारण में ये कथाएँ 'तोता-मैना किस्सा' के नाम से मशहूर हैं, जिनका मुख्य लक्ष्य मानव में जिज्ञासा को उत्पन्न करना तथा उनका समाधान है।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के लगभग 'पंचतन्त्र और हितोपदेश' की नीति-सूचक रचनाएं पाठकों के सामने आयीं। इन कथाओं की विशेषता है कि चर और अचर के साथ साथ मानव और पशु पक्षी सबके जीवन को स्पर्श करके जगत में ये नैतिकता की सृष्टि करती हैं। हिन्दी साहित्य में भी ये संस्कृत से अनूदित होकर आयीं। मूल रूप में तो ये संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं। यदि तुलना की जावे तो ये 'कथा सरित्सागर', 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पच्चीसी' इत्यादि सब ग्रन्थों की अपेक्षा अनुपम रचनाएं हैं। इनकी एक और विशेषता है कि एक ओर ये कथाएँ राजनीति से सम्बन्धित समस्याओं का निदान प्रस्तुत करती हैं, तो दूसरी ओर सारी धर्म-नीति, समाज नीति इनके अन्दर प्रवाहित हो रही है।

पंचतन्त्र

यह समस्त ग्रन्थ पांच विभिन्न तन्त्रों से निर्मित है, जैसे प्रथम तन्त्र में 'मित्र-भेद' के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय तन्त्र में 'मित्रसम्प्राप्ति' का वर्णन है, तृतीय तन्त्र में 'काकोल कीयम', चतुर्थ तन्त्र में 'लब्ध प्रणयम' और पंचम तन्त्र में 'अपरीक्षित कारक' संकलित हैं। ये भारतवर्ष की शाश्वत और चिरंतन लोक-कथाएं हैं, जितनी पुरानी यहाँ की प्रचलित लोक-कथाएं हैं। ये कथाएं सार्थक एवं सोद्देश्य रची गयी हैं। समस्त भारतीय नीति-शास्त्र (Ethics) का इनमें सारांश है। पंचतन्त्र की प्रत्येक कथा जीवन को किसी एक समस्या का निदान प्रस्तुत करती है। ये कथाएं सारे जगत में प्रसिद्ध हैं। विश्व की लगभग ९० भाषाओं में इनके अनुवाद पाये जाते हैं। यूरोप में ईसा की छठी शताब्दी में सर्वप्रथम इनका अनुवाद प्रकाशित हुआ। भारत के समस्त नीति-आचार्य—मनु, शुक्राचार्य और चाणक्य—इत्यादि के वाक्यों को 'पंचतन्त्र' में कथा रूप में प्रकट किया गया है।

'पंचतन्त्र' की प्रत्येक कहानी के द्वारा मानव-चरित्र की सच्ची परिचर्या प्रकट

होती है। सच्चे रहस्य को प्रकाश मे लाया गया है, जिससे जन-साधारण का मार्ग-दर्शन होता है। उदाहरण के लिए, 'मित्र-भेद तन्त्र' मे 'मूर्ख बानर की कथा', 'शृगाल दुन्द की कथा' तथा 'धर्मबुद्धि पापबुद्धि कथा' इत्यादि कुल बाइस कथाएँ हैं, जिनमे धर्मोपदेश तथा कूटनीति भरी पडी है। इन सब कथाओं के वक्ता पशु-पक्षी हैं और पात्र (चरित्र) जड और चेतन दोनों ही हैं। टेकनिक (Technique) की दृष्टि से ये कथाएं वास्तव मे "कथा सरित्सागर" की कथाओं के समकक्ष हैं और सैद्धान्तिक रूप से इनमे कोई मूलभूत अन्तर नहीं दिखायी देता है। एक कथा का जैसे ही अन्त होता है, वैसे ही दूसरी कथा प्रारम्भ होती है, फिर भी ये सब कथाएं अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व लेकर आई हैं। प्रत्येक तन्त्र मे अधिक से अधिक बीस कथाओ का समावेश हुआ है।

"पचतन्त्र" के 'मित्र-भेद तन्त्र' मे प्रथम कथा के अन्तर्गत धन की उपयोगिता पर नैतिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। राजा का कौन मित्र होता है, वह किस प्रकार का है और मित्रो के सम्बन्ध मे राजा की क्या नीति होनी चाहिए इत्यादि समस्त नीतियाँ भिन्न-भिन्न कथाओ के माध्यम से प्रकट की गयी हैं।

उदाहरण के लिए, तन्त्र की एक कथा का आरम्भ इस प्रकार है कि दक्षिण देश मे महिलारोप्य नामक नगर था। वहाँ एक धनवान बनिया रहता था। वह धन कमाने के लिए अपनी गाडी पर बैठ कर, जिसमे सजीवक नामक बैल जुता हुआ था, चल दिया। जमुना नदी की तलहटी में वह बैल कीचड मे फँस गया और वह बनिया उसको वही छोड कर अपने मार्ग पर आगे बढ गया। उसी समय पिंगलक नामक शेर उसी स्थान पर जमुना नदी के जल मे पानी पीने आया। बैल की आवाज सुनकर वह शेर चुपचाप डर कर वहीं बैठ गया। उस सिंह के करटक और दमनक नामक दो मित्र थे। जब उन्होने देखा कि सिंह पानी पीकर अभी तक नहीं लौटा तो वे चिन्ता करने लगे। करटक बोला कि जो भी पुरुष आलस्य मे बिना किसी कार्य के किये हुए अपना जीवन बिताता है, उसकी यही दशा होती है। वह धीरे-धीरे इस प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे कीलो को निकाल कर मूर्ख बानर की दशा हुई थी।

अब करटक मूर्ख बानर की कथा कहना आरम्भ करता है। करटक, दमनक और पिंगलक आपस में इस तन्त्र की समस्त कथाएं सुनाते हैं। इन कथाओ का मूल आधार भी पशु-पक्षी हैं, जो पूर्णरूपेण मानव-जीवन पर घटित होती है। इन सब कथाओ की शैली भी उपदेशात्मक है और ये वर्णनात्मक हैं। शास्त्रीय दृष्टि से कहानी के उपकरण इन कथाओं पर लागू नहीं होते हैं। 'पचतन्त्र' की कथाओ ने केवल जन-कल्याण का कार्य किया। राजाओ को उनके मूर्ख पुत्रों को चतुर, कुशल तथा व्यवहारिक और नीतिज्ञ बनाने के लिए इन कथाओ की रचना की गयी थी। नैतिकता की दृष्टि से पंचतन्त्र की कथाएं पूर्णरूप से सफल हैं।

हितोपदेश

यह भी दूसरा 'नीति-ग्रन्थ' है। इनके द्वारा भी नीति-सम्बन्धी कथाएँ प्रकाश में आयी हैं। उदाहरण के लिए, पाटलीपुत्र के राजा सुदर्शन के चार पुत्र पराङ्मुखी और व्यभिचारी थे। वे शास्त्रों के प्रति सदैव उदासीन रहा करते थे। राजा के इन अज्ञानी और मूर्ख पुत्रों को शिक्षा देने का कार्य विष्णुशर्मा को सौंपा गया। उन्होंने 'हितोपदेश' ग्रन्थ की रचना की। इन मुख्य कथाओं के साथ अनेक उपकथाएँ भी जुड़ी हुई हैं। अनेक अन्तर्कथाएँ हैं। सब में नैतिकता से भरे हुए उपदेश हैं। भारत के प्राचीन लोक साहित्य का 'हितोपदेश' सुन्दर उदाहरण है। विश्व के साहित्य में पशु पक्षी जीवन की लोककथाएँ 'हितोपदेश' से प्रारम्भ हुई। 'संस्कृत' का हितोपदेश पण्डितों के पठन के लिए था पर हिन्दी में—अनूदित होने पर जन-साधारण का हित हुआ। पशु-पक्षी सदा से मानव का चिर-सहचर रहा है। दोनों ही प्रकृति के मध्य प्रागण में विकसित होते रहे हैं। 'हितोपदेश' की आत्मा शिक्षा और उपदेश है, पर इसका शरीर कथाओं, उप-कथाओं तथा अन्तर्कथाओं के द्वारा निर्मित हुआ है। इस ग्रन्थ के भी चार प्रकाशन हैं—

(१) मित्र-लाभ,
(२) सुहृद भेद;
(३) विग्रह और
(४) सन्धि।

इन चारों प्रकरणों में कुल अड़तीस कथाएँ हैं, जो शिक्षाप्रद हैं। लेखक अपने विशेष उद्देश्य के आधार पर कथाओं की रचना करता है। उदाहरण के लिए, 'मित्र लाभ' प्रकरण के द्वारा बताया गया है कि मित्रों के द्वारा कितने प्रकार के लाभ होते हैं। मूल कथा का प्रारम्भ भी इसी उद्देश्य को लेकर हुआ है। इसमें कबूतरों और एक बहेलिये की कथा है। बहेलिया कबूतरों को फाँसने के लिए अपना जाल फैलाता है और उस पर चावल फैला देता है। यह देखकर कबूतरों का सरदार उन्हें एक बाघ और लालची व्यक्ति की कथा सुनाकर सावधान करता है और फिर मूल कथा आगे बढ़ती है। सब कबूतर अपने सरदार की आज्ञा से जाल सहित उड़ते-उड़ते एक चूहे के पास पहुँचते हैं और वहाँ पर वह चूहा इन सबको बन्धन से मुक्त कर देता है। चूहे को यह महानता देख कर एक कौवा उससे अपनी मित्रता जोड़ने के लिए व्याकुल हो जाता है और प्रार्थना करता है। तब चूहे ने कौए को दो कथाएँ सुनाई, जिनमें एक सियार और मृग की कथा है तथा दूसरी एक बिलाव और गिद्ध की है। ये कथाएँ सुनाकर चूहा कौए की प्रार्थना को अस्वीकृत कर देता है और कहता है कि भक्ष्य और भक्षक की मित्रता कभी भी नहीं हो सकती है। फिर उसी चूहे ने एक और सन्यासी की तथा अपनी कथा सुनाई कि वह उस निर्जन वन में क्यों रहता था। इतना ही नहीं, लीलावती तथा बूढ़े की कथा तथा लालची सियार की कथा भी सुनाई। उसके बाद मूल कथा आगे बढ़ती है।

जिस समय चूहा कौए को ये कथाएँ सुना रहा था, एक डरा हुआ मृग उसकी शरण मे आया, लेकिन चूहे ने मृग से एक बनिये और उसकी पत्नी की बेइज्जती की कथा तथा हाथी और सियार की अन्य कहानियाँ सुनाईं और बतलाया कि उन्हें वह स्थान तुरन्त छोड देना चाहिए। उन लोगों ने वही कार्य किया। फिर भी बहेलिया उनका पीछा करता ही रहा, पर मित्रो के सहयोग तथा लाभ से वह बहेलिया उनका कुछ भी बिगाड नहीं सका। इन कथाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि एक मूल कथा तो पूरे अध्याय मे चलती रहती है पर कथा-विकास के साथ उसका एक निश्चित उद्देश्य भी रहता है। ये सारी कथाएँ नैतिक और शिक्षाप्रद हैं। पर उसके पुष्टिकरण के लिए अनेक सहायक कथाओं का भी प्रवेश होता रहता है। सब कथाओं के पात्र पशु-पक्षी हैं, पर मूल कथावस्तु पूर्णरूपेण जीवन पर घटित होती है। ये सारी कथाएँ एक विशेष लक्ष्य को लेकर लिखी गयी हैं और संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य दोनो मे अमर हो गयी हैं।

प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य मे भी इस प्रकार की कथाओं के अनेक बीज और रूप उपलब्ध हो जाते हैं। आख्यानक काव्य के रूप में 'पदमश्री चरित्र' उपलब्ध है, जो धरिल कवि के द्वारा रचा गया है, और जिसमें पदमश्री के धरिल कवि के पूर्वजन्मों की कथाएँ हैं। श्रीचन्द के द्वारा रचा हुआ एक कथा-कोष का भी परिचय प्राप्त हुआ, जिसमे मनुष्य, देव, पशु, पक्षी आदि पात्रों का परिचय मिला तथा अनेक उपदेशपूर्ण कथा-वार्त्ताएँ मिली। प्राकृत में भी अनेक आख्यानक प्रबन्ध-काव्य प्राप्त हुए, जैसे महाराष्ट्री "प्राकृत" में कौतूहल द्वारा लिखी हुई "लीलावती कथा" अभी भी प्रसिद्ध है, जो मनोरंजन की दृष्टि से सफल कही जा सकती है।

जैन अपभ्रंश साहित्य में महाभारत की कथा से सम्बन्धित अनेक रचनाएँ हैं, जिनमें यशकीर्ति का 'हरिवंश पुराण' जैसे अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य मे कथाओं का रूप काव्यात्मक रहा है; अतः यद्यपि ये कथाएँ प्रचलित रही हैं; पर अपने पद्यात्मक रूप के कारण इनमें उपन्यास-तत्व बहुत ही कम अंशों में पाये जाते हैं। यह ठीक है कि इस साहित्य में उपन्यास के बीज नहीं हैं, पर पूर्वज तो अवश्य कहलावेंगे। यही वह कथा साहित्य है, जिसने उपन्यासों को जन्म देने का श्रेय लिया है। जनसाधारण के हृदय में इसने एक ऐसी अपूर्व उत्कण्ठा भरदी, जो उपन्यासो को पढ़ने के लिए लोग लालायित रहने लगे तथा इन प्राचीन धार्मिक तथा पौराणिक कथाओं ने जनसाधारण के हृदय में जिस कथा-प्रेम की भावना को जन्म दिया, उसने भावी उपन्यासकारों के लिए वह मार्ग तैयार कर दिया जिस पर उनके उपन्यास निर्मित हों।

"चारण-काल या वीरगाथा-काल," मे पद्य को "कविता" कहा गया है और गद्य को "वार्त्ता" के नाम से महत्व दिया गया है। 'बीसलदेव रासो' और 'पृथ्वीराज

रासो' पद्य-काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है, पर जगनिक का 'आल्ह-खण्ड' तो पद्य होते हुए भी पूर्णरूपेण प्रबन्ध है, जिसकी प्रबन्धात्मकता स्पष्ट है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने "पृथ्वीराज रासो" को डिंगल साहित्य का सर्वप्रथम प्रबन्धात्मक काव्य माना है।[1] यह एक महान् ग्रन्थ है, जिसका प्रामाणिक प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा से हुआ। "आल्ह खण्ड" मौलिक रूप में उत्तरी भारत में प्रचलित हुआ, यही कारण है कि उसका मूल पाठ अत्यन्त विकृत रूप में उपलब्ध है। इन पद्य-गाथाओं की कथा यद्यपि सामान्य है, जैसे कोई राजा या रानी किसी रानी या राजा से प्रेम करते हैं और बाद में दोनों में विवाह हो जाता है। यदि दुर्भाग्यवश विरह की स्थिति भी आई अथवा संयोग भी हुआ तो भी राजा का जीवन युद्ध और विग्रह से भरा रहता है। ये सारी कथाएँ लौकिक भावनाओं को लेकर ही अवतरित हुई हैं। वीरगाथाओं का मूल विषय राजाओं का यशोगान था। राजकवि जो चारण तथा भाट के रूप में दरबारों में रहते थे और अपने स्वामियों के युद्ध-कौशल, उनकी कर्मवीरता उनके ऐश्वर्य का वर्णन बड़ी ओजस्विनी भाषा में किया करते थे। इन कथाओं का स्वरूप काल्पनिक रहा करता था, नायक की शूरवीरता का वर्णन अधिक से अधिक बढ़ा-चढ़ा कर किया जाता था। इसके प्रचार का क्षेत्र समस्त राजस्थान, उत्तरी भारत तथा गुजरात का कुछ भाग था। इस वीरगाथा साहित्य की भाषा ओजपूर्ण है और वीररस की धारा आदि से अन्त तक प्रवाहित हो रही है। इस वीररस के क्रोड में शृंगार रस भी कभी कभी दीख पड़ता है क्योंकि युद्ध के बाद ये वीर आमोद-प्रमोद अथवा स्वयम्वर विवाह में भी अपना समय बिताते थे।[2] इस काल की अनेक कृतियाँ मौलिक रूप में रहीं, अत: प्रामाणिकता की दृष्टि से इनकी यथार्थ समीक्षा करने में अत्यन्त कठिनाई उपस्थित होती है। इन सब रचनाओं का महत्व इतना ही है कि उन्होंने हमारे हिन्दी साहित्य के आदि भाग के निर्माण में योगदान किया तथा आगे आने वाले कथा साहित्य की बाढ़ के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि इसमें साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव है, फिर भी जन-रुचि को अद्भुत प्रोत्साहन मिला है।

सिद्ध और नाथ-साहित्य में भी अनेक लोक-कथाएँ रची गयीं, पर उनमें गीतात्मकता की प्रधानता है। ये सब कथाएँ गेय हैं, अत: गद्य की दृष्टि से उस श्रेणी में इनका रखना अनुचित जान पड़ता है। कुछ प्रसिद्ध कथाएँ, जैसे "ढोला मारूरी के दोहा", जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है, "माधवानल काम-कन्दला" और भी जैसे "हीर रांझा," "सोहनी महिवाल," 'पच सहेली रो दूहा"

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा : "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास," पृ० ७३।
२. डॉ० रामकुमार वर्मा : "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास," पृ० १२३।

इत्यादि प्रेम-कथाओं ने बहुत ही अधिक ख्याति पायी है। यह सारा आख्यान साहित्य चारण-काल में रचा गया, जिसका सम्बन्ध उस समय के लोक जीवन से विशेष रूप से रहा था।

हिन्दी साहित्य का "प्रेमाख्यान काव्य" अपने नवीन प्रेमगाथा रूप के कारण अधिक प्रसिद्ध है। उदाहरण के लिए, कुतुबन की "मृगावती" जायसी का "पद्मावत" और मंझन की "मधुमालती", उसमान की "चित्रावली", नूरमुहम्मद की "इन्द्रावती", दुःख हरण की "पुष्पावती" आदि ऐसे सबसे प्रेमाख्यान हैं, जिनमें उत्कृष्ट प्रेम का निरूपण हुआ है तथा जो रसात्मक हैं। प्रेमाख्यानों के साथ ही साथ हमें प्राचीन युग की हिन्दी में वार्त्ता साहित्य की भी प्राप्ति होती है। इस साहित्य का मूल सम्बन्ध वैष्णव धर्म से है। केवल दो प्रमुख ग्रन्थ प्रकाश में अभी तक आये हैं—प्रथम, "चौरासी वैष्णव की वार्त्ता" और द्वितीय "दो सौ वैष्णव की वार्ता"। प्रथम में चौरासी वार्त्ताएँ संगृहीत हैं और द्वितीय में दो सौ हैं, जो मुख्य रूप से धार्मिक कथाएँ हैं। यद्यपि इनमें मानव मन की अनुभूतियों का उल्लेख है फिर भी उसका मूल आधार जन-जीवन की धर्म के प्रति श्रद्धा तथा नैतिकता है। युग-परिवर्तन के साथ इस साहित्य का सम्बन्ध जीवन के साथ जोड़ा गया और फिर दोनों एक-दूसरे के पूरक बने।

उपन्यास और प्रेमाख्यान

प्रेमचन्दजी से पूर्व के उपन्यासों का रूप ऐतिहासिक कथाएँ, जीवनी, भाव, गद्य, काल्पनिक गाथाओं तथा लम्बी-लम्बी गद्य-कथाओं तथा प्रेमाख्यानों के रूप में उपलब्ध हुआ। यदि पाश्चात्य साहित्य की समीक्षा की जावे तो प्रारम्भ में वहाँ पर भी गद्य के माध्यम से उपन्यास लिखने का विधान नहीं था। परिणाम यह निकला कि वहाँ का सारा मध्यकालीन साहित्य अधिकतर पद्यबद्ध रहा।

पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी ने "आधुनिक साहित्य" की रचना के अवसर पर लिखा है: "उपन्यास वह काल्पनिक कृति है जो गद्य के माध्यम से आख्यान-विशेष की सहायता लेकर सामाजिक जीवन के किसी स्वरूप का यथार्थ आभास देती हुई उक्त जीवन की मार्मिक व्याख्या करती है।"[1]

उन्होंने आगे कहा कि "प्रारम्भ में उपन्यास-साहित्य के समस्त अवयव बिखरे हुए पड़े थे। कहीं गद्य के साथ पद्य में उपन्यास लिखे जाते थे और कहीं काल्पनिक के स्थान पर वास्तविक जीवनी और कहीं ऐतिहासिक घटना को उपन्यास का रूप दिया जाता था।"[2]

यह निश्चित हो जाता है कि प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासों का वास्तविक रूप भावात्मक था, चाहे यह पद्यबद्ध हो अथवा गद्यमय हो। कविता के समान उसमें

१. पं० नन्ददुलारे वाजपेयी : "आधुनिक साहित्य," पृ० १३७।
२. पं० नन्ददुलारे वाजपेयी : "आधुनिक साहित्य," पृ० १३७।

कोरी कल्पना और भावना निहित रहती थी। उपन्यास की रचना के लिए वास्तविक जगत, भौतिक आधार तथा जीवन की मूल आवश्यकताओं का आभास उस समय नहीं मिला था, इसलिए भिन्न भिन्न प्रेम-चर्चाओं को लेकर ही उपन्यास-रचना के लिए लेखकों को प्रेरणा मिलती रही। इसलिए हमारा निष्कर्ष है कि समस्त प्रेमाख्यान-काव्य भी उपन्यास साहित्य का एक निखरा हुआ रूप प्रतीत होता है। ये प्रेम-गाथाएँ घर-घर में स्थान पा गयी थीं और जन-जीवन का अविच्छिन्न अंग बन गयी थीं। गोस्वामी तुलसीदास से पहले भी ये प्रेम-कथानक लिखे जा चुके थे। इनमें से "मधुमालती," "मृगावती," "हीर और रांझा," "ढोला मारूरी दोहा" और "सारंगा सदावृक्ष" जन-साधारण के द्वारा अधिक प्रशंसनीय हुए। हम निःसंकोच कह सकते हैं कि ये प्रेम-कहानियाँ उस युग में सस्ते और चलते हुए उपन्यासों का कार्य कर रहे थे। मनोरंजन की दृष्टि से साधारण मानव इनको पढ़ा करते थे। सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदासजी ने अपने आत्मचरित "अर्द्ध कथानक" में लिखा है कि "मधुमालती" और "मृगावती" नामक पुस्तकों का पढ़ने का उनको ऐसा चस्का लगा था कि वे दुकान का सारा कार्य-भार छोड़कर घर ही बैठे रहते थे।

"अब घर में बैठे रहे, नाहिन हाट बजार,
मधुमालती मृगावती, पोथी दोई उपचार।"

प्राचीन काल से इन प्रेम-कथाओं को आकर्षक बनाने के लिए इनके नाम उनकी नायिकाओं के नाम पर ही रखे जाते थे। "रत्नावली," "पद्मावती," "वासवदत्ता" इत्यादि नायिकाओं ने अपने रचिताओं को इतना मोहित किया कि वे उनकी प्रशंसा में ग्रन्थों का विस्तार करते गये। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा . "दसवीं शताब्दी व मयूर कवि ने भी 'पद्मावती-कथा' नामक एक काव्य लिखा था। ऐसा ज्ञात पड़ता है कि आगे चलकर "वती" प्रत्ययुक्त नाम लोक-कथानकों में बहुत जनप्रिय हो गया।"[1]

जायसी के पूर्व भी "लीलावती," "पद्मावती," "खण्डरावती," "मृगावती," इत्यादि अनेक सुन्दर प्रेम-आख्यान रचे गये।

प्रेम-काव्यों के अध्ययन से यह प्रमाणित हो जाता है कि इनकी रचना का मूल कारण मुसलमान साहित्यकारों के कोमल हृदय की भावपूर्ण अभिव्यंजना है। *प्रेम-काव्य का आभास तो वीरगाथा-काल में ही मिलने लगा था, जब मुल्लादाउद* ने नूरक और चन्दा की प्रेम-कथा की रचना की थी। उसके बहुत वर्षों बाद प्रेम-आख्यानों की परम्परा प्रारम्भ हुई, पर इसको जन्म देने का सारा श्रेय तो मुल्लादाउद को ही है। अनेक खोजों के उपरान्त इतिहासकारों ने "मृगावती" और "मधुमालती" प्रेमाख्यानों की प्रतियाँ खोज निकाली हैं, पर अन्य तो कोई भी

१. डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी : "हिन्दी साहित्य", पृ॰ २६०-६१।

उपलब्ध नहीं है। एक और ग्रन्थ का भी परिचय प्राप्त हुआ, जिसका नाम है "लक्ष्मणसेन पद्मावती", जिसकी रचना सम्वत् १५१६ मे हुई। ग्रन्थकर्ता का नाम 'दामो" है, जिसने वीररस मे इसे रचा है।[1] सक्षेप मे, प्रेमाख्यानो का थोडा सा परिचय इस प्रकार देना उचित जान पडता है।

मृगावती

इसके रचयिता कुतुबुन थे, जो शेख बुरहान क शिष्य थे। यह प्रेमाख्यान अभी भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पास प्राप्य है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने "इसकी रचना विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का मध्य भाग मावी सम्वत् १५५० के लगभग माना है।"[2]

'मृगावती" की लौकिक प्रमकथा दोहे और चौपाई में लिखी गयी है। इसम चन्द्रगिरि के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कचनपुर के राजा रूपमुरारी की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। पद्यबद्ध शैली मे कवि ने प्रेम-माग की तपस्या की प्रतिष्ठा स्थापित की है। सूफी साधकों की सबसे महान् विशेषता है कि प्रम मार्ग के द्वारा उन्होंने कष्ट और त्याग का समावेश किया है। इन कथाओं में यदि एक ओर प्रेमतत्व का आभास मिलता है तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता का पुट है। गणपतिदेव का पुत्र कचननगर की राजकुमारी पर मोहित हो जाता है। वह उडने की विद्या जानती थी और बेचारे राजकुमार को धोखा देकर एक दिन उड जाता है। तब दुखी राजकुमार योगी बन कर उसकी खोज मे निकल पडता है। राजकुमार नाना प्रकार के कष्ट झेलता हुआ समुद्र, घाटियाँ और पहाडो के चक्कर काटता हुआ एक पहाडी पर पहुँचता है, जहाँ पर रुक्मणी नामक सुन्दरी को वह एक राक्षस के हाथ से बचाता है और उसका विवाह उसके साथ हो जाता है। फिर यह राजकुमार उस नगर में पहुँचा, जहाँ मृगावती अपने पिता की मृत्यु के बाद राज्यसिंहासन पर बैठ कर सारा शासन कर रही थी। वहाँ भी वह बारह वर्ष रहा और फिर रुक्मणी तथा मृगावती को लेकर अपने पिता के यहाँ पहुँचता है और एक दिन आखेट के समय हाथी पर से गिर कर मर जाता है। मृगावती और रुक्मणी दोनो उसके साथ सती हो जाती हैं। इस आख्यान की भाषा अवधी है।

मधुमालती

इस आख्यान की केवल एक खण्डित प्रति प्राप्त हो सकी है। इसमे पाँच चौपाइयो के उपरान्त एक दोहे का तुक रहा है। पर 'मृगावती' की अपेक्षा इसकी कल्पना विशद है, शैली मार्मिक और हृदयग्राही है। इसके रचयिता 'मझन' हैं, जिन्होंने

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा: "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास," पृ० ३०५-३०६।
२. रामचन्द्र शुक्ल. "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ९४।

आध्यात्मिक प्रेम-व्यंजना के लिए प्रकृति के अधिक से अधिक दृश्यों का समावेश किया है। कहानी भी अधिक लम्बी है, अतः जटिलता का आ जाना स्वाभाविक है।

कथा इस प्रकार है कि कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर नामक सोये हुए राजकुमार को अप्सराएँ रातों-रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी में रख आती हैं। वहाँ जागने पर दोनों का प्रथम साक्षात्कार होता है। वे मुग्ध हो जाते हैं। प्रेमपूर्ण वार्त्तालाप करते-करते दोनों सो गये। तब अप्सराएँ फिर राजकुमार को वापस उठा लाती हैं। मधुमालती के वियोग में वह घर से निकल पड़ता है और समुद्री मार्ग से यात्रा करता है। मार्ग में तूफान आया। राजकुमार अपने साथियों सहित बह गया। बहता हुआ वह दूसरे स्थान पर पहुँचा जहाँ पर एक सुन्दर नारी, चितविसरामपुर के राजा चित्रसेन की कुमारी, प्रेमा सो रही थी, जिसे एक राक्षस उठा लाया था। राजकुमार मनोहर ने उस राक्षस को मार कर प्रेमा का उद्धार किया। तब उसने प्रतिज्ञा की कि वह राजकुमार को मधुमालती से मिला देगी। मनोहर प्रेमा के साथ उसके पिता के यहाँ आता है। तब प्रेमा राजकुमार को अपना भाई स्वीकार कर लेती है और उसके साथ विवाह करना अस्वीकृत कर देती है। अपने प्रयत्न से वह राजकुमार को मधुमालती से अपने घर पर मिला देती है। तब मधुमालती की माँ रूपमन्जरी क्रोधित होकर उसे पक्षिणी बना देती है। मधुमालती बहुत दुखी हो जाती है क्योंकि उसके माता-पिता दूसरे लड़के से उसका विवाह करना चाहते हैं। तब वह उद्विग्न होकर राजकुमार मनोहर की प्रतीक्षा करती है। मधुमालती पक्षिणी बन कर उड़ जाती है और कुंवर ताराचन्द का रूप मनोहर से मिलता-जुलता देखती है। वह ताराचन्द के द्वारा पकड़ ली जाती है पर वह जैसे ही सुनता है कि यह तो मनोहर से प्रेम करती है, ताराचन्द उसे मिलाने का आश्वासन देता है। इतने में योगी के वेश में मनोहर आ पहुँचता है। उसके बाद उसका विवाह मनोहर के साथ हो जाता है। मनोहर, मधुमालती और ताराचन्द तीनों प्रेमा के अतिथि रहते हैं और एक दिन ताराचन्द प्रेमा को झूलते देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है। ताराचन्द की मूर्च्छित अवस्था से चेतन में लाने के लिए मधुमालती और उसकी सखियाँ नाना प्रकार के उपचार और प्रयत्न करती हैं। "मधुमालती" की खण्डित प्रति उपलब्ध है, जिसमें कथा का रूप कुछ दूसरे प्रकार का है। ऐसा प्रतीत होता है कि ताराचन्द का विवाह प्रेमा से होगया होगा। मझन कवि ने इस प्रेमाख्यान में नायिका के साथ ही साथ उपनायक और उप-नायिका की भी सृष्टि की है, जिसके फलस्वरूप कथा लम्बी हो गयी है। इस आख्यान में अनेक प्रेमपूर्ण घटनाओं का समावेश हो गया है। इन सूफी कवियों के मतानुसार जन्म-जन्मान्तर तक प्रेम-तत्व की व्यापकता और प्रधानता रहती है। खोज के उपरान्त भी मझन की इस रचना का ठीक-ठीक समय अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है; फिर भी आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'मधुमालती' की रचना विक्रम

सम्वत् १५५० और १५६५ के बीच मे मानी है और बहुत सम्भव है कि 'मृगावती' बाद म रची गयी होगी।[1]

'मुग्धावती' और 'प्रेमावती' दो और प्रेमाख्यान लिखे गये, पर खोज के उपरान्त भी इन दोनो का कोई पता अभी तक नही चल सका है।

पद्मावत

हस्तलिखित प्रतियाँ तो फारसी मे ही प्राप्त होती हैं। इसके रचियता मलिक मुहम्मद जायसी हैं, जिन्होने स्वय इसके निर्माण-काल की ओर सकेत किया है—

"सन नव से सत्ताईस ग्रहा, कथा प्रारम्भ बैन कवि कहा"।

खोज के बाद यह प्रमाणित हुआ है कि यह सन् ९२७ हिजरी है, जो सन् १५२० के लगभग ठहराया जाता है। जायसो ने स्वय मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओ की ही बोली मे पूरा सहृदयता के साथ कह कर हिन्दू जनता का मन रंजित किया।[2]

आचार्य शुक्ल क अनुसार, पद्मावत म प्रेमगाथा की परम्परा पूर्ण प्रौढता को प्राप्त मिलती है। क्या लोकपक्ष मे, क्या आध्यात्मपक्ष मे, दोनो ओर उसकी गूढता गम्भीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।"[3]

"पद्मावत" मे इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है। चित्तौड की महारानी पद्मिनी या पद्मावती का इतिहास हिन्दू हृदय के मर्म को स्पर्श करने वाली कहानी है। जायसी ने इतिहासप्रसिद्ध नायक-नायिका को लकर कहानी की प्रेमाख्यान-परम्परा को पूर्ण प्रचलित रखा है। तत्कालीन बोल चाल की अवधी भाषा म इस महाकाव्य को दोहे-चौपाई वाली मसनवी पद्धति पर रचा गया है।

अन्य प्रेम गाथाओ के समान "पद्मावत" भी तीव्र अनुभूति है। कथा इस प्रकार है कि सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन की पुत्री पद्मावती के सौन्दर्य की प्रशसा हीरामन तोता के मुख से सुनकर चित्तौड का राजा रत्नसेन उससे विवाह करने के लिए सिंहलद्वीप की ओर प्रस्थान करता है और मार्ग म अनेक बाधाओ का सामना करता है। सब पर विजय प्राप्त करक वह सिंहलद्वीप पहुँचता है और पद्मावती से विवाह करता है और फिर वापस चित्तौड लौटकर आ जाता है। ज्योतिष सम्बन्धी अनाचार पर वह राघव चेतन सेवक को देश-निकाला देता है, जो दिल्ली क सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से मिलकर पद्मावती को प्राप्त कराने का लोभ देकर चित्तौड पर बादशाह के द्वारा आक्रमण कराता है। गोरा-बादल की सहायता से अलाउद्दीन की हार हो जाती

१. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ९८।
२. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ९९।
३. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० १०१।

है। रत्नसेन की अनुपस्थिति में देवपाल नामक राजा अपनी दूती भेज कर पद्मावती से प्रेम याचना करता है, जिसके कारण रत्नसेन और देवपाल में द्वन्द्व-युद्ध होता है। रत्नसेन देवपाल का सिर काट डालता है, पर देवपाल की साग से खुद भी मर जाता है और नागमती तथा पद्मावती दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं।

यह जग-विदित है कि प्रेम गाथाएँ अधिकतर काल्पनिक होती हैं, पर जायसी की विशेषता है कि कल्पना के साथ-साथ इतिहास की सहायता से पद्मावत के कथानक का उन्होंने मार्मिक विस्तार किया है।

राजा रत्नसेन की सिंहल-यात्रा काल्पनिक है, पर दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन का पद्मावती के रूप पर मुग्ध होकर चित्तौड़ पर आक्रमण करना ऐतिहासिक घटना है। रत्नसेन की मृत्यु सुल्तान के हाथ से न होकर देवपाल की साग से हुई है। अतः 'पद्मावत की कथा इतिवृत्तात्मक होते हुए भी रसात्मक है।'"[1]

इसके बाद अन्य छोटी-मोटी प्रेम-गाथाएँ भी रची गयीं पर जिन्हें अधिक ख्याति प्राप्त नहीं हो सकी, जैसे—ज्ञान द्वीप, हंसजवाहर, इन्द्रावती, प्रेमरतन, रस-रतन, कनकमन्जरी, कामरूप की कथा इत्यादि।

यह निश्चित है कि हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के सम्मिलन के फलस्वरूप ही इस प्रकार के आख्यान लिखे गये। ये वर्णनात्मक कथाएँ हैं। इनमे नैतिकता और उपदेशों की खोज करना हमारी अज्ञानता होगी। यद्यपि कहीं-कहीं ये आख्यान ऐतिहासिक जान पड़ते हैं, पर अधिकांश रूप से तो इनमे कल्पना की प्रधानता है। समस्त प्रेम-गाथाएँ अवधी भाषा में लिखी गयी हैं, जिनका मूलाधार शृंगाररस है। संयोग और वियोग दोनों ही धाराएँ क्रम से प्रवाहित हो रही हैं।

"प्रेम-काव्य की परम्परा में आख्यायिका साहित्य का यथेष्ट विकास हुआ।"[2] इस कथन के द्वारा डॉ० रामकुमार वर्मा ने कथा साहित्य के विकास पर प्रकाश डाला है। ये वे प्रेमगाथाएँ हैं जिनमें प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों के बीज उपलब्ध हुए।

"चित्रावली" के रचयिता उसमान हैं जिन्होंने सन् १६१३ के आसपास इस प्रेमाख्यान को लिखा। इसमें नेपाल के राजा धरणीधर के पुत्र सुजानकुमार और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली के प्रेम की कथा वर्णित है।

राजकुमार को एक देव रूपनगर का महोत्सव दिखलाने ले गया और इस राज-कुमारी की चित्रशाला में रख दिया गया। राजकुमार मोहित हो जाता है। चित्रदर्शन के द्वारा लेखक ने भारतीय प्रेममार्ग पर प्रकाश डाला है और यह प्रेम-गाथा अपने लक्ष्य में सफल होती है। इसके अतिरिक्त कासिमशाह की "हंस-जवाहर" और नूरमुहम्मद की "इन्द्रावती" और "अनुराग बाँसुरी" बहुत प्रसिद्ध हुई। मौलाना सैयद सुलेमान नदवी

१. डॉ० रामकुमार वर्मा: "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास," पृ० ३२५।
२. वही, पृ० ३१-३३२।

ने कहा है : "कहानियों की प्रसिद्ध 'अलिफ लैला' नामक की पुस्तक में सिन्दबाद नाम की दो कहानियां हैं, जिनमें से एक मे स्थलयात्रा की विलक्षण और अद्भुत घटनाएँ बतलाई गयी हैं।"[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा कि "हिन्दी मे चरित काव्य बहुत थोड़े हैं। ब्रजभाषा में तो कोई ऐसा चरित-काव्य नहीं, जिसने जनता के बीच प्रसिद्धि प्राप्त की हो। पुरानी हिन्दी के पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो आदि वीर-गाथाओं के पीछे चरित-काव्य की परम्परा हमें अवधी भाषा में मिलती है।"[2]

जहाँ तक उपन्यास के मूल स्रोत का प्रश्न है, ये प्रेमगाथाएँ वास्तव मे उसके मूल रूप हैं। इन रचनाओं ने जनता के हृदय मे कथा साहित्य के प्रति एक अद्भुत रुचि जाग्रत कर दी, जिज्ञासा का एक ऐसा बीज बोया, जिसका वृक्ष फलता-फूलता आज हमारे सामने लहलहा रहा है। जहाँ एक ओर मुसलमान लेखकों ने भाषा का सरल प्रेमपूर्ण रूप साहित्य के द्वारा प्रस्तुत किया है, वहाँ दूसरी ओर हिन्दू लेखकों ने अपनी भाषा मे काव्यत्व और आलंकारिक सौन्दर्य लाने की भरपूर चेष्टा की। अत: संस्कृत निष्ठ पदावलियाँ प्रयोग मे आईं, फिर भी जन-साधारण के हृदय म कथा-कहानियाँ और चरित्र काव्य दोनों के प्रति अद्भुत लगन समाविष्ट हो गयी थी। वे स्वय कहते थे, सुनते थे, और गाथाओं को सुनाने क लिए उत्सवो का आयोजन सामूहिक रूप म भी करते थे।

उपन्यास और महाकाव्य

गद्य और पद्य का भेद शाश्वत है, चिरकालीन है। स्थूल जगत की स्वाभाविक भाषा का प्रवाह गद्य के रूप मे अबाध गति से नि:सृत होता है। उपन्यास वह क्षेत्र है, जहाँ मानव का मन घटना चक्रों और क्रिया-प्रतिक्रियाओं मे सदैव उलझा रहता है। जीवन की गूढ़ समस्याओं के उत्थान और पतन मे सदा रत रहता है, पर महाकाव्य के द्वारा लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि होती है। यह लोकोत्तर आनन्द मनुष्य को स्थूल जगत से परे ले जाकर स्वर्गीय सुख मे डुबो देता है। उपन्यास हमारे हृदय में उत्सुकता उत्पन्न करता है और हम आगे घटने वाली घटनाओं के बारे मे जानने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। काव्यानन्द के द्वारा मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है।

"उपन्यासों मे कौतूहल वृत्ति प्रधान रहती है और रमणवृत्ति गौण।"[3]

शिवनारायण श्रीवास्तव ने इस कथन के अतिरिक्त आगे भी कहा कि "कविता का जो रूप उपन्यास के कुछ समीप है—वह है महाकाव्य। उपन्यासों

---

१. हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा, "अरब और भारत के सम्बन्ध", पृ० १३४।
(प्रकाशित सन् १९२९)
२ सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल, "जायसी ग्रन्थावली", पृ० २०९।
(नागरी प्रचारिणीसभा, काशी),
३. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ३।

को 'गद्यमय महाकाव्य' (Epic in Prose) कहा भी गया है। इसी प्रकार महाकाव्यों को भी हम पद्यमय उपन्यास (Novel in Verse) कह सकते हैं। उपन्यास और महाकाव्य दोनों में ही कुछ व्यक्तियों के साथ कुछ घटनाएं किसी विशेष क्रम से घटित होती हैं; दोनों में ही वर्णन की प्रधानता रहती है।"[1]

कविता का आनन्द तो कुछ भावुक जन ही उठा पाते हैं, जबकि उपन्यास जन-साधारण के जीवन की प्रमुख वस्तु है। उपन्यास और महाकाव्य दोनों में ही विषय के वर्णन के साथ ही साथ जीवन के विविध पहलू, घटनाओं के घात-प्रतिघात आदि अनेक समस्याएं, उनका निदान, वस्तु-वर्णन और भाव-व्यंजना सबके लिए खुला हुआ वातावरण मिल जाता है। कथा-प्रवाह और सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से भी दोनों उपयुक्त स्थल हैं। यद्यपि दोनों एक-दूसरे के अत्यधिक सन्निकट हैं, पर फिर भी भिन्न-भिन्न आदर्शों को लेकर अवतरित होते हैं। उपन्यास का नायक साधारण से साधारण वर्ग का प्रतिनिधि भी हो सकता है, पर महाकाव्य के नायक में कोई विशेष गुण तथा किसी विशेष प्रतिनिधि का होना आवश्यक है। उपन्यास जन-जीवन का सच्चा यथार्थ रेखाचित्र है। उदाहरण के लिए, तुलसी का 'रामचरितमानस' अपूर्व धार्मिक ग्रन्थ है। इस महाकाव्य के नायक राम का चरित्र आदर्श और देवोपम है, उनकी लीलाएं अद्भुत हैं। यदि उपन्यासकार भी इसी प्रकार की अनोखी घटनाओं का वर्णन करने लगे तो उपन्यास इस जग जीवन की वस्तु न रह कर काल्पनिक लोक तक ही सीमित रहेगी। हम मानते हैं कि 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास में कितनी ही तिलस्मी और ऐयारी-पूर्ण घटनाओं का समावेश हो जावे पर उसके द्वारा साहित्य के यथार्थ उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। इसलिए यह अपेक्षित है कि उपन्यासकार की कल्पना भौतिक जगत के धरातल से मनुष्य के साथ साथ विचरण करे, जबकि महाकाव्यकार स्वच्छन्द उड़ानें भी भर सकता है। यद्यपि उपन्यासकार की लेखनी निश्चित सीमाओं में बंधी रहती है, परदेश काल के घेरे में बंधना मानव का जग-जीवन है। इसके द्वारा निर्मित सारे पात्र सजीव होकर लेखक द्वारा निर्धारित जीवन यात्रा पर चलने में सफल सिद्ध होंगे। उपन्यासकार का प्रथम कर्त्तव्य है कि मानव जीवन का साकार, सजीव और स्वाभाविक चित्र वह अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित करे।

डॉ० श्यामसुन्दरदास ने कहा है कि 'उपन्यास पढ़कर हम यह नहीं स्वीकार करते कि ऐसा हो सकता है। प्रत्येक बार हमारा प्रश्न यही होता है कि ऐसे कैसे हुआ?"[2]

साहित्य-संसार में सब प्रकार के उपन्यास उपलब्ध हैं। कुछ उपन्यासों में केवल घटनाओं का ही समावेश रहता है तथा अन्य काव्य प्रणाली के द्वारा प्रकाश में लाये

१. शिवनारायण श्रीवास्तव "हिन्दी उपन्यास", पृ० ३।
२. डॉ० श्यामसुन्दरदास "साहित्यालोचन," पृ० १७३।

गये हैं। इन काव्य-प्रणाली पर आधारित उपन्यासों में प्रेममूलक आश्चर्यजनक घटनाएँ हैं, जिनका माध्यम पद्य है, अत अंग्रेजी में उन्हे रोमांस (Romance) कहा जाता है। इन प्रेममूलक आख्याना मे वीररस का वर्णन है, जिनका मूल विषय नारी प्रेम, उदार तथा रूपलिप्सा ही रहा है।

श्री शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है कि "आज दिन तो महाकाव्यों का अर्थ रूढ सा हो गया है, परन्तु महाकाव्य मे भी अब सामान्य व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं के सन्निवेश की रुचि स्पष्ट लक्षित हो रही है और यूरोप में तो ऐसे कई महाकाव्यों की रचना भी हो चुकी है, इसलिए महाकाव्यों की अवनति का एक प्रधान कारण उपन्यासो की वृद्धि भी बताया जाता है।"[1]

उपन्यास और नाटक

शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षा की जावे तो उपन्यास और नाटक दोनों का शारीरिक ढाँचा एक सा ही है। दोनो के मूल उपकरण एक समान ही हैं; फिर भी उपन्यासकार की परिस्थितियाँ नाटककार की तुलना मे सर्वथा भिन्न होती हैं। 'नाटक' मे अनेक कलाओं का योगदान होता है। उसमें यदि एक ओर काव्य-तत्व है तो दूसरी ओर रंगमंच-निर्देश की आयोजना होती है। पात्र होते हैं, जो अभिनय के द्वारा कथा को विकसित करते हैं। नाटक में बाह्य उपकरणों की पूरी सहायता लेनी पड़ती है। 'उपन्यास' साहित्य का वह अंग है, जहाँ इन तत्वों की तनिक भी आवश्यकता नहीं पड़ती है।

मैरियन क्रॉफर्ड ने कहा है कि उपन्यास की "रंगशाला उसी मे निहित है।"

उपन्यास गद्य का वह स्वतन्त्र रूप है जिसमें किसी भी प्रकार के नियमों की परतन्त्रता वाछनीय नहीं है। उपन्यासकार अपनी वर्णनात्मक शैली के द्वारा उपन्यास के द्वारा लम्बे-चौडे व्यापक चित्र उतारने की चेष्टा करता रहता है। नाटककार को नाट्य शास्त्र के नियमों ने बाँध रखा है और उसका क्षेत्र सीमित तथा संकुचित हो जाता है, अत स्वच्छन्द उड़ानें भरना उसके लिए कठिन कार्य है। कला, पात्र तथा अभिनय और भाव व्यंजना के द्वारा वह अपनी रचना को सजीव, सफल तथा प्रभावोत्पादक बनाने की चेष्टा करता रहता है, पर उपन्यासकार को अनेक पात्र तथा अनेक घटनाओं की सृष्टि करना अवाछनीय है। कथा के विकास के साथ उपन्यासकार स्वतः आत्माभिव्यंजना भी करता चलता है। घटनाओं के माध्यम से वह अपना स्वतन्त्र मत भी निर्धारित करता चलता है। नाटककार के लिए "नाटकों में पात्रों का परिचय देने के अनेक साधन हैं, उपन्यास में एक। अभिनय-कौशल, वेश-भूषा तथा दृश्यावली के द्वारा नाटकीय पात्रों

---

१. श्री शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास," पृ० ५।

का हमें पूर्ण परिचय मिल जाता है ; परन्तु उपन्यास में सब साधन सुलभ नहीं।"[१]

श्री शिवनारायण का यह कथन सर्वथा सत्य है कि नाटक दृश्य-काव्य है और उसमें अभिव्यंजना की पूर्ण व्यापकता है। उपन्यास-लेखक विश्लेषणात्मक प्रणाली के द्वारा पात्रों के भावों और कार्य-प्रणाली की व्याख्या करता है। उपन्यासकार स्वयं व्याख्या करता है, पर नाटककार दूर खड़ा होकर सदैव तमाशबीन बन जाता है। दोनों ही का मूल उद्देश्य कथावस्तु को पात्र और चरित्र-चित्रण की सहायता से प्रकाश में लाना है।

डॉ० श्यामसुन्दरदास ने कहा है कि "उपन्यास के अन्तर्गत वह सम्पूर्ण कथा साहित्य आ जाता है जो गद्य की प्रणाली से व्यक्त किया गया हो।"[२]

प्रत्येक उपन्यास के मूल में कथा निहित रहती है, चाहे वह काल्पनिक हो, चाहे तिलस्मी या जासूसी अथवा खूनी अथवा रोमानी (Romantic), पर सारी कथावस्तु घटनाओं के क्रम से जुड़ी रहती है। अतः उपन्यास और नाटक कथावस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ही एक ही धरातल पर अवतरित होते हैं; यद्यपि दोनों ही अपनी-अपनी सीमाओं से बँधे रहकर ही विकसित होते हैं। भौतिक जगत के दोनों ही अविभाज्य अंग हैं, जिनके द्वारा मानव-जीवन अभिव्यंजित होता है।

अतः प्राचीन युग का सारा कथा साहित्य, चाहे वह गल्प के रूप में हो या उपदेश, नीतिकथाएँ, प्रेमाख्यान, महाकाव्य अथवा नाटक, सब में आधुनिक उपन्यासों के बीज निहित हैं। "उपन्यास" शब्द तो आधुनिक 'साहित्याग' है। प्राचीन काल में यह अनेक रूपों में प्रचलित था। प्रेमचन्द के आगमन के लिए इसी युग ने सुदृढ भूमिका तैयार कर दी, जिसके प्रमुख निर्मायक पुराने कथाकार, गद्य-निर्माता तथा उपन्यासकार हैं ; यहाँ तक कि चारण व भाट जो पद्य रूप में राजदरबारों में कथा सुनाने जाया करते थे, उन्होंने भी उपन्यास के विकास में अत्यन्त सहायता पहुँचाई है। गद्य और पद्य, दोनों प्रकार के आख्यान वर्तमान उपन्यास के मूल स्रोत हैं।

---

१. श्री शिवनारायण श्रीवास्तव: "हिन्दी उपन्यास," पृ० १४।
२. डॉ० श्यामसुन्दरदास: "साहित्यालोचन," पृ० १७६।

द्वितीय अध्याय

भारतेन्दु युग से पूर्व गद्य-कथाओ की उत्पत्ति तथा विकास

भारतेन्दु से पूर्व सम्वत् १८०० से लेकर १८५८ तक ही वास्तव मे हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रतिभाशाली लेखको ने अपनी लगन तथा हिन्दी के प्रति निष्ठा से जो अटूट परिश्रम किया है, वह साहित्य के इतिहास में सदा सराहनीय रहेगा। जिस युग मे साहित्य अन्धकार के गर्त म छिपा हुआ था, उस समय नवोत्थान एव प्रभात का सूर्य प्रदर्शित करने वाले निम्नलिखित साहित्यकार उदित हुए हैं, जिनकी मौलिक अन्वेषण शक्ति ने रत्न खोज निकाले हैं।

गार्सा द-तासी, सर जॉर्ज ग्रियर्सन, नलिनीमोहन सान्याल इत्यादि प्रसिद्ध इतिहास-लेखको ने इन फोर्ट विलियम कॉलेज के विद्वानों के जीवन-चरित्र तथा उनकी प्रतिभा पर अपूर्व प्रकाश डाला है। डॉ० गिलक्राइस्ट ने सम्वत् १८६० मे फोर्ट विलियम कॉलेज मे देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार करने की योजना बनायी, तब सारे देश म एक अपूर्व उत्साह की लहर सी दौड गयी और हिन्दी गद्य के प्रति जन-रुचि दिखाई दी। वे स्वय हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओ के विद्वान् थे, इसलिए दोनों ही क्षेत्र में उन्होंने अलग-अलग प्रबन्ध किया। यद्यपि इस सस्था की स्थापना राजनैतिक और शासन-सम्बन्धी उद्देश्य को लेकर हुई थी, फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय साहित्य तथा भाषाओं को प्रोत्साहन मिला। समूचे देश में यह कॉलेज शिक्षा का मूल केन्द्र बन गया, जहाँ पर अहिन्दी भाषाभाषी व्यक्तियों को हिन्दी भाषा और साहित्य का ज्ञान कराया जाने लगा। सस्कृत तथा हिन्दी भाषा के अनेक प्राचीन ग्रन्थ पुन छपवा कर प्रकाशित कराये गये। डॉ० जान गिलक्राइस्ट ने "ए ग्रेमर ऑफ दी हिन्दुस्तानी लेंग्वेज" पुस्तक तैयार की थी, उसका प्रकाशन भी सम्वत् १७९६ और १७९८ के लगभग हुआ, जिसमें व्याकरण के मूल सिद्धान्तो की चर्चा की गयी है जो "हिन्दवी" पर आधारित है।

द्वारा

लल्लूलाल आगरे के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे। आचार्य

ने इनका जन्म सम्वत् १८२० और मृत्यु सम्वत् १८८२ माना है।[1] कहा जाता है कि इन्हें संस्कृत और उर्दू दोनों भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान था।

डॉ० जान गिलक्राइस्ट की आज्ञा से इन्होंने खड़ी बोली के गद्य में सम्वत् सन् १८६० मे "प्रेमसागर" नामक अपूर्व ग्रन्थ का प्रणयन किया, जिसमें भागवत् के दशम स्कंध की कथा का वर्णन किया गया है। इनकी समस्त रचनाओं का क्रम इस प्रकार है—

(१) सिंहासन बत्तीसी	—	सन् १८०१ में सुन्दरदास कृत ब्रजभाषा-रचना से।
(२) बैताल पच्चीसी	—	सन् १८०१ में सुरत कवीश्वर की ब्रज-भाषा-रचना से।
(३) शकुन्तला नाटक	—	सन् १८०१ मे सुरत कवीश्वर की ब्रज-भाषा-रचना से।
(४) माधवानल कामकंदला	—	सन् १८०१ मे मोतीराम कृत ब्रजभाषा-रचना से।
(५) राजनीति	—	हितोपदेश का ब्रजभाषा से अनुवाद।
(६) प्रेमसागर	—	सन् १८६० में भागवत के दशम स्कंध के आधार पर कथा है।

"प्रेमसागर" इनकी ख्याति का प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है। इनकी भाषा में सैयद इंशाअल्ला खाँ के समान ठेठ हिन्दी के प्रति झुकाव तो नहीं है, पर फिर भी विदेशी शब्दों को यथाशक्ति नहीं आने दिया है। इनकी समस्त रचनाओं पर दृष्टिपात करने से आभास होता है कि इनका कोई भी ग्रन्थ मौलिक नहीं है। "गासा-द-तासी" और ग्रियर्सन के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि किसी न किसी सूत्र पर आधारित होकर ही इन्होंने उपर्युक्त साहित्य रचा और हिन्दी गद्य को उन्नत करने वाला इनका "प्रेमसागर" है, जिसमें युगीन जन-रुचि का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ के आधार पर गिलक्राइस्ट तथा फोर्ट विलियम कॉलिज की हिन्दी-योजना का पूर्ण परिचय पाठकों को मिल जाता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार "प्रेमसागर" में भागवत दशम स्कंध की कथा वर्णन की गयी है,[2] पर डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने प्रमाणित किया है कि "लल्लूलाल का प्रेमसागर भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद नहीं है, बल्कि दशम स्कन्ध के अनुसार कृष्ण-चरित्र का पौराणिक दृष्टि से उसमें वर्णन है।"[3]

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ४१६।
२. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४१६।
३. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : "हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास", पृ० ३५।

समस्त "प्रेमसागर" इक्यानवे अध्यायों में वर्णित है और सब में कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध और महाभारत के नायक अर्जुन से भेंट तक की कथा है। इन अध्यायों में भागवत के दशम स्कन्ध की सारी कथा आ गयी है। इन कथाओं की शैली पूर्णरूप से पौराणिक है। आख्यान का रूप कथा-वार्त्ता का है।

" 'प्रेमसागर' की भाषा पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है: "लल्लूलाल की भाषा कृष्णोपासक व्यासों की सी ब्रजरंजित खड़ी बोली है। सम्मुख जाय, सिरनाय, सोई, गई, कीजे, निरख, लीजो ऐसे शब्द बराबर प्रयुक्त हुए हैं। अकबर के समय में गंग कवि ने जैसी खड़ी बोली लिखी थी, वैसी ही खड़ी बोली लल्लूलाल ने लिखी। दोनों की भाषाओं में अन्तर इतना ही है कि गंग ने इधर-उधर फारसी-अरबी के प्रचलित शब्द भी रखे हैं, पर लल्लूलाल ने ऐसे शब्द बचाये हैं। भाषा की सजावट "प्रेमसागर" में पूरी है। विरामों पर तुकबन्दी के अतिरिक्त वर्णनों में वाक्य भी बड़े-बड़े आये हैं और अनुप्रास भी यत्र-तत्र हैं। मुहावरों का प्रयोग कम है। सारांश यह कि लल्लूलाल का काव्याभास गद्य-भक्तों की कथा-वार्त्ता के काम का ही अधिकतर है, न नित्य व्यवहार के अनुकूल है, न सम्बन्ध विचारधारा के योग्य।"[1]

लेखक ने उर्दू, खड़ी बोली हिन्दी और ब्रजभाषा तीनों में गद्य की पुस्तकें लिखी हैं। "प्रेमसागर" में वर्णन के द्वारा कृष्ण-कथा प्रारम्भ होती है तथा एक कथा के साथ-साथ अनेक कथाएं चलती हैं। ये कथाएं हमारे पुराणों के समान हैं, जो शुकदेवजी मुनि के द्वारा राजा परीक्षित से कही गयी हैं, जैसे "शुकदेव मुनि बोले—"महाराज, ग्रीष्म की अति अनीति देख नृप पावस प्रचण्ड पशुपक्षी, जीव-जन्तुओं की दशा विचार, चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आये। तिस समय घन जो गरजता था सोई हो धौंसा बजाता था और वर्ण वर्ण की घटा जो घिर आयी थी सोई दूर वीर रावत थे, तिनके बीच बिजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी, बग पाँत ठौर-ठौर ध्वजा सी फहराय रही थी, दादुर, मोर, कड़ खेता की सी भाँति यश बखानते थे और बड़ी-बड़ी बूँदों की झड़ी बाणों की सी झड़ी लगी थी।"[2]

"प्रेमसागर" के १८०३ वाले संस्करण के मुखपृष्ठ पर "श्री गणेशाय नमः" लिख कर लेखक ने अपनी भगवत-भक्ति-निष्ठा का परिचय दिया है। लल्लूलाल ने स्वयं अपने ग्रन्थ के बारे में लिखा है 'श्री गणेशाय नमः' प्रेमसागर बना खड़ी बोली में श्री भागवत के दशम स्कन्ध से जो ब्रजभाषा में है पाठशाला के लिए श्री महाराजाधिराज सकल गुन निधान महाजान पुन्यवान मान के इस वेलेजली गवर्नर

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० १२०।
२. लल्लूलाल : "प्रेमसागर", पृ० ६४। (काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित इक्कीसवाँ अध्याय)

जनरल प्रतापी के राज्य में बनाया हुआ लल्लूलाल कवि का श्रीयुत गुन गाहक गुनियन सुखदायक जान गिलक्राइस्ट महाशय की आज्ञा से रचा।"[1]

यद्यपि "प्रेमसागर" में पूर्ण रोचकता नहीं आने पाई है, फिर भी धार्मिक आख्यान की रचना हुई है। "प्रेमसागर" में कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध और महाभारत के नायक अर्जुन-भेंट तक की कथा का वर्णन है। लल्लूलाल गद्य के प्रमुख युग-निर्माता हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी में आख्यान-परम्परा को साकार रूप प्रदान किया है। इनका ब्रजभाषा पर प्रकाण्ड अधिकार था, परन्तु कलकत्ता विद्यालय के अधिकारी उस युग में खड़ी बोली के प्रचार के लिए तत्पर थे, इसलिए लल्लूलाल ने "प्रेमसागर" की भूमिका में लिखा है: "श्रीयुत गुन गाहक गुनियन सुखदायक जान ·····"

"··· गिलक्रिस्ट महाशय की आज्ञा से सम्वत् १८६० में लल्लूलाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने विसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कहे, नाम प्रेम सागर धरा।" इस प्रकार के आख्यान-काव्यों द्वारा उपन्यास साहित्य को जन्म देने का बड़ा भारी श्रेय है। इन आख्यानों ने जनता के हृदय में पूर्वपीठिका तैयार कर दी, जिससे भावी उपन्यासों का भरपूर स्वागत हुआ।

"प्रेमसागर" के इस उदाहरण से "आख्यान" का सुन्दर प्रसंग प्राप्त होगा: "इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे महाराज! कंस त इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा और उग्रसेन दुख भरने, देवक जो कंस का चाचा था, उसकी कन्या देवकी जब ब्याहन योग्य हुई तब तिन्ने जो कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें। यह बोला, सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लगन ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया, तब तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बारात बनाय, सब देश देश के नरेश साथ ले मथुरा में वसुदेव को ब्याहन आये।"[2]

सैयद इंशाअल्ला खाँ अरबी और फारसी के महान् विद्वान थे। हिन्दी आख्यायिका साहित्य के विकास में इनका बड़ा भारी हाथ रहा है। ये मौलिक गद्य-लेखक के रूप में अवतरित हुए। "रानी केतकी की कहानी" इनका मौलिक सर्वप्रथम गद्य-आख्यान है, जो सन् १८०० और सन् १८१० के मध्य काल में लिखी गयी। आचार्य शुक्ल का कथन है कि इंशा ने "उदयभान चरित्र या रानी केतकी की कहानी" सम्वत् सन् १८५५ और सन् १८६० के बीच लिखी होगी।[3]

कहानी लिखने का कारण स्वयं इंशा साहब ने इस प्रकार बताया है: "एक

---

१. लल्लूलाल: "प्रेमसागर" की भूमिका से उद्धृत।
२. लल्लूलाल: "प्रेमसागर," पृ० ६.
३. रामचन्द्र शुक्ल: "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४१६-४१७.

दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिये कि जिसमें हिन्दवी छोड़ और किसी भाषा का पुट न मिले तब जा के मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो।"[१]

इसके परीक्षण से ज्ञात होता है कि इंशा का उद्देश्य ठेठ हिन्दी लिखने का था। लल्लूलाल ने केवल "यामिनी" भाषा के शब्दों का बहिष्कार किया, पर खाँ साहेब ने ठेठ हिन्दी में "रानी केतकी की कहानी" लिखी।

"बाहर की बोली" से लेखक का तात्पर्य अरबी, फारसी और तुर्की आदि विदेशी भाषा तथा बोली से है और "गँवारी" भाषा से सैयद साहेब का तात्पर्य उस समय की प्रचलित "ब्रजभाषा और अवधी" से होगा। "भाखापन" का प्रयोग संस्कृत-मिश्रित हिन्दी के लिए किया गया है। मुसलमान लेखकों ने संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त भाषा के लिए "भाखापन" शब्द का प्रयोग किया है। खाँ साहेब ने भी संस्कृत, ब्रजभाषा और अवधी इत्यादि देशी भाषाओं के प्रभाव से मुक्त भाषा का प्रयोग किया है, जिसे वे "हिन्दवी" या 'हिन्दवीपन" से युक्त मानते थे। अरबी, फारसी और तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों से रहित भाषा को अपनाने में उनकी विशेषता थी।

डॉ० लाल ने लिखा है, "इंशाअल्ला खाँ अरबी, फारसी के विद्वान् थे। उनके संस्कारों में अरबी, फारसी मसनवियाँ और दास्ताएँ के रूप ताजे थे, फलत उन्होंने इन सब अरबी, फारसी शैलियों को मिला कर "रानी केतकी की कहानी" लिखी है।"[२]

सैयद साहेब के पूर्वज समरकन्द देश के एक प्रतिष्ठित वर्ग के व्यक्ति थे। ये लोग पहले काश्मीर में आकर बसे थे, फिर वहाँ से दिल्ली चले आये।

लल्लूलाल की रचनाओं के लिए तो प्राचीन पौराणिक आधार और आख्यान उपलब्ध थे, पर सैयद साहेब के लिए कोई भी आधार कहानी के रचना-विधान के लिए नहीं था। इंशाअल्ला खाँ अपनी निराली और मौलिक प्रतिभा के लिए हिन्दी गद्य के क्षेत्र में अधिक प्रतिष्ठित हुए।

"रानी केतकी की कहानी" का प्रारम्भ ही उनकी मौलिकता की सूचक है: "सिर झुका कर, नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनाने वाले के सामने, जिसने हम सबको बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने नहीं पाया। आतियाँ जातियाँ जो साँसे हैं, उसके बिन ध्यान ये सब फाँसे हैं।"[३]

---

१. सैयद इंशाअल्ला खाँ: "रानी केतकी की कहानी", (भूमिका से), पृ० २७६.
२. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल 'हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृ० ३७।
३. सैयद इंशाअल्ला खाँ 'रानी केतकी की कहानी' पृ० १। (नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित),

शास्त्रीय समीक्षा की दृष्टि से "रानी केतकी की कहानी" का कथानक अपनी सरलता, सजीवता और मनोहरता के लिए प्रसिद्ध है। कथावस्तु इस प्रकार है कि राजा सूरजभान और उनकी रानी लक्ष्मीवास की एकमात्र संतान उनका पुत्र कुँवर उदैभान था। वह अपूर्व सुन्दर, योग्य, आकर्षक तथा हृदय से अतीव भोला-भाला था। एक दिन प्राकृतिक हरियाली देखने की इच्छा को लेकर वह जंगल को निकल पड़ा। वहाँ जाकर उसने एक हिरनी को देखा, उसका पीछा किया, पर उसको पकड़ नहीं सका, यहाँ तक कि सूर्य अस्त हो गया, पर राजकुमार भूखा-प्यासा, थका हुआ दुखी होकर अमराई की ओर बढ़ा चला गया। वह स्थल अत्यन्त मनोरम था, जहाँ पर यौवन-भार से पुलकित होकर मस्त चालीस वेश्याएँ झूले पर झूल रही थीं तथा सावन के गीत गा रही थीं। *राजकुमार उदैभान को देख कर वहाँ पर हलचल मच गयी। लाल वस्त्रों से सुसज्जित रानी केतकी पर उदैभान का मन डोल गया।* उदैभान ने वहाँ पर पहुँच जाने का समस्त विवरण उनको दिया और एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने के निमित्त लेट गया, पर राजा को नींद नहीं आ रही थी। वह रानी केतकी के ध्यान में मग्न था। दूसरी ओर, रानी केतकी भी उसको मन ही मन चाहने लगी थी और आधी रात बीत जाने पर जब सब सहेलियाँ सो गयीं तो उसने अपनी निकटतम सहेली मदनबान को जगाया और अपनी इच्छा प्रकट कर तथा सखी को साथ लेकर वह राजकुमार उदैभान के पास पहुँची। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। रानी केतकी ने अपनी सारी कथा राजा को बतलायी कि उसका पिता राजा जगतपरकास और माता रानी कामलता दोनों उसे बहुत प्रेम करते हैं। राजा उदैभान और रानी केतकी ने बहुत देर तक प्रेमालाप किया। दोनों ने अपनी अपनी अंगूठी बदल लीं और आपस में प्रेम के कारण वचनबद्ध हो गये। प्रातःकाल होने पर रानी केतकी अपनी सहेलियों के साथ वापस लौट आयी और राजा उदैभान घोड़े पर चढ़कर अपने राज्य में वापस लौट आये। वहाँ आकर रानी केतकी के ध्यान में उन्होंने खाना पीना, सोना-बैठना सब छोड़ दिया। वे हृदय से अत्यन्त व्याकुल रहने लगे। महाराज सूरजभान और रानी लक्ष्मीवास को यह सारा समाचार मिला तो उन्होंने बेटे को मनाया और उससे समस्त हाल लिख कर भेजने के लिए कहा। उदैभान ने अपने माता पिता को अपने विचारों से परिचित कराया ; साथ में रानी केतकी की अंगूठी और आपस में जो लिखौत हुई थी, वह भी भेज दी। उनके माता-पिता ने अपने बेटे उदैभान की बात को मान लिया और रानी केतकी के माता-पिता के पास समाचार भेजा। उन्होंने यह सम्बन्ध अस्वीकार कर दिया। तब उदैभान के पिता बहुत क्रोधित हुए तथा राजा जगतपरकास के राज्य पर चढ़ाई कर दी। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। उदैभान ने रानी केतकी के पास भाग चलने का समाचार भिजवाया, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। राजा जगतपरकास ने अपने गुरु महेन्दरगिरी को, जो कैलाश पर्वत पर रहते थे, सहायता के लिए बुलाया। महेन्दरगिरी अत्यन्त बलशाली गुरु था, जिसके अधीनस्थ समस्त देवता-

गए थे। राजा जगतपरकास का संदेश सुनकर वह बाघम्बर पर बैठकर भमूत लगा कर क्रोधित मुद्रा में युद्ध-स्थल पर जा पहुँचा और राजा सूरजभान की सारी सेना का विनाश कर दिया, यहाँ तक कि राजा सूरजभान, रानी लक्ष्मीवास और कुँवर उदैमान को हिरन और हिरनी बना दिया। जाते समय राजा जगतपरकास को एक बाघम्बर और भभूत दी, जिसके अन्जन करने पर अन्जन करने वाला सबको देख सकता था। महेन्दरगिरी कैलास पर्वत पर वापस चले गये और इधर रानी केतकी उदैमान के वियोग में अत्यन्त व्याकुल रहने लगी। रानी केतकी ने माँ से हठपूर्वक भमूत ले ली और अपनी सखी मदनबान से उसे लगा कर भाग चलने के लिए कहा, पर सखी राजी न हुई। कुछ समय बीतने पर रानी केतकी बिना मदनबान से कहे भमूत अपनी आँखों मे लगाकर घर से बाहर अकेली ही निकल गयी। राजा जगतपरकास और रानी कामलता केतकी के विरह मे राजपाट त्याग पहाड की चोटी पर जा बैठे। मदनबान को बुलाकर केतकी का हाल पूछा, तब उसने सारा भेद खोल दिया। मदनबान स्वय केतकी को ढूँढने निकली। उसने भी अपनी आँखों मे भभूत का अन्जन लगा लिया था। मदनबान रानी केतकी को पुकार रही थी और रानी केतकी उदैमान को, मार्ग में दोनो की मुठभेड हो गयी। आँखो की भमूत धोकर दोनों एक-दूसरे के गले मिल गयीं और रोयी। दोनों ने विचार-विमर्श किया। मदनबान के कहने पर केतकी ने अपने दुखी माता-पिता को सान्त्वनापूर्ण एक पत्र लिखा, जिसे लेकर मदनबान राजा जगतपरकास और रानी कामलता के पास आयी और रानी केतकी को वहीं खडा रहने का आदेश दिया। मदनबान ने रानी केतकी के पा जाने का शुभ समाचार उसके माता-पिता को दिया और साथ में पत्र भी। महाराजा ने बाघम्बर का रोंगटा तोडकर महेन्दरगिरी को बुलाया, सारा हाल बताया। तब उन्होंने उदैमान को अपना पुत्र माना और सबके सब रानी केतकी के पास आये। रानी केतकी को गोद मे लेकर राजा उदैमान का चढावा चढा दिया और स्वयं महेन्दरगिरी उदैमान की खोज मे निकले।

राजा जगतपरकास ने अपने राज्य मे वापस लौट कर सारे शहर मे, वृक्षो पर बाजार में, कुएँ, तालाब, वन में सब जगह सजावट करवायी। उधर गुरू महेन्दरगिरी हिरन-हिरनी बने उदैमान और उसके माता-पिता की खोज करने लगे। जोगी महेन्दरगिरी और उसकी ९० लाख जातियों ने सब वन ढूँढ डाले, पर पता नहीं चला। तब राजा इन्द्र को अपनी सहायता के लिए बुलाया। गाने वालों को साथ लेकर रागो के आह्वान के द्वारा जोगी महेन्दरगिरी और राजा इन्द्र वन-वन में खोजने लगे।

एक दिन दोनों राग सुन रहे थे कि करोडों हिरण भी ध्यानमग्न सिर झुकाये अपनी संगीतप्रियता का परिचय दे रहे थे। तब महेन्दरगिरी ने मन्त्र पढ़ कर पानी का छींटा हिरनों पर फेंक दिया। तब उदैमान और उसके माता-पिता जैसे थे, वैसे ही हो गये। राजा सूरजभान की समस्त सेना भी छींटों के कारण जीवित हो गयी। राजा

जगतपरकास के राज्य में चारों ओर प्रसन्नता छा गयी। सारा नगर सजाया गया, घर-घर में नाच-गाने होने लगे। राजा सूरजभान के राज्य में प्रसन्नता छा गयी। धूम-धाम के साथ रानी केतकी और राजा उदैभान का विवाह हुआ, जिसका सारा श्रेय महेन्दरगिरी तथा राजा इन्द्र को रहा। उदैभान राज्य-सिंहासन पर बैठा। खूब दान-पुण्य हुआ। रानी केतकी को मरापुरा दहेज मिला और दोनों के मन की इच्छा पूरी हुई। दोनों प्रेमी एक-दूसरे से मिल जाते हैं। यह चरित्र-प्रधान कहानी है।

"रानी केतकी की कहानी" पूर्णरूप से लौकिक शृंगाररस से ओत-प्रोत है। सारा श्रेय सैयद इशामल्ला खाँ साहेब को है, जिन्होंने खड़ी बोली के गद्य साहित्य में प्रमाख्यान-परम्परा को जन्म दिया। इन्होंने गद्य साहित्य में एक नवीन दिशा दिखलाई और धार्मिक भावना का प्रचार नहीं किया, जैसा उनके पूर्वज लेखक करते आये थे। हिन्दी साहित्य की यह प्रथम मौलिक आख्यायिका है। इशा की इस कहानी में कहीं-कहीं अलौकिक घटनाओं का भी समावेश हो गया है, जिसके फलस्वरूप कहानी का अन्त सुखान्त हो सका है। कथानक में अस्वाभाविकता तो आ ही गयी है, जैसे उदैभान और उसके माता-पिता को हिरन-हिरनी बनाकर छोड़ देना इसका सूचक है, यद्यपि मनोरंजन की व्यापकता है। आदि से अन्त तक कथानक में आकर्षण है। पात्रों का लगाव किसी भी प्रकार से कम नहीं होने पाता है। घटनाओं का उत्थान और पतन क्रम से चलता रहता है। समस्त पात्र हिन्दू हैं, हिन्दू संस्कृति में पले हुए हैं, जैसे रानी केतकी, राजा उदैभान, मदनबान, दोनों राजा और रानी, जोगी महेन्दर गिरी, राजा इन्द्र और केतकी की अन्य सखियाँ। सारे पात्र अपने-अपने कार्य में चतुर तथा पटु हैं। रानी केतकी राजा जगतपरकास की अत्यन्त लाडली बेटी है, पर प्रारम्भ में लेखक ने उसका परिचय 'एक वेश्या के रूप में दिया है जो झूले पर पेंग बढ़ा रही थी।" उसका चरित्र-चित्रण का प्रारम्भ भी एक प्रेमिका युवती के रूप में होता है। वही प्रेम दृढ़ और आदर्श बन जाता है। यदि उसकी सखी मदनबान "उदैभान हिरन" की खोज में उसकी सहायता नहीं करती तो उसने निश्चय किया था कि वह स्वयं ही अपने "भ्रमर" को खोजेगी। जब कभी प्रेम की गम्भीरता और मार्मिकता बताने की आवश्यकता आ पड़ती है तो एकाएक सैयद साहेब हास्यरस की सृष्टि करने लगते हैं। उदाहरण के लिए, दोनों राजाओं में युद्ध होता है, तब उदैभान रानी केतकी को भाग चलने के लिए सन्देश भेजता है और उसका उत्तर रानी केतकी पान की पीक से लिखकर भेजती है। जब रानी केतकी युद्ध-स्थल पर नहीं थी तो यह स्वतःसिद्ध है कि वह राजमहलों में होगी और अपने प्रेमी को उसने पान की पीक से लिखकर पत्र भेजा जो कितना हास्यास्पद है। पर यही तो खाँ साहेब की विशेषता है। मदनबान महाचतुर, दृढ़निश्चयी तथा साहसी सखी है, जो अपनी मित्रता पर दृढ़ रहती है। रानी केतकी के प्रेम-विकास में उसने पूर्ण सहायता दी है और रानी को जंगल-जंगल मारे-मारे फिरने देना नहीं चाहती। जोगी और राजा इन्द्र की

सृष्टि केवल जिज्ञासा, आश्चर्य और कौतूहल की स्थिति बताने के लिए की जाती है और साथ ही सैयद साहेब ने कथा के अन्तर्गत कोई धार्मिक भावना का प्रवेश नहीं कराया है।

लेखक की शैली वर्णनात्मक तथा कौतूहलवर्द्धक है। स्थल-स्थल पर प्रेम-प्रसंगों की अवतारणा होती है। उसमे धारावाहिकता है, सरलता है, साथ ही सरलता और चलते हुए ठेठ शब्दो का प्रयोग है। वर्णनात्मकता के फलस्वरूप कथोपकथन के लिए विस्तार-क्षेत्र भी नहीं मिलता है। जहाँ जहाँ पर इसकी आयोजना की गयी है, वहाँ पर मनोरंजकता और स्वाभाविकता आ जाती है। रानी केतकी और सखी मदनबान का वार्त्तालाप अत्यन्त सुन्दर है। कथा के पात्र, चरित्र-चित्रण और वातावरण को उपस्थित करने में लेखक का बड़ा भारी उत्तरदायित्व होता है। सैयद साहेब ने आख्यान के प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण किया है, यहाँ तक कि इस कहानी को लिखते समय वे सर्वप्रथम 'भाषा' के उद्देश्य से प्रभावित हुए। कथानक और पात्रों की सृष्टि तो भाषा के लक्ष्य को पूरा करने के लिए ही उन्होंने की है। सैयद साहेब की भाषा और शैली में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया। कहीं-कहीं वाक्य-विन्यास में विदेशी प्रयोग अपनाये हैं, जैसे "सिर झुका कर, नाक रगड़ता हूँ, अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सबको बनाया।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में सैयद साहेब की भाषा और शैली के बारे मे कहा है: "इंशा ने अपनी भाषा को तीन प्रकार के शब्दों से मुक्त रखने की प्रतिज्ञा की है। बाहर की बोली—अरबी, फारसी, तुर्की; गँवारी—ब्रजभाषा, अवधी आदि। भाखा—संस्कृत के शब्दों का मेल ' । आरम्भ काल के चारों लेखकों में इंशा की भाषा सबसे चटकीली, मुहावरेदार और चलती हुई है। इंशा रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखन-कौशल दिखाना चाहते थे। सानुप्रास विराम भी इंशा के गद्य मे बहुत स्थलों पर मिलते हैं।"[१]

उदाहरण के लिए, गद्य का नमूना इस प्रकार है· "जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी, रानी केतकी सावन भादों के रूप मे रोने लगी और दोनों के जी में यह आ गयी; यह कैसी चाहत जिसमें लोहू बरसन लागा और अच्छी बातों को तरसने लगा।"[२]

सैयद साहेब के गद्य में कृदन्त और विशेषणों में सम्बन्धसूचक शब्द बहुत मिलते हैं। "आतियाँ जातियाँ जो साँसे हैं, उसके बिना ध्यान सब फाँसे हैं।"[3]

इंशा साहेब की लेखनी में गम्भीरता के स्थान पर चापल्य है और कहीं-कहीं समीक्षकों को भाषा के साथ खिलवाड़ सा दिखाई देता है। वे जिस बात को कहना

१. रामचन्द्र शुक्ल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ४१७-४१८।
२. सैयद इंशाअल्ला खाँ, "रानी केतकी की कहानी," पृ० ६।
३. वही, पृ० १।

चाहते हैं, उसे सदैव घुमा-फिरा कर कहना ठीक समझते हैं। गद्य की भाषा में उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग किया है। उनकी प्रत्यक्ष व्यवहार-पटुता के लिए 'रानी केतकी की कहानी' में राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक वितण्डावाद अधिक नहीं आने पाया है। समाज की प्रचलित रूढ़ियों और परम्पराओं का उन्होंने मजाक नहीं बनाया है, यद्यपि प्रत्येक घटना पर हास्य का आवरण चढ़ाने की चेष्टा की है। इंशा की मुहावरेदार भाषा हमें हँसाते हँसाते लोट पोट कर देती है, जैसे "सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ" बोली का पुट न मिलना, आँख फिराकर कहना, राई को पर्वत कर दिखाना, ढब स बढ़ चलना, मसोस के मलोला, खाकर कहना, मुँह फाड़ कर घिघियाकर लिखना, सावन भादों के रूप रोना इत्यादि प्रयोग कर लेखक ने भावों को प्रभावोत्पादक बनाया है।

ईंशाअल्ला खाँ के सम्मुख हिन्दी गद्य साहित्य का जो प्रचलित रूप था, उसके आधार पर यदि 'रानी केतकी की कहानी' की कसौटी की जावे तो शास्त्रीय दृष्टि से वह सफल मौलिक आख्यान है। यद्यपि कहीं-कहीं पर वस्तु-वर्णन में अलौकिकता तथा अस्वाभाविक प्रसगों का समावेश हो गया है, पर फिर भी कहानी का रचना विधान हिन्दी साहित्य मे अपने ढग का मौलिक है। सैयद साहेब ने मुसलमान होते हुए भी उत्कृष्ट आख्यान रचा, जो उस युग के फोर्ट विलियम कॉलेज के कर्णधारों में सबसे अधिक सफल तथा हिन्दी कथा साहित्य का विकसित रूप है। यदि कहीं पर कुछ चमत्कारपूर्ण प्रसग तथा भाषा मे तोड़ मरोड़ आ गयी है तो उसका मूल कारण युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हैं। कहीं कहीं पर कथा मे पद्यांशों का प्रयोग किया गया है और पुनरावृत्ति की मात्रा अधिक पायी जाती है, यहाँ तक कि जो गद्य में एक बार कह दिया, वही पद्य में दुबारा कह दिया गया है, जैसे "गले लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गयी।"

अथवा

"छा गयी ठन्डी साँस झाड़ों म,
पड़ गयी कूक सी पहाड़ों में।"

यह स्पष्ट है कि इंशा के गद्य में पद्य की सी छटा का आभास होता है। सैयद साहेब ससार के अनुभवों एव प्रत्यक्ष व्यवहार में पूर्ण निपुण हैं, तभी तो वेश्याएँ उनके हाव-भाव, रागरागनियाँ, फूलों और शृङ्गार की वस्तुओं आदि सबसे वे पूर्ण परिचित हैं। मनोदशा के वर्णन करने में भावात्मक शैली को अपनाया है। मुसलमान होकर भी हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं का उन्हें पूर्ण ज्ञान है, जैसे "मच्छ, कच्छ, बाराह, परसुराम, हरनाकुस, राम, लछमण, सीता, मुरली, गोपी, वृन्दावन, द्वारका," इत्यादि पौराणिक नामों का उल्लेख उन्होंने यत्र तत्र किया है। राजा इन्द्र और जोगी महेन्दरगिरि ऐन्द्रजालिक के रूप में आये हैं। "भरथरी का स्वाँग हुआ, मछन्दर-नाथ भागे"—ये पंक्तियाँ इनकी कथाओं के ज्ञान की सूचक हैं। हिन्दुओं की विवाह और

प्रेम-पद्धतियाँ, सामाजिक शिष्टाचार, रीति रिवाज, व्यवहार सबसे खाँ साहेब परिचित थे।

खड़ी बोली गद्य म यह कहानी लिखकर इशाअल्ला खाँ ने सर्वसाधारण का ध्यान हिन्दी आख्यान साहित्य की ओर आकर्षित किया। उर्दू के शायर होने के कारण उनकी कहानी म शायरी की कलात्मकता पाई जाती है।

डा० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है कि "हिन्दी उपन्यास के क्रमिक विकास का मूल 'तोता मैना' और 'सारगा सदावृक्ष' जैसी कहानियो में खोजना पडेगा, जिनका उद्‌गम उत्तर भारत म प्रचलित मौलिक कथाओं से हुआ जान पडता है।"[1]

रानी केतकी की कहानी की कथावस्तु पर प्रचलित लोक-कथाओं का प्रभाव पूर्ण लक्षित होता है। हमारा निष्कर्ष है कि हिन्दी उपन्यास का जन्म भी वास्तव में हिन्दी गद्य की उत्पत्ति क साथ ही हुआ या ऐसा कहा जाय कि गद्य का जन्म उपन्यास साहित्य से हुआ, तो दोनो बातें एक-दूसरे पर पूर्णत. आधारित हैं। उपन्यास साहित्य की सफलता और विकास क लिए गद्य साहित्य की पृष्ठ-भूमि की नितान्त आवश्यकता थी और धीरे-धीरे गद्य क विकास क साथ ही साथ उपन्यास का वातावरण पूर्णरूपेण तैयार हो गया। इस गद्य की परम्परा का सफल और उन्नत बनाने म कथा साहित्य का प्रमुख हाथ रहा है। प्रेमचन्द से पूर्व के समस्त हिन्दी उपन्यासो का बीज इन्हीं कथाओ और आख्याना मे निहित था। सैयद साहेब की 'रानी केतकी की कहानी' एक लम्बी कहानी है, जैसा उन्होंने स्वय कहा है : "यह मौलिक कहानी है, जैसी धारणा साहित्याचार्यों द्वारा स्थापित की गयी है। इसकी रचना का मूल उद्देश्य था, "जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली का पुट न मिले।" यह कहानी इंशा साहेब ने केवल भाषा का नमूना पाठको के सामन लाने के लिए लिखी और यही प्रसिद्ध प्रेमाख्यान बन गया। वहीं प्रेम की लगन, हृदय की तडपन, प्रिय को पाने क लिए बेचैनी, विरह की तीव्रता और अनेक प्रयत्न, आशा निराशा के पेंगो स सारी कथा भरी पडी है।

सैयद साहेब का कहानी कहने का ढग अत्यन्त निराला है और इतना आकर्षक है कि पाठक ठगे से रह जाते हैं। अब हमारे सामने प्रश्न उठता है कि क्या 'रानी केतकी की कहानी' का हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास मान लिया जावे। इस प्रश्न के अनेक उत्तर मिलेंगे। शास्त्रियो ने प्राचीन साहित्य के मथन के उपरान्त अनेक निष्कर्ष निकाले हैं, जिनमें से कुछ ये हैं। यहाँ तक कहा गया है कि यह कहानी केवल कपोल-कल्पित तथा हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है।

सैयद साहेब ने स्वयं इसे एक लम्बी कहानी कहा है और हमारी दृष्टि से लम्बी कहानी ही तो उपन्यास का मूल स्रोत हैं, फिर 'रानी केतकी की कहानी' को उपन्यास की श्रेणी में क्यो न रखा जावे।

---

१. डॉ० श्रीकृष्णलालः "हिन्दी साहित्य", पृ० २७५।

आचार्य शुक्ल का कहना है : "इंशा ने अपनी कहानी का आरम्भ ही इस ढंग से किया है, जैसे लखनऊ के भाड़ घोड़ा कुदाते हुए महफिल में आते हैं।"[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है : "लखनऊ के मुंशी इंशाअल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' नामक एक ऐसी कहानी लिखी थी जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों को हटा कर शुद्ध हिन्दी लिखने का प्रथम प्रयास था।"[2]

शिवनारायण श्रीवास्तव ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास माना है। उन्होंने कहा : "रानी केतकी की कहानी को हम प्रथम उपन्यास कह सकते हैं। इस तरह एक प्रेम-कथा को लेकर ही हिन्दी कथा साहित्य आविर्भूत हुआ।"[3]

उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द ने तो यहाँ तक कह डाला कि "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[4]

रानी केतकी की कहानी शास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि सम्पूर्ण रूप से उपन्यास की श्रेणी में मूल्यांकन नहीं की जा सकती है, फिर भी इसमें उपन्यास साहित्य का पूर्ण रूप तो निश्चित रूप से वर्तमान है। मानव-मन का मनोरंजन करने में यह कथा सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुई है।

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' में कहा है : "हिन्दी के उपन्यास-क्षेत्र में साहित्य-सौन्दर्य के साथ जीवन की व्यापक और जटिल समस्याओं एवं घटना-चक्रों की अभिव्यक्ति अभी नहीं हो पाई थी। उसका आगमन कुछ दिनों बाद हुआ। उपन्यास-कला को उस ओर खींचने वाली परिस्थितियों और प्रबल शक्तियों का अभी जन्म नहीं हुआ था। दूसरे, उपन्यास-कला गद्य के विकास का इन्तजार कर रही थी।"[5] निष्कर्ष यह है कि अनुकूल परिस्थितियों को पाते ही उपन्यास साहित्य अपनी सहज गति से अवतरित होने लगा। इससे पहले पं० सदल मिश्र और मुन्शी सदासुखलाल की गद्य-रचनाओं ने उपन्यास की पृष्ठ-भूमि को तैयार करने में पूर्ण सहायता पहुँचायी। अतः इन महानुभावों की रचनाओं का परिचय देना आवश्यक जान पड़ता है।

प० सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' को हिन्दी-गद्य में रचना की, जिसका दूसरा नाम 'चन्द्रावती' भी है। सम्वत् १८६० में कलकत्ते में मिश्रजी पहुँचे और

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४१८।
२. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : "हिन्दी साहित्य", पृ० ३७२।
३. शिवनारायण श्रीवास्तवः "हिन्दी उपन्यास", पृ० ६१।
४. प्रेमचन्दः "कुछ विचार", पृ० ३८।
५. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० १७६।

'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की, जैसा इस उदाहरण से ज्ञात होता है : "अब सम्वत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को, जिसमें चन्द्रावती की कथा कही है देववाणी से कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ी बोली में किया महाप्रतापी वीर नृपति कंपनी महाराज के सदा फूलाफला रहे कि जहाँ उत्तम उत्तम लोग बसते हैं।"[1]

प० सदल मिश्र आगरे के रहने वाले थे। इनके पूर्वज पण्डित शुकदेव मिश्र भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे और एकान्त जीवन व्यतीत करते थे। पण्डितजी स्वयं भी देवभाषा संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् थे। अपनी विद्वत्ता के कारण ही इनको फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में हिन्दी साहित्य का कार्य करने के लिए बुलाया गया, जहाँ श्री महाराज जॉन गिलक्रिष्ट साहब से मिल कर इन्होंने कुछ ग्रन्थ संस्कृत से भाषा में और भाषा से संस्कृत में किये।

'नासिकेतोपाख्यान' की भूमिका में इन्होंने स्वयं लिखा है : "चित्र विचित्र सुन्दर सुन्दर बड़ी बड़ी अटारिन से इन्द्रपुरी समान शोभायमान नगर कलकत्ता महाप्रतापी वीर नृपति कंपनी महाराज के सदा फूला फला रहे कि जहाँ उत्तम उत्तम लोग बसते हैं और देश देश के एक से गुनी जन आय आय अपने गुणों को सफल कर बहुत आनन्द में मगन होते हैं। नाम सुन सदल मिश्र पण्डित भी वहाँ आन पहुँचा, तो बड़ी बड़ाई सुनी, सब विद्या निधान, ज्ञानवान, महाप्रधान श्री महाराज जान गिलक्रिस्त साहेब से मिला जो पाठशाला के आचार्य हैं तिन की आज्ञा पाय दो एक ग्रन्थ संस्कृत से भाषा और भाषा से संस्कृत में किये।"[2]

प० सदल मिश्र के सारे ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, पर 'नासिकेतोपाख्यान' प्राप्य है, जिसका सुचारु एवं व्यवस्थित प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से हुआ है। आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रवर आचार्य के रूप में पण्डितजी की ख्याति फैली हुई है। इनकी भाषा में शुद्धता है, प्राजल्य है सरसता है और मनमोहकता है। मिश्रजी का रचना-काल सन् १७६८ से सन् १८४७ तक माना जाना चाहिए। जहाँ सैयद इशाअल्ला खाँ ने उर्दू भाषा के मुहावरों का प्रयोग किया है वहाँ पण्डित सदल मिश्र ने ठेठ हिन्दी के मुहाविरों का प्रयोग किया। इनकी शैली भी संस्कृतगर्भित है और साथ ही साथ उसमें प्रान्तीय शब्दों की भरमार है। पर विशेषता यह है कि मिश्रजी और लल्लूलालजी की भाषा में न तो ब्रजभाषा के रूपों की भरमार है और न परम्परागत काव्य-भाषा की पदावली का स्थान-स्थान पर समावेश किया गया है।

पं० सदल मिश्र की भाषा व्यवहारोपयोगी खड़ी बोली का गद्य है। कहीं-कहीं ब्रजभाषा का पण्डिताऊपन दृष्टिगोचर होता है। पूर्वी बोली के शब्द हैं। इतना होने पर अलंकारों से अपनी भाषा को बचाकर मिश्रजी ने स्वाभाविकता का परिचय दिया

---

१. सदल मिश्र (नागरी सभा) "नासिकेतोपाख्यान", पृ० २।
२. सदल मिश्र (भूमिका): "नासिकेतोपाख्यान", पृ० १-२।

है। उदाहरण के लिए, मिश्रजी के भाषा के उदाहरण इन उद्धरणों में मिलेंगे—

(अ) "वहाँ चन्द्रावती नाम उस राजा की महा सुंदरी कन्या, जिसके लक्षणों का वर्णन न तो किया जाता है, न तो कोई वैसी देवतों की कन्या, न गन्धर्व और नागों को देखने मे आई, न सुनने म कि जिसके रूप को देखते जग जीतने वाले कामदेव भी मोहित होय और तीनों लोक में ऐसा कोई नहीं कि उसको आंखों के देखने से अचेत हो न गिरे।'[1]

(ब) "इतनी कथा सुनाय फिर नासिकेत मुनि कहने लगे कि यम की आज्ञा से दूत सब एक किसी को इहाँ से ले गये यो किसे उनके आगे खड़ा कर दिया, उसका जो पुण्य पाप का विचार होते मैंने देखा है सो सब कहता हूँ तुम सावधान हो सुनो।"[2]

डॉ० श्यामसुन्दरदास न 'नासिकेतोपाख्यान' को सम्पादित किया है, जिसकी भूमिका से स्पष्ट है कि यह सस्कृत में वर्णित 'नचिकेत की कथा' से अनूदित है, जिसमें चन्द्रावती की कथा कही गयी है। यह भी एक पौराणिक तथा धार्मिक आख्यान है जिसे वैशम्पायन जन्मेजय को सुनाते हैं कि ब्रह्मा के पुत्र उद्दालक मुनि के पास पिप्पलाद मुनि गये और उन्होंने उसे वैवाहिक जीवन व्यतीत करने की सलाह दी। बिना लौकिक कार्य के तप व्यर्थ कहलाया। उद्दालक मुनि बहुत वृद्ध थे और घबराने लगे कि इस वृद्ध अवस्था में कौन अपनी बेटी उन्हें विवाह में देगा। वे व्याकुल होकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उनके आशीर्वाद से उनका विवाह इक्ष्वाकु कुल के राजा रघु को महासुन्दरी कन्या चन्द्रवती के साथ हो गया, जिसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका जन्म नाक से हुआ, इसलिए उसका नाम "नासिकेत" रखा गया।

एक दिन उद्दालक मुनि ने अग्निहोत्र के लिए नासिकेत को कन्दमूल लेने जगल भेजा। वन के प्राकृतिक दृश्य स मोहित होकर उन्होंने वहीं पर समाधि लगा ली और सौ वष के बाद कन्दमूल लेकर अपने पिता के पास वापस लौटकर आये। पिता-पुत्र म अत्यन्त तर्क-वितर्क हुआ और पिता ने क्रोध में शाप दे डाला कि तुम यमलोक सिधारो। नासिकेत मुनि डर गये और फिर यमलोक चले गये। उद्दालक की पत्नी ने भी बड़ा करुण क्रन्दन किया। तब उन्होंने बेटे नासिकेत को वापस बुलाना चाहा, पर नासिकेत अपने माता-पिता को समझाकर फिर यमलोक चले गये, जहाँ पर अग्नि आदि अनेक ऋषि लोग अपनी पोथी खोलकर न्याय विचार यमराज से कहते थे और फिर धर्मराज से वर पाकर नासिकेत अपने माँ बाप के पास वापस आ गये और सबको यमपुरी का पूरा विवरण बताया। शुभ-अशुभ कर्मों का फल और उनका प्रतिफल का विधान बतलाया। बुरे कर्म करने से यमराज की कोपाग्नि में भस्म होना पड़ता है; कष्ट और दण्ड सहन करना पड़ता है। कौन-कौन मुनि वहाँ पर रहते हैं, सब ऋषि मुनि नासिकेत की बातों को सुन-सुन कर बड़े चकित हुए और अपने-अपने

१. सदल मिश्र: "नासिकेतोपाख्यान," पृ० ५।
२. सदल मिश्र. नासिकेतोपाख्यान," पृ० ३०।

आश्रम लौट गये तथा परलोक मे सुख प्राप्त करने की अभिलाषा से कठोर तप की अग्नि में भस्म होने लगे।

यह पूरा आख्यान कठोपनिषद् का है और पौराणिक रूप लेकर अवतरित हुआ है। इसकी शैली बहुत अंशों म लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' की अपेक्षा अधिक आकर्षक और कलापूर्ण है। यह अवतरण "नासिकेतोपाख्यान" के अन्दर प्रवाहित होने वाली धार्मिक भावनाओं का भली भाँति परिचायक है। "इस प्रकार नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक का वर्णन कर फिर जोन-जोन कर्म किये सो जो भोग होता है सो सब ऋषियों को सुनाने लगे कि गौ, ब्राह्मण, माता, पिता, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरु इनका जो वध करता है वे झूठी साक्षी भरते, झूठ ही कर्म म दिन रात लगे रहते हैं, अपनी भार्या को त्याग दूसरे की स्त्री को ब्याहते हैं, औरों की पीडा देखकर जो प्रसन्न होते हैं और जो अपने धर्म से हीन पाप ही मे गडे रहते हैं, जो माता पिता की हित की बात नहीं सुनते, सबसे बैर करते हैं, ऐसे जो पापीजन हैं सो महा डरावना दक्षिण द्वार से जा नरकों म पडते हैं।"[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है, "इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयत्न किया है और जहाँ तक हो सका है, खडी बोली का ही व्यवहार किया है। पर इनकी भाषा साफ-सुथरी नहीं है। ब्रजभाषा क भी कुछ रूप हैं और पूर्वी बोली के शब्द तो स्थान स्थान पर मिलत हैं जैसे 'फूलन्ह के बिछौने', 'चहुँदिसी', 'सुनि', 'सोनन्ह के थम' आदि प्रयोग ब्रजभाषा के हैं।"[2]

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने कहा कि कथा साहित्य के समस्त उपकरण इस आख्यान म उपलब्ध हैं। 'इस कथा की यह विशेषता है कि नीरस और गम्भीर बातें बडे ही मनोरंजक रूप म समझायी गयी हैं। यह उपाख्यान भाषा की दृष्टि से लिखा गया था न कि धार्मिक दृष्टि से।"[3]

कुछ सूत्रों से पता चला है कि उस समय कम्पनी के शासन-काल मे सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी भाषा की शिक्षा देने के लिए मिश्रजी ने "अध्यात्म रामायण" का भी खडी बोली मे अनुवाद किया। पर इस खडी बोली की विशेषता है कि उसमें उर्दू के शब्द नहीं आने पाये। हिन्दी भाषा के शिक्षण की दृष्टि से इन गद्य आख्यानों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

मुंशी सदासुखलाल ने "सुखसागर" रचकर हिन्दी गद्य के विकास में अपूर्व योगदान दिया है। इनका उपनाम नियाज है और ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनका जन्म सम्वत् १८०१ मान लेना ठीक जान पडता है। सम्वत् १८५० के लगभग ये

१. सदल मिश्र: "नासिकेतोपाख्यान," पृ० २९-३०।
२. रामचन्द्र शुक्ल: "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ४२२।
३. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ' आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका," पृ० ४१८।

कम्पनी की आधीनता में चुनार (जिला मिर्जापुर) में ऊँचे पद पर नौकर थे और इन्होंने उर्दू तथा फारसी भाषा में अनेक ग्रन्थ रचे। ये उच्च श्रेणी के शायर भी थे। इनकी प्रसिद्ध रचना "मुंतख़ब-उत्तवारीख़" है, जिसमें इन्होंने अपने स्वयं का परिचय दिया है। खोज से ज्ञात होता है कि पैंसठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और प्रयागराज आकर अपना अन्तिम समय भजन-पूजन में लगाने लगे।

आचार्य शुक्ल के अनुसार "सुखसागर" की रचना की समाप्ति सम्वत् १८७१ में हुई, जिसके ६ वर्ष बाद ये परलोकवासी हुए।[१] पण्डित सदासुखलाल ने भागवत की कथा के लिए अपने सुखसागर में विशाल क्षेत्र तैयार किया है, पर आदि से अन्त तक कथा में मनोरंजकता है।

यह भी पता चला है कि मुंशीजी ने विष्णुपुराण से कोई उपदेशात्मक प्रसंग लेकर पुस्तक लिखी, जो पूरी नहीं हो सकी। "भागवदिष्ट" के समान गद्य का रूप मुंशीजी के "सुखसागर" में उपलब्ध हुआ। वैष्णव और भगवान के अटूट भक्त होने के कारण इन्होंने हिन्दुओं की शिष्ट भाषा में अपने गद्य साहित्य का निर्माण किया। इसलिए इनकी हिन्दी को "संस्कृतमिश्रित भाषा" कहना उचित जान पड़ता है, जिसको उर्दू वाले 'भाखा' कहकर सम्बोधित करते थे। मुंशीजी का हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसी, चारों भाषाओं पर अपूर्व अधिकार था, फिर अंग्रेजी सीखी जिससे ईस्ट इण्डिया कम्पनी में इन्हें नौकरी मिली। "सुखसागर" हिन्दी प्रेमियों तथा भगवान के भक्तों के गले का हार बन गया। यद्यपि "गीता" का भी अनुवाद इन्होंने किया, पर गद्य के विकास की दृष्टि से "सुखसागर" का ही मूल्यांकन करना समीचीन जान पड़ता है। यह सन् १८११ में रचा गया। "सुखसागर" के द्वारा "श्रीमद्भागवत" का स्वतन्त्र अनुवाद उपलब्ध हुआ। इस स्वान्तः सुखाय रचना का निर्माण मुंशीजी ने केवल भक्ति-भावना से प्रेरित होकर किया। ये तभी लिखते थे "जब उमंग आती।" उदाहरण के लिए, इनकी भाषा का नमूना इस उद्धरण से प्राप्त होगा—

"इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्षों में चाण्डाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ब्राह्मण से चाण्डाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे। हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य होय उसे कहना चाहिए, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका जो सतोवृति है वह प्राप्त हो और उसमें निज स्वरूप में लय हूजिये। इस हेतु नहीं पढ़ते कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइये और फुसलाइये और सत्य छिपाइये, व्यभिचार कीजिये और सुरापान कीजिये और मन को जो कि तमोवृति से भर रहा है, निर्मल न कीजिये। तोता है सो नारायण का नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"[२]

१. प० रामचन्द्र शुक्ल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ४१५।
२. प० सदासुखलाल, "सुखसागर।"

इस उदाहरण के द्वारा "हाय, लय हूजिये, करिके, तोता है सो' इत्यादि शब्द-समूहों के परीक्षण से ज्ञात होता है कि 'सुखसागर' की भाषा में पण्डिताऊपन है। यद्यपि लेखक ने खड़ी बोली के गद्य को लिखने का प्रयास किया है, फिर भी ब्रजभाषा और अवधी के प्रभाव से वह अपने को मुक्त नहीं कर पाया है। प्रान्तीयता और ग्रामीण भाषा का मेल ही मुन्शीजी की विशेषता है। "संस्कार, नास्तिक, उपाधि, आरोपित उपाधि, क्रियाभ्रष्ट" इत्यादि संस्कृत के तत्सम शब्दों को रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। यह स्पष्ट है कि 'सुखसागर' की भाषा में गम्भीरता है, स्थिरता है और शान्त धारावाहिक प्रवाह है। मुन्शीजी ने अपनी भाषा को अरबी-फारसी के शब्दों से पूर्ण रूप से बचाया है। मुन्शी के गद्य-ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि उस समय भी उर्दू-रहित हिन्दी भाषा का पूर्ण प्रचार था। 'सुखसागर' के लिए इन्होंने 'भाखा' का संस्कृतनिष्ठ रूप लिया है, खड़ी बोली के क्रिया-पदों, संज्ञाओं तथा सर्वनाम और कारकों को भी अपनाया है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इन चार महानुभावों ने हिन्दी गद्य के विकास के लिए पूर्णरूप से पृष्ठ भूमि तैयार कर दी थी। इस समय ऐसा आभास होने लगा था कि राजा और प्रजा, देश और जनता किसी का भी कार्य बिना गद्य के प्रयोग के नहीं चल सकता है। गद्य की प्रभुता बोल-चाल, व्यवहार तथा शासन चलाने में स्थापित हो चुकी थी। हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक प्रथम पीढ़ी के लेखक होने के नाते इन सज्जनों ने अपनी रचनाओं के लिए स्वच्छ मार्ग अपनाया है, यहाँ तक कि एक-दूसरे की गद्य-प्रणाली का आपस में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। मुन्शी सदासुखलाल, प० सदल मिश्र और लल्लूलालजी ने अपनी रचनाएँ पूर्व-लिखित ग्रन्थों के आधार पर की थीं। केवल सैयद इशाअल्ला खाँ को पूर्ण श्रेय है, जिन्होंने "रानी केतकी की कहानी" की रचना करके अपनी मौलिक बुद्धि तथा प्रतिभा का परिचय दिया है। यह वह मौलिक कथा है, जिसने जन-साधारण के हृदय में कथा साहित्य को पढ़ने के लिए एक अटूट चाव उत्पन्न कर दिया क्योंकि सैयद साहेब अरबी-फारसी के विद्वान् थे; अतः इनकी भाषा में संस्कृत और हिन्दी के प्रचलित रूपों का अभाव ही पाया गया है। इशा साहेब की भाषा में कुछ भावी संकेत मिले, जिसने भविष्य में लेखकों को गद्य लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए, मुहावरों का प्रयोग, कहावतों, हास्य-विनोद का पुट, अरबी-फारसी शब्दों का रूप और शैली की सरलता "रानी केतकी की कहानी" में मिली।

मुन्शी सदासुखलाल की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का पूर्ण बहिष्कार और घोर विरोध था। सदल मिश्र की भाषा में यद्यपि तीव्र विरोध नहीं है, पर वह प्रौढ़ता तथा प्राजलता नहीं आने पाई है, जो मुन्शीजी की भाषा में है। मुन्शीजी की भाषा शुद्ध, प्रौढ़, तत्सम शब्दों सहित प्रयोग में आई है तथा लल्लूलालजी की

भाषा तो एक प्रकार की खिचड़ी है, जिसमें संस्कृत, उर्दू, फारसी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली सब भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसा 'प्रेमसागर' की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है :"श्रीयुत गुनगाहक गुनियन-सुखदायक जान गिलक्रिस्त महाशय की आज्ञा से सम्वत् १८६० में लल्लूलालजी कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीय आगरे वाले ने विसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कहे, नाम प्रेमसागर धरा।"

लल्लूलालजी ने चतुर्भुजदास कृत भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद का भी सार लेकर प्रेमसागर की रचना की। उनका विषय भी खाँ साहेब के समान ही एक कहानीमात्र है, जिसके लिए उन्होंने 'यामिनी भाषा' को छोड़ने का प्रतिबन्ध लगा लिया था। लल्लूलालजी ने ब्रजभाषा का ही प्रधानता दी, यद्यपि खड़ी बोली के प्रति उन्हें अगाध विश्वास था।

डॉ० जान गिलक्राइस्ट ने हिन्दी गद्य के विकास में बहुत सहायता पहुँचाई। उनके परिश्रम से "फोर्ट विलियम कॉलेज" की स्थापना हुई और उनके प्रोत्साहन से ही हिन्दी गद्य का विकास हुआ तथा अनेक रचनाएं रची गयीं। यद्यपि ब्रिटिश शासकों का इस कार्य में अपना निजी स्वार्थ ही प्रकट होता है, फिर भी हिन्दी गद्य के विकास में ये सब रचनाएं सहायक हुई। हिन्दी साहित्य के इतिहास के निर्माण में फोर्ट विलियम कॉलेज के महानुभावों का बहुत बड़ा हाथ है, जिसके फल आज उपलब्ध हैं। हिन्दी के लेखकों को आर्थिक प्रोत्साहन दिया तथा उनकी रचनाओं को प्रकाशित करा देने में इस संस्था का बहुत बड़ा हाथ रहा है। इसी समय हिन्दी के छापेखानों की स्थापना हुई तथा मुद्रण और प्रकाशन का कार्य भी शीघ्रता से होने लगा। सन् १८८१ में जटमल द्वारा लिखित "गोरा बादल री बात" का भी खड़ी बोली में अनुवाद हुआ, जिसे जटमल ने राजस्थानी पद्यों में लिखा और जिसका आधार चित्तौड़ की ऐतिहासिक वीरगाथा है।

यद्यपि इस युग के कथा साहित्य में साहित्यिकता तथा कलात्मक दृष्टिकोण नहीं उपलब्ध होता है, पर फिर भी भावी आख्यान साहित्य के जन्म के लिए एक भूमि तो अवश्य ही तैयार हो गयी। रचना-विधान की दृष्टि से इन आख्यानों का मूल लक्ष्य नैतिक उपदेश तथा जन-साधारण का मनोरंजन या और उनकी अभिरुचि कथावार्त्ता के लिए तैयार करना था। कथावस्तु की दृष्टि से भारतेन्दु के पूर्व का साहित्य उपदेशात्मक है। भिन्न भिन्न पण्डित प्रवर तथा उनके शिष्यों के बीच कथावार्त्ता हुई है, पर इन कथाओं में भक्ति के गूढ़ दार्शनिक तत्व नहीं हैं। केवल पाप-पुण्य और स्वर्ग-नर्क की व्याख्या है। लल्लूलालजी के 'प्रेमसागर' ने गद्य के क्षेत्र में अद्भुत ख्याति प्राप्ति की। सैयद इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' मौलिक रचना होते हुए भी विषय-वस्तु की दृष्टि से इन अन्य रचनाओं की तुलना में भिन्न है। उसमें लेखक का नवीन प्रयास है और सफलता भी प्राप्त हुई है। इसमें कथा का शास्त्रीय

रूप भी प्राप्त हुआ। पात्र, चरित्र चित्रण तथा कथोपकथन आदि अन्य उपकरण भी उपलब्ध हुए।

भारतेन्दु युग के उपन्यासों पर सैयद साहेब की मौलिक प्रतिमा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। कथावस्तु के विन्यास के साथ ही साथ आदि से अन्त तक रोचकता एवं कहानी का 'सुखान्त' होना ही लेखक की आशावादिता का सूचक है। मध्य युग की काव्य-परिपाटी का इन प्रेमगाथाओं पर पूरा प्रभाव पड़ा है। इस युग में जो आख्यान साहित्य निकला, उसके रचनाकाल के विषय में अनेक मत हैं। लेखकों ने 'कल्पना तत्व' को अधिक महत्व दिया है तथा कथा की गतिशीलता बनाये रखने के लिए अलौकिक घटनाओं को अवतारणा करना भी उनके लिए आवश्यक था। गद्य के स्वरूप की दृष्टि से मुन्शी सदासुखलाल की भाषा में प्रचलित पण्डिताऊपन था, जिसमें संस्कृतमिश्रित शब्दों का बाहुल्य था। यही उन दिनों शिष्ट कहलाने वाले हिन्दुओं की भाषा थी। लल्लूलालजी ब्रजभाषा के प्रभाव से नहीं बच सके और ब्रजभाषा से ओतप्रोत खड़ी बोली का स्वरूप 'प्रेमसागर' में उपलब्ध हुआ। यह निश्चित हो गया कि मुन्शी सदासुखलाल और पण्डित सदल मिश्र की भाषा का रूप ही हिन्दी गद्य के सम्मुख आदर्श रूप में प्रस्तुत हुआ। पण्डित सदल मिश्र की भाषा अधिक सुव्यवस्थित तथा प्रभावोत्पादक है। यद्यपि फोर्ट विलियम कॉलेज के उच्चाधिकारियों को उनकी भाषा का स्वरूप प्रिय नहीं लगा था और उच्च कोटि का सम्मान लल्लूलालजी को ही प्राप्त हुआ। इन महानुभावों की शैली में प्राचीनता का पुट है, पर फिर भी उसमें भारत की मौलिक परिपाटी चित्रित है।

फोर्ट विलियम कॉलेज के अतिरिक्त कम्पनी सरकार ने देशी जनता को भी हिन्दी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की योजना बनायी। लॉर्ड मेकाले के समय तक यह कार्य चालू था। अनेक प्रकार की पाठ्य-पुस्तकों की रचना हुई। गणित, भूगोल, इतिहास, शासन, धर्म, यात्रा, राजनीति, समाज-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें हिन्दी में मौलिक तथा अनूदित रूप लेकर प्रकाशित हुईं। कलकत्ता, बनारस, आगरा खड़ी बोली गद्य के केन्द्रस्थान बने। खड़ी बोली के विकास के साथ ही साथ अंग्रेजी शासन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस युग के हिन्दी गद्य साहित्य पर काव्य की भाषा का स्पष्ट प्रभाव परि-लक्षित होता है एवं अंग्रेजी तथा उर्दू और फारसी के शब्दों का समावेश हुआ। इसी समय अंग्रेजी प्रसार-योजनाओं के कारण हिन्दी का गद्य साहित्य जितना विकसित हो जाना चाहिए, उतना नहीं होने पाया। लॉर्ड मेकाले तथा चार्ल्स वुड जैसे महानुभावों ने हिन्दी भाषा के विकास हेतु गद्य-ग्रन्थों के प्रणयन की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना अपेक्षित था। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने हिन्दी गद्य का और भी विकृत रूप प्रस्तुत किया।

हिन्दी गद्य के विकास-क्रम का पर्यवेक्षण करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि इसने नवयुग की चेतना का शंख बजाया है। यूरोपीय सभ्यता और शिक्षा के

सम्पर्क में माने के कारण हिन्दी साहित्यकारों के मन में नवीन उमगें बलवती हुईं, जिसके फलस्वरूप नूतन साहित्य की उत्पत्ति हुई। इस समय तक पद्य के काव्य की प्राचीन मान्यताएं प्रचलित थीं। पर गद्य की ग्राधुनिकयुगीन प्रवृतियां पूर्णत: परिलक्षित होने लगी थीं। नवीन वैज्ञानिक साधनों का भारतेन्दु बाबू के काल में स्पष्ट प्रभाव दिखाई देने लगा था और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न धाराएं उद्गम-स्थान से प्रवाहित होकर उन्मुक्त मैदान खोजने लगीं। इसका मूल कारण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य सभ्यता के निकट सम्पर्क में माने के कारण भारतीय संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न आन्दोलन हैं, जिनका समाज की गतिविधियों और और मान्यताओं पर प्रभाव पड़ा है। भारतेन्दु युग से पूर्व मौखिक तथा लिखित जितनी भी गद्य-कथाएं और आख्यान प्रचलित थे, उन सबका आधुनिक साहित्य को उन्नत बनाने में अपूर्व योगदान रहा है। यद्यपि भाषा, शैली तथा शिल्प की दृष्टि से आधुनिक समीक्षक उसे नगण्य समझ बैठे, पर वही तो वर्तमान हिन्दी साहित्य की मूल आधार-शिला है, जिस पर इतना विशाल और राष्ट्रव्यापी साहित्य-सदन निर्मित हुआ है।

तृतीय अध्याय

भारतेन्दुयुगीन देश-विदेश की परिस्थितियाँ

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से एक नया युग प्रारम्भ होता है। सन् १६०० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी व्यापारिक दृष्टिकोण को लेकर यहाँ आई और मुगल साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति को अति शिथिल पाकर अंग्रेजों ने पूर्ण लाभ उठाया। शनैः शनैः भारत के रजवाड़ों के राजाओं, सामन्तों तथा नवाबों को परास्त कर दिया गया और सारे देश पर कम्पनी का आधिपत्य स्थापित हो गया। उसने अपनी विधि के अनुसार शासन करना प्रारम्भ भी कर दिया। यह स्वतःसिद्ध है कि विजित राष्ट्र की पराधीन प्रवृत्तियाँ उसकी सभ्यता और संस्कृति के विकास में सदैव विघातक प्रमाणित होती हैं। अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत में पश्चिमी विचार-धारा, सभ्यता और संस्कृति को जन्म दिया। शासन ने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार विस्तृत रूप से किया। शासन-कार्य चलाने के लिए दुभाषियों की आवश्यकता पड़ी और इसलिए कलकत्ते में जान गिलक्राइस्ट महोदय की तत्परता तथा लगन के कारण "फोर्ट विलियम कॉलेज" की स्थापना हुई, जहाँ पर हिन्दी भाषा में गद्य, आख्यान तथा कथा साहित्य रचा जाने लगा। शासन के इस कार्य से भारत के अतीत गौरव तथा शाश्वत संस्कृति को प्राणघातक धक्का लगा। आर्यों की चिर सभ्यता अंग्रेजी विचारधारा तथा संस्कृति से टकराई और विक्षिप्ति सी हो गयी, जिससे राष्ट्र के कोने-कोने से क्रान्ति की पुकार उठी। देश के राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक कलात्मक जीवन में एक नयी लहर जाग्रत हुई। सन् १८५७ के गदर ने इस क्रान्ति का परिचय दिया और यह सिद्ध कर दिया कि देश के जीवन में नव-चेतना एवं जागरण प्रविष्ट हो चुका है। किसी भी साहित्यिक प्रगति को जानने के लिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि उसकी बाह्य परिस्थितियों का गहन अवलोकन किया जाय। इसलिए इन भारतेन्दुयुगीन साहित्यिक मान्यताओं को समझने के लिए उस समय की मान्यताएँ तथा रीति-नीति का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

इस समूचे युग को हम दो भागों में विभाजित कर लेंगे—प्रथम, सन् १८७५ से सन् १६०० तक एवं द्वितीय, सन् १६०० से लेकर सन् १६२० तक, अर्थात् जो भारतेन्दु और द्विवेदी युग के नाम से हिन्दी-जगत में ख्याति प्राप्त कर चुका है।

यदि राजनैतिक दृष्टि से देखा जाय तो राजपूत-काल के उपरान्त ही मुस्लिम शासन के अन्तर्गत रहने के कारण भारतीयों की कलात्मक एवं सांस्कृतिक स्वच्छन्द प्रगति रुक गयी थी। उनकी आत्मा मर गयी थी। जैसा "एशियाटिक जरनल" में स्वयं प्रख्यात ऐतिहासिक कॉरनेटिकस ने कहा है कि "हमें फौरन स्वीकार कर लेना चाहिए कि हमारी विजय का मूल कारण भारतवासियों की मानसिक, शारीरिक तथा चारित्रिक निबलता है। जिस दिन भारत की जनसंख्या का बीसवाँ भाग भी सबल हो, हमें उसी अनुपात से अपने को निर्बल मान लेना होगा।"[1]

कर्मवीर सुन्दरलालजी ने 'भारत में अंग्रेजी राज्य' भाग ३ में इसी उद्धरण को इस प्रकार से उद्धृत किया है। "हम यह तत्काल मान लेना चाहिए कि प्रत्येक युद्ध में हमारी भारत की विजय उत्तम कृत्यों की अपेक्षा ऐश्यायी स्वभाव की दुर्बलता के कारण हुई। इसी सिद्धान्त के आधार पर हम निश्चित रूप से यह मान सकते हैं कि जब कभी भारतीय जन वर्ग का बीसवाँ भाग भी हमारे समान ही अग्रदर्शी एवं योजना-विधायक हो जावेगा, हम उसी अनुपात से पूर्ववत् हीन हो जावेंगे।"

सन् १८५७ की जन-क्रान्ति वास्तव में हमारी स्वाधीनता की लड़ाई की भूमिका थी। उस समय तक सारा देश अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया था। सन् १८६३ से ही अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद के मर जाने के बाद से ही अंग्रेजों को आक्रमण का भय लगा रहता था। लॉर्ड लारेन्स की निष्क्रियता की नीति से अंग्रेजी शासन को काफी धक्का पहुँचा। सन् १८७६ में लार्ड लिटन भारत के वायसराय नियुक्त होकर आये। अफगानों से युद्ध हुआ, पर उनकी स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कारण अंग्रेज उस दिशा में प्रगति नहीं कर सके। तृतीय अफगान युद्ध के समय लॉर्ड रिपन पधारे, उनकी शान्तिपूर्ण शासन-नीति थी, जिससे प्रभावित होकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीधर पाठक तथा राधाकृष्णदास ने उनकी उदारता की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

> "अंग्रेज राज सुख साज, सजे सब भारी,
> पै धन विदेश चलि जात, यहै अति ख्वारी।"
>
> —"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र"

---

1 Cornaticus in Asiatic Journal, May 1821
"We must at once admit that our conquest of India was through every struggle more owing to the weakness of the Asiatic character than to the bare effect of our own brilliant achievements . on the same principle we may set down as certain that whenever one twentieth part of the population of India becomes as provident and as scheming as ourselves we shall run back again in the same ratio of velocity, the same course of our original insignificance."

सन् १८८५ से पूर्व भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र में स्वय भी राष्ट्रीय जीवन का चिन्हमात्र भी उपलब्ध नहीं हुआ। प्राचीन ऐतिहासिक संकेत इस बात के सूचक हैं कि ब्रिटिश शासन-काल मे भारतीय नागरिक प्रसन्न थे। उनका जीवन सुख तथा शान्ति से ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत व्यतीत हो रहा था। राष्ट्रीय भावना को देश मे जागृत करने तथा उसके प्रसार का समस्त श्रेय राजा राममोहन राय को है। आर्य-समाज के प्रमुख प्रतिष्ठापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी भारतीयो के हृदय मे स्वतन्त्रता एव सुधार की भावना, स्वदेश के प्रति प्रेम, रूढियों का बहिष्कार तथा उदारता की विचार-धारा को जगाया। स्वामीजी के द्वारा जो सुधार की लहर देश में आयी, वह पंजाब से लेकर समस्त उत्तरी भारत में खूब फैली। देश के सामाजिक और धार्मिक जीवन मे "आर्य-समाज आन्दोलन" का अत्यन्त गूढ प्रभाव पडा। उसी समय बगाल मे 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना की गयी जिसका मूल उद्देश्य ईसाइयो के धर्म-प्रचार के कार्यों पर आघात पहुँचाना था। ईसाई धर्म के फलस्वरूप स्वयं बगाल में उन हिन्दुओं की सख्या बहुत अधिक थी, जो जाति-पाँति, छुआछूत, ऊँच-नीच विचारो को बुरा समझते थे और साथ ही मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, स्नान-ध्यान, उपासना से उन्हे चिढ थी। एक हिन्दू दूसरे अपने हिन्दू भाई का उपहास उडाता था और पश्चिमी सभ्यता का प्रशंसक था।

ब्रह्म-समाज

राजा राममोहन राय ने वेदान्त और ब्रह्म ज्ञान के तत्वो की विशद् व्याख्या की और इस प्रकार के विस्तृत बुद्धि वाले हिन्दुओ का मार्ग-दर्शन किया। उन्होंने बगाल मे ब्रह्म-समाज की स्थापना की और साथ ही सन् १८१५ मे वेदान्त-सूत्रो के भाष्य का हिन्दी में अनुवाद किया, जिससे सर्वसाधारण मे उनका प्रचार हो सके। राममोहन राय ने 'बगदूत' नामक पत्र का सम्पादन सन् १८१६ से प्रारम्भ किया, जो हिन्दी भाषा में था, जिसका मूल उद्देश्य उपनिषदो, पुराणो आदि धार्मिक ग्रन्थो का अनुवाद करके जनसाधारण तक उनको पठन के लिए पहुँचाना और धर्म के शुद्धस्वरूप को प्रकट करना था। राजा साहेब के इस प्रयत्न का पढे-लिखे व्यक्तियो और साधारण जनता सबने अटूट स्वागत किया। इनकी हिन्दी भाषा में सस्कृत के तत्सम शब्द हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बगला भाषा का इनकी हिन्दी पर प्रभाव था, जो उस समय साथ ही साथ उन्नति कर रही थी। केशवचन्द्र सेन और उनके अनन्तर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जैसे महान् व्यक्ति भी ब्रह्म-समाज की परम्पराओं को विकसित करने मे पूर्ण सहायक हुए। उन्होने एकेश्वरवाद की स्थापना की। रवीन्द्र बाबू की "गीताजलि" ने मानव-मन को परमात्मा के प्रति रहस्यानुभूति करायी।

आर्य-समाज

ईसाई धर्म की प्रगति देख कर और हिन्दू धर्म की अवनति को ध्यान में रख कर ही इसकी स्थापना हुई। सन् १८७५ में बम्बई नगर में आर्य-समाज नामक संस्था की नीव पडी। लगभग १५ वर्ष पहले से इस नवीन समाज के उद्देश्यों का प्रचार

लिए प्रेरित किया। उन्होंने ब्रह्म-ज्ञान का गान गाकर राष्ट्रीयता का प्रचार किया एवं नूतन मार्ग बताया। उस युग में ब्रिटिश-शासन के प्रति असन्तोष तथा क्रान्ति के बीज इसी प्रकार की धार्मिक संस्थाओं ने विकसित होकर बो दिये।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके अपूर्व शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने भी ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति की ओर मानवमात्र को भी उस ओर उन्मुख करने की चेष्टा की। पश्चिमी शिक्षा तथा हिन्दू-संस्कृति के सहयोग से ही वास्तव में राष्ट्रीय विचार-धारा हमारे देश में उत्पन्न हुई। मिल्टन, मिल, मेकाले और स्पेन्सर के साहित्य ने भारतीयों में राष्ट्रीयता के विचार भर दिये थे अंग्रेजी साहित्य मानवता और स्वतन्त्रता की विचारधारा से ओतप्रोत था। भारतीय साहित्य भी उससे अछूता न रह सका। दूसरा कारण यह है कि देश की आर्थिक अवस्था इस समय अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो रही थी। घरेलू उद्योग धन्धे नष्टप्राय: हो गये थे। अतः जो भारतीय शिक्षा प्राप्त करने जाते थे, उनके हृदय में अंग्रेजी शासन तथा उनकी साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध विद्रोह की भावना विकसित होती जाती थी। सन् १८३३ का अधिनियम, जिसके अनुसार शिक्षित भारतीयों को उच्चपद न दिये जायें तथा सन् १८५८ की महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र, दोनों ने ही भारतीयों के हृदय में क्रान्ति की ज्योति जगा दी। सन् १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना सर ह्यू म साहिब के द्वारा हुई। उसकी दादाभाई नौरोजी तथा फीरोजशाह मेहता, उमेशचन्द्र बेनर्जी इत्यादि महानुभावों ने पोषित किया। सन् १८९० तक शासन में सुधारों के लिए एक प्रतिनिधिमण्डल इंगलैण्ड भेजा गया। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, महादेवगोविन्द रानाडे, पं० मदनमोहन मालवीय तथा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में लोकमान्य तिलक आदि नेताओं ने राष्ट्रीय राजनैतिक आन्दोलन को देश-व्यापी बना दिया। देश के कोने-कोने से क्रान्ति की पुकार आने लगी और प्रत्येक वीर आत्म-बलिदान की भावना से विभोर हो गया।

किसी भी गुलाम राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता अपनी नहीं होती है। जो शासक की सभ्यता है, वही शासित प्रजा की बन जाती है। इसलिए इस समय विशुद्ध संस्कृति की भावना का पूरा लोप हो गया था। भारतीय धार्मिक भावनाएँ वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा पुराणों पर आधारित थीं। इस क्रान्ति और जागरण के युग में भी मूर्ति-पूजा, धार्मिक अन्ध-विश्वास, भाग्यवाद, तीर्थ-यात्रा आदि रूढ़ियों पर भारतीय जनता का अटूट विश्वास था। अंग्रेजी शासन में ही हिन्दी भाषा का स्वरूप विकृत बना और उसमें अरबी, उर्दू, फारसी तथा अन्य भाषाओं के शब्द भी आ गये और जो संस्कृत राज्यभाषा के पद पर रही, उसके पण्डित और आचार्य अब राजकीय पदों के लिए अयोग्य समझे जाने लगे। वर्ण-व्यवस्था, सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा, बाल-विवाह इत्यादि रूढ़ियों ने भारतीयों का सामाजिक जीवन पूरी तरह जकड़ रखा था। उस शृंखला को तोड़ना मानव की शक्ति के बाहर था। पराधीन मानव ने

पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में अपनी सच्ची अवस्था को पहचाना, अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को समझा और वह भी प्रचलित समाज, राष्ट्र, साहित्य, धर्म आदि नियन्त्रणों को तोड़ने के लिए व्याकुल होने लगा। एक ओर धार्मिक सुधारों ने देश का अतीत के गौरव को समझने में सहायता दी, दूसरी ओर, राजनैतिक क्रान्ति ने मानव के जग-जीवन की धारा ही बदल डाली। देश में चारों ओर से क्रान्ति की पुकार उठी।

समाज की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी, जैसा भारतेन्दु ने लिखा है

'अँग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी,
ताहू पै महँगी काल रोज बिस्तारी,
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री।'

भारत की जनता अपने पराधीन जीवन में अत्यन्त दुखी थी।

भारतेन्दुयुगीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थितियों का अवलोकन करने से यह प्रकट होता है कि अँग्रेजों के अत्याचारों तथा अनाचारों के कारण समाज में 'टिक्कस' बढ़ रहे थे। अकाल पड़ने लगे और रीतिकालीन सामन्ती भावना लड़खड़ाने लगी थी। साहित्य के क्षेत्र में नयी नयी विचारधाराएँ उत्पन्न हुईं। सबसे प्रधान राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, स्वतन्त्रता और सामाजिक क्रान्ति की लहर आई। सन् १६०० तक के हिन्दी साहित्य में भारत में रीतिकालीन परम्पराओं के संकेत (चिह्न) दृष्टिगोचर होते हैं। साहित्य में कृत्रिमता, अलंकारिकता और विभिन्न शृंगारिक पहलुओं की परिपाटी पर प्रकाश पड़ता है। इस समय का साहित्य एक प्रकार से सीमित था। विचारधारा बँधी हुई सीमा में होकर बह रही थी, जो भारतेन्दु युग में आकर स्वच्छन्द गति से विभिन्न धाराओं में बहने लगी। इस समय ब्रजभाषा के सर्वत्र अधिक मिले और लोकभाषा (खड़ी बोली) के लिए पूर्ण क्षेत्र अभी तैयार नहीं हुआ था। कलाकारों को भावों की अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा का खुला क्षेत्र उपलब्ध हुआ।

अब यदि संसार के अन्य देशों के साहित्य पर एक विहगम दृष्टि डाली जावे तो पता चलेगा कि यूरोप में सदा से अनेक विस्तृत साम्राज्य रहे हैं, जिनके अन्तर्गत अनेक देशों का समावेश हुआ है। पिछले एक सौ पचास वर्षों में यूरोप में साहित्य-सम्बन्धी अनेक आन्दोलन हुए। उनका प्रभाव समस्त देशों पर परिलक्षित हुआ। उदाहरण के लिए, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो रोमांटिक विचारधारा इंगलैण्ड में आई, उसका प्रभाव फ्रान्स, जर्मनी, स्पेन, इटली इत्यादि राष्ट्रों पर भी पूर्णरूप से दिखाई दिया। उसके बाद यथार्थवादी धारा ने अपना प्रभाव दिखाया, जिसके फलस्वरूप यूरोपियन साहित्य के क्षेत्र में भी क्रान्ति मची। साहित्य में नवीन मान्यताएँ प्रकट हुईं। बीसवीं शताब्दी के साहित्यिक आन्दोलनों ने भी विश्व-साहित्य पर अपना

पूर्ण प्रभाव दिखाया है, जैसे मार्क्सवाद और मनोविज्ञान ने साहित्यिक जगत पर अपनी अपूर्व छाप छोड़ी है। सारे राष्ट्रों में इंगलैण्ड से लेकर फ्रान्स तक में उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में मनोविज्ञान का अद्भुत प्रभाव पड़ा है। अब विदेशों के उपन्यासकार तथा कथाकार अपनी रचनाओं को केवल बाह्य उपकरणों से नहीं सजाते हैं, वरन् मानव मन की गहराई तक पहुँचकर उनकी गूढ़ समस्याओं का निदान खोजने की चेष्टा करते हैं। चेतन मन की प्रक्रियाओं एवं विचारों के उत्थान-पतन का आज के साहित्यकार को पूर्ण आभास है। इसी प्रकार क्रोचे के अभिव्यंजनावाद ने फ्रान्स, जर्मनी, इटली, इंगलैण्ड सब स्थानों पर कला, नाटक, काव्य आदि सब क्षेत्रों में अपना अमिट प्रभाव अंकित किया है। सदा से साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। 'मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है' वाली उक्ति प्रत्येक राष्ट्र के जन जीवन पर घटित होती है। वहाँ के राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का प्रभाव उस देश के साहित्य पर चिरन्तन पड़ता है। भारत की अपेक्षा यूरोप का सामाजिक और धार्मिक जीवन भिन्न प्रकार का रहा है। उसी प्रकार विभिन्न देशों की साहित्यिक विशेषताओं को जान लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है, जिसके फलस्वरूप यह देखा जावे कि भारत के नवोदित साहित्य पर उन विचारधाराओं का क्या प्रभाव पड़ा।

प्राय: पच्चीस शताब्दी पहले प्राचीन ग्रीस में प्लेटो और अरिस्टाटल नामक दो प्रख्यात दार्शनिक हो चुके हैं, जिन्होंने साहित्य के भावपक्ष पर विशेष महत्व दिया है और बतलाया है कि साहित्य में मनुष्य-मात्र को प्रभावित करने की अपूर्व शक्ति होती है। प्लेटो ने 'अनुकृति' के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की, जिसका सम्बन्ध तात्विकता से है। प्लेटो के विचार जितने मार्मिक हैं, उतने ही अधिक उनमें हृदय को स्पर्श करने की शक्ति भी है। प्लेटो के पश्चात् अरिस्टाटल ने पश्चिम की साहित्य चिन्तन-धारा को भौतिक जगत में सुदृढ़ आधार प्रदान किया। जिस सिद्धान्त का प्लेटो ने जन्म दिया, उसकी व्याख्या अरिस्टाटल ने की। अरिस्टाटल ने भी काव्य को 'अनुकृति' (Imitation) कहा, पर साथ में संगीत, नृत्य, मूर्ति, चित्र और वास्तु-कलाओं को भी जोड़ने का प्रयास किया। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है: "अरिस्टाटल में प्लेटो की भाँति उच्चतम उद्भावना और सिद्धान्त-निरूपण की शक्ति न थी। अतएव यद्यपि उसने प्लेटो की सी दुर्दान्त गलतियाँ नहीं की हैं, किन्तु प्लेटो के समान मौलिक विचारणा की प्रवाहिणी भी उसने यूरोप को नहीं प्रदान की। उसने दिया निहायत वस्तुनिष्ठा विश्लेषण और अत्यधिक तात्विक विभाजन और वर्गीकरण। अरिस्टाटल की 'पोएटिक्स' ने अनेकानेक सैद्धान्तिक समस्याओं को भी जन्म दिया, परन्तु उसकी प्रमुख विशेषता व्यावहारिक समीक्षा की उस सारणी का निर्माण करना था, जो आगे चलकर रीतिवाद में परिणत हुई।"[१]

---

१. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : "नया साहित्य—नये प्रश्न", पृष्ठ ६०-६१।

अरिस्टाटल ने काव्य के विभिन्न रूपों को ग्रहण किया, जैसे आख्यानक, गीति, नाट्य इत्यादि, यहाँ तक कि नाटक सम्बन्धी विभिन्न उपकरण जैसे वस्तु, चरित्र आदि का भी विशद् विवेचन उसने किया है। उसने साहित्य सम्बन्धी अनेक धारणाएँ बनाई हैं और क्रमशः ईसा की पहली शताब्दी तक योरोपीय साहित्य सीमाओं मे बँधता हुआ दिखाई देने लगा। धीरे-धीरे ग्रीक सम्यता छिन्न-भिन्न होने लगी और रोम मे यूरोपीय सभ्यता का नया केन्द्र बनने लगा। मसीही धर्म की स्थापना हुई, जिसका मूल उद्देश्य पारलौकिक तत्वों से पूर्ण शिक्षा प्रदान करना था। उसके विपरीत ग्रीस की कला लौकिक विचारधारा के मार्ग से प्रवाहित हो रही थी। इसी सक्रान्ति युग मे 'लौंजिन्स' नामक आचार्य ने काव्य को नूतन दिशा दिखलाई। उसने कहा कि "काव्य केवल सुखानुभूति या शिक्षा का साधन नही है, वह अलौकिक आनन्द मे विभोर कर मनुष्य को दिव्यतर स्थिति मे पहुँचा देने वाला आदर्श उपकरण है।"[१]

उसने एक ओर काव्य की अलौकिकता पर जोर दिया और दूसरी ओर काव्य मे अनेक दोषो का भी पता लगाया। लौंजिन्स के पश्चात् ईसा की तीसरी शताब्दी से लेकर तेरहवी शताब्दी तक यूरोपीय साहित्य मे कोई भी विशेष परिवर्तन नही हुआ। इस युग में यूरोप म अशान्ति और अव्यवस्था रही। केवल मूर्ति और वास्तुकला की विशेष उन्नति हुई। गिरजाघरो के भव्यतम भवनो का निर्माण हुआ और साहित्य के क्षेत्र मे नगण्यतम कार्य हुआ।

होमर का 'इलियड' एक वीरजाति का महाकाव्य है, जिसमे 'आख्यान काव्य' के समस्त लक्षण हैं। ग्रीक सभ्यता का इस महाकाव्य पर पूर्ण प्रभाव है। इनमें जीवनव्यापी आस्थाएँ उपलब्ध हैं। रोमन सभ्यता का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य वर्जिल का 'इनियड' है, जिस पर ग्रीकों के रीतिकाल की छाया पड़ी है। ईसाई धर्म की अवतारणा ने एक ओर साहित्य में विरक्ति को जन्म दिया तो दूसरी ओर उसमें लौकिक भावना प्रकट होने लगी। तेरहवीं शताब्दी के अन्त में महाकवि दाँते (Dante) प्रकट हुए। उन्होंने डिवाइन कॉमेडी (Divine Comedy) का रचना की। इस महाकाव्य ने अन्धकार में पड़े हुए यूरोप के जन-जीवन को एक नई दिशा बतलाई। यह स्पष्ट है कि ईसाई धर्म के प्रसार क साथ ही साथ जन-जीवन में एक नई प्रेरणा जागृत हुई। दाँते के इस महाकाव्य में एक ओर क्रिश्चियन धार्मिकता थी तो दूसरी ओर उसमें लोक-भावना तथा लोकभाषा का भी प्रतिबिम्ब था। धार्मिक और लौकिक सस्कारो से दाँते का महाकाव्य भरा पड़ा है। होमर, वर्जिल और दाँत तीनो ही तीन युगों के महाकवि-तीन धाराओं का साहित्य में प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं। प्राचीन यूरोपियन सभ्यता की पूर्ण परिच्छाया इनके महाकाव्यो में परिलक्षित होती है। यह स्वत सिद्ध है कि ग्रीस का प्राचीन साहित्य सीमाओं से बँधा हुआ था, जिसका

१. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : "नया साहित्य—नये प्रश्न", पृष्ठ ६३।

प्रतिनिधित्व प्लेटो, अरिस्टाटल और लौंजिनस कर रहे थे। उनके साहित्य और कलाओं का सौन्दर्य केवल धार्मिक रहा, यहाँ तक कि तत्व चिन्तन में ही सौन्दर्य की सत्ता को इन्होंने माना। उन्होंने कलाओं का बहिष्कार किया। उन्होंने बताया कि काव्य में नैतिक आदर्शों के निरूपण से सौन्दर्य का आविर्भाव हो सकेगा, पर दाँते ने एक ओर तो पारलौकिक धारणाओं को यथावत् ग्रहण किया है। चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी तक काव्य बाह्य सीमाओं में जकड़ा रहा। सोलहवीं, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में काव्य को इन बन्धनों से मुक्ति मिली। इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी यूरोप में काव्य का मुक्ति का युग है, जिस समय स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन अपनी पूर्ण पराकाष्ठा पर विराजमान था। सत्रहवीं शताब्दी "रिनेंसा युग" रहा है, जिसे पुनरुत्थानवादीकाल कहना समीचीन जान पड़ता है। जिस प्रकार दाँते चौदहवीं शताब्दी का था, शेक्सपियर सोलहवीं शताब्दी का था, जिसमें विचार और अनुभूति की परिपक्वता तथा प्रतिभा थी और दोनों ही दो युगों का परिचय प्रदान करते हुए दिखाई देते हैं। सत्रहवीं शताब्दी में रूढ़िबद्ध धार्मिक परम्पराओं के प्रति मानव के हृदय में निरन्तर अविश्वास बढ़ता जा रहा था। क्रान्ति की भावना जड़ पकड़ रही थी। धार्मिक भावनाएँ समाप्त होती जा रही थीं। ईसाइयों में कैथालिक मत के विरुद्ध उदारवादी प्रोटेस्टेन्ट मत की प्रतिष्ठा हुई। यूरोप के धार्मिक जीवन की क्रान्ति के साथ आर्थिक जीवन में भी अद्भुत क्रान्ति हुई। नई दुनिया का पता इसी समय लगा। नई-नई खोजें हुई। नवीन औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) हुई। विज्ञान की चरम उन्नति से मुद्रण-कला का विकास हुआ। छापेखानों की प्रतिष्ठा हुई, जिससे महान् साहित्यकारों का साहित्य जन साधारण के लिए सुलभ और प्राप्य हो गया। सारे यूरोप की परिस्थितियाँ बदल गयीं। समाज बदला और इस परिवर्तन ने साहित्य की चिन्तनधारा को बदल डाला। साहित्यकारों का दृष्टिकोण बदल गया, इसलिए इस युग को पुनरुत्थानवादी युग या 'रिनेंसा युग' कहा जाता है। इस समय यूरोप में सर फिलिप सिडनी, बेन जोनसन, ड्राइडन, एडीसन इत्यादि महान् साहित्यकार हुए, जिन्होंने एक ओर तो साहित्य का निर्माण किया; दूसरी ओर, 'कल्पना' की महत्ता पर प्रकाश डाला। अश्लीलता का साहित्य-त्याग बतलाया। भावों के माध्यम से ज्ञान के विकास की उत्तर दिशा इन साहित्यकारों ने बतलाई। यद्यपि शेक्सपियर के आगमन से साहित्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ आ गयी थीं, फिर भी समाज की स्थिति के अनुसार साहित्य का रूप और शैलियाँ मान्यताओं का निर्धारण किया। साहित्य के क्षेत्र में गतिशीलता का समावेश हुआ। उसकी जड़ता दूर हो गयी और कलाकारों के जीवन में एक नई स्फूर्ति का समावेश हुआ।

यह प्रकट हो चुका है कि ग्रीककालीन साहित्य का मूल उद्देश्य शिक्षा तथा मनोरंजन था। ड्राइडन ने कहा कि साहित्य के अन्तर्गत शिक्षा और मनोरंजन का कार्य अपने आप आ ही जाता है; इसलिए कल्पना की महत्ता पर भी इसने बल

दिया। ड्राइडन ने 'अनुकृति' के सिद्धान्त के साथ "कल्पना" का तत्व जोड़ा और साहित्य की प्रतिष्ठा के लिए एक मध्यम मार्ग चुना। एडीसन ने कल्पना के साथ 'मनोविज्ञान' को जोड़ा। काव्य के कल्पना तत्व के साथ ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण-प्रणाली को अपनाना साहित्यकार का प्रथम उद्देश्य है। इसी स्वच्छन्दतावादी युग में लेसिंग ने सौन्दर्य-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की, जो एक ओर तो प्राचीन ग्रीक कला के आदर्श को ग्रहण करता है और दूसरी ओर, जिसमे स्वच्छन्तावादी गतिविधियाँ है। कला के क्षेत्र मे एक ओर आंगिक या बाह्य नियमों को अपनाया गया है, तो दूसरी ओर मानसिक विश्लेषण को विशेष बल मिला। लेसिंग ने सौन्दर्य और अभिव्यंजना दोनों को ग्रहण किया। यद्यपि सौन्दर्य का सम्बन्ध विशेषकर मूर्ति कला से आता है और अभिव्यंजना काव्य का लक्ष्य है। इस दृष्टि से मूर्ति-कला और काव्य-कला के निर्देशन मे भिन्नता आ ही जाती है। साहित्य में अभिव्यंजनावाद की प्रतिष्ठा ही इस रितिसौ युग की प्रमुख विशेषता है।

इसके बाद अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी आती है, जो विशुद्ध रूप से स्वच्छन्दवादी युग (Romantic Age) है, जिसमे अभिव्यक्ति ने कला का रूप ले लिया। इस रोमाटिक युग मे साहित्य का कोई प्रथम अस्तित्व नहीं है, वरन् मन की प्रक्रिया ही कला मे अभिव्यंजित की जाती है। काव्य और मानस जगत दोनों एक ही हैं। कलाकार भावोन्मेष के द्वारा काव्य का निर्माण करता है। भाव-प्रवणता उसके कवि-जीवन का मूल आधार मान लिया गया। सारी प्राचीन काव्य-सम्बन्धी धारणाएँ इस नूतन सिद्धान्त क अन्तर्गत समाहित हो गयी। अभिव्यक्ति ने प्रधान स्थान ग्रहण कर लिया।

स्लीगेल ने साहित्य की परिभाषा की कि "समाज का जो उच्चतम ज्ञान है, साहित्य उसी का सार रूप है।"[१]

महाकवि ब्लेक ने रहस्यानुभूति की भावना प्रबल की। वह काव्य-निर्माण को मनुष्यकृत व्यापार नहीं मानता था। रहस्य ज्ञान और कला दोनों का उसके काव्य में पूर्ण एकीकरण हो गया। वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, कॉलरिज सभी रोमाटिक काव्य धारा के प्रमुख कवि-महारथी हैं, जिन्होंने काव्य में नैसर्गिकता, अनुभूति की सचाई और अभिव्यंजना की सरलता को सबसे अधिक महत्व प्रदान किया है। कॉलरिज ने कहा कि "काव्य के द्वारा उत्पन्न आनन्द कवि के भावों का परिचायक है, जो वह कविता के माध्यम से प्रकट करता है।"[२]

यूरोप मे व्यक्तिवादी और समष्टिवादी नाम से साहित्यिक धाराएँ प्रचलित

१. Sleegale, "Literature is the comprehensive essence of the intellectual life of a nation."

२. Coleridge, "Poetry is the excitement of emotion for the purpose of immediate pleasure through the medium of beauty.

हुई । प्रसिद्ध दार्शनिककारों ने इन दोनों धाराओं के समन्वय की चेष्टा की है। बीसवीं शताब्दी यूरोप के साहित्य में वह प्रगतिशील युग है, जब वहाँ पर कला में अनेकरूपता आई। एक वर्ग में क्रोचे का अभिव्यंजनावाद प्रमुख हो गया, तो दूसरे में हीगेल का दर्शन तथा तीसरे में मार्क्स का भौतिकवाद ख्याति प्राप्त करने लगा। इतना ही नहीं, अन्तश्चेतनावाद, अतियथार्थवाद अस्तित्ववाद और टॉल्सटाय तथा रिचार्ड्स का उपयोगितावाद। ये सारी विचारधाराएं एक साथ बहुमुखी धाराओं में प्रवाहित होने लगीं।

बीसवीं शताब्दी में कला एवं अभिव्यंजना एक-दूसरे के पर्यायवाची बन गये। यह अन्तश्चेतनावाद का युग है, जब साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में मनोविज्ञान की मर्मभेदी पुकार सुनाई दे रही है। एडलर और युंग, मैकडूगल और फ्रायड की विचारधारा साहित्य में निरन्तर अपना अमिट स्थान बनाती जा रही है। टॉल्सटाय ने एक आदर्शवादी विचारक के रूप में जीवन व कला की उपयोगिता को प्रमाणित करके साहित्य में नवीन दिशा बतलायी। उन्होंने एक ओर धर्मनिष्ठा पर जोर दिया और दूसरी ओर, साहित्य में टैगोर के समान विश्व-बन्धुत्व की महानता प्रकट की। उन्होंने बतलाया कि कला और साहित्य के योग से ही मानवता का सच्चा विकास सम्भव है। जीवन और कला दोनों एक-दूसरे पर आधारित हैं। उन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की व्याख्या की, जिसमें लोक-मंगल की भावना हो। यही टैगोर का "सत्यं शिवं सुन्दरम्" है। कला में नैतिकता को भी महत्ता बतलायी। प्रसिद्ध विचारक कॉडवेल ने कहा कि मार्क्सवाद साहित्य में अपने सहज स्वाभाविक रूप में आ गया क्योंकि वह जन-साधारण की मुक्त वाणी है। मनुष्य के जीवन का सम्पूर्ण ढाँचा, कला, धर्म, उसके कार्य-व्यापार सब समाज के कार्य व्यापारों पर ही निर्भर हैं और समाज की व्यवस्था उसकी आर्थिक मान्यताओं एवं संघर्षों से ही बनती है। इस विकासशील युग में मानव का प्रकृति के साथ निरन्तर संघर्ष होता रहता है; अतः मानव के मूल्यों को जानने के लिए समाज और उसके चारों ओर फैली हुई प्रकृति का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। सामाजिक उन्नति गतिशील है, अतएव साहित्य भी गतिमान है। सदा से युग ने साहित्य का निर्माण किया है और साहित्य ने युग को नया रूप और नवीन दिशा प्रदान की है।

आधुनिक युग कथा-कहानियों का युग है; अतः 'उपन्यास' साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण अंग बन गया है। पाश्चात्य देशों में भी साहित्य की यही प्रवृत्ति है। वहाँ से उपन्यास हिन्दी में अनूदित होकर आ रहे हैं और उनका मूल रूप तो केवल विदेशी भाषाओं में ही पढ़ने को उपलब्ध होता है। विनोदशंकर व्यास ने कहा है कि "रूसी उपन्यासों में चित्रित पात्र भारतीय जीवन और आत्मा के जितने समीप पड़ते हैं, उतने अन्य यूरोपीय देशों के नहीं।"[१]

१. विनोदशंकर व्यास : "यूरोपीय उपन्यास साहित्य", पृष्ठ ६।

फ्रेन्च उपन्यासों में अनेक शीर्षकों में 'ट' के स्थान पर 'त' शब्द का प्रयोग किया जाता है। कथा का मूल सूत्र प्राचीन यूनान से ही यूरोप को भी प्राप्त हुआ है। प्रसिद्ध 'मिलेसियन और साहब राहट' कहानियाँ ई० पू० छठी शताब्दी की हैं। प्राचीन यूनानी प्रेमपरक गद्य-आख्यान भी लिखे गये। जुलियन ने जो साहित्य का रूप प्रस्तुत किया, वह रोमांस का है। गद्य रोमांस के प्रारम्भिक रूप 'एपिटोप' में प्राप्त होते हैं। पारथेनियस की प्रेम-कहानियों में भी यत्र-तत्र रोमांस के संकेत हैं। तीसरी शताब्दी में रोमांस प्रचलित धारा थी। हेल्योडोरस के कथा-संकेत आज की उपन्यास-धारा के विकास युग में अपूर्व मार्ग-दर्शन करते हैं। एचिलीज, टेटियस और चेरिटन आदि लेखकों ने भी रोमांसपूर्ण आख्यान लिखे, जिन्होंने मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों को स्पर्श किया है। यूनानी रोमांसों में नायक प्रेमोन्मुख और वीर सैनिक होता था तथा वह यश-प्राप्ति के लिए सदा लालायित रहता था और नायिका अपने रूप, वेश, हाव-भाव तथा कला-कौशल से पूर्ण मोहिनी होती थी और जो अपनी भावनाओं को प्रकट करने में सदा लीन रहती थी। ऐतिहासिक रोमांसों में कभी-कभी कृत्रिम घटनाएँ तथा वार्तों का भी लेखक समावेश कर देता था, लेकिन मूल उद्देश्य मानव-जीवन के चित्रों को अंकित करना रहता था। मानव के क्रोध, रोदन, दया, प्रेम, संवेदना इत्यादि आवेग नैसर्गिक गति से प्रवाहित इन आख्यानों में होते रहते थे। फ्रान्सीसी रोमांसों में सद्‌गुण, और नैतिकता पर प्रमुख महत्व दिया जाता था, यहाँ तक कि इटली के कलाप्रेमी-उपन्यासकारों ने भी नैतिकता पर ही जोर दिया। इन रचनाओं ने पुण्य की पाप पर विजय दिखाई। पापी दण्डित हुआ और नैतिकता का मापदण्ड स्थापित हो गया। इन उपन्यासों का लक्ष्य समाज में नैतिक आदर्शों की स्थापना करना रहता था।

प्रायः रोमांस और उपन्यास में बहुत कम अंशों में अन्तर पाया गया है, जिसे आज उपन्यास की श्रेणी में निर्धारित किया जाता है। प्राचीन युग में उसी को 'रोमांस' के नाम से पुकारा जाता था। 'उपन्यास' नाम वर्तमान युग की देन है। अधिकतर राजा-रानियों का प्रेम-व्यवहार, नायक-नायिका सम्बन्धी प्रेम-लीलाएँ और वीरता-पूर्ण कथाएँ रोमांस का विषय होती थीं। असम्भव कार्यों को भी अद्‌भुत कला-कौशल द्वारा सम्भव कर दिखाना इन रोमांसों की विशेषता थी। इन कथाओं को पढ़ कर पाठक इस भौतिक धरातल को छोड़कर एकदम आकाश में उड़ने लगता है। कथा के पढ़ते समय वह पूर्ण आत्मविस्मृत होकर उसका आस्वादन करता रहता है। उपन्यास और इन प्रेम-कथाओं में जो अन्तर है, वह यह है कि उपन्यास मानव-जीवन की गहराइयों को अधिक निकटता से देखता है। मानव के कार्य-कलाप, जीवन का उत्थान-पतन, अवनति-उन्नति का यथावत् वर्णन और विश्लेषण उपन्यासों के माध्यम से होता है, जबकि रोमांस के द्वारा आश्चर्यजनक उत्तेजक घटनाएँ प्रकट की जाती हैं और उपन्यास का उद्देश्य लोकरंजन रहता है। पर वर्तमान उपन्यास के बीज इन

रोमांसों में खोजना अत्यन्त स्वाभाविक जान पड़ता है। इन रोमांसों का उन्नत रूप ही आधुनिक 'उपन्यास' है।

रोमांस का मूल जन्म-स्थान फ्रान्स है और साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ वहीं से जागृत होकर अन्य देशों तक प्रसारित हुईं। यदि साहित्य की पूर्ण उन्नति में फ्रान्स ने मार्ग-दर्शन का कार्य किया है तो उपन्यास और रोमांस के क्षेत्र में भी वही अगुआ रहा है। फ्रान्स के बाद स्पेन में उपन्यास अधिक रचे गये और संसार में प्रसिद्ध हुए।

वास्तव में पन्द्रहवीं शताब्दी रोमांस के विकास का युग है। स्पेन में प्रेम-सम्बन्धी कलह तथा कर्त्तव्य और प्रेम का द्वन्द्व ही रोमांस के कथानक बने। उदाहरण के लिए, एक युवक और युवती आपस में प्रेम नहीं करते हैं, फिर भी उनका विवाह हो जाता है और कुछ दिनों बाद उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। कभी-कभी तो प्रेमी और प्रेमिका छिपकर समाज की मान्यताओं को छोड़कर भाग जाते हैं और कभी-कभी तो विरोधी परिस्थितियों के आ जाने के कारण प्रेमिका का मर जाना व प्रेमी का भटकना ही लोकप्रिय कथावस्तु के चिह्न रहे। इटली में भी रोमांस खूब रचे गये, केवल शैली-सम्बन्धी ही अन्तर रहा। ऐसे उपन्यासों को "क्लोक एण्ड स्वोर्ड" के नाम से पुकारा जाता था, पर इटली में अधिकांश रूप से ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये जिनमें प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं का ही वर्णन होता था। सबसे पहला आधुनिक पाश्चात्य उपन्यास सन् १४६० में लिखा गया। यह एक प्रकार का नाट्य-उपन्यास है, जिसका नाम "सेलेस्टिना" है। उससे पहले 'मोराई' और 'निकोलेत' आदि फ्रान्सीसी कहानियाँ प्रचलित थीं। पहले रंगमंच की प्रधानता रही थी। अब छापेखानों की वृद्धि के कारण नाट्य रूप उपन्यासों में परिवर्तित हो गया और उपन्यास जन-साधारण के मन रमाने का साधन बन गया।

"सेलेस्टिना" की कहानी रहस्यपूर्ण है। इसका १ भाग एक "कोटाबर्देस्तेगा" नामक लेखक ने लिखा, शेष स्पेन के दूसरे यहूदी लेखक ने लिखा, जिसका नाम "फर्नेण्डोरोजास" था, पर यह रचना अधिक प्रकाश में नहीं आई। अब तो इसका कोई चिह्न भी नहीं है।

सेलेस्टिना एक प्रेम-कहानी है। स्पेनिश युवक एक युवती से प्रेम करता है, जो समाज के नियमों के प्रतिकूल है। प्रसिद्ध भटियारिन "सेलेस्टिना" है, जो नायक को उसकी नायिका को प्राप्त कराने में सफलता प्रदान करती है। प्राचीन कथा-प्रणाली इस प्रकार है कि नायक सीढ़ी पर चढ़कर नायिका से मिलने जाता है और गिरकर मर जाता है। नायिका भी कूद कर प्राण दे देती है और नायिका का पिता शोक मनाता है, साथ ही उपन्यास की समाप्ति हो जाती है। रूपगत विशेषताओं के आधार पर यह स्वतःसिद्ध है कि प्राचीन उपन्यास वर्णनात्मक शैली के आधार पर लिखे जाते थे, पर मुद्रण-कला के विकास के उपन्यासों को कहानी के रूप में कहने की परम्परा छूट गयी। कथा-शिल्प पर भी ध्यान दिया जाने लगा। सत्रहवीं शताब्दी की स्पेनिश रचनाओं को "पिकारेस्क" के नाम से पुकारा गया। पिकारो एक विचित्र प्राणी है, जो सदा नीच

कार्यों में व्यस्त रहता है। उपन्यासकार का स्वयं का जीवन भी घटनापूर्ण और द्वन्द्व-प्रधान रहा है। "पिकारो" स 'रोग' का सकेत तथा 'नीचता' का सूचक है।

सन् १६०५ मे "डॉन विवकजोट" नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसके लेखक "मीगुलु-डे-सर्वेण्टिस सावेदरा" थे, जिन्होने स्पेन में प्रचलित वीरतापूर्ण रोमास और पिकारेस्क उपन्यासो का अन्त करने के लिए यह नूतन प्रणाली का उपन्यास लिखा। इस उपन्यास के द्वारा मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डाला गया। इस उपन्यास ने लेखक को प्रमुख उपन्यासकारो की श्रेणी में मान्यता दिलादी।

"डॉन विवकजोट" मे साधारण मानव चरित्रों की मनोवृत्तियां का विकास है। ये मानव ससार के प्रत्येक कोने मे चलते-फिरते दिखाई देते हैं। हास्य और व्यंग्य द्वारा लेखक ने इसे अत्यन्त रोचक उपन्यास बना दिया है। उपन्यास का प्रधान पात्र "डॉन विवकजोट" है, जो जितने स्त्री-पुरुषो से मिलता है वे सब अपनी वास्तविक स्थिति में प्रकट होते हैं। प्राचीन रोमासो के समान इस उपन्यास म अस्वाभाविकता नही आने पायी है तथा मानवीय निर्बलताओं के स्पष्ट चित्र अवतरित हुए हैं।

परीक्षण तथा अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकालना उचित जान पडता है कि १६वी शताब्दी के स्पेन का सजीव उपन्यास "डॉन विवकजोट" है जिसमे प्रत्येक प्राणी इस ससार का जीता-जागता मानव है, जिसके द्वारा मानव-मन की ग्रन्थिया का सच्चा चित्र प्रकट हुआ है। मौलिकता और ऐतिहासिकता की दृष्टि से इसका अपूर्व एव उच्च स्थान है। इसका लेखक भी एक वीर योद्धा था, जिसकी उपन्यास-कला का प्रभाव सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के यूरोपीय उपन्यासो पर पडा। इस युग के उपन्यासो म मानव मन का विश्लेषण किया गया। इटली के उपन्यासो मे ठगो की चालें प्रकट हुई। फ्रान्सीसी उपन्यासो में भी अनेक प्रकार के कारनामे दिखाये गये और साथ ही पेरिस का जीवन-क्रम व्यक्त हुआ। स्पेन ने रोमासों को दैनिक घटनाओ के साथ जोडा और इन सब बातों का प्रभाव अँग्रेजी उपन्यासो पर भी पडा। जहाँ तक साहित्यिक विचारधारा का सम्बन्ध है, भिन्न-भिन्न राष्ट्र इससे इतने पृथक् रहे कि वे निश्चित रूप से अपने विचारो का आदान-प्रदान नहीं कर पाये। यूरोप की अठारहवीं शताब्दी की प्रतिक्रिया उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासों पर हुई। इस दृष्टि से अँग्रेजी, जर्मन और फ्रान्सीसी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक जान पड़ता है। उन्नीसवीं शताब्दी मे फ्रान्सीसी साहित्य पर जर्मनी का प्रभाव पडा। उन दिनो के जनतन्त्र और साम्राज्यवादी राष्ट्रो के बीच घनघोर युद्ध तथा उसका प्रभाव साहित्यकारों पर भी पडा। साहित्यकारो ने एक-दूसरे राष्ट्र की भाषा और बोली से परिचय प्राप्त करने के लिए अटूट परिश्रम किया। अठारहवीं शताब्दी में जो शुष्कता आ गयी थी और उपन्यास-क्षेत्र को जिन सीमाओं से जकड दिया गया था, उसका तीव्र विरोध उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। रूसो के

"लानुवेल हेल्वाज" का प्रभाव "गेटे" पर पड़ा, जिसने "वर्थर" नामक उपन्यास लिखा। रूसो के "हेलसी" के तेरह वर्ष बाद "वर्थर" प्रकाशित हुआ।

"वर्थर" उपन्यास कल्पना पर आधारित रचना है, जिसमें एक व्यक्ति की असन्तुष्ट वासनाओं की तीव्र अभिव्यंजना है। वह व्यक्ति युग का प्रतिनिधि है और उसके द्वारा उस काल की भावनाएँ, इच्छाएँ और समस्त अभिलाषाएँ प्रकट हुई हैं। नायक "वर्थर" वर्ग का एक युवक है, जो प्रतिभाशाली है, जिसमें अपने युग की आत्मा प्रकट हो रही है और जिसकी मूलप्रवृत्ति उसके विद्रोह की भावनाओं में प्रकट हो रही है। इस क्रान्तिकारी विचारधारा को गेटे ने अपने पात्र की आत्म-हत्या द्वारा प्रकट किया है। यह सिद्ध हो जाता है कि "वर्थर" उपन्यास ने समस्त यूरोपियन उपन्यासों में "आत्म-हत्या" की प्रणाली के लिए मार्ग निर्देशन का कार्य किया। रूसो की "लानुवेल हेल्वाज" एक और प्राचीन प्रेम-परम्परा पर प्रकाश डालता है तो दूसरी ओर संस्कृतिनिष्ठा का उससे ज्ञान होता है। प्रेम का वासना-जन्य व्यापार मानव की उद्दाम भावनाओं की सूचक है, जिसका निर्देशन इस उपन्यास में बड़ी सफलता से हुआ है। अठारहवीं शताब्दी विश्वास का युग था, जब संस्कृति और धर्म के प्रति निष्ठा की भावना थी, दार्शनिकों के प्रति अपूर्व श्रद्धा थी, पर उन्नीसवीं शताब्दी में यह विश्वास की भावना भी समाप्त हो गयी। जीवन की कठिनाइयों से मुक्ति आत्म-हत्या द्वारा ही इन उपन्यासकारों ने दिखाई है। प्राचीन युग में नारी अशक्त और निर्बल-प्रायः दिखायी गयी है, पर अब वह पूरे उपन्यास और नायक पर शासन करती हुई दिखाई देती है। उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासों में सब प्रकार की परिस्थितियाँ अंकित हुई हैं। "विक्टर ह्यूगो" जैसे महान् उपन्यासकारों ने प्रसिद्ध उपन्यास रच कर जन-जीवन से परिचय कराया। उनके उपन्यासों में नाटकीयता, संगीतात्मकता और महाकाव्यात्मकता है। "एलेक्जेन्डर ड्यूमाज" ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जिससे उनकी कल्पना-शक्ति और इतिहास के ज्ञान का पता चलता है। "मॉरी बैल," "जार्ज सेंड" इत्यादि उपन्यासकारों ने धनिक और निर्धन दोनों वर्गों का यथार्थ चित्रण किया। "बाल जाक" फ्रान्स का यथार्थवादी उपन्यासकार हुआ, जो स्वच्छन्दतावादी जीवन, संघर्ष, शक्ति और अन्य समस्याओं का बारीकी से अध्ययन करके उपन्यास लिखता था। उसने ६६ उपन्यास लिखे। उसे सबसे अधिक ख्याति 'ला कामेडी ह्यूमेने' के द्वारा प्राप्त हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के सारे उपन्यासकार एक क्रान्ति की भावना को लेकर प्रकट हुए। एक ओर उनमें धार्मिक परम्पराओं के प्रति विद्रोह की भावना थी, दूसरी ओर वे निरंकुश शासकों से लड़ने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उनके उपन्यासों से क्रान्ति की आग निकलती थी।

रूसी उपन्यास-साहित्य यूरोप के अन्य देशों से पिछड़ा हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वहाँ के उपन्यास-साहित्य की एक नवीन दिशा हमें दिखाई दी। एलेक्जेन्डर पुश्किन नवीन रूसी साहित्य का मार्गदर्शक था। उसने पद्यमय उपन्यास

"यूजेन ओनेगिन" लिखा, जिसमें यथार्थवादी मान्यताएँ भरी पड़ी हैं। "पुश्किन" ने रूस के लिए आनन्दप्रद कल्पनाएँ की थीं कि सारा राष्ट्र धनधान्य से सम्पन्न हो जावेगा।

मैक्सिम गोर्की ने पुश्किन को विश्व का सबसे महान् कलाकार बतलाया। उसके बाद गोगल ने "डेट सोल्स" नामक दूसरा उपन्यास लिखा, जिसमें यथार्थवादी विचारधारा प्रवाहित हो रही है। "लेरमोंटोव," "हिरो ऑफ ग्रावर टाइम" नामक एक प्रतिक्रियावादी उपन्यास लिखा। तुर्गनेव गद्य लिखने की प्रतिभा लेकर ही जन्मा था। उसने मानव-समस्याओं के रहस्य को समझा। अपने उपन्यासों में उसने मानवीय ग्रन्थियों को सुलझाने की चेष्टा की है। उसने "रूदिन," "एनेस्ट ग्रॉफ दी जेन्ट्री", 'ऑन दी ईव," "फादर्स एण्ड सन्स" इत्यादि श्रेष्ठ उपन्यास लिखे। ये सब रचनाएँ उन्नीसवीं शताब्दी की हैं, जिनका मुख्य विषय सामाजिक अवस्था का चित्र उपस्थित करना था। पहली बार तुर्गनेव की प्रतिमा से उपन्यास-साहित्य के अन्तर्गत नये प्रकार के चरित्रों का उद्घाटन हुआ। तुर्गनेव की रचनाएं विश्व के साहित्य मे अनूदित हैं। हिन्दी भाषा मे भी उनके द्वारा रचे गये अनेक उपन्यास अनूदित होकर प्रकाश में आये। यथार्थवादी भौतिक विचारधारा को प्रकट करने में तुर्गनेव का भारी हाथ रहा है।

डोस्टा वेस्की को ही पश्चिम के समीक्षक रूस का प्रथम उपन्यासकार मानते हैं, पर रूसी समाज ने उस सम्मानित नहीं किया, जिसका मूल कारण यह है कि वह एक प्रतिक्रियावादी उपन्यासकार था। उसकी विचारधारा पूर्णरूप से समाजवादी थी, यहाँ तक कि उसे मृत्यु-दण्ड जारशाही की ओर से मिला, जो बाद में आजन्म कारावास मे बदल दिया गया। यह क्रान्तिकारी लेखक का दुर्भाग्य होता है कि उसके जीवन-काल में उसकी रचनाओं का महत्व राष्ट्र और मानव जाति न समझे।

डोस्टा वेस्की का प्रथम उपन्यास "पूग्रर फॉल्क" सन् १८४४ मे प्रकाशित हुआ, जिसमे एक गरीब क्लर्क और एक युवती के साथ प्रेम की कथा है। यह एक दुखद मर्मस्पर्शी कहानी है। सन् १८६६ म "क्राइम एण्ड पनिशमेंट" में भी एक पढे-लिखे व्यक्ति की कहानी है जो हिंसक मार्ग के द्वारा सुखी होना चाहता है। सन् १८६८ में "दी इडियट" नामक रचना की, जिसमे एक मूर्ख का चरित्र है। "ब्रदर्स कारामा जोफ" इनकी एक अमर रचना है, जो ससार के प्रसिद्ध बारह उपन्यासा मे से एक है। डोस्टा वेस्की निरन्तर जीवन से संघर्ष करता रहा। वह कॉफी पीकर दिन भर उपन्यास लिखता रहता था। उसकी पत्नी का उसके साथ कटु व्यवहार था और घोर दरिद्रावस्था में डोस्टा वेस्की की मृत्यु हुई, पर जनसाधारण की करोडों की भीड उसकी मृत्यु के साथ थी। दरिद्र लेखक के मरने के बाद देश के करोडों नर-नारियों ने स्वागत किया।

टालसटाय का युग सन् १८२८ से सन् १९१० तक है। इनका भी प्रेमचन्द

के पूर्व के उपन्यासकारों में अपना विशेष स्थान है। सन् १८६३ में इनकी विश्व-विख्यात रचना "वार एण्ड पीस" दुनिया के सामने आयी, जिसने प्रमाणित किया कि *व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सबका एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है।* इस उपन्यास की कथावस्तु का सूत्र जनता से प्राप्त हुआ है। रूसी नर और नारी एक ही साम्यवादी विचारधारा के पोषक थे, जिसका संकेत टॉल्सटाय को मिला और उनका दूसरा उपन्यास 'अन्नाकरेनिना" जिसकी रचना सन् १८७३ और सन् १८७७ के बीच हुई है। उसमें पारिवारिक और समाज की समस्याएँ पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई हैं। प्राचीन *रूसी समाज-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है और उसके स्थान पर जनता का* राज्य स्थापित होता जा रहा है। अन्ना करेनिना एक अत्यन्त सुन्दर नारी है, जिसका चरित्र अत्यन्त दुखद है। इसके चरित्र ने भावी नारीमात्र का मार्ग-दर्शन किया कि कोई भी समाज मानव की स्वतन्त्र भावनाओं को कभी भी विकसित नहीं होने देता है। *युगीन सामाजिक व्यवस्था के साथ नायिका का जीवन भर संघर्ष चला करता है* और अन्त में जीवन से हार कर वह मृत्यु को प्राप्त होती है। "रिजर्वेशन" टॉल्सटाय का तीसरा उपन्यास है, जो सन् १८९९ में प्रकाशित हुई, जिसका आधार भी साधारण जनता का शोषण तथा उत्पीड़न है। टॉलस्टाय ने रूसी सामाजिक जीवन पर इतना अधिक प्रकाश डाला है कि अन्य साहित्यकार नहीं डाल सके हैं। उसने गाँव-गाँव, शहर-शहर, जेल, बंदी, धनवान, गाड़ीवान, गवर्नर, किसान मजदूर सबके निवास-स्थानों तथा दैनिक कार्यकलापों को बारीकी से देखा है और उसका यथातथ्य वर्णन किया।

मैक्सिम गोर्की बाद के उपन्यासकार हैं, जब हिन्दी उपन्यास साहित्य प्रेमचन्द के उपन्यासों से अपना अपूर्व साहित्य-भण्डार भर रहा था। गोर्की के 'माँ' उपन्यास ने विश्व के उपन्यास-क्षेत्र में धूम मचा दी। गोर्की ने बतलाया कि उस युग *में रूस की जनता प्रमाद, दरिद्रता, जारशाही, पूँजीपति तथा धनवानों के अत्याचार* से दुखी थी। टॉलस्टाय और गोर्की की सारी रचनाएँ राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हैं, जिसने साम्यवाद की आधारशिला सदा के लिए तैयार कर दी। व्यक्ति के माध्य से समाज का विधान निश्चित हुआ और सामाजिक व्यवस्था ने राज्य-शासन को नयी दिशा प्रदान की। धीरे-धीरे रूस में साम्यवादी सरकार की स्थापना हो गयी और जिसको बनाने में इन अमर उपन्यासकारों का प्रमुख हाथ रहा है।

अँग्रेजी साहित्य और भाषा का व्यवस्थित रूप महाकवि चौसर से प्राप्त हुआ, लेकिन उपन्यास का पूर्व रूप अभी उपलब्ध नहीं हुआ। छठवीं और सातवीं शताब्दी के लगभग इंगलैण्ड में रोमन मिशनरियों ने ईसाई धर्म का प्रचार किया। इस समय एंग्लो सेक्सनों के वीर काव्य रचे गये, जिनमें रोमांचक कथाएँ तथा युद्ध के भीषण दृश्य हैं। कुछ शोकपूर्ण कविताएँ (Elegies) भी लिखी गयीं। युद्ध-गीत, पहेलियाँ, धार्मिक कविताएँ प्रथम रची गयीं। उसके बाद गद्य का विकास हुआ। इस सातवीं शताब्दी के गद्य में वाक्य-रचना और व्याकरण की अशुद्धियाँ आदि से अन्त तक भरी हुई हैं।

ऐंग्लो सेक्शन गद्य आधुनिक अँग्रेजी भाषा के बहुत अधिक निकट है। अँग्रेजी साहित्य में रोमास की रचना प्रायः वीरतापूर्ण काव्यों से हुई है। तेरहवी और चौदहवीं शताब्दी में महाकवि चौसर के आगमन के साथ अँग्रेजी साहित्य एक निश्चित विकास-धारा की ओर बढा। धार्मिक क्षेत्र में अत्याचार बढ गये थे और जन-साधारण के हृदय मे सुधार की भावना हिलोरें लेने लगी थी। चौसर ने मानव-जीवन की व्याख्या की। जीवन के हर्ष-विषाद के क्षणों को पहचाना। जीवन और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उसकी कविताओं में हुई, इसीलिए उसे अँग्रेजी कविता का पिता कहा जाता है। "केन्टरबरी" चौसर की सर्वोत्तम रचना है, जिसमें अँग्रेजी समाज का यथावत् चित्र उपस्थित हुआ है। यद्यपि यह रचना अधूरी है, पर इसमें नाटकत्व, चरित्र-चित्रण, वर्णन-शैली और कथोपकथन उच्च कोटि के हैं। चौसर में सामन्तीय प्रवृत्तियाँ पायी गयीं क्योंकि उस समय सामाजिक व्यवस्था इसी प्रकार की थी। गद्य का विकसित रूप इस समय नहीं प्राप्त हो सका। यद्यपि उसने "बाईथियस" का अनुवाद किया, पर गद्य की वह साधारण रचना है।

पन्द्रहवी शताब्दी, चौसर से शेक्सपियर तक का समय, अँग्रेजी साहित्य की उन्नति का समय है। इस समय इगलैण्ड की अपेक्षा स्कॉटलैण्ड मे कविता की धूम रही। इस समय जनकाव्य रचे गये, जिनमे "राबिनहुड", "चेवीचेज" इसी प्रकार की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इस शताब्दी में गद्य की अपेक्षाकृत अधिक उन्नति हुई। "रेजीनाल्ड पीकॉक" ने लेटिन में रचना छोड़कर अँग्रेजी में गद्य लिखना प्रारम्भ किया। सर टामस मेलौरी ने "मोरटे डि आर्थर" नामक सर्वश्रेष्ठ गद्य-रचना रची। भाषा और शैली का अभी तक सीधा-सादा रूप पाया गया। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में गद्य का निखरा हुआ रूप हिन्दी जगत के सामने आया। "विलियम टिन्डेल" ने "इंगलिश न्यू टेस्टामेण्ट" रचा तथा माइस कवरडेल ने "इगलिश बाइबिल" और क्रामवेल ने "ग्रेट बाइबिल" रची। टॉमस मूर का "यूटोपिया" प्रसिद्ध गद्य का नमूना है, जिस पर प्लेटो के "रिपब्लिक" का प्रभाव दिखाई देता है। शेक्सपीयर का युग अँग्रेजी साहित्य का स्वर्णयुग है, जिसमे उच्च कोटि के सुखान्त और दुखान्त नाटक लिखे गये। इधर रिनेसाँ (Renaissance) युग मे रेशमी काव्य और नाटक के निर्माण के साथ ही साथ रोमान्स तथा आख्यानो का भी निर्माण हुआ। प्रसिद्ध गद्य रोमान्स रचयिता जॉन लिली था, जिसने "युफ्यूज" और "दि ऐनेटॉमी ऑफ विट" रची। लिली के बाद सिडनी ने नूतन गद्य-शैली का निर्माण किया, जिसे पशु-चारण रोमास (Pastoral Romance) के रूप मे प्रकट किया। इसी समय निबन्धो की रचना प्रसिद्ध निबन्धकार बेकन के द्वारा हुई। अँग्रेजी गद्य का वर्तमान रूप ड्रायडन से ही प्रारम्भ होता है, जबकि एक सुव्यवस्थित रूप दिखायी दिया। इस समय इगलैण्ड मे "रॉयल सोसायटी" का सगठन हो चुका था और वैज्ञानिक प्रगति ने भी गद्य के क्षेत्र मे साधारण शैली को स्थान दिया। वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विचारों के साथ समाज के

जीवन-क्रम पर भी लेखकों का ध्यान गया। अँग्रेजी साहित्य के इतिहास में सन् १७४९ से सन् १७९८ का समय "जॉनसन युग" के नाम से विख्यात है। व्यावहारिक कार्य-व्यापारों में गद्य का विकास हो रहा था, पर अठारहवीं शताब्दी में गद्य के क्षेत्र में नवीन प्रयोग हुए। अब जनता की रुचि भी नाटकों से हट कर उपन्यास की ओर बढ़ी, जिसके फलस्वरूप रोचक उपन्यास लिखे गये। अब इंगलैण्ड की जन-रुचि भी बदली और थियेटर का स्थान उपन्यास लेने लगे। डॉ० जॉनसन स्वयं उच्च कोटि के गद्यकार थे। उनकी "लाइव्ज ऑफ दी पोइट्स" ने उत्कृष्ट गद्य का नमूना उपस्थित किया। श्रेष्ठ उपन्यासकारों में से सेमुअल रिचार्डसन, स्मौलट, लॉरेन्स स्टर्न टोबियस, ओलीवर गोल्डस्मिथ इत्यादि हैं। इनके उपन्यासों में मानव-जीवन का विस्तृत तथा सचित्र "केनवास" उपस्थित किया गया है। जीवन के विभिन्न पहलू भी अवतरित हुए। कलाकारों ने उपन्यास-कला के सम्पूर्ण अंगों पर प्रकाश डाला। "पेमिला" नामक उपन्यास रचा गया, जिसमें एक नौजवान नौकरानी मालिक के द्वारा सतायी जाती है। "क्लोरिसा हार्लो" इनकी आठ भागों में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ रचना है। इनके उपन्यास पत्रों के रूप में मिलते हैं, जिनमें मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण है। इनकी कथावस्तु रोचक है। चरित्र चित्रण स्पष्ट है। हेनरी फील्डिंग ने "दी एडवेंचर ऑफ जोसेफ" और "दी हिस्ट्री ऑफ टौम जोन्स" दो प्रसिद्ध उपन्यास लिखे, जिनमें साहसपूर्ण कहानी है। फील्डिंग का तीसरा उपन्यास "एमीलिया" बड़ा प्रसिद्ध है, जिसमें एक पतिव्रता नारी का साहसी चरित्र है। इसमें नारी जीवन की मार्मिक कहानी अंकित हुई है।

फील्डिंग की रचनाएँ समीक्षा की दृष्टि से व्यवस्थित और सुसंगठित हैं। ऑलीवर गोल्डस्मिथ के प्रसिद्ध उपन्यास "विकार ऑफ वेकफील्ड" ने तो एक क्रान्ति सी मचा दी थी। यद्यपि उन्होंने अपने जीवन में एक ही उपन्यास लिखा, पर वह उच्च कोटि का है। ग्राम्य जीवन और साहसिक घटनाओं का इस उपन्यास में उल्लेख हुआ है। इसमें शैली-शिल्प उच्च कोटि का है। स्त्री-लेखिकाओं ने भी उपन्यास साहित्य के विकास में अपना अपूर्व योगदान दिया है। अठारहवीं शताब्दी के संस्कारों का अंकन, पात्रों का स्पष्ट चरित्र-चित्रण, सूक्ष्म-मनोविश्लेषण इन उपन्यासों में भरा हुआ है। विलक्षण कल्पनाओं और रोमांच से भरी हुई घटनाओं का उल्लेख मिलता है। रोमांचकारी उपन्यास लिखने में 'ऐन रैडक्लिफ' की विशेष ख्याति है, जिन्होंने प्रतिभापूर्ण "दी रामास ऑफ दी फॉरेस्ट", 'दी मिस्ट्रीज ऑफ उडाल्फो" और 'दी टैलियन" नामक उपन्यास लिखे, जो हिन्दी के देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों के समकक्ष रखे जा सकते हैं। "भूतनाथ", "चन्द्रकान्ता सन्तति" की तुलना 'रॉबर्ट ब्लेक मोरिश' उपन्यासों से भली-भाँति की जा सकती है। अँग्रेजी साहित्य में रोमान्टिक विचारधारा इस समय युगीन जनरुचि को सन्तुष्ट करके गतिशील हो रही थी।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के अँग्रेजी साहित्य के उपन्यासकारों में सर वाल्टर स्कॉट का प्रसिद्ध स्थान है। भयंकर युद्धों का अवलोकन, अनग्र् तिर्दा तथा

ऐतिहासिक स्थानों के भ्रमण के फलस्वरूप उन्होंने अनेक उपन्यास रचे। "दी लेडी ऑफ दी लेक" उनकी प्रसिद्ध उपन्यास-रचना है, जिसमें स्कॉटलैण्ड के ऐतिहासिक आख्यान सम्मिलित कर लिये गये हैं। वेवरली उपन्यासों के अन्तर्गत स्कॉट ने २७ उपन्यास रचे, जिनका सम्बन्ध आठ शताब्दियों से है। ऐतिहासिक उपन्यासकार के नाते विश्व के उपन्यास साहित्य में वाल्टर स्कॉट का विशेष स्थान है। उनका उन्नीसवीं शताब्दी का उपन्यास "दी ऐन्टीक्वेटी" बहुत प्रसिद्ध हुआ है, जिसका अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

स्कॉट ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक सत्यता का पूर्णतया पालन नहीं किया है और कथानक की पूर्ति के लिए घटनाओं को मनमाना तोड़ा-मरोड़ा है। अतः उनके उपन्यासों को सही अर्थ में 'रोचक रोमांस आख्यान' कहना उचित जान पड़ता है। उसमें मध्ययुगीन सामाजिक जीवन का वास्तविक सच्चा चित्र नहीं प्राप्त होता है, फिर भी स्कॉट ने इतिहास की शुष्कता तथा नीरसता को अपने उपन्यासों में यथाशक्ति दूर करने की चेष्टा की है और सुन्दर एवं मनोरंजक बनाया है। उपन्यासों में लेखक का मानव-जीवन के प्रति कोई गहन दार्शनिक दृष्टिकोण नहीं दिखाई देता है। स्कॉट के उपन्यासों ने अंग्रेजी साहित्य में एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है। इनके समय में मेरिया ऐडवर्थ ने तीन आयरिश उपन्यास लिखे। जेन ऑस्टिन ने भी सुन्दरतम उपन्यासों की रचना की, जैसे "सेंस एण्ड सेंसबिलिटी", "प्राइड एण्ड प्रेजुडिस", "मेन्सफील्ड पार्क", "एम्मा", "पर्सुएशन", "नोथेजर ऐबी" नामक उपन्यास बहुत ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। जेन ऑस्टिन ने जीवन की साधारण से साधारण बातों की भी व्याख्या की है। भावनात्मकता की अपेक्षा इनके उपन्यासों में भौतिक यथार्थवाद की ही झलक अधिक प्राप्त होती है। उपन्यास-शैली की विविधता स्कॉट इत्यादि उपन्यासकारों में प्राप्त हुई है। साहित्यिकता तथा शिल्प की दृष्टि से अंग्रेजी उपन्यास साहित्य अब प्रौढ़ हो गया था। उनमें उपन्यास के यथोचित अंगों का विकास पाया गया। हिन्दी और अंग्रेजी उपन्यासों की उन्नति एक साथ ही समवर्ती युग में विश्व-साहित्य में देखी गयी।

अंग्रेजी साहित्य में उच्च कोटि के उपन्यास विक्टोरियन युग में लिखे गये। यह लगभग सन् १८६४ से १९२० तक का युग है, जिसका सम्बन्ध अनुसन्धान के विषय से है। संसार में उपन्यासों की लोकप्रियता दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। यथार्थवादी, विश्लेषणात्मक, सामाजिक और मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर अनेक भाषाओं में उपन्यास रचे जाने लगे। धार्मिक और नैतिक समस्याओं का चित्रण भी उपन्यासों में प्रारम्भ हो गया।

चार्ल्स डिकन्स विक्टोरियन युग के प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं। "स्कैचेज, पिकविक पेपर्स" अंग्रेजी साहित्य की हास्यपूर्ण रचनाएँ हैं। "आलिवर ट्विस्ट", "निकोलस निकलबी", "दी ओल्ड क्यूरिओसिटी शोप", "डेविड कॉपरफील्ड", "हार्ड

टाइम्स" "दी टेल ऑफ ट्विटीज" इत्यादि रचानाओं ने उस युग की यथार्थवादी और आदर्शवादी विचारधारा को व्यक्त किया। कथानक, शैली और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उनकी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। उन्होंने बताया कि एक ओर सामाजिक शोषण का चक्र चलता है व दूसरी ओर, मानव-हृदय अपनी शुद्ध एवं चिरन्तन भावनाओं के साथ विकसित होता रहता है।

विलियम मैकपीस थैकरे दूसरे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने "वैनिटी फेयर", "पेंडेनिस", "हैनरी एडमण्ड", "दी न्यूकम्स" जैसी महान् रचनाओं का निर्माण किया है। थैकरे और डिकन्स समसामयिक उपन्यासकार हैं। दोनों ने तत्कालीन लन्दन के जीवन का सजीव चित्र उतारा है, पर डिकंस ने निम्न वर्ग को चुना था और थैकरे ने उच्च वर्ग, सामन्त और मध्य वर्ग को अपने उपन्यास की कथावस्तु के लिए चुना। थैकरे ने व्यक्तित्व और समाज पर चुटीला व्यंग्य किया है, उनकी दुर्बलताओं को प्रकट किया है, पर साथ-साथ ही साहित्यिक प्रवृत्तियों को भी निभाया है, पर डिकिन्स के उपन्यासों में अद्भुत रोचकता और मार्मिकता है, जिससे पाठकों का हृदय अत्यन्त प्रभावित हुआ।

शार्लट ब्रान्टे, ऐमिली ब्रान्टे, मिसेज गेस्केल आदि स्त्री-उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हुई हैं। जॉर्ज इलियट ने बहुत ख्याति प्राप्त की। वे उन्नीसवीं शताब्दी की लेखिकाओं में सबसे अधिक योग्य थीं। उन्होंने "सीन्स ऑफ क्लेरिकल लाइफ", "ऐडम-बीड", "डिमिल आन दी फ्लॉस" आदि उपन्यास रचे। एन्थेनी ट्रॉलिप, सर रिचर्ड बर्टन, रोबर्ट लुई, स्टीवेंसन, जॉर्ज मेरीडिथ, सेमुअल बटलर और टामस हार्डी इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यासकार हुए। हार्डी के उपन्यास भी डिकन्स और थैकरे के समान अत्यन्त लोकप्रिय हैं। "दि रिटर्न ऑफ दी नेटिव", "दी मेयर ऑफ केस्टरब्रिज", "दी वुडलेन्डर्स", "टैस ऑफ दी डयूवर वाइल्स", "फार फ्राम दी मैडिंग क्राउड", 'ए पेयर ऑफ ब्लू आइज' इत्यादि अनेक प्रसिद्ध उपन्यास हैं। हार्डी की शैली आकर्षक, गम्भीर और प्रभावोत्पादक है, जिसमें कथाशिल्प है। लेखक का अनुभूतिपूर्ण व्यापक दृष्टिकोण उसके उपन्यासों में चित्रित हुआ है। हार्डी के उपन्यासों की कथावस्तु बड़ी रोचक एवं सुगठित है। यथार्थ-वादी उपन्यासकार होने के नाते उन्होंने रूपविधान और टैकनिक वैज्ञानिक ढंग से ग्रहण किया है। यथार्थवादी उपन्यासकार के सामने सबसे बड़ी कठिन समस्या यह है कि एक ओर तो जीवन के संघर्षों का उस व्यापक वर्णन करना पड़ता है; दूसरी ओर, उसकी वर्णन शैली आकर्षक और कलात्मक होनी चाहिए। उपन्यास में प्रकृतिवाद से तात्पर्य उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से होता है, जो उपन्यासकार की बौद्धिकता के द्वारा प्रकट होता है। वर्तमान उपन्यासकार वैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टिकोण से घिरा हुआ है और अब उसे काल्पनिक कथानक को ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने कथानक का चुनाव जग-जीवन से करता है। भौतिक आधार के द्वारा उसके उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण होता है, फिर भी बड़े-बड़े उपन्यासकारों ने (वाल्टर स्कॉट) कथावस्तु को अपनी आवश्यकतानुसार तोड़ा-मरोड़ा है।

मध्य विक्टोरियन उपन्यासकारो ने विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि को अपनी इच्छानुसार ग्रहण किया। जार्ज इलियट ईश्वर पर अविश्वास करती है, पर व्यावहारिक क्षेत्र मे उसकी मान्यता भी बतलाती है। मेरीडिथ के उपन्यासों मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण अधिक पाया जाता है। हार्डी के लिए भाग्य प्रबल है। एक ओर वह प्राचीन संकीर्णता का बहिष्कार करता है और दूसरी ओर, जो नूतन सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, वह भी सकीर्ण है।

हार्डी प्राचीन परम्पराओ को नये रूप में प्रस्तुत करने में पटु है। अंग्रेजी के नवीन उपन्यासो का दृष्टिकोण मनोविश्लेषणवादी रहा है, जिनमे जीवन की प्रतिदिन की घटनाओ की यथार्थ अभिव्यक्ति है। फ्रायड की गुत्थियाँ विस्तारपूर्वक सुलझाने की चेष्टा की गयी है। फ्रॉइड ने अवचेतन मन और दमित इच्छाओं का विश्लेषण किया है। इस समय के उपन्यासकारो ने इसे मूल आधार मान कर समस्यामूलक उपन्यास रच डाले। जीवन की विविधता व अनेकरूपता विस्तारपूर्वक आधुनिक उपन्यासो में आयी है। इनका उदार दृष्टिकोण है। प्राचीन पीढ़ी के उपन्यासो को अनुदारवादी रचनाओ की श्रेणी मे रखना उचित जान पडता है, जिनमे कहीं चरित्र पर महत्व दिया गया है और कही घटना की महत्ता ने चरित्र का निर्बल बना दिया है। प्राचीन उपन्यासों में उपन्यासकार एक तटस्थ पात्र के समान सारे कार्य व्यापारों का सर्वेक्षण और वर्णन करता है। उसका एक विशेष लक्ष्य होता है, पर वर्तमान उपन्यासकार मनोविश्लेषण-प्रणाली को अपनाकर मानव-चेतना को अधिक सुस्पष्ट करने की चेष्टा करता है।

यूरोपीय साहित्य की सब प्रवृत्तियो का सूक्ष्म निरीक्षण करने के उपरान्त हमारा निष्कर्ष है कि पन्द्रहवीं और सोलहवी शताब्दी के साहित्य मे नवजागरण का युग था। अठारहवीं और उन्नीसवी शताब्दी में जन साधारण के विचारो मे आमूल परिवर्तन हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी की रोमांटिक धारा ने इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, स्पेन और इटली इत्यादि राष्ट्रो के साहित्यकारो को अत्यधिक प्रभावित किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही साहित्यिक विचारधारा मे एक अभूतपूर्व क्रान्ति हुई, जिस पर नवीन मनोविज्ञान तथा मार्क्सवाद के भौतिकवाद के सिद्धान्त का अटूट प्रभाव पडा। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त यूरोपियन गद्य का विकास हुआ और युद्धोत्तर-काल मे प्राउस्ट जैसे महान् लेखकों ने मन की क्रियाओ और भिन्न अवस्थाओ का सफल निरूपण उपन्यासों में किया है। इसी समय बालजक के सामाजिक उपन्यास ख्याति पा रहे थे, अतियथार्थवाद की भी धूम मची। दमित इच्छाओं के चित्र उतारे गये।

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर साहित्यिक गतिविधि मे क्षीणता आ गयी, जिसका मूल कारण था कि मानव के अन्दर अपने अस्तित्व के प्रति मोह उत्पन्न हो गया और उनका सारा जीवन संघर्षमय बन गया। देश-प्रेम की भावना ने जोर पकडा। जर्मनी के नीत्से ने एकदेशीयता की भावना को व्यापक बनाया। उपन्यास-साहित्य तो विशेषरूप से स्थानीय जीवन के चित्रों से रंग गये। सन् १८८० के लगभग

आध्यात्मिक और वैज्ञानिक भौतिक दृष्टिकोणों में संघर्ष आया, जिसने एक ओर आदर्शवादी विचारधारा को जन्म दिया; दूसरी ओर, डार्विन, मार्क्स और टेन ने भौतिकतावादी आधारभूमि तैयार की। यह यथार्थवाद और प्रकृतिवाद का पोषण करके उपन्यासों में सजीव साकार चित्र उतारने का प्रयास करने लगी।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् साहित्य में अभिव्यंजनावाद का जन्म हुआ, जिसने मनोविश्लेषण की महत्ता स्थापित की। इब्सन के प्रारम्भिक उपन्यासों ने नैतिकता और सुधार की भावना पर बल दिया। सामाजिक जीवन में नारियों का क्या स्थान होना चाहिए, इस समस्या पर भी उस युग में पर्याप्त प्रकाश डाला गया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक रोमांटिक प्रणाली का प्रभुत्व रहा, पर धीरे-धीरे बौद्धिकता और यथार्थवादी धरातल पर उपन्यास रचे जाने लगे। समस्त यूरोपीय साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि अंग्रेजी उपन्यासों का उन्नीसवीं शताब्दी में अभूतपूर्व विकास हुआ है। जेन आस्टेन, वाल्टर स्कॉट, डिकेंस, थैकरे, ट्रालोप, गिसिंग, जार्ज इलियट, ब्राटीज जैसे महान् उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं से साहित्य के भण्डार को भरा है। मेरीडिथ और हार्डी के उपन्यासों में दो विभिन्न दृष्टिकोण परिलक्षित हुए। रोमांटिक, सामाजिक, साहसिक-यात्रा, प्रधान, चरित्र-प्रधान और घटना-प्रधान सब प्रकार के उपन्यास रचे गये तथा कथानक की रोचकता और भाषा-शैली की पटुता पाई गयी।

यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् १८७० से लेकर १९१० तक यूरोपीय उपन्यास साहित्य खूब विकसित हुआ। शायद इसीलिए कहा जाता है कि आधुनिक उपन्यासों का जन्म और विकास मुख्यतः यूरोप में हुआ, वहीं से यह धारा हिन्दी साहित्य में आई, पर यह प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों की पृष्ठ-भूमि, उसका बीज, उस समय की प्रचलित विचारधारा, मनुष्य की कथा कहने और सुनने की प्रवृत्ति, देश की सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था ये सब वे परिस्थितियाँ हैं, जिन्होंने हिन्दी के उपन्यास साहित्य को सहज में ही जन्म दिया है और यह अधिकारपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दी का उपन्यास साहित्य पश्चिम के अनुकरण पर नहीं रचा गया। हमारे भारतीय समाज की स्वाभाविक परिस्थितियों ने उपन्यास साहित्य को जन्म दिया है। हो सकता है कि केवल नाम की दृष्टि से उपन्यास को समीक्षकों ने विदेशी रूप मान लिया हो, लेकिन वास्तव में हिन्दी उपन्यास की जन्म-भूमि पूर्व है, भारत है। वह भारतीय संस्कृति में जन्मा और पोषित होकर विकसित हुआ है। इसलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने लेख में लिखा है: "विधाता रचित इतिहास और मनुष्य रचित कहानी, इन्हीं दो से मनुष्य का संसार है।"[1]

---

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (निबन्ध) : "सरस्वती मासिक पत्रिका", नवम्बर, सन् १९३३ का अंक।

वैदिक साहित्य, सहिता, ऋचाएँ, उपनिषद् महाकाव्य, नाटक, सस्कृत के ग्रन्थो के साथ ही साथ पाली, प्राकृत और बौद्ध धर्म सम्बन्धी जातक कथाएँ, पचतन्त्र, हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, कथा सरित्सागर, गुणाढ्य की वृहत्कथा क्षेमेन्द्र की वृहत्कथा, मजरी ये सब आख्यान साहित्य है जिसने भारतीय धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक जीवन में जड़ें जमा रखी थी। आदिमानव की सृष्टि के साथ ही आख्यान साहित्य का आरम्भ हुआ, जिसका मूल रूप उपदेशात्मक एव शिक्षाप्रद है तथा जिसका आधार धार्मिकता और कट्टर नैतिकता है। अत यह धारणा तो जान लनी ही पडती है कि हिन्दी उप यास के विकास मे सस्कृत आख्यान साहित्य का तो अवश्य ही प्रभाव रहा होगा।

माता और पुत्री का तो निकटतम सम्ब ध है, पर विदशी साहित्य मे (हिन्दी) हिन्दी उपन्यास के सूत्र निश्चित करना और खोजना तो एक प्रलाप सा जान पडता है। हो सकता है कि वैज्ञानिक अन्वेषणो के बाद, जब दुनिया एक-दूसरे के साथ जोट दी गयी, तब योरोपीय और हि दी उपन्यास साहित्य एक दूसरे के सम्पक म आया होगा और ससर्ग से प्रभावित हुआ होगा, पर प्रेमचन्द से पूव क उपन्यासा का तो मूल उत्पत्ति स्थान भारतवर्ष है। भारत क रम्य तपोवन आश्रम, सस्कृति और देवभाषा सस्कृत ही उसके जन्म और विकास म पूर्ण सहायक है। जहाँ तक उर्दू और फारसी की कथा कहानिया का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो सोचने क लिए अवकाश है, क्योकि देश म मुस्लिम सस्कृति लगभग छ सौ वर्ष रही। मुस्लिम शासन रहा, अतएव हिन्दू सस्कृति पर उसका अविच्छिन्न प्रभाव पडा। 'किस्सा तोता मैना, किस्सा साढे तीन यार, चहार दर्वेश, बागो बहार किस्सा हातिमताई, किस्सा शोरी फरहाद, दास्तान अमीर हमजा और तिलस्म ई होशरुबा," इत्यादि आख्यानो का जनता में बडा प्रचार हुआ क्योकि इनमें मानव-मात्र की कौतूहल प्रवृत्ति थी और लोकरजन की दृष्टि से इनकी उपयोगिता बहुत प्रमाणित हुई। इस साहित्य ने जन-साधारण का मन लुभाया तथा साहित्य की अविरल धारा को चिरन्तन रूप में प्रत्येक देश, काल और युगीन मानव-मात्र को स्पर्श करती हुई प्रवाहित किया है। वह सृष्टि से परे है पर सारी सृष्टि को अपने साथ जोड कर आगे विकसित होती है।

प्रथम यूरोपीय महायुद्ध का सारे विश्व पर प्रभाव पडा। विश्व की सस्कृति झकझोर दी गयी। मानव को अपने अस्तित्व का ज्ञान हुआ, उसके हृदय में एक भय उत्पन्न हुआ कि सबल राष्ट्र किसी भी समय निर्बल राष्ट्रों पर हावी हो सकते हैं, अत राजनैतिक परिस्थितियो का प्रत्येक देश की सामाजिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक स्थिति पर प्रभाव पडा, पर इससे पहले ही सन् १९१४ म हिन्दी उपन्यास का जन्म भारत में हो चुका था। उसके मूल स्रोतो का उल्लेख हो चुका है। जिस पवित्र और शुद्ध सस्कृति ने प्राचीन उपन्यासो को जन्म दिया, वह 'सत्य, शिव और सुन्दरम्' के सिद्धान्त में अभिभूत हो रही है। उसके कण-कण में विश्व-करुणा की

भावना व्याप्त है। अतः भारतीय हिन्दी उपन्यास अपनी देशी गतिविधियों में जन्मा है, उसकी उत्पत्ति भारत में हुई और यहीं उसका पालन-पोषण तथा विकास हुआ और हो रहा है।

अतः यह कहना भूल होगी कि उपन्यास यूरोप की देन है, जब यूरोप में साहित्य की पृष्ठ-भूमि भी तैयार नहीं हुई थी। भारतवर्ष में प्रेमाख्यान काव्यों की धूम मची हुई थी, जिन्हें रोमांस (Romance) भी कह सकते हैं, जैसे दण्डीकृत 'दशकुमार चरित' और बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी'। ये सारे प्रेमाख्यान उपन्यास के अत्यधिक निकट हैं और उस समय के उपन्यासों के स्वीकृत रूप हैं। उपन्यासों का आधुनिक ढाँचा पश्चिम से आया। हो सकता है, परन्तु अपने भारतीय रूप में उपन्यास पहले से ही हमारे यहाँ वर्तमान थे।

चतुर्थ अध्याय

(अ) भारतेन्दुयुगीन हिन्दी उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ

(सन् १८७० से सन् १९०० तक)

हिन्दी उपन्यासों का विस्तृत आलोचना करने के लिए हमारे लिए सर्वप्रथम भारतेन्दु के आगमन के पश्चात् तत्कालीन परिस्थितियों का सिंहावलोकन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। साहित्य के विविध अंगों के लिए गद्य की अपेक्षा अनुभव हो रही थी और वह अब निखरी हुई भाषा तथा लगन का आकर पूर्ण पनपने का प्रयास करता हुआ दिखाई देने लगा।

इतिहासकारों का मत है कि स्वयं भारतेन्दु ने कोई उपन्यास नहीं लिखा, पर डा० माताप्रसाद के अनुसार लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु" से भी पूर्व 'मनहर' उपन्यास, जो सन् १८७१ में लिखा गया था, उसका उल्लेख मिलता है, जिसके सम्पादक हैं सदानन्द मिश्र एवं शम्भुनाथ मिश्र। लेखक का नाम नहीं दिया गया है, किन्तु यह अनुवाद नहीं ज्ञात होता है क्योंकि यह सम्पादकों द्वारा केवल 'संगृहीत और संशोधित' कहा गया है। इसकी कथावस्तु के सम्बन्ध में भी कोई संकेत नहीं हैं, यह अवश्य खेदजनक है।[1]

हिन्दी के इस गद्य युग में उपन्यास एक महान् घटना थी। इसकी लोकप्रियता ने इसे सुदृढ भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया। साधारणतः लाला श्रीनिवासदास को ही हिन्दी उपन्यास का जन्मदाता माना जाता है और "परीक्षा गुरु" उनका प्रथम मौलिक उपन्यास है, जिसकी रचना सन् १८८२ में हुई। इससे पूर्व श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा रचित 'भाग्यवती' उपन्यास लिखा गया। अटूट खोज के पश्चात् आज उसका पता चला है।

हिन्दी उपन्यासों का आरम्भ १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही माना जाना चाहिए। भारतेन्दु युग जीवन की नवीन परिस्थितियों एवं नूतन चेतना' को लेकर अवतरित हुआ। उनसे पूर्व रीतिकालीन सामन्तीय रूढिवादी परम्पराओं के संकेत साहित्य में मिलते थे। उनके आगमन के साथ ही मानव-जीवन की बहुमुखीय

---

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त : "हिन्दी पुस्तक साहित्य", पृ० २६।

परिपाटी प्रकट हुई। अँग्रेजों का आतंक, राष्ट्र-प्रेम की भावना, भारतीयों की प्रथम चाटुकारिता और फिर विद्रोह की भावना इत्यादि प्रसंग इस बात के सूचक हैं कि यह वह युग था जब आत्मनिरीक्षण और यथार्थ की सत्य सार्थकता जान पड़ी। भारतेन्दु-युगीन साहित्य में रूढ़िवादिता का विरोध है। प्राचीन भारतीय संस्कृति से प्रेम तथा राष्ट्रीयता के प्रति आकर्षण, धर्मनिष्ठा और सामाजिक विकारों का उल्लेख उस युग की मूल वस्तु-स्थिति है। धार्मिक उक्तियों के साथ ही साथ देश की निर्धनता, अकाल, महामारी, रोग, मँहगाई, कलह, आलस्य, कायरता मदिरा सेवन, टैक्स, पुलिस के अत्याचार, सामन्तशाही और जमींदारों का शोषण, फैशन, धूम, नैतिक पतन, कुप्रथाएँ, बाल-विवाह, सती-प्रथा इत्यादि सब विकारों ने साहित्यकारों के मन पर अमिट प्रभाव जमा रखा था। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी साहित्यकारों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने अपनी तत्कालीन रचनाओं में इसकी अभिव्यक्ति की है। इस युग में भाषा, भाव और शैली क्षेत्र में नवीनता देखी गयी। "भारतेन्दु के सहयोगियों ने कई मौलिक उपन्यास लिखे किन्तु अधिकतर बंगला से नये ढंग के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया गया। बंगला में ये उपन्यास अंग्रेजी उपन्यासों के ढंग पर अन्य भारतीय भाषाओं से पहले से ही लिखे जाने लगे क्योंकि बंगाल प्रान्त पर अंग्रेजों का अधिकार अन्य प्रान्तों से पहले हो चुका था और बंगाल साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव भी पड़ चुका था।"[1]

भारतेन्दु युग से पूर्व ही बंगला के कई श्रेष्ठ उपन्यासकार, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय रमेशचन्द्र दत्त, तारकनाथ सेन उपन्यास-रचना करके साहित्य का अपूर्व भण्डार भर रहे थे।

सम्वत् १९३० के लगभग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'बाल बोधिनी' नामक पत्रिका के लिए 'मदालसोपाख्यान' नामक एक छोटी सी पौराणिक कहानी लिखी। उसके बाद 'एक कहानी—कुछ आप बीती कुछ जग बीती' के नाम से अपना चरित्र सम्बन्धी वृत्तान्त लिख रहे थे, जो भारतेन्दु ग्रन्थावली में संगृहीत किया गया है। पता नहीं चलता है कि कितना अंश उन्होंने लिखा, पर एक पत्र में इसका केवल प्रथम परिच्छेद प्रकाशित हो गया था, इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं। स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र की यह रचना हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अद्भुत और मूल्यवान वस्तु प्रमाणित हुई है।

स्वर्गीय राधाकृष्णदास लिखते हैं: "उपन्यासों की ओर इनका पहले ध्यान कम था। इनके अनुरोध तथा उत्साह से पहले पहल 'कादम्बरी' और 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद हुआ। 'राधारानी', 'स्वर्णलता' आदि उन्हीं के अनुरोध से अनुवादित हुए। 'चन्द्रप्रभा' और 'पूर्णप्रकाश' को अनुवाद कराके स्वयं भारतेन्दु ने शुद्ध किया था। 'राणा राजसिंह' को भी ऐसा ही कराना चाहते थे, उसका अनुवाद पूरा हो गया था।

---

१. बाबू ब्रजरत्नदास : "हिन्दी उपन्यास साहित्य", पृ० १२८।

प्रथम परिच्छेद स्वयं नवीन लिखा और आगे कुछ शुद्ध किया था। नवीन उपन्यास 'हमीर हठ' बड़े धूम से आरम्भ किया था, परन्तु प्रथम परिच्छेद लिखकर चल बसे। यदि भारतेन्दु कुछ दिनों और भी जीवित रहते तो उपन्यासों से भाषा के भण्डार को भर देते क्योंकि अब इनकी रुचि इस ओर फिरी थी।"[1]

"एक कहानी—कुछ आप बीती" का प्राप्त अंश यह है—

प्रथम खेल

"जमीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या ?
बदलता है रंग आसमा कैसे कैसे ?"

—हम कौन हैं, किस कुल में उत्पन्न हैं, आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पढ़े चलिये, जी बहलाने से काम है। अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि मेरा जन्म जिस तिथि को हुआ वह जैन और वैदिक दोनों में बड़ा पवित्र दिन है।

"सम्वत् १६३० में मैं जब तेईस वर्ष का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था। बसंत ऋतु, हवा ठंडी चलती थी। साँझ फूली हुई, आकाश में एक ओर चन्द्रमा और दूसरी ओर सूर्य पर दोनों लाल-लाल, अजब समा बँधा हुआ, कसेरू, गंडेरी और फूल बेचने वाले सड़क पर पुकार रहे थे। मैं भी जवानी की उमंगों में चूर, जमाने की ऊँच-नीच से बेखबर, अपनी रसिकाई के नशे में मस्त, दुनिया के मुफ्तखोर सिफा-रिशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भलीभाँति पहिचानता था।"[2]

भारतेन्दु के प्रोत्साहन से 'कादम्बरी' तथा 'दुर्गेशनंदिनी' का अनुवाद ठाकुर गदाधरसिंह ने हिन्दी में किया और 'स्वर्णलता' का राधाकृष्णदास ने किया था। 'राधारानी,' 'चन्द्रप्रभा', 'पूर्णप्रकाश' तथा 'सौन्दर्यमयी' का अनुवाद श्रीमती मल्लिका-देवी ने 'चन्द्रिका' से अनूदित किया था। भारतेन्दु के सहयोगियों ने उपन्यास साहित्य के विकास में जो अद्‌भुत कार्य किया है, वह सदा सराहनीय रहेगा। स्वर्गीय बदरीनारायण चौधरी बाबू हरिश्चन्द्र की सम्पादन-कला की बहुत प्रशंसा किया करते थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है : "बड़ी तेजी के साथ वे चन्द्रिका के लिए लेख और नोट लिखते और मैटर को बड़े ढंग से सजाते थे। हिन्दी गद्य साहित्य के इस आरम्भ-काल में ध्यान देने की बात यह है कि इस समय जो थोड़े से गिनती के लेखक थे, उनमें विदग्धता और मौलिकता थी और उनकी हिंदी हिन्दी होती थी। बंगला, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी के अनुवाद का वह तूफान जो पच्चीस-तीस वर्ष पीछे चला और जिसके कारण हिन्दी का स्वरूप संकट में पड़ गया, उस समय नहीं था।"[3]

---

१. बाबू ब्रजरत्नदास : "हिन्दी उपन्यास साहित्य," पृ० १२६।
२. बाबू ब्रजरत्नदास द्वारा सपादित : "भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग ३", पृ० ८१३।
३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ४६०।

बाबू हरिश्चन्द्र के ही जीवन-काल में लेखकों और कवियों का एक समुदाय उत्पन्न हो गया था, जैसे पण्डित बदरीनारायण चौधरी, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहनसिंह, लाला श्रीनिवासदास, पण्डित बालकृष्ण भट्ट, पण्डित केशवराम भट्ट, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित राधाचरण गोस्वामी इत्यादि महानुभावों ने मिलकर हिन्दी साहित्य के विकास में अद्भुत योगदान दिया है। अनेक प्रकार के गद्य, प्रबन्ध, नाटक, उपन्यासों की रचना शनैः शनैः होती रहीं और भावी युग के लिए एक विकसित पृष्ठ-भूमि तैयार हो गयी। आचार्य शुक्ल ने आगे कहा है: "भारतेन्दुजी में हम दो प्रकार की शैलियों का व्यवहार पाते हैं। उनकी भावावेश की शैली दूसरी है और तथ्य निरूपण की शैली दूसरी।"[1]

भारतेन्दु की गद्य-शैली भावना-प्रधान है और साथ ही वस्तु-निरूपण की ओर विशेष ध्यान रखा गया है। भाव के गुम्फन में प्रभावोत्पादकता है और पाठकों का रंजन करने की अद्भुत शक्ति है। कहा जाता है कि लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' जिसकी प्रथम आवृत्ति सन् १८८२ में तथा द्वितीय आवृत्ति २५ नवम्बर सन् १८८४ में हुई। इसकी सन् १८८४ की प्रति मैंने स्वयं मथुरा से प्राप्त की है। यद्यपि वह बड़ी जीर्ण अवस्था में है, पर मेरे अनुसंधान के काम में इस दुर्लभ प्रति से मुझे असीम लाभ हुआ है। इस उपन्यास में अंग्रेजी के शब्दों का प्रचुर व्यवहार हुआ है तथा लेखक के आत्म 'निवेदन' के द्वारा यह प्रकट होता है कि इसका मूलाधार उपन्यास की अंग्रेजी प्रणाली है जिसका भारतीय संस्करण 'परीक्षा गुरु' है। निवेदन अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में है।[2]

हिन्दी उपन्यास के नव-जागरण की झलक 'परीक्षा गुरु' से पूर्णरूप से मिलती है। इससे पूर्व हिन्दी जगत संस्कृत के उपदेशमूलक आख्यान तथा विस्मयकारी कथाओं और प्रेमाख्यानों से अपना मनोरंजन करती रहती थी, जिन कथाओं में कृत्रिमता और रोमानी प्रेम भरा पाया गया। ऐसा कहना सत्य जान पड़ता है कि 'एक कहानी—कुछ आप बीती कुछ जग बीती" में भारतेन्दु ने 'परीक्षा गुरु' के लिए पृष्ठ भूमि

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ४६०-४६१।

2. Dedication
To
Lala Shri Ram, M. A.,
Alwar.

My dear Friend,

I dedicate this book, my humble attempt at Novel writing to you as a token of the genuine and sincere friendship which has existed between us for many years and as a tribute of the esteem I have always felt for you for the deep interest you take in every thing connected with the weal of the people of India by showing them by your own example the best means of civilizing the country.

Delhi,
The 25th November, 1884.

Yours *Sincerely,*
Sri Niwas Dass

ही तैयार कर दी थी । 'परीक्षा गुरु' में हमें आत्मचरित्र-प्रणाली के दर्शन होते हैं। लाला श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा गुरु' की भूमिका में हिन्दी में लिखा है : "अब तक नागरी और उर्दू भाषा में अनेक तरह की अच्छी पुस्तकें तैयार हो चुकी हैं, परन्तु मेरे जान इस रीति से कोई नहीं लिखी गयी, इसलिए अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी। परन्तु नई चाल होने से ही कोई अच्छी नहीं हो सकती, बल्कि साधारण रीति से तो नई चाल में तरह-तरह की भूल होने की सम्भावना रहती है और मुझको अपनी मन्द बुद्धि से और भी अधिक भूल होने का भरोसा है, इसलिए मैं अपनी अनेक तरह की भूलों से क्षमा मिलने का आधार केवल सज्जनों की कृपा-दृष्टि पर रखता हूँ।"[१]

लाला श्रीनिवासदास ही प्रथम उपन्यासकार हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य में नया मार्ग दिखाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सम्वत् १९३४ में प्रकाशित श्रद्धाराम फिल्लौरी के 'भाग्यवती' नामक सामाजिक उपन्यास का केवल उल्लेख किया है।[२]

शुक्लजी ने भी 'परीक्षा गुरु' को अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास मान लिया है। लाला श्रीनिवासदास (सम्वत् १९०८ से १९४४) तक भारतेन्दु मण्डल के एक प्रतिभाशाली सदस्य थे। इन्होंने 'परीक्षा गुरु' के निवेदन में बतलाया है कि "अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी।" लेखक ने अंग्रेजी में इसे 'नॉवेल' बतलाया है और हिन्दी में "अनुभव द्वारा उपदेश मिलने की एक संसारी वार्त्ता" कहा है।

अपनी व्यवहार-पटुता तथा बुद्धि-प्रवणता के कारण अठारह वर्ष की अल्प आयु में ही लालाजी राजा लक्ष्मणदास की कोठी के प्रधान मुनीम बना दिये गये। वे नगर के म्यूनिसिपल कमिश्नर और ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे। संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, फारसी और उर्दू भाषा और साहित्य का इन्हें उच्च कोटि का ज्ञान था। व्यापारिक झंझटों में उलझे रह कर भी अपनी साहित्य-रचना के लिए यह मार्ग खोज निकाल लेते थे। 'परीक्षा गुरु' उपन्यास की रचना के समय तक तो ये तीन नाटक लिख चुके थे, जिनमें 'रणधीर प्रेममोहिनी' को अपूर्व ख्याति प्राप्त हुई है। यह उपन्यास मध्य वर्ग के सामाजिक जीवन का प्रतिनिधि जागरूक उपन्यास है, जिसमें सामाजिक यथार्थ चित्रण उपस्थित हुआ है। इस उपन्यास का कथानक बहुत ही आकर्षक है। नई रोशनी के व्यापारी मदनमोहन को हम उसके खुशामदी और स्वार्थी मित्रों के बीच घिरा हुआ पाते हैं, जो आधुनिक वस्तुओं की चकाचौंध में पड़ जाता है और अपनी फिजूलखर्ची की आदत के कारण दिवालिया हो जाता है। इस समय एक सच्चा और शुभचिन्तक मित्र उसकी सहायता करता है और धीरे-धीरे वह अपने ऋण से मुक्त होता

१. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु", २५ नवम्बर सन् १८८४ 'निवेदन', पृ० १।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४४६।

है। लेखक ने बतलाया है कि बाद में नायक सुधर जाता है। 'परीक्षा गुरु' की कथा-वस्तु सरल एवं साधारण सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालती है, जिसमें विस्मयकारी घटनाओं की आवृत्ति नहीं है। कोई रोमांस अथवा प्रेम-प्रसंग भी ऐसा नहीं आया है, जो पाठकों को उद्दीप्त करे। लेखक की उपन्यास-कला में नाटकीय तत्वों का समावेश है, जिससे उसमें अद्भुत आकर्षण-शक्ति आ गयी है।

'परीक्षा गुरु' उपन्यास के पात्र मानवीय धरातल पर जीवन-यापन करते हुए दिखाई देते हैं। उनमें लौकिक और मानवीय निर्बलताएं हैं। वे अपने दुःख में दुखी और सुख में सुखी हैं। उनमें गुण और अवगुण दोनों का ही समावेश हुआ है। अपनी इन्हीं मानवीय प्रवृत्तियों के कारण पात्रों ने हमें आकर्षित किया है। उदाहरण के लिए, नायक लाला मदनमोहन, उसके मित्र लाला ब्रजकिशोर, मुन्शी चुन्नीलाल और मास्टर शिम्भूदयाल इत्यादि सारे पात्र उस समय की देश, काल और परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं।

लाला मदनमोहन दिल्ली का एक कल्पित रईस है, जो रईस-परम्परा का प्रतिनिधि है। अंग्रेजी सौदागर मिस्टर ब्राइट भी इस बात का सूचक है कि हमारे देश में ब्रिटिश लोगों ने केवल शासन के द्वारा ही नहीं, वरन् व्यापारिक मार्ग का भी आश्रय लेकर भारतीय जनसाधारण को कितना मोह रखा था। उन्हें नई-नई कलात्मक वस्तुओं के द्वारा चकाचौंध में डाल रखा था, जिससे वे अपना समस्त पैसा फूंककर उनको क्रय करके दिवालिया तक बन जाने को तैयार रहते थे। 'परीक्षा गुरु' के द्वारा पात्र को प्रकार के प्रकाश में आए एक वर्ग का प्रतिनिधि तो लाला मदनमोहन है और दूसरे का प्रतिनिधि उनका मित्र ब्रजकिशोर है, जो यद्यपि नई रोशनी का है, पर फिर भी उसके हृदय में अहंभाव तथा स्वदेशाभिमान है और वह चालाकी की दुनिया से सदैव सतर्क रहता है। यह व्यवहारिक बुद्धि वाला पात्र है, जो ईमानदारी के द्वारा अपने मित्र की सहायता करता है। लाला मदनमोहन में पढ़े लिखे नवयुवकों के सारे गुण-अवगुण वर्तमान हैं, जैसे झूठी सम्मान की भावना, व्यर्थ का अहंकार, कृत्रिम जीवन, रईसी का ठाठबाट, अकर्मण्यता, अंग्रेजी सभ्यता की नकल इत्यादि सारी प्रवृत्तियाँ मूल रूप में चित्रित हुई हैं। उस समय की मध्यवर्गीय जनता में ये सारी कमजोरियाँ एकत्रित होकर समावेश कर गयी थीं और पुरानी पीढ़ी के प्रतीक मदनमोहन के पिता में साधारण प्रवृत्तियाँ ही दूसरे प्रकार की थीं। 'परीक्षा गुरु' में लिखा गया है :

"मदनमोहन का पिता पुरानी चाल का आदमी था। वह अपना बूता देखकर काम करता था और जो करता था, वह कहता नहीं फिरता था। उसने केवल हिन्दी पढ़ी थी, वह बहुत सीधा-सादा मनुष्य था, परन्तु व्यापार में बड़ा निपुण था। वह लोगों की देखा-देखी नहीं वरन् अपनी बुद्धि से व्यापार करता था। इस समय जिस तरह बहुधा मनुष्य तरह-तरह की बनावट और अन्याय से औरों की जमा मार कर साहूकार बन बैठते हैं, सोने-चाँदी की जगमगाहट के नीचे अपने घोर पापों को छिपा

कर सज्जन बनने का दावा करते हैं, ऐसा उसने नही किया था, वह आप कभी बढ़-कर न चला। वह कुछ तकलीफ से नही रहता था, परन्तु लोगो को झूँठी भडक दिखाने के लिए फिजूलखर्ची भी नही था। वह अपने धर्म पर दृढ था, ईश्वर में बडी भक्ति रखता था। वह अपने काम धन्धे म लगा रहता था इसलिए हाकिमों और रईसो से मिलने का उसे समय नही मिल सकता था। बहुधा उनसे मिलने की कुछ आवश्यकता भी न थी क्योंकि देशोन्नति का भार पुरानी रूढि के अनुसार केवल राज-पुरुषो पर समझा जाता था।"[1]

दूसरी ओर मदनमोहन के चरित्र म असीम भिन्नता है 'अब समय बदल गया। इस समय मदनमोहन के विचार और ही हो रहे हैं। जहाँ देखो अमीरी ठाठ अमीरी कारखाने बाग की सजावट का हाल हम पहले ही लिख चुके हैं। मकान म कुछ उससे अधिक चमत्कार दिखाई देता है। बैठक का मकान अंग्रेजी चाल का बनवाया गया है। उसमें बहुमूल्य शीशे बर्तन के सिवाय तरह तरह का उम्दा से उम्दा सामान मिसल से लगा हुआ है। सहन इत्यादि म चीनो की ईंटों का सुशोभित फर्श काश्मीर के गलीचा को मात करता है तबेले म अच्छी से अच्छी विलायती गाड़ियाँ अथवा जीन सवारी के घोड़े बहुतायत से मौजूद हैं। साहब लोगों की चिटिठयाँ नित आती जाती हैं अंग्रेजी तथा देशी अखबार और मासिक पत्र बहुत से लिये जाते हैं और उनमें से खबरें अथवा आर्टिकलों को कोई देखे या न देखे परन्तु सौदागरों के इश्तहार अवश्य देखे जाते हैं नई फैशन का चार्ज अवश्य मँगाई जाती हैं। मित्रों का जलसा सदैव बना रहता है, अभी कभी कभी तो अंग्रेजों को भी बाल दिया जाता है, मित्रों के सत्कार करने मे यहाँ किसी तरह की कसर नहीं रहती और जो लोग अधिक दुनियादार होते है, उनकी तो पूजा बहुत ही विश्वासपूर्वक की जाती है। मदनमोहन की अवस्था पच्चीस तीस वर्ष स अधिक न होगी। वह प्रगट म बड़ा विवेकी और विचारवान मालूम होता है, नये आदमियों से बड़ी अच्छी तरह मिलता है। उसके मुख पर अमीरी झलकती है। वह वस्त्र सादे परन्तु बहुमूल्य पहनता है।"[2]

"लाला मदनमोहन की पत्नी भारत य साध्वी नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जो पूर्णरूप से पति के नैतिक आदर्शों की अनुगामिनी है, जिसे पति के कार्यों में पूर्ण श्रद्धा है, जो पति की बुराई न कर सकती है न सुन सकती है। मूक रहकर पातिव्रत्य का श्रृंखला म बँधी हुई दुख सहकर भी पतिनिष्ठा म कमी नही आने देती। वह अपने दो नन्हे-नन्हे बच्चों के पालन पोषण में ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य समझती है।' मदनमोहन की स्त्री अपने पति की सच्ची प्रीतिमान, शुभचिन्तक, दुख सुख की साथिन और आज्ञा मे रहने वाली थी और मदनमोहन भी प्रारम्भ में उससे बहुत ही प्रीति रखता था, परन्तु जब स वह चुन्नीलाल और शिम्भुदयाल आदि नये मित्रों की

---

१ श्रीनिवासदास 'परीक्षा गुरु' (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० १०० ।
२. श्रीनिवासदास "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४ पृ० ८१ ।

-संगति में बैठने लगा, नाचरंग की धुन लगी, वेश्याओं के झूठे हाव भाव देखकर लोट-पोट हो गया। यह बिचारी सीधी-सादी सुयोग्य स्त्री अब बेदारी मालूम होने लगी। पहले-पहल कुछ दिन यह बात छिपी रही परन्तु प्रीति के फूल में कीड़ा लगे, पीछे वह रस कहाँ रह सकता है।"[1]

मुन्शी चुन्नीलाल ने लाला मदनमोहन के स्वभाव को भली-भाँति पहिचान लिया था। "लाला मदनमोहन को हाकिमों की प्रसन्नता, लोगों की वाह वाह, अपने शरीर में सुख और थाड़ खर्च में बहुत पैदा करने के लालच सिवाय किसी काम में रुपया खर्च करना अच्छा नहीं लगता था।"[2]

मास्टर शिम्भूदयाल को प्रथम लाला मदनमोहन को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए नौकर रखा गया था, पर जब उनका मन पढ़ने में अधिक नहीं लगा तब इस रईस लाला से मेल रखने में इन्होंने अपना हित समझा। जब वह बालक था तब वे उन्हें शेक्सपीयर के नाटकों में से 'कॉमेडी आफ एरर्ज' 'टवल्फ्थ नाइट' 'मच एडो अबाउट नथिंग,' बेनजानसन का 'एवरीमैन इन हिज ह्यूमर' 'गुलिवर्स ट्रेवल्स' आदि किस्से-कहानियाँ सुनाया करते और मनोरंजन करते रहते थे। पण्डित पुरुषोत्तमदास भी बचपन से लाला मदनमोहन के पास आया करते थे, जिसमें उन्हें भी पर्याप्त लाभ हो जाया करता था। ये अन्य सब मित्रों को सुखी देखकर उनसे ईर्ष्या करते थे। लाला ब्रजकिशोर सबसे अधिक बुद्धिमान और दयालु व्यक्ति था, जो एक ओर तो लाला साहिब की पत्नी को भी धैर्य बँधाता था और परिवार की आन्तरिक अवस्था को सुधारते हुए था, दूसरी ओर, वह मदनमोहन को भी पूर्णरूप से प्रसन्न रखकर उसे उसके कार्यों के प्रति सचेत करता रहता था। मिस्टर रसल मिस्टर ब्राइट के समान एक चुस्त व्यापारी और चालाक अंग्रेज मित्र था।

लाला ब्रजकिशोर मदनमोहन के प्रति पूर्ण शुभचिन्तक थे, इसी कारण अन्य मित्र उनसे ईर्ष्या करने लगे थे। उन्होंने लालाजी की पत्नी को "बहन" कह कर पुकारा और अपना भाई का कर्त्तव्य पूरा किया। लेखक ने लाला ब्रजकिशोर के बारे में लिखा है - "लाला ब्रजकिशोर गरीब माँ-बाप के पुत्र हैं, परन्तु प्रामाणिक, सावधान, विद्वान् और सरल स्वभाव हैं। इनकी अवस्था छोटी है तथापि अनुभव बहुत है, यह जो कहते हैं उसी के अनुसार चलते हैं।"[3]

ईमानदारी, सावधानी, व्यापारी के कर्त्तव्य, चालाकी, सुख-दुख, सार्वजनिक जीवन, म्यूनिसिपैलिटी से सम्बन्ध, फूट, कलह कर्ज के दुष्परिणाम, भोग विलास की प्रवृत्ति, नाच-रंग की आसक्ति, सुरापान, वेश्यागमन, स्वच्छाचार और स्वतन्त्रता इत्यादि विषयों पर 'परीक्षा गुरु' में पर्याप्त उद्धरण प्राप्त होते हैं। लाला श्रीनिवास-

---

१. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० ८६।
२. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० ३७।
३. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० ६५।

-दास स्थान-स्थान पर नैतिक धारणाओं की व्याख्या करते चलते हैं। उनका यथार्थ प्रतिपादन करते हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि इस उपन्यास की रचना का मूल उद्देश्य केवल लोकरंजन की भावना ही नहीं है, वरन् लोक कल्याण की प्रवृत्ति ने लेखक को कुछ प्रमुख धारणाओं और आदर्शों को अपनाने के लिए नियमबद्ध कर दिया है। जैसे 'असल में अपनी भूल है और अपनी भूल पर दूसरों को सताना बहुत अनुचित है।'[1]

ब्रजकिशोर ने स्थान-स्थान पर संकेत किया है कि देश के अधोपतन का मूल कारण फूट और एकता का विनाश है। देश में प्राकृतिक साधनों का भण्डार भरा पड़ा है, पर अपनी अकर्मण्यता के कारण देशवासी उन्नति नहीं कर पाते। 'परीक्षा गुरू' की पृष्ठ-भूमि पर प्रथम साहित्यिक लम्बे चौड़े उपन्यास की रचना हुई है, जिसमें कथानक की उपयोगिता के साथ ही साथ समस्त पात्रों का चरित्र चित्रण भी नैतिक आधार लेकर किया गया है। पापी दण्डित होते हैं और पुण्यात्मा मोक्ष के अधिकारी हैं। पापी मनुष्य अपनी भूलों पर प्रायश्चित करते हैं। यह प्रायश्चित की भावना मनुष्य की दुर्वृत्तियों को आवृत्त करके रखती है और उपन्यास अपने निरवार में आ जाता है। जीवन का आदर्श परिलक्षित होता है। अनेक उपन्यासकार तो हुए हैं, पर लाला श्रीनिवासदास के समान कथा कौशल और शिल्पविधि अन्य लेखकों में रत्ती भर भी नहीं पायी गयी। उपन्यास की विधाएँ पहली बार इन्हीं में उपलब्ध हुई।

"भाषा और शैली" की दृष्टि से 'परीक्षा गुरू" की भाषा व्यावहारिक और मिश्रित दिखाई देती है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है "श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा गुरू' नाम का एक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखा, वे खड़ी बोली की बोलचाल के शब्द और मुहावरे अच्छे लाते थे। उनकी भाषा संयत और साफ सुथरी तथा रचना बहुत कुछ सोद्देश्य होती थी।"[2]

श्री शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है: 'कथावस्तु तथा वर्णन प्रणाली दोनों ही की दृष्टि से 'परीक्षा गुरू' उस युग की प्रथम रचना है। भारतेंदु काल के इस प्रारम्भिक 'परीक्षा गुरू' के ही निर्दिष्ट मार्ग का उपन्यास वाङ्मय ने अनुसरण किया। यही इनकी गुरुता है।"[3]

लालाजी अंग्रेजी भाषा और संस्कृत से परिचित थे। अतः उपन्यास में निवेदन भी अंग्रेजी भाषा में ही किया गया है। यह भी प्रमाणित हो जाता है कि इनका अंग्रेजों से अच्छा सम्बन्ध रहा होगा, जिसका संकेत मिस्टर ब्राइट और मिस्टर रसल के साथ जो कथोपकथन हुआ है, उसमें मिलता है। बंगला का प्रभाव न होकर 'परीक्षा गुरू' पर अंग्रेजी प्रणाली का प्रभाव दिखाई देता है कि इन्होंने अंग्रेजी के उपन्यासों

---

१ श्रीनिवासदास : 'परीक्षा गुरू" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० १२२।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४७३।
३ शिवनारायण श्रीवास्तव : 'हिन्दी उपन्यास", पृ० ६३।

का गहन अध्ययन किया और हिन्दी जगत में उस प्रकार की पुस्तक का यह अभाव देखा, तब उन्होंने 'परीक्षा गुरु' की रचना की होगी। जैसा निवेदन में लिखा है: "मेरे जान में इस रीति से कोई पुस्तक नहीं लिखी गयी, इसलिए अपनी भाषा में यह नयी चाल की पुस्तक होगी।"[1]

इस उपन्यास की भाषा के संगठन के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है: "संस्कृत अथवा फारसी अंग्रेजी के कठिन शब्दों की बनाई हुई भाषा के बदले दिल्ली के रहने वालों की साधारण बोल-चाल पर ज्यादा दृष्टि रखी गयी है। अलबत्ता कहीं कुछ विद्या विषय आ गया है वहाँ विवश होकर कुछ संस्कृत आदि लेने पड़े।"[2]

सारांश यह है कि उन्होंने जानबूझ कर संस्कृत आदि भाषाओं के शब्द नहीं लिये, न अरबी फारसी के कठिन शब्द भरे हैं, लेकिन बोल-चाल की हर दिन के लोगों की भाषा का प्रयोग किया है। परिच्छेदों के आरम्भ या बीच-बीच में दिये हुए अंग्रेजी, संस्कृत आदि के उद्धरणों के हिन्दी रूपान्तर कर दिये हैं, मूल रूप में नहीं। बातचीत में भी यूरोपीय इतिहासों से लिए हुए दृष्टान्तों की भरमार है, जिनसे ज्ञात होता है कि इस विषय का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था।"[3]

ब्रजरत्नदास का यह कथन 'परीक्षा गुरु' की रचना-शैली के लिए पूर्ण उपयुक्त है। भाषा का सुगठित रूप पाया जाता है। यह व्यवस्थित है तथा पात्र और देश-काल के अनुकूल है। उदाहरण के लिए, देखिये "मुझ से इस समय तेरे सामने आँख उठाकर नहीं देखा जाता, एक अक्षर नहीं बोला जाता, मैं अपनी करनी से अत्यन्त लज्जित हूँ जिस पर तू अपनी लायकी से मेरे घायल हृदय को क्यों अधिक घायल करती है? मुझ को इतना दुख उन कृतघ्न मित्रों की शत्रुता से नहीं होता जितना तेरी लायकी और आधीनता से होता है। तू मुझको दुखी करने के लिए यहाँ क्यों आयी? तैंने मेरे साथ ऐसी प्रीति क्यों की? मैंने तेरे साथ जैसी कृतघ्नता की थी वैसी ही तैंने भी मेरे साथ क्यों न की? मैं निस्संदेह तेरी इस प्रीत लायक नहीं हूँ, फिर तू ऐसी प्रीति करके मुझ को क्यों दुखी करती है। लाला मदनमोहन ने बड़ी कठिनाई से आँसू रोक कर कहा।"[4]

लाला ब्रजकिशोर के कथन में मुहावरेदार भाषा का दूसरा उदाहरण देखिये: "आपकी हवालात की खबर सुनकर आपकी स्त्री यहाँ दौड़ आयी थी और जिस समय मैं आपसे बातें कर रहा था, उस समय उसी के आने की खबर मुझको मिली थी। मैंने उसे बहुत समझाया, परन्तु वह आपकी प्रीति में ऐसी बावली हो रही थी कि मेरे कहने से कुछ न समझी, उसने आपको हवालात से छुड़ाने के लिए यह सब गहना

---

१. श्रीनिवासदास: "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, निवेदन।
२. श्रीनिवासदास, "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, निवेदन, पृ० २।
३. बाबू ब्रजरत्नदास, "हिन्दी उपन्यास साहित्य", पृ० १३३।
४. श्रीनिवासदास: "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० १६५।

जबरदस्ती मुझे दे दिया। वह उस समय में पाँच फेरे यहाँ के कर चुकी है। उसने सवेरे से एक दाना मुँह में नही लिया उसका रोना एक पल भर के लिए बन्द नहीं हुआ, रोते रोते उसकी आँखें सूज गयी।[1]

कथोपकथन शैली के द्वारा पात्रो का चरित्र चित्रण करना लाला श्रीनिवासदास की विशेषता है। उदाहरण के लिए देखिये

"य बदला लेंगे। ऐसे बदला लेने वाले सैकडो झक मारते फिरते हैं', हरकिशोर के जाते ही मुंशी चुन्नीलाल ने मदनमोहन को दिलासा देने के लिए कहा। "जो यों किसी के खर भाव से किसी का नुकसान हो जाया करे तो बस ससार का काम ही बन्द हो जाये।"

"मास्टर शिम्भुदयाल बोले, 'सूर्य चन्द्रमा की तरफ धूल फेंकने वाले अपने सिर पर ही धूल डालते है। पण्डित पुरुषोत्तमदास ने कहा पर मेरी इन बातो से लाला मदनमोहन को सन्तोष नही हुआ। मैं हरकिशोर को ऐसा नही जानता था वह तो आप आपे से बाहर हो गया, अच्छा वह नालिश कर दे तो उसको जबावदेही किस तरह करनी चाहिए? मैं चाहता हूँ कि चाहे जितना रुपया खर्च हो जाय परन्तु हरकिशोर के पल्ले फूटी कौडी न पडे लाला मदनमोहन ने अपने स्वभावानुसार कहा।"[2]

भारतेन्दुयुगीन उपन्यासो में सुधारात्मक और यथार्थ एव नीति प्रधान प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। सामाजिक आदर्शवाद की स्थापना 'परीक्षा गुरु' में हुई, जो पूर्ण रूप से चरित्र प्रधान उपन्यास है। आदि से अन्त तक बिगडे रईस लाला मदनमोहन के चरित्र का पतन और सुधार इसमे वर्णित हुआ है। राजनतिक दृष्टि से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना, पश्चिमी विचारों तथा भावों का भारत में आयात और अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव इस युग के उपन्यासो पर विशेष रूप से दिखाई पडा। सामाजिक और सास्कृतिक आन्दोलनो ने हिन्दी उपन्यास को जन्म दिया। रूढिवादिता, सुधार की भावना और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवको ने देश के जन जीवन में एक क्रान्ति सी मचा दी थी। भारतेन्दु युग का 'सक्रान्ति काल' कहना सही जान पडता है। देश की गतिविधियो में चारो ओर से अपूर्व परिवर्तन की पुकार आ रही थी। 'परीक्षा गुरु' व्यापारी वर्ग का उपन्यास है जो एक ओर मध्यवर्गीय विचारधारा का सूचक है तो दूसरी ओर छोटे मोटे साधारण व्यापारियों के चरित्र पर प्रकाश डालता है। इस उपन्यास में यथार्थवादी प्रणाली के दर्शन होते हैं।

"जब तक हिन्दुस्तान में और देशो से बढ़ कर मनुष्य के लिए वस्त्र और सब तरह के सुख की सामग्री तैयार होती थी, रक्षा के उपाय ठीक ठीक बन रहे थे, हिन्दुस्थान का वैभव प्रतिदिन बढता जाता था, परन्तु जब से हिन्दुस्थान का एका टूटा और देशों मे उन्नति हुई, भाप और बिजली आदि कलों के द्वारा हिन्दुस्तान की अपेक्षा थोडे

१. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० १६५।
२. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० ५४।

खर्च, थोड़ी मेहनत और थोड़े समय में सब काम होने लगा, हिन्दुस्तान की पस्ती के दिन आ गये, जब तक हिन्दुस्तान इन बातों में और देशों की बराबर उन्नति न करेगा यह घाटा कभी पूरा न होगा।"[1]

इस उपन्यास में रचना-शिल्प की दृष्टि से देखा जावे तो प्रकट हो जाता है कि प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में नीति-वाक्य कहे गये हैं। कहीं विदुर-नीति का उल्लेख है तो कहीं भगवद्गीता, रामायण और मनुस्मृति के उदाहरण हैं। इन नीति-वाक्यों का यद्यपि उस अध्याय की कथावस्तु से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, फिर भी लाला श्रीनिवासदास ने सम्बन्ध-निर्वाह की पूरी चेष्टा की है।

उपन्यास के मूल कथानक को 'प्रकरणों' में बाँटा है, यहाँ तक कि जहाँ-जहाँ दीर्घ संवादों का आयोजन है, वहाँ के लिए लेखक ने भूमिका में लिख दिया है कि—"ऐसे प्रसंगों में जहाँ रुचि न हो, वह उन्हें छोड़ दें।"

यदि लाला श्रीनिवासदास के मन में नीति के उपदेश की भावना की महत्ता नहीं होती तो 'परीक्षा गुरु' एक उच्च कोटि का सामाजिक उपन्यास बन जाता, फिर भी सर्वप्रथम मौलिक हिन्दी उपन्यास होने के नाते इसको आज गौरव प्राप्त हुआ है। लेखक अनुभव में दक्ष तथा व्यावहारिक बुद्धिपटु कलाकार था, यहाँ तक कि अंग्रेजी साहित्य का श्रेष्ठ जानकार भी था, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी के महान् लेखक, कवि और उनकी कृतियों का स्थान-स्थान पर उल्लेख है और उनके उद्धरण इस उपन्यास में प्रस्तुत किये गये हैं। जैसे लाला ब्रजकिशोर कहने लगे कि "विलियम कूपर कहता है—

"जिन नृपन को शिशु काल से सेवहिं सुनो तन मन दिये,
तिनकी दशा अविलोक करुणा होत अति मेरे हिये
आजन्म सों अभिषेक लौं मिथ्या प्रशंसा जन करें,
बहु भांत अस्तुति गाय गाय सराहि सिर सेहरा धरें"[2]

लाला श्रीनिवासदास ने अंग्रेजी उपन्यासों के आधार पर भाषण तथा उक्ति को 'परीक्षा गुरु' में ग्रहण किया है।

प्रत्येक उपन्यासकार जीवन के विशाल क्षेत्र को अपनी रचना के लिए अपनाता है। वर्तमान की पृष्ठ भूमि पर वह भूत का स्मरण करता है और भविष्य का कथानक रचता है। उपन्यासकार केवल प्रोपेगेन्डिस्ट नहीं है, वरन् सम्पूर्ण जीवन का एक सच्चा

---

१ श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु" (द्वितीय आवृत्ति), सन् १८८४, पृ० २६।
२. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु", पृ० ७६, विलियम कूपर का कथन—

I pity Kings whom worship waits upon,
Obsequious from the cradle to the throne,
Before whose infant eyes the flatterer bows,
And binds a wreath about their baby brows."
—Willam Cowper.

सहानुभूतिपूर्ण दृष्टा है। इसलिए उसे स्थान स्थान पर व्याख्याता का भी कार्य करना पड़ता है। प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यासों की विशेषता है कि उनकी परिधि में नैतिक उपादेयता के साथ ही साथ सामाजिक दृष्टिकोण भी उपस्थित किया जाता है। लाला श्रीनिवासदास के बाद बालकृष्ण भट्ट के उपन्यास चिरस्मरणीय रहेंगे। सामाजिक, नैतिक तथा आदर्शपूर्ण उपन्यासों के प्रचलन में इनका बड़ा भारी योगदान रहा है। ये केवल उपन्यासकार ही नहीं वरन् हिन्दी गद्य के विकास में निबन्धकार के रूप में भी भारतेन्दु युग में भट्टजी बहुत विख्यात हुए हैं। इनका जन्म सम्वत् १९०१ में हुआ और स्वर्गवास सम्वत् १९७१ में हुआ। यह देशव्यापी राष्ट्र चेतना का युग था, जबकि साहित्यकारों ने नये ढंग से जीवन की प्रत्येक समस्या पर विचार किया और उसके लिए निदान खोजने की चेष्टा की। प्राचीन विचारों का सम्पर्क नये विचारों से हुआ और उपन्यासकारों ने उनमें सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की। प० बालकृष्ण भट्ट प्रसिद्ध पत्रकार भी थे। 'हिन्दी प्रदीप" नामक पत्र का सम्पादन वे सुचारु रूप से अनेक वर्षों तक करते रहे। अपने सम्पादकीय लेख में अंग्रेजी शासन का यथार्थ व्याख्या करते थे। उन्होंने प्रजा में असंतोष, साम्प्रदायिकता अनुपयोगी शिक्षा प्रणाली को दोषी ठहराया जिसके कारण जन साधारण का सम्पत्ता और सरकार पर से विश्वास उठता चला जा रहा था। अंग्रेजी राज्य में भारतीयों पर भिन्न भिन्न प्रकार के टैक्स लगाये गये जाति भेद की भावना फैली तथा अनेक प्रकार के सामाजिक कुसंस्कार फैले। बाल विवाह रोकने की चेष्टा की जा रही थी, विधवाओं के प्रति सम्मान करने की भावना का प्रचार हो रहा था। एक ओर कुरीतियाँ, अनाचार और कुसंस्कार शीघ्रता से मुँह फैला रहे थे, दूसरी ओर, शिक्षा केवल सीमित वर्ग के लिए निर्धारित की गयी। अधिक शिक्षण शुल्क के कारण जनसाधारण पठन से वंचित रहा। भट्टजी अपने विचारों से सुधारवादी समाज सेवक थे जिन्होंने जीवन भर स्त्री शिक्षा पर जोर दिया और उसकी प्रगति के लिए अनेक प्रयत्न किये। हिन्दी गद्य के विकास की बेला में 'हिन्दी प्रदीप' देश भर में प्रसिद्ध समाचार-पत्र था, जिसमें राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक लेख प्रकाशित होते थे। कहानी, उपन्यास, नाटक की भी चर्चा 'प्रदीप' में उपलब्ध हो जाया करती थी। भट्टजी ने एक ओर मौलिक साहित्य के सृजन का कार्य किया, दूसरी ओर उन्होंने हिन्दी भाषा के स्वरूप को सुस्थिर किया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सन् १९०६ की 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में लिखा था " "हिन्दी प्रदीप का उस काल के सभी पत्रों में सर्वोच्च स्थान था।"

भट्टजी गम्भीर और सच्चे साहित्य-मनीषी थे। उन्हें सत्संग, धार्मिक चर्चाएँ और तीर्थाटन के प्रति सदा लगन रहती थी। इन्होंने हिन्दी के साथ ही साथ संस्कृत व्याकरण में भी अद्‌भुत निपुणता प्राप्त कर ली थी। उपन्यासकार भट्ट जी "साम्प्रदायिकता" सम्बन्धी चर्चाओं के समय बड़े आवेश में भर कर धर्म सम्बन्धी व्याख्यान

देते थे। इन्होंने आर्यसमाज और सनातन धर्म दोनों का ही अनुचित विषयों पर खूब फटकारा है। मूलरूपेण वे समाज सुधारक थे। समाज के अन्तर्गत फैली हुई कुरीतियों को इन्होंने जड़ से उन्मूलन करने का सदैव प्रयत्न किया। कुलवधुआ और नारीमात्र के उद्धार के लिए सर्दैव आन्दोलन करने का वे तत्पर रहे। विदेश यात्रा, विशेषकर विलायत जाने से उन्हें चिढ थी क्योंकि वहाँ जाकर भारतीय अपनी स्वदेशी वेश भूषा, रहन-सहन, खान-पान सब छोड़ आया करते थे। पण्डित मदनमोहन मालवीय भट्टजी के कार्यों तथा संस्कृतिनिष्ठा की प्रशंसा किया करते थे। हिन्दी उपन्यास साहित्य के निर्माण में भट्टजी ने सर्दैव सक्रिय सहयोग दिया है। हिन्दी में उनके रचे हुए दो प्रमुख मौलिक उपन्यास हैं—"नूतन ब्रह्मचारी" और "सौ अजान एक सुजान"।

सामाजिक दृष्टिकोण से प्रेरित होकर सर्वप्रथम 'नूतन ब्रह्मचारी' नामक उपन्यास की रचना भट्टजी ने की, जो सन् १८८६ में "हिन्दी प्रदीप" की प्रतियों के कुछ अंकों में प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक का रूप देकर फिर पाठकों को पढ़ने के लिए बाँट दिया गया। कहा जाता है, इसका द्वितीय संस्करण भी निकला, पर हिन्दी जगत उससे अपरिचित है। उसके उपरान्त तृतीय संस्करण सन् १९४१ में "प्रदीप कार्यालय" से प्रकाशित हुआ। यद्यपि लेखक ने जासूसी घटनाओं का समावेश किया है पर 'ब्रह्मचारी' के चरित्र के विकास में अपनी सारी रचना-प्रतिभा उन्होंने केन्द्रित कर दी है। इस उपन्यास की रचना भी छात्रों को नैतिक शिक्षा देने के उद्देश्य से की गयी थी।

उपन्यास लेखक बालकृष्ण भट्ट ने "हिन्दी प्रदीप" की एक टिप्पणी में लिखा था "हमारे देश-हितैषी उपन्यास लेखक, आप से यह हाथ जोड़ कर प्रार्थना है कि ऐसी चेष्टा किया कीजिये जिसमें हिन्दू मुसलमान दोनों दिल से मिल जावें। आपकी लेखनी में बड़ी शक्ति है आप चाहे जो कर सकते हैं।"[1]

आचार्य शुक्लजी ने कहा है: "पण्डित प्रतापनारायण मिश्र और पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य साहित्य में वहीं काम किया है जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था।"[2]

"नूतन ब्रह्मचारी" तथा "सौ अजान एक सुजान" दोनों ही उपन्यास आकार में छोटे-छोटे हैं, पर अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं। सदाचार और धार्मिक नैतिक भावना उपन्यास में आदि से अन्त तक प्रकट हो रही है। इसका कथानक है कि विनायक नामक एक ब्रह्मचारी है, जिसका भोलापन, सच्चरित्रता और सदव्यवहार ने डाकुओं के सरदार को मन्त्रमुग्ध कर दिया। एक दिन निर्धनी विट्ठलराव को सपत्नीक गढ़ी के ठाकुर साहेब ने अपने यहाँ बुलवाया। जब वे दोनों वहाँ गये हुए थे और अपने स्वयं के घर में अपने बेटे विनायक के उपनयन संस्कार के लिए बड़ी कठिनाई

१. बालकृष्ण भट्ट (सम्पादक): "हिन्दी प्रदीप", सन् १८९९, जिल्द २२, पृ० १।
२. रामचन्द्र शुक्ल: "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४६७।

से सामान एकत्रित करके रखा छोड़ गये थे। उनकी अनुपस्थिति में तीन आदमी, जिनका काय लुटेरा का था, वहाँ बिट्ठलराव के घर पर लूटमार के इरादे से जा पहुँचे। वे हथियारबन्द घुडसवार थे। एक उनका सरदार था। उसकी बडी डरावनी सूरत थी। बिट्ठलराव प्रतिष्ठित, धमनिष्ठा व साधारण व्यक्ति थे। उनके रहन सहन से इस बात की सूचना मिलती थी कि वे नागपुर का ओर के रहने वाले हैं। उनके सिर पर छज्जेदार मरहठी पगडी थी और बदन पर एक नागपुरी उपरना ओढे थे। उनकी पत्नी राधाबाई पतिनिष्ठा थी। अपने पुत्र विनायक का वेदारम्भ संस्कार वे कर चुके थे और उपनयन संस्कार की क्रिया शेष थी जिसके लिए वस्त्र सामान आदि एकत्रित किया गया और दूर दूर के नाते रिश्तेदार आने वाले थे। उन्होंने चिरकुमार विनायक को वेदो का ज्ञान कराया, ब्रह्मचय की अपूर्व शिक्षा दी, जिसका विनायक ने अपने छात्र-जीवन में पूर्णरूप से पालन किया। बटुक विनायक नित्य सध्या आदि नित्यकर्म नियम से निवृत्त हो जाता था। अभी विनायकराव कुल आठ वर्ष और तीन या चार महीने के थे। इस नूतन ब्रह्मचारी" के चेहरे से भोलापन दिखाई देता था। इस प्राकृतिक रमणीय स्थलो को अवलोकन करने में बडा आनन्द प्राप्त होता था। विनायक की माँ राधाबाई सदैव शकित हृदय से विनायक के कुशल मगल की कामना किया करती थी। उसको पहाडो, झाल, तालाव, गुफाओ इत्यादि स्थानो पर अकेला नहीं जाने देती थीं। जैसे ही ये तीनो घुडसवार, जो पिंडारी जाति के थे, विनायक के निवास स्थान पर पहुँचे, वह अकेला था पर वह भारतीय संस्कृति के अनुसार इन अतिथियो का स्वागत करने को तत्पर हो गया। उसके पिता बिट्ठलराव का आदेश था कि जब वे गढा जावें तो उनकी अनुपस्थिति में कोई भी अतिथि आवे, उसका पूर्ण आदर सत्कार होना चाहिए। अत विनायक के विनम्र व्यवहार ने सरदार डाकू को मोह लिया। उन्होंने चोरी नहीं की और बड प्रेमपूर्वक विनायक से व्यवहार किया और व अपने स्थान को लौट गये।

बहुत दिन बीत जाते हैं, काल चक्र में पडकर वही पिण्डारी डाकू सरदार एक बार घूमते घामते दुखी होकर विनायक से जाकर पानी माँगता है और बिना उसे पहिचाने हुए कहता है कि विनायक से जाकर कहो कि हम उसके कुछ काम नहीं आ सके। डाकू सरदार के हृदय में अत्यन्त पश्चात्ताप की भावना रहती है। उसके मित्र उससे छल करते हैं। वह घायल होकर गिर पडता है और विनायक की कुटिया तक आ पहुँचता है। सरदार के साथी डाकू ठाकुर की गद्दी पर आक्रमण करना चाहते थे और लूटमार भी, पर सरदार ने विनायक से भेंट के उपरान्त इस कार्य से उन्हें रोकना चाहा, तब उसके साथियों ने सरदार को बुरी तरह घायल और मरणासन्न कर दिया था। जैसे ही विनायक उसे अपना परिचय देता है, उसी समय सरदार की मृत्यु हो जाती है। विनायक का कथन कितना महत्वपूर्ण है. "सरदार, क्षमा करने वाला केवल एक भगवान है, तुम उसी से क्षमा माँगो।" "उससे भला मैं किस तरह

आकार अधिक है। पात्र और घटनाओं का समावेश भी अधिक संख्या में हुआ है। यह भी उनकी अनूठी और उत्कृष्ट कृति है। सर्वप्रथम सम्वत् १८९० में यह उपन्यास भी "हिन्दी प्रदीप" पत्र में प्रकाशित हुआ। उन्होंने स्वयं इसे एक 'प्रबन्ध कल्पना' कहा है। भारतेन्दु युग में गद्य के क्षेत्र में निबन्ध और प्रबन्ध प्रणाली की दृष्टि से एक बाढ़ सी आ गयी थी। प्रचलित प्रबन्ध प्रणालियों में समन्वय स्थापित करने की दृष्टि से "सौ अजान एक सुजान" नामक रचना का प्रणयन किया। इसका कथानक बड़े विचित्र ढंग से रचा गया है। यह रचना व्यंगात्मक है और इसमें मानव-जीवन की सामाजिक परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण पाया जाता है। शृंखलित कथानक का आश्रय लेकर लेखक ने इस पुस्तक के विषय को और भी रोचक और सर्वग्राही बना दिया है।"[1]

श्री दुलारेलाल भार्गव के ये विचार, जो उन्होंने "सौ अजान एक सुजान" की भूमिका में कहे हैं, हमें परीक्षण के उपरान्त नितान्त सत्य जान पड़ते हैं। भट्टजी ने अपनी मौलिक एवं अनूठी बुद्धि के फलस्वरूप इसके कथानक में एक प्रस्ताव के द्वारा कथा का प्रारम्भ करके, जब वे दूसरे प्रस्ताव तक आते हैं तो वे दूसरी घटना कहने लगते हैं और तीसरी और चौथे में आकर फिर से पहली कथा से फिर से सम्बन्ध जोड़ने की चेष्टा करते हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा जान पड़ता है कि इस उपन्यास में सारी कथाएँ विशृंखल हो गयी हैं और कच्चे धागे से उनको जोड़ने की चेष्टा की गयी है। लेकिन भट्टजी तेजस्वी और प्रभावशाली उपन्यास लेखक थे। उनके उपन्यासों ने उस युग की माँग पूरी कर दी है। जनसाधारण की उपन्यास के प्रति जिज्ञासा थी, उसको पूरा करने का सच्चा श्रेय भट्टजी की रचनाओं को है। इसका कथानक इस प्रकार है कि सेठ हीराचन्द बड़े प्रसिद्ध तथा भाग्यवान पुरुष अवध के इलाके में हुए हैं, जो अनेक पाठशालाओं को अपूर्व धन-सम्पत्ति दान में दिया करते थे। इन्होंने अटूट उद्यम तथा व्यापार से असंख्य धन कमाया। अनेक गाँवों पर इनका पूर्ण आधिपत्य हो गया। धर्म में निष्ठा, ब्राह्मणों में भक्ति तथा शक्ति रहते हुए भी क्षमाशील इत्यादि लोकोत्तर गुण इनमें समाहित थे। लड़के कई हुए पर बहुत उपाय से केवल एक शेष बचा। सीधा बालक होने से लोग इसे भोंदूदास कहते थे, पर नाम रूपचन्द था। पच्चीस वर्ष की आयु में ही ये दो पुत्र और एक कन्या छोड़ कर स्वर्गवासी हुए। सेठ हीराचन्द अपने पुत्रों की अकाल मृत्यु से बहुत दुखी हुए। दोनों पोतों को पढ़ाया और पालन-पोषण किया। इसी नगर में शिरोमणि मिश्र नामक एक महापण्डित था। सेठ इनका बड़ा भक्त था और नित्य इनके दर्शन करने आया करता था। ये शिक्षण का कार्य करते थे। वेदान्त, भाष्य, काव्य, कोष,

---

१. दुलारेलाल भार्गव (लेखक) : "सौ अजान एक सुजान", भूमिका, पृ० ७, सम्वत् २००६।

व्याकरण, गणित विद्या तब अपने छात्रों को पढाया करते। कुछ दिनों बाद उसी नगर में चन्द्रशेखर नामक एक छात्र आकर रहने लगा, जो पण्डितजी का बहुत ही कृपापात्र था। सेठजी ने इनको अपने पौत्रों को पढाने के लिए नियत कर लिया। दोनों पौत्र ऋद्धिनाथ और निधिनाथ सेठ हीराचन्द के स्वर्ग सिधारने पर कुछ दिन तक तो उसी परिपाटी पर चलते रहे और चन्दू इन्हें पढाता था जो पढाता थोडा था, पर व्यावहारिक ज्ञान अधिक देता था। दो वर्ष बाद ये दोनों पोते कुछ बडे हुए। अमीरी क वैभव ने इन्हें चारित्रिक दृष्टि से डाँवाडोल कर दिया। चन्दू के उपदेश का प्रभाव अब बहुत कम हो गया। वह इन्हें बुरे कार्य करने से रोकता और ये चिढ़ जाते। तब चन्दू के समान सुजान एक दिन अन्तर्द्धान हो गया और ये दोनों धन के अपार सागर के भँवर में फँस गये।

ये दोनों बाबू सदा अमीरी सजावट और प्रदर्शन करने में तल्लीन रहते थे और अवध क रईसों में अपना अव्वल दरजा बनाये रखते थे। इनके चारों ओर अनेक दुष्टों का समूह एकत्रित हो गया, जो केवल दिन-रात चापलूसी किया करते थे। इन्होंने दिल्ली, आगरा, बनारस, पटना की तवायफों को बुलाकर टिका लिया। मुनीम-गुमाश्तों की बन आई। दोनों बाबू ऐश आराम म डूबे रहने लगे व धन दोनों हाथों से लुटाया जाने लगा। कुछ दिनों बाद बसन्तराम नामक एक नौजवान आया, जिसके साथ सेठ का घनिष्ठ सम्बन्ध था। जितना चन्दू सुपात्र था, उतना ही बसन्ता नटखटी और कुपात्र था। दोनों बाबुओं ने इसे अपना जीवनसर्वस्व बना लिया। बसन्ता और ये बाबू अनेक प्रकार के उपद्रव किया करते थे। अब जगहँसाई होने लगी कि सेठ हीराचन्द ने तो इन दोनों बाबुओं को चन्दू के हाथ में सौंपा था, लेकिन ये दोनों निर्लज्ज होकर आवारा बन गये। पुलिस सदैव इनको घेरे रहती थी। "वह आदमी, जिसे हम सौ अजान में एक सुजान कहेंगे और जो इन दोनों को भीड़ से बाहर निकाल लाया, जिसका पूरा परिचय हम पाठकों को दे चुके हैं। उसने इन्हें घर पहुँचाय इनसे विदा माँगी।"[1] यह सुजान चन्दू था। इसने अपने शुभ काम से दोनों बाबुओं को लज्जित कर दिया। चापलूस मित्र एक-एक करके अदृश्य होने लगे। केवल ऐसी विपत्ति में चन्दू ने धैर्य बँधाया, उसने आकर मार्ग-दर्शन किया, सु-मार्ग पर चलने की सीख दी। इन बाबुओं की माँ रमादेवी का चन्दू पर अटल विश्वास था और वह उसे बहुत मान देती थी।

रमादेवी अत्यन्त दयालु थीं और सेठ हीराचन्द के समान राँड-बेवाओं को कुछ न कुछ गुप्त दान में दिया करती थीं। नारी-उद्धार के कार्य में उनका अपूर्व योगदान था। हीराचन्द के घर के पास नन्ददास नामक एक दुर्जन मनुष्य रहता था, जो उर्दू भी जानता था। वहीं रघुनन्दन नामक एक गुणी रहता था। नन्दू और रघू दोनों

१ बालकृष्ण भट्ट "सौ अजान एक सुजान," आठवाँ प्रस्ताव, पृ० ४२।

विशेष मित्र थे। नन्दू का एक तीसरा दिली दोस्त था, जो हकीम फीरोजबेग के नाम से प्रसिद्ध था। बड़े बाबू के पेट में दर्द होने पर इस हकीम को नन्दू ले गया, जिससे वह निरोग हुआ, पर बेगम नामक एक तवायफ थी, जिसने बड़े बाबू पर अपना फेरा डाला। एक ओर नन्दू ने बड़े बाबू को ऐयाशी का चस्का लगा दिया, जिससे वह कई महीना आकर लखनऊ में टिका रहता था। नन्दू मालामाल हो गया। हुमा की फरमायशें बढ़ती रहती थी। वह हकीम भी बड़ा धूर्त था। दोनों बाबुओं ने अपनी अज्ञानतावश सारा धन कुछ दिनों में उड़ा दिया। चन्दू और रमादेवी इससे सदा चिन्तित रहते थे। दोनों बाबू, नन्दू और भी उसके सब मित्र दिन-रात आमोद-प्रमोद में लगे रहते थे। शराब के प्याले पर प्याले चला करते थे। जुआ भी खेला जाता था। तवायफों का गाना भी चलता रहता था। छोटे बाबू की लड़की सरस्वती केवल एकमात्र सन्तान थी, जो दोनों बाबूओं को हिली हुई थी। एक बार वह अचानक बहुत बीमार पड़ गयी। दोनों बाबू वहाँ चले गये, पीछे से पुलिस के दरोगा ने आकर नन्दू को घेर लिया कि तूने ही इन बाबुओं को खराब किया है। नन्दू और बुद्धदास को वारण्ट दिखाकर पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। चन्दू ने आकर दोनों बाबूओं की सुरक्षा का प्रबन्ध किया और सेठ घराने की लाज-मर्यादा को बचाया। दोनों पोते जेलखाने भेज दिये गये थे, पर वहाँ जाकर चन्दू ने उनको छुड़ाया। उनकी गवाही दी। जमानत का भी प्रबन्ध किया। नन्दू का बुरा परिणाम देखकर इन बाबुओं के हृदय में भय सा व्याप्त हो गया। अब दोनों सचेत हो गये। भाँग, अफीम, शराब सब छोड़ दी। इन सैकड़ों अजानों को सुजान बनाने वाला केवल चन्दू एक सुजान था, जिसने सेठ हीराचन्द जैसे सुकृती की सन्तान को पतन के गर्त से बचाया। रमादेवी तथा संसार में किसी को भी आशा नहीं थी कि ये दोनों (बाबू) सेठ के पोते कुढंग पर आकर कभी सुधर भी सकते हैं। अब इनको चेत आया तो एकान्त में बैठकर घण्टों आँसू बहाया करते थे। दोनों अजान अब पश्चात्ताप के मार्ग पर चलकर निरन्तर मानसिक यातनाओं से दुखी रहते थे।

भट्टजी ने दोनों उपन्यास "प्राचीन कथा साहित्य को नवीन कथा साहित्य से जोड़ने में ये कड़ियों के रूप में स्मरण रखने योग्य हैं, जिनके बिना प्राचीन उपन्यास साहित्य और नवीन उपन्यास साहित्य कोई भी ठीक तरह से नहीं समझा जा सकता।"[1]

"सौ अजान एक सुजान" में भी उपदेश की ही प्रधानता है। सेठ हीराचन्द के पुत्र रिद्धिनाथ और सिद्धिनाथ, बसन्ता, नन्दू, रघुनाथ, बुद्धदास जैसे लम्पटों की कुसंगति, मद्यपान एवं वेश्यागमन, पुलिस के चंगुल में फँसना, चन्दू (चन्द्रशेखर) के द्वारा उद्धार, फिर दोनों भाइयों का सदाचारी बनना, यह सारा कथानक उपदेश-प्रधान है। उपन्यासकार ने मानव-जीवन के आदर्श की सृष्टि की है।

---

१. श्रीगोपाल पुरोहित : "निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट", पृ० ५३।

"अन्त में स्वयं भट्टजी अपना उद्देश्य स्पष्ट कर देते हैं : "अन्त में हम अपने पढ़ने वालों को सूचित करते हैं कि आप लोगों में यदि कोई अबोध और अजान हों, तो हमारे इस उपन्यास को पढ़ कर आशा करते हैं सुजान बने, इस किस्से के अजानों को सुजान करने को चन्दू या और आप लोगों का हमारा यह उपन्यास होगा।"[1]

दोनों उपन्यासों में लेखक प्रकट रूप से उपदेशक है। वह समय-समय पर अपने पाठकों को एक उपदेशक के समान सम्बोधन करता चलता है। उन्हें जग्त के दुर्व्यसनों के प्रति सतर्क करता चलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भट्टजी का लक्ष्य एक ओर तो उपन्यासों में व्यंग्य-प्रधान शैली के द्वारा मनोरंजन का आयोजन करना है तो दूसरी ओर मानव के नैतिक उद्धार की ओर उनकी दूर दृष्टि लगी हुई है। लेखक की रचना-प्रणाली प्राचीन ढंग पर है, जिसमें "कथा सरित्सागर" और "हितोपदेश" प्रणाली परिलक्षित होती है तथा स्थल-स्थल पर सुन्दर अलंकृत दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। नारी और पुरुष दोनों प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की गयी है। पुरुष पात्रों की प्रधानता है, प्राबल्य है और उनमें यथार्थता के साथ अलौकिक आदर्श को उपस्थित करने की चेष्टा की गयी है। यह स्वतः सिद्ध है कि मौलिक उपन्यास-रचना के लिए लेखकों के द्वारा भरपूर प्रयास किया गया है, यद्यपि अभी भी इन्हें उत्कृष्ट उपन्यास-रचना के लिए मार्गदर्शन की आवश्यकता बनी हुई थी। उपन्यास-शिल्प की दृष्टि से भट्टजी के उपन्यासों ने निश्चित रूप से एक विशेष रूप में शिष्ट गद्य-शैली को जन्म दिया है। ये प्राचीन उपन्यासकार स्वयं कथाकार के रूप में कथा कहा करते थे और पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए सदैव प्रयत्नमान रहते थे। भट्टजी उपन्यासकार के अतिरिक्त प्रतिभाशाली निबन्धकार भी थे, जिसके कारण उनकी भाषा और शैली का अपूर्व परिमार्जन हुआ। आँख, कान, नाक जैसे छोटे विषयों पर निबन्ध लिखकर उन्होंने अपनी अमूल्य प्रतिभा का परिचय दिया है। हिन्दी में शुद्ध साहित्यिक गद्य-शैली को उन्होंने जन्म दिया और शैली ने उनकी प्रतिभा का परिचय साहित्य जगत को दिया।

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है : "पं० बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य-शैली को नवीन रूप दिया। उनके निबन्धों में अलंकारिकता और दुरूहता नहीं मिलती है। छोटे-छोटे और संयत वाक्यों में उन्होंने अपने भाव प्रकट किये हैं। उन्होंने कहीं-कहीं बड़े तीखे व्यंग्य-प्रहार भी किये हैं। उनके निबन्ध उनके आन्तरिक भावों के सच्चे प्रतिरूप हैं। उनमें उनका जीवन झलकता है। उन्होंने अपने भाव अत्यन्त स्पष्टता से व्यक्त किये हैं। उनका शब्द-संचय बड़ा ही मुरुचिपूर्ण है।"[2]

इसके अतिरिक्त डॉ० श्रीकृष्णलाल ने कहा : "शैली का जन्म तो उन्नीसवीं

---

१. बालकृष्ण भट्ट : "सौ अजान एक सुजान", तेईसवाँ प्रकाश, पृ० ५३।
२. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका," पृ० ६६।

शताब्दी में बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों में हो गया था। बालकृष्ण भट्ट हिन्दी के सर्व-प्रथम निबन्ध लेखक थे।"[1]

भट्टजी गम्भीर प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, जिनके जीवन में नैतिक शिष्टाचार साकार हो गया था। वे भावुक कलाकार होने के साथ ही साथ भारतीय संस्कृति के पूर्ण पुजारी थे। वे सफल पत्रकार और नाटककार के रूप में भारतेन्दु युग में बहुत ख्याति प्राप्त कर रहे थे। "कविवचन-सुधा", "हिन्दी प्रदीप", "भारत मित्र", "बिहार बन्धु" इत्यादि पत्रों में लिखना भट्टजी का नित्य का कार्य था। साहित्यिक निबन्ध तथा उपन्यासों का धारावाहिक रूप में प्रकाशित करना उन्होंने विद्वत्तापूर्वक किया। ग्वालियर निवासी ठाकुर सूर्यकुमार द्वारा लिखित एक 'सुन्दरी' नामक छोटा सा उपन्यास भी 'हिन्दी प्रदीप' में सन् १९०३ के मई महीने में छपा, जो अप्राप्य है। भट्टजी की प्रेरणा का ही फल था कि यह उपन्यास छपा और इसने कथात्मकता और कौतूहलवर्द्धकता की प्रवृत्ति को हिन्दी जगत में प्रोत्साहित किया।

ठाकुर जगमोहनसिंह का भी भारतेन्दुयुगीन उपन्यासकारों में अपना एक विशेष स्थान है। भावपूर्ण उपन्यास लिखने में साहित्यप्रवर ठाकुर साहेब ने अपने हृदय पर अंकित विन्ध्याटवी की मनोहर शोभा का वर्णन किया है, जिसके फलस्वरूप इनके उपन्यास "श्यामा स्वप्न" में चरित्र चित्रण की ओर उपेक्षा सी की गयी जान पड़ती है। भारतेन्दुजी के अपने सहयोगियों के समान ही ठाकुर साहेब में भी भावुकता कूट कूट कर भरी हुई थी। ठाकुर जगमोहनसिंह का जन्म श्रावण शुक्ल १४ सम्वत् १९१४ को और मृत्यु सम्वत् मार्च, १९५६ को हुई। इनका निवास स्थान विजयराघवगढ (मध्य प्रदेश) था, जहाँ पर वे राजकुमार की पदवी से सुशोभित थे। ये शिक्षा-दीक्षा के लिए काशी गये, जहाँ भारतेन्दु बाबू के सम्पर्क में आये। संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी तीनों भाषाओं का उत्तम ज्ञान प्राप्त किया। कवि के रूप में भी ये बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। इनके द्वारा रचित उपन्यास "श्यामा स्वप्न" भावात्मक गद्य का सुन्दर उदाहरण है। प० अम्बिकादत्त व्यास ने उपन्यास को गद्य काव्य माना है और इस दृष्टि से "श्यामा स्वप्न" सच्चे अर्थ में गद्य काव्य है। आचार्य शुक्ल ने कहा : "प्राचीन संस्कृत साहित्य के अभ्यास और विंध्याटवी के रमणीय प्रदेश में निवास के कारण विविध भावमयी प्रकृति के रूपमाधुर्य की जैसी सच्ची परख, जैसी सच्ची अनुभूति उनमें थी, वैसी उस काल के किसी हिन्दी कवि या लेखक में नहीं पाई जाती।"[2]

यद्यपि ठाकुर जगमोहनसिंह ने अपने उपन्यास में प्रकृति-वर्णन को प्रमुख स्थान दिया है, पर ग्राम्य जीवन के माधुर्य का जो सत्कार ठाकुर साहेब ने अपने "श्यामा स्वप्न" में वर्णन किया है, वह अद्वितीय है। इस उपन्यास में अपूर्व माधुर्य एवं

१. श्रीकृष्ण लाल "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० ३४८।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४७४।

सरलता और मनोरमता है। आचार्य शुक्ल ने कहा है : "ठाकुर जगमोहनसिंह ने नरक्षेत्र के सौन्दर्य को प्रकृति के और क्षेत्रों के सौन्दर्य के मेल में देखा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के रुचि संस्कार के साथ भारत भूमि की प्यारी रूपरेखा को मन में बसाने वाले वे पहले हिन्दी लेखक थे।"[1]

इनकी भाषा, शैली और रचना-विधान की दृष्टि से इनका ढंग अपना निराला था। शब्दों का विलक्षण प्रयोग इन्हें प्रिय था। सरकारी सेवा-कार्य के निमित्त इन्हें बहुत भ्रमण करना पड़ा था। मध्यप्रदेश के जंगलों में प्राकृतिक वन-छटा देखी और यही कारण है कि इनके गद्य में भी काव्य-छटा का आभास मिलने लगा। बाबू ब्रजरत्नदास ने कहा है : "ये विफल प्रेम के पथिक थे, अत इनकी रचनाओं में करुण रस की मात्रा अधिक है।"[2]

ठाकुर जगमोहनसिंह ने 'समर्पण' में लिखा है : "रात्रि के चार प्रहर होते हैं—इस स्वप्न में भी चार प्रहर के चार स्वप्न हैं, जगत स्वप्नवद् है तो यह भी स्वप्न ही है। मेरे लेख तो प्रत्यक्ष भी स्वप्न हैं पर मेरा श्यामा स्वप्न, स्वप्न ही है।"[3]

इस काव्यमय उपन्यास में चार यामों की आयोजना लेखक ने की है, जो स्वप्न है। इसका कथानक है कि नायक *कमलाकान्त नायिका श्यामा के प्रेम में जेल* जाता है। 'गेटे' (अंग्रेजी साहित्यकार) के समान कारागार की दीवार पर लिखा हुआ मन्त्र देख कर पिशाच के बल पर बाहर निकलता है और उसी के द्वारा देखता है *कि उसकी प्रेमिका नायिका श्यामा दूसरे पुरुष श्यामसुन्दर से प्रेम करती है।* उससे मिलने पर वह अपने गृह तथा परिवार की कथा सुनाती है। इस प्रकार प्रथम स्वप्न समाप्त हो जाता है। दूसरे स्वप्न में नायिका नायक को पहचान कर मलिन होती है और अपने नये प्रेम का समागम तक का सारा वृत्तान्त कह डालती है। दूसरा स्वप्न यहीं पर समाप्त हो जाता है। तीसरे स्वप्न में वियोग-वर्णन है और चौथे में विरहोन्माद तथा स्त्रियों के चरित्र पर कटाक्ष है। कथानक के बीच-बीच में संस्कृत के मूल श्लोक, देव, पद्माकर तथा भारतेन्दुजी इत्यादि कवियों की कविताओं से उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं और निज के द्वारा रचे हुए पद भी इस उपन्यास में पाये जाते हैं। अन्त में १०८ पदों में लेखक ने विनय-वर्णन किया है। ठाकुर साहेब की काव्यमय कल्पना 'श्यामा स्वप्न' में निःसन्देह साकार हो उठी है। *यह उपन्यास पूर्णरूप से एक प्रेमाख्यान है। यह वह प्रेम कहानी है जिसमें उन्होंने अपने* व्यक्तिगत प्रौढ़ अनुभवों का आधार लेकर अपनी विचारधारा को स्पष्ट किया है।

भारतेन्दु युग के इस भावुक कलाकार ने अपना परिचय अपनी रचनाओं में

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ४७१।
२. बाबू ब्रजरत्नदास : "हिन्दी उपन्यास साहित्य", पृ० १३६।
३. ठाकुर जगमोहन सिंह : "श्यामा स्वप्न" (समर्पण), पृ० ३।

जहाँ-तहाँ दे ही दिया है। "देवयानी" के मुखपृष्ठ पर ऊपर देवनागरी में शीर्षक और अपना सक्षिप्त परिचय अंग्रेजी में दिया है।[1]

"रचना की दृष्टि से सन् १८८५-८६ इनके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण वर्ष रहे हैं। इन वर्षों में इन्होंने 'श्यामालता', 'श्यामा स्वप्न', 'श्यामा विनय', 'देवयानी' और 'श्यामा सरोजिनी' की रचना की है। इनकी सभी रचनाओं को श्यामा को समर्पित किया गया है और इनमें प्रेम की व्यंजना बहुत उत्कृष्ट हुई है।"[2] अटूट खोज के पश्चात् हमें ज्ञात होता है कि २५ दिसम्बर सन् १८८४ में प्रथम श्यामालता' रची होगी। इसमें १३२ छन्द हैं। उसके पश्चात् 'देवयानी' और उसके बाद 'श्यामा स्वप्न' क्योंकि कमलाकान्त और श्यामसुन्दर दोनों ही क्षत्रिय कुमार हैं, पर श्यामा नामक ब्राह्मणी से प्रेम करते हैं। यह अन्तर्जातीय प्रेम-व्यापार उस समय महादूषित समझा जाता था। शायद इसी दोष को मिटाने के लिए यह उपन्यास रचा गया। 'श्यामा स्वप्न' में इस अनमेल वर्ण सम्बन्ध के बारे में जब श्यामा कहती है तो श्यामसुन्दर उसे इस प्रकार से समझाने की चेष्टा करते हैं कि "वर्णों के सम्बन्ध में कुछ दोष नहीं, देवयानी और ययाति के पावन चरित्र अद्यापि भूमण्डल को पवित्र करते हैं। बस यह सब समझलो, मुझ दीन के अनुराग और भक्ति को क्यों तुच्छ समझती हो।"[3]

देवयानी ब्राह्मण की बाला थी और ययाति क्षत्रिय नरेश था। जब समाज ने दोनों के विवाह को स्वीकार किया तो श्यामा और श्यामसुन्दर का प्रेम भी सहज स्वीकृत समझ लिया जावेगा। प्रेम का उत्थान, पतन तथा पोषण का 'श्यामा स्वप्न' में प्रयत्न किया गया है। इसमें प्रेम का रोग एवं विरह-व्यथा का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है। यदि ध्यान से देखा जावे तो इस उपन्यास में दोनों, प्रेमी कमलाकान्त और श्यामसुन्दर, लेखक की कल्पना के साकार स्वरूप हैं। जिस समय डाकिनी के प्रभाव से कारागृह मुक्त होकर कमलाकान्त अचानक अपने आप को कविता-कुटीर में पाता है, जहाँ स्थान-स्थान पर 'श्यामालता', साख्य योग, देवयानी के नूतन रचित पत्र बिखरे पड़े हैं। ये रचनाएँ ठाकुर जगमोहनसिंह ने ही रची हैं। कमला-

---

१. 'देवयानी' का मुखपृष्ठ
Devyani : Story of Devyani and Yayati,
Translated from the original Sanskrita of the Mahabharata into Hindi version by Thakur Jagmohan Sinha, Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, son of the Late Chief of Bijayraghogarh (C. P.) Author of the Hindi version of the Meghduta, Ritu Sanhar, Kumarsambha, Life of Ramlochan Prasad Pramitaskhan Dipak, Prem Ratnakar and many other miscellaneus books

२. श्रीकृष्णलाल : "श्यामा स्वप्न", भूमिका पृ० ६।
(ना० प्र० सभा, काशी)

३. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", पृ० ६१।

स्थान का कविता-कुटीर ठाकुर जगमोहनसिंह का स्वयं का निवास-स्थान है। दूसरा नायक श्यामसुन्दर भी कविता-कुटीर में रहते हैं। वहीं पर काव्य-रचना करते हैं। श्यामा के कथनानुसार श्यामसुन्दर अपने एक प्राचीन मित्र का बनाया हुआ कवित्त नित्य रटते रहते हैं। वह कवित्त भारतेन्दु द्वारा विरचित था, जो ठाकुर साहेब के एक प्राचीन और निकटतम मित्र थे। इन दोहों को श्यामसुन्दर ने श्यामा को पत्र लिखते समय उद्धृत किये हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि भारतेन्दु द्वारा रचित "प्रेम सरोवर" से ये लिये गये हैं। बाबू ब्रजरत्नदास जी ने कहा है "कुछ ऐसा ज्ञात होता है कि ठाकुर साहेब ने कुछ अपनी बोली इसमें कही है।"[1]

संस्कृत की उपन्यास शैली का ठाकुर साहेब पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। वे स्वतन्त्र प्रकृति के प्रेमी उपन्यासकार और कवि थे। कालिदास की काव्य-सुषमा से वे विशेष प्रभावित थे। उनकी तीन रचनाओं का इन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया। "कविवचन-सुधा" और "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" जिनका प्रकाशन भारतेन्दु बाबू करते थे, उसके ये नियमित पाठक थे। "कविवचन-सुधा" के १५ मई सन् १८८४ के अंक में कार्तिकप्रसाद खत्री द्वारा लिखित "रेल का विकट खेल" एकांकी नाटक प्रकाशित हुआ था। "श्यामा स्वप्न" में उसके नान्दी पाठ का सवैया उद्धृत किया गया है।

"अगिनि वायु जल पृथ्वी नभ इन तत्त्वन का ही मेला है,
इच्छा कर्म संजोगी इंजिन गारड आप अकेला है।
जीव लादि सब खींचत डोलत तन इस्टेशन झेला है,
जयति अपूरब कारीगर जिन जगत रेल को रेला है।"[2]

ठाकुर साहेब अधिकतर रोगी रहे थे। इनका अल्पायु में ही स्वर्गवास हो गया था। फिर भी जीवन भर वे प्रेम और प्रकृति की साधना में तल्लीन रहे।

"श्यामा स्वप्न" प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में सबसे अधिक आधुनिक रूप लिये हुए है। रचना-शिल्प की दृष्टि से इसने नयी दिशा लेखक ने बदलादी है। इसके अन्दर निहित आदर्श सामन्तीय परम्पराओं से सर्वथा भिन्न हैं। आधुनिक प्रवृत्तियों के प्रकाशन की दृष्टि से ठाकुर साहेब के इस एकमात्र उपन्यास में अनेक प्रकार के रमणीय दृश्यों का अंकन किया गया है, जिनमें परमात्मा का नाम भी अधिक नहीं लिया गया है। राज्य-सभा की भाषा, अलंकृत शैली तथा परम्पराएँ इस उपन्यास में निषिद्धप्राय हैं। सीधी-सादी बोलचाल की भाषा में साधारण कथानक की सृष्टि की गयी है। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने कहा है: "साधारण जनता की वस्तु होने के कारण ही उपन्यास ग्राम-यथार्थ जीवन की ओर उन्मुख रहता है।"[3]

"श्यामा स्वप्न" के लेखक ने इस उपन्यास में यथार्थवादी शैली को अपनाने

---

१. बाबू ब्रजरत्नदास : "भारतेन्दु मण्डल", प्रथम संस्करण, पृ० ९२।
२. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", पृ० २०७।
३. श्रीकृष्णलाल : "श्यामा स्वप्न" (भूमिका), पृ० १५।

की चेष्टा की है। यथार्थवादी धरातल के बारे मे लेखक ने स्वय कह दिया है: "रात्रि के चार पहर होते हैं—इस स्वप्न मे भी चार प्रहर के चार स्वप्न हैं, जगत स्वप्नवत् है तो यह भी स्वप्न ही है, मेरे लेख तो प्रत्यक्ष भी स्वप्न हैं पर मेरा श्यामा स्वप्न, स्वप्न ही है।"[1]

स्वप्न होने के कारण स्वप्न जैसी बातें जान पडती हैं। इसमे भावनाओ की तरगें हैं। कही आशाजनक उमगो का उत्थान है। कहीं घोर निराशा की वेदना व्याप्त है। उपन्यास के दोनो प्रधान पात्र कमलाकान्त और श्यामसुन्दर श्यामा के प्रेमी हैं और प्रेममार्ग के सच्चे यात्री हैं। उनका प्रेम आदर्श है। कमलाकान्त प्रेम से श्यामा के पीछे अपने को डाइन को समर्पित कर देता है, परन्तु श्यामा क मुख से श्यामा-श्याममुन्दर की प्रणय कथा सुन कर वह इतना प्रभावित होता है कि जब चन्डी उससे कहती है—

"मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न हुई वर माँग।"

तब वह निस्सशय भाव से कहता है—

"यदि तू प्रसन्न है तो मेरी वन्दना को विनय पूरी कर श्याममुन्दर का पता बता दे और श्यामसुन्दर को श्यामा से मिला दे।"[2]

यह कमलाकान्त का आदर्श त्यागपूर्ण प्रेम है। इस प्रकार से श्यामा के कथन से श्यामसुन्दर के प्रेम का स्वरूप प्रकट होता है।

वह कहती है 'वे अपने प्राण को भी इतना नही चाहते थे, नैनो की तारा मैं ही थी। प्रमपिजर की उनकी मैं ही सारिका थी। बल, ईश्वर, राम जो कुछ थी मैं ही थी, वे मुझे अन य भाव से मानते थे।'[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि श्यामसुन्दर श्यामा की पूजा आराधना इष्ट देवता के समान करता था। यह भारतीय शुद्ध प्रेम अलौकिक है, जो इस भौतिक वासनाओं से परे की दिव्य वस्तु है। श्यामा का चरित्र अपने ढग का निराला है। उसमें रीतिकालीन नायिकाओ क सकेत पूर्णरूप स उपलब्ध हैं। वह काम कलाओ मे भी प्रवीण है। वह रति, अभिसार इत्यादि क्रीडाओ म दक्ष है। जिस दिन सबस पहले श्यामा के हृदय म श्यामसु दर क प्रति पेम की उत्पत्ति हुई, उसके मुख के हाव भावा को देखकर ही उसकी निकटस्थ सखी वृन्दा ने स्पष्ट पहचान लिया था कि य काम सकेत हैं। उस समय श्यामा की उम्र कवल चौदह वर्ष की थी।

'वाह री श्यामा चौदहवें वर्ष म जब तुम इतनी चतुर थी तब आगे न जाने क्या हुआ होगा।"[4]

---

१. ठाकुर जगमोहनसिंह : 'श्यामा स्वप्न", (समर्पण)।
२. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", पृ० १५७।
३. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", पृ० ७०।
४ ठाकुर जगमोहनसिंह "श्यामा स्वप्न", पृ० ५४।

ठाकुर जगमोहनसिंह ने श्यामा का रूप-वर्णन करके अपनी अद्भुत काव्य-प्रतिमा का परिचय दिया है : "पंकज का गुण न चन्द्रमा में और न चन्द्रमा का पंकज में होता है, तो भी उसका मुख दोनों की शोभा का अनुभव करता था, काली-काली भौंहें कमान सी लगती थी, धनुष का काम न था, कामदेव ने इन्हें देखते ही अपने धनुष की चर्चा बिसरा दी।"[1]

लेखक ने प्राचीन कवियों की सुन्दर-सुन्दर उक्तियों का समावेश अपने उपन्यास में यत्र-तत्र किया है। उदाहरण के लिए :

"नव जीवन नरेश के प्रवेश होते ही अंग के सिपाहियों ने बड़ी लूटमार मचाई, इसी भौं से में सभों के होंसे रह गये किसी ने कुच पाये, किसी ने नितम्ब। बिम्ब पर यह न जान पड़ा कि बीच में कटि किसने लूट ली।"[2]

श्यामा की सखी वृन्दा भी हाव-भावों में बढ़ी-चढ़ी है। वह व्यवहारपटु है तथा अपनी सखी के प्रेम-संकेतों को सरलता से पहचान लेती है। देश, काल और वातावरण की दृष्टि से "श्यामा स्वप्न" उपन्यास में उन्नीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य वैज्ञानिकों के आविष्कार की झलक प्राप्त होती है। देश में अंग्रेज़ी ढंग की दुकानें स्थापित हो गयी थीं। उन पर बेचने का कार्य भी सुसज्जित अंग्रेज़ महिलाएं करती थी, जिससे भारतीय जनता के हृदय में कौतूहल मचा हुआ था। रेलमार्ग की स्थापना की भी चर्चा मिली है। लेखक ने 'स्वप्न' कह कर भी उसमें एक ओर वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश किया है तथा दूसरी ओर पौराणिक आश्चर्यजनक बातें आ गयी हैं। कुछ ऐसी विचित्रता आ गयी है कि 'उपन्यास' के उपकरणों की दृष्टि से उसके कथानक को जटिल तथा असंगत कहना आवश्यक हो जाता है। ठाकुर साहेब ने "श्यामा स्वप्न" को एक मौलिक उपन्यास अथवा प्रबन्ध-कल्पना लिखा है।

प्राचीन काल के उपन्यास साहित्य की दृष्टि से इसकी मौलिकता एवं प्रबन्ध-कल्पना समीक्षकों के तर्क से परे है। उस युग की मूल रुचि अवकाश के समय मनो-विनोद की थी। यद्यपि डॉ० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है : "श्यामा स्वप्न एक चापू काव्य है जिसमें उपक्रम और उपसंहार के रूप में एक स्वप्न की भूमिका दे दी गयी है।"[3]

मूल रूप से "श्यामा स्वप्न" उपन्यास है। उसके शरीर का सम्पूर्ण ढाँचा उपन्यास के पात्र-तत्वों से निर्मित हुआ है। कथानक, पात्र, भाषा-शैली, चरित्र-चित्रण; देश-काल इत्यादि प्रत्येक अंग पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यद्यपि लेखक ने उपन्यास के बीच-बीच में चापू काव्य की छटा प्रदान करने के लिए देव, बिहारी, तुलसीदास, पद्माकर, पवनेस, रसखान, श्रीपति, बलभद्र, गिरिधरदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से अनेक उद्धरण समय-समय पर दिये हैं। लेखक ने ब्रजभाषा

---

१. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", पृ० २५-२६।
२. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", पृ० २८।
३ श्रीकृष्ण लाल : "श्यामा स्वप्न", (भूमिका) पृ० २५।

और खड़ी बोली दोनों भाषाओं का स्वच्छन्द प्रयोग किया है। लेखक का अपना अध्ययन का क्षेत्र बड़ा विस्तृत था। संस्कृत और हिन्दी के काव्यों का मंथन करके उसका निखरा रूप 'श्यामा स्वप्न" में रखा गया है। गद्य-लेखन की दृष्टि से आलंकारिक भाषा प्रकट हुई है। यमक, उपमा और अनुप्रास की तो भरमार है। "श्यामा स्वप्न" का प्रारम्भ ही भाषा की अलंकारिका का परिचय देती है।

"आज मोर यदि हमचोर के रोर से, जो निकट की खोर ही में जोर से शोर किया, नींद न खुल जाती तो न जाने क्या क्या वस्तु देखने मे आती, इतने ही में किसी महात्मा ने ऐसी परभाती गायी कि फिर वह आकाश सम्पत्ति हाथ न आयी। वाह रे ईश्वर! तेरे सरीखा जजालिया कोई जालिया भी न निकलेगा।"[1]

इसमे मोर, हमचोर, जजालिया और जालिया, नैन और चैन इत्यादि सुन्दर यमक के रूप हैं। यह स्वयंसिद्ध है कि खड़ी बोली के गद्य में एक ओर ब्रजभाषा की शब्दावली है तो दूसरी ओर बुन्देलखण्डी शब्द-भण्डार है, जिसमे व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियाँ बिना जाने हुए सहज मे ही आ गयी हैं। स्थान-स्थान पर संस्कृत-गर्भित भाषा तथा तत्सम पदावली का प्रयोग हुआ है। सुन्दर 'प्रकृति-वर्णन' के अनेक स्थल उपन्यास मे सहज में अनायास ही आयोजित हैं, जिनकी भाषा सम्कृत-गर्भित है और जिसके द्वारा ठाकुर साहेब का रीतिकालीन काव्य-परम्पराओं के प्रति प्रेम दिखाई देता है। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने कहा है : "सच तो यह है कि जगमोहनसिंह की भाषा भाव, वातावरण और वर्णन-शैली सभी दृष्टियों से रीतिकालीन है,"[2] लेकिन जहाँ तक गद्य-शैली का प्रश्न है, वहाँ कथा का क्रम यथावत् चलता रहता है।

कमलाकान्त क्षत्रिय कुमार होकर ब्राह्मण की पुत्री से प्रेम करता है और इस इच्छा के कारण बन्दीगृह मे डाल दिया जाता है। यहाँ पर ठाकुर साहेब ने प्राचीन ग्रन्थों का आधार वहीं तक ग्रहण किया है, जहाँ तक उनकी कथा मे निहित प्रेम के आदर्श का समर्थन हो जावे। ब्राह्मण की बेटी और क्षत्रिय कुमार का विवाह शास्त्रसम्मत बताने के लिए लेखक ने देवयानी और ययाति की कथा कही है तथा गंधर्व की पुष्टि प्राचीन शास्त्रों के आधार पर की है।

श्यामसुन्दर ने जब श्यामा से गन्धर्व-विवाह की बात उठाई तो वह समाज के डर से डर कर बोली : "मान्यवर, प्यारे, यह क्या व्यापार है? यह किस वेद का मार्ग है, यह किस न्याय की फाकिका है, किस वेदान्तशास्त्र का मूल है।"[3]

तब श्यामसुन्दर ने उत्तर दिया : "यदि शास्त्र तुमने बाँचा हो तो मैं कहूँ—न्याय, वेदान्त और वेदों का भेद यदि तुम जानती हो तो कहो? मेरी बात का प्रमाण करोगी वा नहीं? मेरी दशा देखती हो कि नहीं? धर्म, अधर्म की सूक्ष्म जाति खोजती

१. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न," पृ० ५।
२. श्रीकृष्णलाल : "श्यामा स्वप्न (भूमिका)" पृ० ३३।
३. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न," पृ० ६०।

हो तो कहो। सुनो, धन्य है तुम्हारे वज्रमय हृदय को जो तनिक नहीं पिघलता, मेरी ओर देखो और अपनी ओर देखो, मेरी करुणा और अपनी वीरता देखो, वेद-शास्त्र की बात का यह उत्तर है जो मेरे प्रवीन मित्र ने कहा है—

"लोक लाज की गठरी पहिले देहु डुबाय,
प्रेम सरोवर पथ में पाछे राखो पाय
प्रेम सरोवर की यहै तीरथ गैल प्रमान,
लोक लाज की गैल को देहु तिलाजलि दान।"[1]

लेखक की विचार-धारा को देखने से प्रमाणित हो जाता है कि भारतेन्दु युग की सुधार-भावना की अमिट छाप ठाकुर जगमोहनसिंह के उपन्यास पर पड़ी है। बाल-विवाह विधवा-विवाह अनमेल-विवाह के प्रति विद्रोह, सामाजिक क्रान्ति तथा प्रेम-विवाह का आग्रह दिखाई देने लगा है, यहाँ तक कि इसको (प्रेम-विवाह अथवा गन्धर्व विवाह) प्रोत्साहन देने के लिए शिक्षित जन आगे बढ़े हैं। "श्यामा स्वप्न" इस लक्ष्य का प्रतीक बन कर जनता के सामने आया, जिसमें विवाह का रूप प्रेमप्रधान रहा। माता पिता तथा विवाहनावना इसे त्याज्य माना जाने लगा।

'श्यामा स्वप्न" स्वच्छन्द प्रेम का पूर्ण समर्थक है, जिसके अध्ययन से आधुनिक-युगीन प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होने लगती हैं। 'स्वप्न अवस्थाओं' का वर्णन करने में लेखक पूर्णरूप से सफल हुआ है - "चकित हो आँखें मीजना ही रह गया—वाहरे विचित्र स्वप्न ? क्या-क्या देखा, क्या-क्या तमाशे दिखे, बस देखते ही बन जाता है—श्यामा और श्यामसुन्दर की प्रीति कैसी विचित्र हुई, उसका अन्त कैसा हुआ, कहाँ से स्वप्न में श्यामा अपना सब हाल कहती थी, अब वह कहाँ बिलाय गयी क्या-क्या कहा, वाहरे समय। वाहरे काल। तू क्या-क्या नहीं दिखाना।"[2]

लेखक ने स्वच्छन्द और आदर्श प्रेम का अन्त पूर्ण निराशाजनक बताया है, जिसका स्वरूप नारीमात्र के लिए निन्दा के रूप में प्रकट हुआ है, जैसा ठाकुर जगमोहनसिंह के समर्पण में लिखा है : "जिस कुंज के प्रेम सम्पत्ति" और 'श्यामा सरोजनी' रूपी विहगम सदा चहक-चहक कर 'श्यामा लता' की शोभा बढ़ावेंगे। 'श्याम सुन्दर' चातक सदा प्यासे ही बन कर 'पी-पी' रटेंगे मकरद कोकिल सदा हित के मीठे बोल बोलेंगे और दुर्जन द्विरेफ दारुण भंकार के मचाने में कमी न चूकेंगे, यह अपूर्व सरिता की धारा कभी न रुकेगी।"[3]

इस उपन्यास का अन्त लेखक ने १०८ पदों का रचकर विनय के रूप में किया है। यह औपन्यासिक शिल्प-शैली पर लिखी हुई एक प्रेम-कहानी है जिसने प्राचीन काल के पाठकों का मनोरन्जन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। अभिव्यंजना शैली ने

---

१. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", पृ० ९०-९१।
२. ठाकुर जगमोहनसिंह - "श्यामा स्वप्न", पृ० १६०।
३. ठाकुर जगमोहनसिंह : "श्यामा स्वप्न", (समर्पण), पृ० ३४।

पाठकों के हृदय म उपन्यास के द्वारा भी काव्यानन्द का लाभ उठाने का पूर्ण अवकाश प्रदान किया है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने इस प्राचीन उपन्यास का प्रकाशन करके आधुनिक हिन्दी जगत का महान् उपकार किया है।

प० अयोध्यासिंह उपाध्याय भी भारतेन्दुयुगीन प्रमुख उपन्यासकार हैं। आपकी मौलिक प्रतिभा और अद्भुत सूझ बूझ ने काव्य तथा नाटकों तक ही साहित्य को सीमित नहीं रखा वरन् गद्य के क्षेत्र म भी 'उपन्यास' को प्रमुख स्थान दिया है। "ठेठ हिन्दी का ठाट' और 'अधखिला फूल" आपके द्वारा रचे हुए दो मौलिक उपन्यास हैं, जिन्होंने प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यास जगत म अपना उत्कृष्ट स्थान बना रखा था।

'उपाध्याय जी' का जन्म सम्वत् १९२२ म आजमगढ जिले क अन्तगत निजामाबाद म हुआ था। मिडिल परीक्षा तक स्कूल म शिक्षा ग्रहण की। उसके बाद घर पर ही उर्दू, फारसी तथा संस्कृत की आपने पढाई की। सन् १९२४ मे हिन्दू विश्वविद्यालय मे हिन्दी क अध्यापक हो गये। दो बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनाये गये और सम्वत् २००३ म आपका स्वर्गवास हो गया। आप 'हरिऔध' उपनाम स कवि क रूप म विख्यात हुए। सन् १८८४-१८८७ क मध्य आपने अंग्रेजी से उर्दू म अनूदित दो उपन्यास वेनिस का बाँका" तथा "रिप वान विंकल" का हिन्दी भाषा म रूपान्तर किया। ये दोनो उर्दू अनुवाद काशी नागरी पत्रिका मे प्रकाशित हो चुके थे। बंगला क बंकिम बाबू के एक उपन्यास 'कृष्णकान्त का दान-पत्र" नाम से आपने हिन्दी मे अनुवाद किया, जो सन् १८९८ मे प्रकाशित हुआ। मौलिकता की दृष्टि स "ठेठ हिन्दी का ठाट" सन् १८९९ मे रचा गया और "अधखिला फूल" की रचना सन् १९०७ मे हुई। ये सारे उपन्यास भारतेन्दु युग के अन्तिम काल मे रचे गये। भाषा और शैली की दृष्टि से उसी युग की परम्परा से ये प्रभावित थे। आचार्य शुक्ल जी ने कहा है

"ये दोनों पुस्तकें भाषा क नमूने की दृष्टि मे लिखी गयीं, औपन्यासिक कौशल की दृष्टि से नहीं। उनकी सबस पहले लिखी पुस्तक 'वेनिस का बाँका' में जैसे भाषा संस्कृतपन की सीमा पर पहुँची हुई थी, वैसे ही इन दोनो पुस्तकों मे ठेठपन की हद दिखाई देती है। इन तीनों पुस्तकों को सामने रखने पर पहला ख्याल यही पैदा होता है कि उपाध्याय जी क्लिष्ट संस्कृतप्राय भाषा भी लिख सकते हैं और सरल से सरल ठेठ हिन्दी भी।"[1]

एक ओर हरिऔध जी राधाकृष्ण-विषयक पद्यों की रचना मे अपने आपको अवगाहन करा रहे थे; दूसरी ओर, बंगला के उपन्यासों को पढ़ने की उन्हें अद्भुत लगन पैदा हो गयी थी। बंकिम बाबू की प्रतिभा तथा उपन्यास-शिल्प ने उपाध्याय जी को बहुत प्रभावित किया। उनके उपन्यासो में देश तथा जाति प्रेम की अटूट

१. रामचन्द्र शुक्ल, "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ५०१।

धारा प्रवाहित हो रही है। हरिग्रौध जी ने प्रेम की भावना बंकिम बाबू से ग्रहण की है।

बंगला उपन्यासों के द्वारा समाज, राष्ट्र, भक्ति, संस्कृति सबका यथार्थवादी चित्र साधारण जनता के सामने प्रकट हुआ। हरिग्रौध जी ने निश्चय किया कि भक्ति ग्रौर शृंगार भी एकनिष्ठ न रहकर जगनिष्ठ रहेगी। देश की गतिविधियों के साथ उन्होंने ग्रपनी साधना का सम्बन्ध जोड़ा है। उन्नीसवीं शताब्दी के ग्रन्तिम वर्षों में उपाध्याय जी ने भी गद्य के क्षेत्र में ग्रनुपम उपन्यास लिखकर ग्रपना योगदान दिया। इन्हीं दिनों हिन्दी के ग्रंग्रेज विद्वान् डॉ० ग्रियर्सन ने खड्ग विलास प्रेस के ग्रध्यक्ष बाबू रामदीनसिंह का ध्यान "ठेठ हिन्दी" में कोई ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिए आकर्षित किया। बाबू साहेब ने उपाध्याय जी के सामने ग्रपनी प्रार्थना रखी ग्रौर "ठेठ हिन्दी का ठाट" का जन्म हुआ। उस समय डॉ० ग्रियर्सन के ग्रनुरोध पर इस उपन्यास को 'इण्डियन सिविल सर्विस' की परीक्षा में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकार कर लिया गया। ग्रियर्सन साहेब को यह पुस्तक इतनी पसन्द आई कि उन्होंने उपाध्याय जी से दूसरी रचना करने के लिए कहा ग्रौर इस प्रकार "ग्रधखिला फूल" का जन्म हुआ।

श्री उपाध्याय जी ने "ठेठ हिन्दी का ठाट" के उपोद्घात में कहा है : "जहाँ तक मेरा ग्रनुभव है, मैं कह सकता हूँ कि ठेठ हिन्दी ग्रब तक केवल एक ग्रन्थ लिखा गया है ग्रौर वह लखनऊ के प्रसिद्ध कवि 'इन्शा ग्रल्ला खाँ' की बनाई कहानी ठेठ हिन्दी है, जो मेरा यह विचार ठीक है ग्रौर मैं भूलता नहीं हूँ तो कहा जा सकता है कि मेरा "ठेठ हिन्दी का ठाट" नामक यह उपन्यास ठेठ हिन्दी का दूसरा ग्रन्थ है।"[१]

डॉ० ग्रियर्सन ने स्वर्गीय बाबू रामदीनसिंह को "ठेठ हिन्दी के ठाट" की सफलता के उपलक्ष में एक पत्र लिखा था।

"प्रिय महाशय !

ठेठ हिन्दी का ठाट" के सफलता ग्रौर उत्तमता से प्रकाशन होने के लिए मैं ग्रापको बधाई देता हूँ। यह एक प्रशंसनीय पुस्तक है। मुझे ग्राशा है कि इसकी बिक्री बहुत होगी, जिसके कि यह योग्य है। ग्राप कृपा करके पण्डित ग्रयोध्यासिंह से कहिये कि मुझे इस बात का हर्ष है कि उन्होंने सफलता के साथ यह सिद्ध कर दिया है कि बिना ग्रन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग किये ललित ग्रौर ग्रोजस्विनी हिन्दी लिखना सुगम है।

ग्रापका सच्चा,
जार्ज ए० ग्रियर्सन"[२]।

---

१ ग्रयोध्यासिंह उपाध्याय - 'ठेठ हिन्दी का ठाट—उपोद्घात",
प्रकाशक—हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस।

२. ग्रयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिग्रौध) "हिन्दी भाषा ग्रौर उसके साहित्य का विकास," पृ० ६८६।

दूसरा पत्र सुप्रसिद्ध बाबू काशीप्रसाद जयसवाल को ग्रियर्सन साहेब ने लिखा :

"रथफार्नहैम-किवरलोसरे
१०-१-१९०४

मेरी इच्छा है कि और लोग भी 'हरिऔध' के बताये हुए "ठेठ हिन्दी का ठाट" के स्टाईल मे लिखने का उद्योग करें और लिखें जब मैं देखूंगा कि पुस्तकें वैसी ही भाषा म लिखी जाती है तो मुझको फिर यह आशा होगी कि आगामी समय उस भाषा को अच्छा होगा कि जिसको कि मैं तीस वर्ष से आनन्द के साथ पढ रहा हूँ।

आपका सच्चा,
जार्ज ए० ग्रियर्सन"[1]

"ठेठ हिन्दी के ठाट" के बाद उपाध्याय जी ने "अधखिला फूल" लिखा। उसकी प्रसशा मे अनेक सम्मतियाँ प्रकाश में आई हैं।

काशी प्रसाद जयसवाल ने हरिऔध जी को पत्र लिखा है .

"अधखिला फूल" कल हमने रात को पढा, बहुत दिनो से उपन्यासो को पढना छोड दिया था पर इसलिए कि आपने इसे हमारे पढने के लिए भेजा था हमने पहले बेगार सा शुरू किया, समझा था कि भूमिका भर पढकर रख देंगे। पहली पलडी के प्रथम पृष्ठ की भाषा ने हमको मोह लिया और किनाद न छोडी गयी। ज्यों ज्यों पढते गये त्यों त्यों आगे बढते गये। रात को देर तक पढ़ते रहे, समाप्त हो जाने पर पुस्तक छूटी और मन मे यह चाह रह गयी कि देवदूती और देवस्वरूप का हाल कुछ और पढते। *पुस्तक शुरू से अखीर तक एक स्टाइल में लिखी गयी है।* हम कह सकते हैं कि ऐसा उत्तम उपन्यास हिन्दी में दूसरा नहीं है। हम आपको बधाई देते हैं।

काशीप्रसाद जयसवाल"[2]

दूसरी सम्मति यह है—

"*मैं अधखिला फूल आद्यन्त पढ़ गया। यह उपन्यास उत्तम और रोचक है।* श्रीमान् ने हिन्दी के भण्डार को एक प्रशंसनीय पुस्तक से सुसज्जित किया, अतएव हिन्दी रसिक आपके अनुगृहीत हैं। इसकी भाषा लड़कों और स्त्रियो के भी समझने योग्य है। ऐसी भाषा लिखना टेढी खीर है, किन्तु श्रीमान् भली भाँति सफलीभूत हुए हैं।

सकल नारायण पाण्डे"[3]

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध) : "हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास", पृ० ६८६-६८७।
२. गिरजादत्त शुक्ल (गिरीश) : "महाकवि हरिऔध," पृ० ५ से उद्धृत।
३. *गिरिजादत्त शुक्ल (गिरीश) : "महाकवि हरिऔध", पृ० ५।*

प्रगाढ़ प्रतिभावान साहित्यमनीषी हरिऔध जी में हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा थी। उनकी माधुर्यपूर्ण कल्पना, संगीत-प्रेम तथा उनकी कला-प्रियता ने उपन्यासों का आकार यद्यपि नहीं बदल दिया है, पर फिर भी उनमें एक अद्भुत रुचिवर्द्धकता है। पाठक का हृदय पढ़ते-पढ़ते प्रफुल्लित हो जाता है। युग के अनुकूल राष्ट्रीय भावना ने उपाध्यायजी की रचनाओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। साहित्य और समाज के अविच्छिन्न सम्बन्ध को उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रधान मान्यता प्रदान की है।

'ठेठ हिन्दी का ठाट' का कथानक एक दम सीधा-सादा है। देवबाला नामक नारी पात्र है, जिसका विवाह देवनन्दन के साथ सामाजिक कुरीतियों के कारण नहीं होने पाता, यद्यपि वह उसे अपना हृदय दे बैठी है। लेकिन जब विवाह असम्भव है तो देवबाला देवनन्दन को भूल सकती है और न देवनन्दन देवबाला को भूल सकता है। इस स्थिति में देवनन्दन का प्रेम के लिए अद्भुत त्याग सर्वोत्कृष्ट है। देवबाला का विवाह देवपुर के दयाशंकर पाण्डे के बेटे रमानाथ से हो जाता है। सारा समाज जानता था कि रमानाथ अनपढ़ है, काला-कलूटा है, गाँव भर की दृष्टि में बुराई से भरा पात्र है। देवबाला की माँ हेमलता सब समझती थी। उसने अपने पति रमाकान्त से देवबाला के विवाह के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये और यहाँ तक कहा कि "देवबाला के जोग देवनन्दन ही है"। पर रमाकान्त मानने वाला पिता नहीं था। जाति-व्यवस्था में उच्चता तथा हीनता की भावना ने देवबाला का विवाह देवनन्दन से नहीं होने दिया। इस पर देवनन्दन ने उसे अपनी बहिन के रूप में स्वीकार कर लिया। देवनन्दन के प्रेम की शुद्धता एवं पवित्रता ने जग के सामने एक अद्भुत आदर्श उपस्थित किया। देवबाला विवाह के बाद ससुराल गयी, वहाँ उस पर असहनीय कष्ट पड़े। वह दुखियारी सब झेलती रही। यद्यपि देवबाला की ससुराल उसके नैहर से आठ कोस पर थी, फिर भी विवाह के बाद वह ससुराल में रही। वहाँ की नारी चर्चा का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है। इससे प्रकट हो जाता है कि देव-बाला साध्वी नारी थी। "उनमें से एक ने कहा था, ऐसी दुलहिन के मुँह जोग वर नहीं है? दूसरे ने कहा था, रमानाथ तो उसके पाँवों को धोवन भी नहीं है।"[1]

देवबाला के विवाह को हुए पाँच वर्ष हो गये। ब्याह के छः महिने ही बाद उसके ससुर दयाशंकर की मृत्यु हो गयी, जो उनकी कमाई का केवल सहारा था। कुछ दिनों बाद रमानाथ भी पूरब कमाने चला गया। संयोगवश देवनन्दन एक बार विचरते-विचरते देवबाला के यहाँ जा पहुँचे। उसकी दयनीय अवस्था देखी। वहाँ सात दिन रहे। उसके रोगी बेटे को स्वस्थ किया। खाने-पीने का प्रबन्ध करके रमानाथ को खोजने वह निकल पड़ा। रामपुर गाँव में जाकर रमानाथ का पता चला और वह भी

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाट," पृ० २६।

ज्ञात हुआ कि उसने रखैल रखली है। उसका चाल-चलन ठीक नहीं है और वह कलकत्ते रहने लगा है। देवनन्दन साधू था और उसे रमानाथ का लम्पट रूप मिला। दोनों एक-दूसरे से मिले। देवनन्दन ने देवबाला की कथा सुनाई। उसकी बीमारियाँ रोग, दरिद्रता, दैन्य इन सबका चित्र रमानाथ के सामने खींचा। अब रमानाथ को रखैल भी मर चुकी थी, अतः वह देवनन्दन के साथ देवबाला के पास जाने को तैयार हो गया। गाँव जाकर देखा कि गिरवी रखे हुए खेत तो सब देवनन्दन ने छुड़ा दिये हैं, पर देवबाला बहुत ही अधिक बीमार है। उसकी अन्तिम साँसें चल रही हैं। उससे बोला नहीं जाता है। उसने रमानाथ के पैरों की धूलि अपने मस्तक पर चढ़ाई और अपने बच्चे को सम्भलाया, जो रमानाथ के जाने के बाद पैदा हुआ था। देवबाला ने इसके बाद अपने प्राण त्याग दिये।

देवनन्दन के भाई के रूप में जिस भ्रातृ प्रेम की सार्थकता लेखक ने दर्शायी है, वह देवोपम तथा अपूर्व है। उसका त्याग इस भौतिक जगत में अनुपम है। प्रेयसी के स्थान पर देवबाला को बहिन मानकर उसने जो सहायता की, जैसे उसके पति को खोज निकालना तथा अन्त समय में पति पत्नी की भेंट करा देना उसके महान् कार्य हैं। देवबाला की मृत्यु ने पापी रमानाथ के जीवन की दिशा बदल दी। उसने सारी लम्पटता छोड़ दी तथा वह अपनी पत्नी के वियोग में बावला बन कर मारा-मारा फिरने लगा। देवबाला के माता-पिता 'जगन्नाथजी' गये और फिर वहाँ से वापस नहीं लौटे। 'क्या जो इस धरती पर डर कर चलता है, वही मुँह के बल गिरता है? क्या धर्म से रहने वाले को ही सब कुछ भुगतना होता है? राम जाने यह क्या बात है? पर जो ऐसा न होता, देवबाला को इतना दुख न भोगना पड़ता।'[1]

देवनन्दन के इन शब्दों ने परमात्मा की क्रियाओं, उसके नियमों पर एक कटु व्यंग्य किया है। जो व्यक्ति समाज में पुण्यात्मा बनकर रहते हैं, धर्म से रहते हैं, वे सदा दुखी होते हैं। देवनन्दन ने जग से सारा नाता तोड़ लिया और जीवन भर विवाह नहीं किया, बल्कि साधू हो गया। सारा जग केवल आशा के बल पर जीवित रहता है। लेखक कहता है: "देवनन्दन कब तक जीवित रहे और किस ढंग से उन्होंने देश की बुरी चालों के दूर करने के लिए जतन किया, कैसे-कैसे खोटी रीत छुड़ा कर अपने देश-भाइयों का भला करना चाहा।"[2] ऐसा प्रतीत होता है कि देवनन्दन जैसे पात्र की सृष्टि संसार में लोकोपकारी कार्य करने के लिए ही हुई है। जब तक वे जीवित रहे, निस्वार्थ रह कर दुखियों की सेवा की और त्यागमय जीवन व्यतीत करते रहे।

हरिऔधजी की सहृदयता तथा उदारता ने अपने उपन्यास के पात्रों में

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाट", पृ० ६४-६५।
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाट", पृ० ६७।

सजीवता भर दी है, जिससे वे साकार होकर अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो गये हैं। देवबाला, देवनन्दन और रमानाथ तीनों का सफल चरित्र-चित्रण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक दूर किनारे पर बैठ कर अपने पात्रों के जीवन के कार्य-व्यापारों का बारीकी से निरीक्षण कर रहा है। उनके सुख-दुःख में भाग ले रहा है तथा जीवन-पथ की ओर संकेत कर रहा है।

यह उपन्यास यथार्थवादी धरातल पर रचा गया है। भाषा शैली की दृष्टि से "ठेठ हिन्दी का ठाट" उपाध्यायजी की ठेठ हिन्दी का नमूना है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी "हिन्दी भाषा" नाम की पुस्तिका में ठेठ हिन्दी का नमूना दिया है जो शुद्ध हिन्दी का नमूना है—

"पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आये क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फन्दे में पड़ गये कि इधर की सुध ही भूल गये। कहाँ तो वह प्यार की बातें कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना—हा ! मैं कहाँ जाऊँ कैसी करूँ ? मेरी तो ऐसी कोई मुँहबोली, सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ, कुछ इधर-उधर की बातों से ही जी बहलाऊँ।"[1]

उपाध्यायजी ने भी भाषा की दृष्टि से ठेठ हिन्दी को एक उत्तम आदर्श माना है। ठेठ हिन्दी के लिए उन्होंने अपभ्रंश संस्कृत शब्द अथवा अत्यन्त प्रचलित शुद्ध संस्कृत शब्द का प्रयोग किया है, केवल इस बात का ध्यान रखा है कि वह भाषा गँवारी न बन जावे। संस्कृत शब्द दो या तीन अक्षर का शुद्ध संस्कृत शब्द है, जिससे भाषा में क्लिष्टता नहीं आने पाई हो, जैसे माता, सुख, दूर, पती, फूल, रीति, जग, देह, रोग, धन, उपाय, उदास आदि सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है। उपाध्यायजी ने भाषा की गम्भीरता को समझा है और 'भावानुकूल भाषा' का प्रयोग किया है। शैली तथा रचना-विधान की दृष्टि से "ठेठ हिन्दी का ठाट" सरस, मधुर तथा मार्मिक है। जीवन की गूढ़ समस्याओं को सरलता से समझाने की चेष्टा की है। उपाध्यायजी का उद्देश्य 'कला के लिए कला' न रह कर कला और जीवन दोनों साकार होकर उनकी रचनाओं में प्रकट हुए हैं। लेखक ने उपन्यास की भाषा को जितना सरल और मनोहर बनाया है, 'समर्पण' की भाषा को उतना ही संस्कृतनिष्ठ तथा क्लिष्ट बनाकर अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है।

"समर्पण,

शील श्रीयुत महा मान्य, अशेष गुण गुणालंकृत,

विद्वज्जन-मण्डली मण्डन, विविध विरदावली विभूषित,

श्रीयुत जी० ए० ग्रियर्सन बी० ए०, आर० सी० एस०, सी० आ० ई०, पी-एच० डी० इत्यादि,

सज्जन शिरोभूषणेषु।

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाठ (उपोद्‌घात)", पृ० ३।

महात्मन,

मैं एक साधारण जन हूँ, आप मुझ से सर्वथा अपरिचित हैं। किन्तु महानुभाव की सत्कीर्ति कलाकौमुदी, हिम धवल श्र ग समूह विमण्डित हिमाचल से, भारत समुद्र के उत्ताल तरंगमाला विधौत कन्या कुमारी अन्तरीप तक सुविकीर्ण है।

आज उसकी नैसर्गिक शीतलता पर भारतवर्ष का प्रत्येक पठित समाज विमुग्ध है और प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति उसकी मन प्राण परितोषिनी माधुरी पर आसक्त। इसी सूत्र से मुझ अल्पज्ञ को भी आप से परिचय रखने की प्रतिष्ठा प्राप्त है और यही कारण है कि आज मैं आपकी सेवा में एक सदुपहार लेकर उपस्थित होने का साहसी हुआ हूँ। उपहार अपर कथित वस्तु नहीं, मेरा ही निर्माण किया हुआ "ठेठ हिन्दी का ठाट" नामक एक साधारण उपन्यास है, किन्तु यतः यह आप ही की प्रेरणा से महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह जी द्वारा आज्ञापित होकर लिपिबद्ध हुआ है, अत मैं इसको आप ही के कर कमलों में सादर समर्पित करता हूँ। आशा है आप इसको ग्रहण कर मेरे आन्तरिक अनुराग की परितृप्ति साधन कीजियेगा। विशेष निवेदन कर मैं आपके अमूल्य समय को विनष्ट नहीं करना चाहता।"

३० मार्च सन् १८९९ आश्रित

अयोध्यासिंह उपाध्याय

"ठेठ हिन्दी का ठाट" की ठेठ हिन्दी का भाषा का नमूना निम्नलिखित अवतरण में स्पष्ट रूप से देखिए—

"एक दिन हेमलता अपने पति रमाकान्त के पास बैठी हुई पंखा झल रही थी। इधर उधर की बातें हो रही थीं इसी बीच देवबाला की बात उठी। हेमलता ने कहा : "देवबाला ग्यारह बरस की हो गयी। अब उसका ब्याह हो जाना चाहिए, मैं चाहती हूँ इस बरस आप इस काम को कर डालें।"

रमाकान्त ने कहा :

"यह बात मेरे जी मे बहुत दिनों से समायी है। मैं भी इस बरस उसका ब्याह कर देना चाहता हूँ पर क्या करूँ, कहीं जोग घर नहीं मिलता, एक ठौर ब्याह ठीक भी हुआ है तो वह पाँच सौ रोक माँगते हैं। इसी से कुछ अटक है, नहीं तो इस बरस ब्याह होने में और कोई झंझट नहीं है।"[1]

इस उपन्यास का मूल लक्ष्य ठेठ हिन्दी की सफलता का प्रतिपादन करना तथा जग की नश्वरता और दुखवाद की स्थापना है। लेखक ने अपना जीवन-दर्शन देवबाला के मुख से कहलवाया है। "उसने सोचा, इस धरती पर सुख हो नहीं दुख है, अभी दो दिन की बात है यह पखड़िया कैसी हँस रही थीं, इनमें कैसी सुघराई थी, कैसा अनोखापन था, कैसी जी लुभाने वाली छटा थी ; पर आज न वह हँसी है, न

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय "ठेठ हिन्दी का ठाट," पृ० ७।
(हिन्दी साहित्य कुटीर,' बनारस)।

सुघराई है, न वह अनोखापन है, न वह छटा, आज वह कुम्हला गयी है, सूख गयी है, मुरझाई हुई धरती पर पड़ी है। जग का यही ढंग है। सब दिन एक सा नहीं बीतता, फिर जिस पर जो पड़ता है उसको वही भुगतना होता है। होनहार अपने हाथ नहीं, मानुख सोचता और है, होता और है।"[1]

उपन्यास की भाषा में स्वाभाविकता, क्रमबद्धता है, धारावाहिकता है, जो उपन्यास की यथार्थवादी शैली का ग्रहण किये हुए है। मर्मस्पर्शी भावों की सफल अभिव्यंजना लेखक की लेखिनी से हुई है। उपन्यास रचना-विधान में सफल हुआ है।

श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' ने लिखा है : "ठेठ हिन्दी का ठाट", नारी का बड़ा ही सरल रूप अंकित करता है। देवबाला का दर्शन हमें सबसे पहले आँचल के नीचे एक माला छिपाये रहने की अवस्था में होता है। देवनन्दन के बहुत आग्रह पर जब वह माला दिखलाती है तब देवनन्दन स्वभावतः पूछ बैठता है—यह माला तुमने क्यों बनायी है देवबाला ?"[2]

देवबाला और देवनन्दन का कथोपकथन के द्वारा चरित्र-चित्रण बड़ा ही मनमोहक है। देवबाला के द्वारा की गयी प्रार्थना देखिये—

'मान जा भँवर कही तू मेरी।
भूल न रस लै इन फूलन को पैयाँ लागत तेरी,
तारि तारि इन्हीं को गजरा अपने हाथ बनैहों।
अपना मन को पहिनि गरे में मनवारे को देहों,
तिने फूलन धारे यामें नहिं तेरो बिगरै है
पै माने इतनो ही बतिया छतिया मार सिरै है।"[3]

ऐसी भोली-भाली सच्ची प्रेमिका देवबाला की अकस्मात् देवनन्दन से उस समय दुबारा भेंट होती है, जब वह विपत्ति के सागर में गले तक डूबी हुई है। देवबाला आदर्श पत्नी, आदर्श प्रेमिका और आदर्श पुत्री थी। देवनन्दन के बहुत आग्रह करने पर ही उसने अपनी दशा का ज्ञान उसे कराया है। पति के लौटने की कोई आशा नहीं थी और उसका जीवनान्त हो रहा था, तब वह अपने पुत्र की अनाथ अवस्था से दुखी होकर उद्विग्न हो जाती है—

"आज मैं इसकी धूल झाड़ती हूँ, मुँह चूमती हूँ, इसको रोते देख कर दुखिया बनती हूँ। हाय ! कल्ह इसकी धूल कौन झाड़ेगा ? कौन इसका मुँह चूमेगा ? कौन इसको रोते देखकर कलेजा पकड़ेगा ? कल्ह यह किसको माँ कहेगा।"[4]

देवबाला का चरित्र आकर्षक तथा हृदयविदारक है। भारतीय नारी की करुणा

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाट," पृ० १७।
२. गिरजादत्त शुक्ल : "महाकवि हरिऔध," पृ० ६६।
३. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाट," पृ० १३।
४. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाट", पृ० ५८।

उसमें साकार हो उठी है। देवबाला के पिता की मूर्खता तथा ऊँच-नीच के भेद भाव ने बेटी की दुर्दशा कराई। समाज में पिता का यह अज्ञानी और महकारी रूप आज भी स्थान-स्थान पर उपलब्ध है जिसके फलस्वरूप इस प्रकार की दुखान्त कहानी नित्य घटा करती है। अयोग्य वरों से योग्य कन्याओं का विवाह हिन्दू समाज में एक साधारण सी बात है। इस उपन्यास में देवबाला और देवन दन जैसे पात्रों की सृष्टि करके लेखक ने प्रम के उज्ज्वल और आदर्श रूप की स्थापना की है। देवबाला भारतीय समाज और संस्कृति म पली हुई उच्च गोत्री नारी है जिसने मृत्युपयन्त अपने धम और कर्त्तव्य को निबाहा है। प्रमी को भाई के रूप में ग्रहण कर लेना, पति की अनुगामिनी बन कर कष्ट झेलना आदि भारतीय संस्कृति की अपूर्व सफलता है। इस प्रम के अन्तर्गत पावन आध्यात्मिकता प्रवाहित हो रही है। देवनन्दन के अपूर्व त्याग ने भारत क नर रत्नों का परिचय दिया है। लेखक ने बताया है "एक एक करके दिन जाने लगे। देवबाला को मरे कई दिन हो गये, पर देवनन्दन अब तक उसको नहीं भूले हैं। अब तक वह लड़कपन की हंसती खेलती देवबाला, अब तक ब्याह के पहले की बिना घबराहट की लजीली देवबाला, अब तक वह रोती कलपती देवबाला उनकी आँखों म कलेजे म, जी में रोंये रोंये में घूम रही है। जागते सोते उठने-बैठने खाते-पीते देवबाला की सूरत उनको बेध रही है।"[1] धीरे धीरे साधु जीवन धारण करके देवनन्दन परोपकार म अपना जीवन व्यतीत करते हुए इस नश्वर जगत से विदा हो जाते हैं। भाषा और विचार की परिपक्वता की दृष्टि से "ठेठ हिन्दी का ठाट" हरिऔधजी का अपूर्व और अनुपम आदर्श उपन्यास है। हरिऔधजी की धार्मिक तथा आध्यात्मिक भावनाएँ इसम कूट कूट कर भरी हैं। जीवन का सच्चा लक्ष्य इसम प्राप्त होता है।

देवनन्दन की विरक्ति की भावना में देशानुराग समाज-सेवा इत्यादि गुण निहित हैं जो उपाध्यायजी के जीवन का मूल लक्ष्य था। उनका मौलिक प्रतिभा प्रकृति-वर्णन म और भी अधिक प्रस्फुटित हुई है। प्रकृति-वर्णन का एक सुन्दर उदाहरण इस अवतरण म प्राप्त हो जावेगा—

देवबाला पोखरे की ओर देखने लगी उसने देखा उसम बहुत ही सुथरा काँच ऐसा जल भरा है धीमी बयार लगने से छोटी छोटी लहरें उठती हैं। फूले हुए कौल अपने हरे हरे पत्तों म धीरे धीरे हिलते हैं। नील आकाश और आस पास के हरे फूले फले पेड़ों की परछाहीं पड़ने से वह और सुहावना और अनूठा हो रहा है। सूरज की किरणें उस पर पड़ती हैं चमकती हैं, उसके जल क नीले रंग को उजला बनाती हैं और टुकड़-टुकड़ हो जाती हैं। आकाश का चमकता हुआ सूरज उसमें उतरता है, हिलता है, डोलता है थर-थर काँपता है और फिर पूरी चमक दमक क साथ चमकने लगता है। मछलियाँ ऊपर आती हैं डूब जाती हैं, नीचे चली जाती हैं,

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय "ठेठ हिन्दी का ठाट", पृ० ६४।

फिर उतराती हैं, खेलती हैं, उछलती कूदती हैं। चिड़ियाँ ताक लगाये घूमती हैं, पख बटोर कर अचानक आ पड़ती हैं, डूब जाती हैं, दो एक को पकड़ती हैं और फिर उड़ जाती हैं।"[1]

उपाध्यायजी का दूसरा उपन्यास "अधखिला फूल" है। इसका आकार "ठेठ हिन्दी का ठाट" से बड़ा है। उसकी भी भाषा ठेठ हिन्दी है। स्वयं हरिऔधजी ने इस उपन्यास की भूमिका मे लिखा है: "जिस समय मैंने "ठेठ हिन्दी का ठाट" लिखा था, उस समय साधारण लोगो की बोल चाल पर बहुत दृष्टि रखता था और जिन संस्कृत शब्दो को साधारण ग्रामीण को बोल-चाल व समय काम में लाते देखा, उन्हीं शुद्ध संस्कृत शब्दो का प्रयोग मैंने उक्त ग्रन्थ मे किया। किन्तु ये शुद्ध संस्कृत शब्द अधिकतर दो अक्षरो के हैं, जैसे रोग, दुख, सुख इत्यादि। मैंने उस ग्रन्थ में तीन अक्षर के शुद्ध संस्कृत शब्दो का भी प्रयोग किया है, किन्तु 'अल्प', 'उपाय' इत्यादि दो ही चार शब्द इस प्रकार के उसमे आये हैं। कारण इसका यह है कि उस समय तक मैंने कतिपय तीन अक्षरो के संस्कृत शब्दों के विषय में यह निश्चित नहीं कर लिया था कि वे शब्द अवश्य सर्वसाधारण की बोल-चाल में व्यवहृत हैं।

उस समय वे सब शब्द मीमांसित हो रहे थे। किन्तु अब मैंने इन शब्दों के विषय में निश्चय कर लिया है कि ये सब अवश्य सर्वसाधारण की बोल-चाल में आते हैं। अतएव इस ग्रन्थ में मैंने इन सब शब्दो का प्रयोग निस्सकोच किया है। ये तीन अक्षर के शब्द 'चंचल', 'आनन्द', 'सुन्दर' इत्यादि हैं।"[2]

उपाध्यायजी ने ठेठ हिन्दी लिखने के लिए संस्कृत के शुद्ध शब्दों को ग्रहण किया है। इस ग्रन्थ की 'भूमिका' और 'समर्पण' भी "ठेठ हिन्दी का ठाट" के ढग पर ही लिखी गयी है। इसकी भाषा भी उच्च कोटि की संस्कृतगर्भित है, जिसके द्वारा ठेठ हिन्दी की योग्यता साहित्य में प्रमाणित हो जाती है।

"अधखिला फूल" की समर्पण की भाषा का उदाहरण देखिये—

"बालार्क अरुण राग रंजित प्रफुल्ल पाटल प्रसून, परिमल विकीर्ण-कारी मन्द-वाही प्रभात समीरण, अतसी कुसुमद लोपमेय कान्तिनव जलधर पटल, पीयूष प्रवर्षण-कारी पूर्ण शुभ्र शारदीय शशांक, रवि किरणो द्भासित वीचि विक्षेपण शीला तरंगिणी श्यामल तृणावरण परिशोभित उत्तुंग शैलशिखर श्रेणी, नवकिसलय कदम्ब समलंकृत वासंतिक विविध विटपावली, कोकिल कुल कलंकीकृत कण्ठ समुत्कीर्ण कल निनाद, अत्यन्त मनामुग्धकर और हृदयतलस्पर्शी है। किन्तु इन अलौकिक प्रमोद-कर प्राकृतिक पदार्थों की अपेक्षा किसी पुरुष रत्न के पवित्र औदार्य्यादिगुण विशिष्ट हृदयग्राही और विमुग्धी कृत मनः प्राण है।"[3]

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "ठेठ हिन्दी का ठाट", पृ० २४।
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "अधखिला फूल", भूमिका से उद्धृत, पृ० १६-१७।
३. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "अधखिला फूल", समर्पण से उद्धृत, पृ० ४६।

उसके बाद फिर 'भूमिका' में दूसरे स्थान पर स्वयं उपाध्यायजी ने लिखा है : "एक विषय में मैं बहुत लज्जित हूँ और वह इस भूमिका की भाषा है। इस भूमिका में बहुत से संस्कृत शब्दों का प्रयोग करके गोस्वामी तुलसीदास के इस वाक्य का कि—

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे
जे आचरहिं ते नर न घनेरे।"

स्वयं आदर्श बन गया है। किन्तु क्या करूँ, एक तो जटिल विषयों की मीमांसा करनी थी, दूसरे यह भूमिका बहुत शीघ्रता में लिखी गयी है, अतएव उक्त दोष से मैं मुक्त न हो सका। यदि परमात्मा सानुकूल है तो आगे को इस विषय में सफलता लाभ करने की चेष्टा करूँगा।"[1]

उपाध्यायजी की भाषा में विशेषणों और समासों की भरमार है। उन्होंने ठेठ हिन्दी में कथानक का चुनाव करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। हरिऔधजी का प्रकृति की ओर विशेष झुकाव इस उपन्यास में भी अत्यन्त सराहनीय रहा है। अनेक उद्धरण उपन्यास में बिखरे पड़े हैं।

प्रकृति वर्णन का उदाहरण देखिये—

"वैशाख का महीना, दो घड़ी रात बीत गयी है। चमकीले तारे चारों ओर आकाश में फैले हुए हैं दूज का बाल सा पतला चाँद पश्चिम की ओर डूब रहा है, अँधियाला बढ़ता जाता है, ज्यों-ज्यों अँधियाला बढ़ता है, तारों की चमक बढ़ती जान पड़ती है। उनमें जोत सी फूट रही है। वे कुछ हिलते भी हैं, उनमें चुपचाप कोई-कोई कभी टूट पड़ते हैं, जिससे सुनसान आकाश में रह-रह कर फुलझड़ी सी छूट जाती है। रात का सन्नाटा बढ़ रहा है, ऊमस बढ़ी है। पवन डोलती तक नहीं, लोग घबड़ा रहे हैं, कोई बाहर खेतों में घूमता है, कोई घर की छतों पर ठण्डा हो रहा है, ऊमस से घबड़ा कर कभी कभी कोई टिटहरी कहीं बोल उठती है।"[2]

"अधखिला फूल" की कथावस्तु बड़ी मनोरम और हृदयहारी है। इसकी नायिका देवदूती है और नायक है देवस्वरूप। देवदूती प्रारम्भ में 'बासमती' के प्रयत्नों से 'कामिनी मोहन' की ओर आकर्षित होती है, किन्तु शीघ्र ही वह सँभल जाती है। एक बार ऐसी घटना घटी कि उसने 'कामिनी मोहन' के सम्मुख अपने प्रणय का छलपूर्ण प्रदर्शन किया और फिर उससे छुटकारा पा लिया। दूसरी बार कामिनी मोहन उसके जाल को समझ गया और अपने कपटपाश में उसे अधिक दृढ़ता से जकड़ लिया।

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "अधखिला फूल", भूमिका से उद्धृत, पृ० ४६।
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय "अधखिला फूल", पृ० ५१ (प्रथम पलडी)।
अथवा
गिरिजादत्त शुक्ल : "महाकवि हरिऔध", पृ० १०८।

देवदूती प्रथम देवस्वरूप को जानती तक नहीं थी। देवदूती और देवस्वरूप का वार्त्तालाप इतना सीधा और सरल है कि देवदूती का चरित्र महान् बन जाता है। जब देवस्वरूप कहता है कि तुम मुझ से बातचीत क्यों नहीं करती, उस समय का देवदूती का उत्तर वास्तव मे प्रशंसा के योग्य है : "मुझको चेत है आपने उस दिन कहा था जो लोग धर्म की रक्षा के लिए कभी-कभी इस धरती पर दिखलाई देते हैं, मैं वही हूँ। जो सचमुच मे आप वही हैं तो आप से बातचीत करने म मुझे कोई आनाकानी नही है। पर बात इतनी है, इस भाँति आप से बातचीत करते मुझको इस सुनसान घर मे जो कोई देख लेगा तो न जाने क्या समझेगा। जो कोई न देखे तो धर्म के विचार से भी किसी सुनसान घर मे किसी पराई स्त्री का पराये पुरुष के साथ रहना और बातचीत करना अच्छा नहीं है। आप बड़े लोग हैं, इन बातों को सोच कर जो अच्छा जान पड़े कीजिए। मैं आप से बहुत कुछ नहीं कह सकती।"[1]

लेखक ने देवदूती का जीवन एक सतीसाध्वी भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है, जो सारा जीवन कष्टमय बिताकर भी अपार सन्तोष का अनुभव करती है। जब देवस्वरूप उसको उसकी माँ के पास पहुँचाने को कहता है तो वह स्पष्ट रूप से उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देती है। देवदूती के द्वारा उपाध्यायजी ने नारी धर्म की गूढ़ व्याख्या की है। नारी की मर्यादाएँ और परम्पराओं का एक सफल चित्र उतारा है। देवदूती वह नारी है, जो घोर कष्ट सहकर भी भारतीय संस्कृति और मर्यादा के भीतर अपना जीवनयापन करती है। नारी के कठिन धर्म-परायणता का उसे पूर्ण ज्ञान है। देवदूती जानती है कि देवस्वरूप प्रमवान व्यक्ति है, वह उसके साथ कहीं भी कैसे आ जा सकती है। अपनी माता के घर भी वह अचानक चले जाने को तैयार नहीं है। आदर्श स्त्री होने के नाते उसके कथोपकथन में कहीं कहीं कठोरता अपरिलक्षित होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक न "ठेठ हिन्दी के ठाट" मे देवनन्दन पात्र की सृष्टि समाज-कल्याण के लिए की है, उसी प्रकार देवस्वरूप का चरित्र भी उपाध्यायजी के सामाजिक विचारों का प्रतीक है। साधुओं के बारे में उपाध्यायजी ने अपने विचार देवस्वरूप के मुख से कहलाये हैं, जब वह हरमोहन पाण्डे के साथ बातचीत करता है : "साधु होना टेढ़ी खीर है, बड़ा कठिन काम है। सर पर जटा बढ़ाये, भभूत रमाये, गेरुआ पहने, हाथ म तूम्बा चिम्टा लिए आप कितनों को देखते हैं ; पर क्या वे सभी साधू हैं ? नहीं, वे सभी साधू नहीं हैं। भेष उनका साधुओं का सा देख लीजिये, पर गुण किसी में न पाईयेगा। कोई पेट के लिए भभूत रमाता है, कोई चार पैसे कमाने के लिए जटा बढ़ाता है, कोई लोगों से पुजाने के लिए गेरुआ पहनता है, कोई घर के लोगों से बिगड़ खड़ा होता है और झूठमूठ साधुओं का भेष बनाये फिरता है, इन सब लोगों से निराले कुछ ऐसे लोग

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "अधखिला फूल," पृ० १७७।

होते हैं, जो न तो कुछ काम कर सकते, न किसी काम में जी लगाते। जिस काम को वे करना चाहते हैं, आलस से वही काम उनका पहाड़ होता है, फिर उनका दिन कटे तो कैसे ? वे सब छोड़ छाड़ कर साधु बनने का ढचर निकालते हैं और इसी बहाने किसी भाँति अपना दिन काटते हैं।"[1]

जब देवस्वरूप देवदूती को मरा हुआ समझ लेते हैं तब वे भी साधुओं का सा जीवन व्यतीत करने लगे। जिस समय उन्होंने देवदूती की रक्षा की थी, वे नहीं जानते थे कि वह उनकी स्त्री है। उन्होंने कर्त्तव्य के नाते उसकी रक्षा की थी। अब साधू बनकर भी उन्होंने नम्रता और कर्त्तव्यपरायणता का परिचय दिया है। अन्त में हम देखते हैं कि हरिऔधजी ने देवस्वरूप के लिए जिस साधु जीवन की अवतारणा की है वह एक आदर्श सद्गृहस्थ का जीवन है। भारतीय परिवार का चित्र है।

देवस्वरूप के दैनिक कार्यक्रम को देखकर उनका आदर्श गृहस्थ जीवन का चित्र प्रकट होता है : "जाते जाते हमको हरमोहन पाण्डे (देवदूती के पिता) का घर मिला और इसी घर की दाहिनी ओर देवस्वरूप का घर दिखलाई पड़ा। इस घर को देवस्वरूप ने अपने पैसे से बनवाया था और आजकल वह देवदूती के साथ इसी में रहते थे। देवस्वरूप के पास बाप दादे की इतनी सम्पत थी जिससे वह अपना दिन भली भाँति बिता सकते थे। इसलिए कामिनी मोहन की सम्पत में से वे अपने लिए एक पैसा नहीं लेते थे और अपने लिए जो करते थे अपने बाप दादे की सम्पत में से करते थे।"[2]

देवस्वरूप का सारा चित्र हरिऔधजी का जीता-जागता परोपकारी स्वरूप है। उसकी दानशीलता, कार्यपटुता, परिश्रम, समाज सेवा, विनम्रता, दया, उदारता, त्याग, उपाध्यायजी के स्वयं के गुणों की परिचायक है। गृहस्थ जीवन मानव के जीवन का उच्च लक्ष्य माना गया है। "प्रियप्रवास" में भगवान श्रीकृष्ण का जो व्यक्तित्व उपाध्यायजी ने उतारा है, वही देवनन्दन और देवस्वरूप जैसे पात्रों में प्रकट होता है। "प्रियप्रवास" की राधा और देवबाला तथा देवदूती का चरित्र समन्वय की दृष्टि से एक ही तुला पर रखे जाने योग्य है। देवबाला की प्रणय की मधुर पीड़ा, देवदूती की करुणा और परोपकारिता, उदारता, दानवीरता राधा के चरित्र में साकार हो उठी है। 'अधखिला फूल" की भाषा में ठेठ हिन्दी के साथ फारसी के शब्दों का भी उपाध्यायजी ने प्रयोग किया है। उनकी भाषा में संस्कृत और फारसी दोनों ही भाषाओं का सुन्दर प्रयोग हुआ है। हिन्दी उपन्यास जगत के क्षेत्र में उपाध्यायजी ने एक युगान्तर उपस्थित किया है। हरिऔधजी के अन्य सहयोगी राधाकृष्णदास ने "निस्सहाय हिन्दू" नामक उपन्यास सन् १८६० में लिखा। राधाचरण गोस्वामी और

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "अधखिला फूल", पृ० २१८-२१६।
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय : "अधखिला फूल," पृ० २४०-२४१।

देवीप्रसाद शर्मा ने "विधवा विपत्ति" सन् १८८८ में लिखा। कार्तिकप्रसाद खत्री ने "जया" नामक उपन्यास सन् १८९६ में रचा। बालमुकुन्द गुप्त ने "कामिनी" लिखा। लज्जाराम मेहता ने "धूर्त रसिकलाल," "स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी", "हिन्दू गृहस्थ", "आदर्श दम्पति", "बिगड़े का सुधार", "आदर्श हिन्दू" इत्यादि उपन्यास लिखे। इसी समय बाबू ब्रजनन्दन सहाय बी० ए० ने "सौन्दर्योपासक" और "राधाकान्त" नामक उपन्यास सम्वत् १९६६ में लिखे। प० राधाचरण गोस्वामी, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास इत्यादि अनेक उपन्यासकार हुए, जिन्होंने मौलिक तथा अनूदित उपन्यास रचे। इनके उपन्यासों में भारतीय हिन्दू संस्कृति का सच्चा नमूना प्राप्त होता है कि प्राचीन युग में साहित्य-रचना का मूल उद्देश्य समाज-सुधार की भावना और नैतिक आदर्शों की स्थापना थी। "स्वान्त: सुखाय" न होकर "लोक हिताय" साहित्य रचा गया। इसलिए "नि:सहाय हिन्दू" यदि एक ओर हिन्दू जाति की दैन्य अवस्था का प्रतीक है तो दूसरी ओर उसमें सुधार की भावना है। पात्रों के द्वारा उपदेशात्मक प्रवृत्ति इस बात का सूचक है कि उपदेश के द्वारा सामाजिक एवं धार्मिक सुधार करना लेखक के लिए आवश्यक हो जाता है।

राधाकृष्णदास ने "नि:सहाय हिन्दू" नामक एक वियोगान्त उपन्यास *स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञानुसार सन् १८९०* में लिखा। ये *भारतेन्दु बाबू* के फुफेरे भाई थे। इनका जन्म सम्वत् १९२२ और मृत्यु सम्वत् १९६४ है। महान् प्रतिभा-शाली होने के कारण भारतेन्दु बाबू का अधूरा छोड़ा हुआ नाटक "सती प्रताप" इन्होंने *ही पूरा किया था। सर्वप्रथम "दु:खिनी बाला"* नामक एक छोटा सा रूपक इन्होंने लिखा था, जो "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और "मोहन चन्द्रिका" में प्रकाशित हुआ था। इसमें जन्मपत्री मिलान, बाल विवाह, अपव्यय आदि अनेक कुरीतियों के दुष्परिणामों का उल्लेख है। इनका दूसरा नाटक "*महारानी पद्मावती*" अथवा "मेवाड़ कमलिनी" है, जिसकी रचना चित्तौड़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई के समय की पद्मिनी वाली घटना को लेकर है। सबसे उत्कृष्ट नाटक "महाराणा प्रताप" है, जो सम्वत् *१९५४ में समाप्त हुआ था। इसकी लोकप्रियता इस बात से प्रकट है कि यह कई* बार अभिनीत हुआ है। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने "निस्सहाय हिन्दू" नामक लघु उपन्यास लिखा जो लगभग सौ पृष्ठों में उपलब्ध है और उसके साथ ही साथ *बंगला भाषा से कई उपन्यासों का* अनुवाद किया, जैसे *"स्वर्णलता", "मरता क्या* न करता" इत्यादि। नैतिक तथा हिन्दू आदर्श की सृष्टि से यह उपन्यास अपना विशेष स्थान लिये हुए है, जैसा लेखक ने स्वयं निवेदन में कहा है 'आज मैं इस *क्षुद्र उपन्यास को लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ,* कृपापूर्वक इस दीन को अपना दास जानकर इस लेख को अंगीकार कीजिये। मेरी अवस्था अभी केवल १६ (सोलह) वर्ष की है और इस अवस्था के लोग बालक कहे जाते हैं, इसीलिए

यह लेख भी बालक का है और इसी से इसमें बहुत भूलें हैं। इससे मैं निवेदन करता हूँ कि इस बालक की धृष्टता को आप लोग क्षमा करेंगे।"[1]

"यह ग्रन्थ पूज्यपाद स्वर्गीय भाई साहेब बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञानुसार बना था, किन्तु कई कारणों से बिना छपा ही इतने दिनों तक पड़ा रहा। जिनकी आज्ञा से यह बना था, जिनके श्री चरणों में समर्पित करके फूले अंगों नहीं समाने की इच्छा होती थी। हाय! आज वही नहीं है।"[2]

राधाकृष्णदास जी के हृदय में भारतेन्दु बाबू के प्रति अपूर्व श्रद्धा से पूर्ण भावनाएँ भरी पड़ी हैं। अपनी प्रतिभा को उनके चरणों में समर्पण करके ही उन्होंने अपना जीवन धन्य माना है। प्रेमचन्द से पूर्व के मौलिक उपन्यासकारों में इनका अद्भुत स्थान रहा है। "निस्सहाय हिन्दू" में यथार्थवादी रंग बहुत ही उच्च रूप से प्रकट हुआ है। इस उपन्यास का नामकरण लेखक के विशेष उद्देश्य का परिचायक है। हिन्दू समाज की परम्पराओं से सम्बन्ध रखने वाले सूत्र ने इसको जन्म दिया है।

डॉ० रामविलास शर्मा ने कहा है "इसकी विशेषता इस बात में है कि लेखक ने यहाँ सेठ-साहूकारों के लड़कों के बनने-बिगड़ने की कहानी को छोड़ कर एक ऐसी समस्या को अपनी कथावस्तु बनाया है जिसका सम्बन्ध किसी वर्ग से नहीं, वरन् पूरे समाज से है। हिन्दुओं के बारे में लिखते हुए वह मुसलमानों को नहीं भूले हैं और उनमें साम्प्रदायिक और देशभक्त दोनों प्रकार के मुसलमानों का चित्रण किया है।"[3]

"निस्सहाय हिन्दू" के सम्पूर्ण कथानक में साम्प्रदायिक समस्या है। दो मित्र, जो हिन्दू जाति के हैं, गो-वध बन्द करने के लिए एक आन्दोलन करते हैं और उनका साथ एक मुसलमान सज्जन मित्र भी देता है। यह मुसलमान मित्र जातीय वितण्डावाद से परे रह कर धर्म के उच्च स्तर का मूल्यांकन करता है। पर इसके अन्य साथी कट्टरपन्थी मुसलमान इससे क्रुद्ध हो जाते हैं और वे इन लोगों को मार डालना चाहते हैं। राधाकृष्णदास ने "निःसहाय हिन्दू" में यथार्थवादी आदर्श को ध्यान में रख कर उस समय के समाज का सच्चा चित्र उतारा है। एक ओर साम्प्रदायिक कलह है और दूसरी ओर हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही यद्यपि संघर्षप्रिय हैं, पर उनमें किसी सज्जन मुसलमान के प्रवेश से निःसहाय हिन्दू की रक्षा हो जाती है। हिन्दू समाज की विकृत अवस्थाओं के यथार्थ चित्र इस उपन्यास में उतारे गये हैं जो समाज के विभिन्न वर्गों के चित्र हैं। इस उपन्यास की दूसरी विशेषता उसकी वर्णन-

---

१ राधाकृष्णदास : "निःसहाय हिन्दू", निवेदन, पृ० १,
१ फरवरी, सन् १८९० में प्रकाशित।
२. राधाकृष्णदास : "निःसहाय हिन्दू", निवेदन, पृ० २।
३. रामविलास शर्मा : "भारतेन्दु युग", पृ० १३०।

शैली है। उपन्यास का प्रारम्भ ही बनारस की गर्मी से होता है। मकान इतने तप गये थे कि मानो उनमें से लपट उठना चाहती है।

"गर्मी की ऋतु थी। सायंकाल का समय, सूर्य अस्ताचल चले गये थे, पहाड़ से मकान ज्वालामुखी हो रहे थे, अर्थात् उनके पत्थर ऐसे तप गये थे कि उसमें लपट निकलती थी और गर्मी का अन्त न था।"[१]

दूसरे परिच्छेद में एक तंग कोठी का वर्णन है और उसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई अढ़ाई गज है, जहाँ पर एक बड़ा फटा पुराना टाट बिछा हुआ है और एक दिया जिसमें एक ही बत्ती थी, जल रहा था। तीसरे परिच्छेद मे 'भारत हितैषणी सभा' का अधिवेशन लगा है और मदनमोहन वक्ता (लेकचरर) था। उसने अपने भाषण में जीवन की दार्शनिक व्याख्या कर डाली है। "काल चक्र" किसी को भी एक अवस्था में नहीं रहने देता जो धनाढ्य थे, वे भिखारी हैं, जो भिखारी थे, वे धनाढ्य हैं, जो राजा थे, वे प्रजा, जो प्रजा थे, वे राजा, जो खड़ा है, वह बैठेगा, जो बैठा है, वह खड़ा होगा, जो चढ़ा है, वह उतरेगा, जो उत्पन्न हुआ है, वह मरेगा, जिसकी उन्नति है, उसकी अवनति होगी, जिसकी अवनति है, उसकी उन्नति होगी, जो सुखी है, वह दुखी होगा, जो दुखी है, वह सुखी होगा।"[२] आगे जाकर मदनमोहन भारतवासियों के आलस्य का वर्णन करता है और उन पर टैक्स लगाये जाने पर खेद प्रकट करता है। वह कहता है : "टैक्स लगाया गया कि जिससे सारी प्रजा दुखित हो रही है", परन्तु "ऐसे मूर्खों को ही छोड़ दे तो किससे लें।" मदनमोहन के द्वारा व्याख्यान के मध्य गाया हुआ गीत पूर्णरूपेण भारतेन्दु बाबू के प्रभाव का सूचक है :

"रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।"[३]

इस उपन्यास में कहीं-कहीं पर बनारसी गुण्डों की बातचीत सुनने को मिलती है, जो गंगा के पवित्र किनारे पर अपने हृदय के कालिमापूर्ण विचारों को प्रकट कर रहे हैं। यह गुण्डों की बातचीत अपने बदले हुए रूप में आज भी बनारस में वर्तमान है। राधाकृष्णदास ने बनारस की उन गलियों का वर्णन किया है, जहाँ गर्मी के दिनों में भी कभी धूप नहीं निकली। हाजी अताउल्लाह, अब्दुल अजीज आदि मुसलमानों के घरों का भी सजीव तथा साकार चित्र उपन्यासकार ने खींचा है। सार्वजनिक पुस्तकालयों में भी लोग यहाँ वहाँ चर्चा करते हुए ही पाये जाते हैं। इनके भी बात करने का तरीका पूर्णरूपेण बनारसी है। आज भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में इसी प्रकार बातचीत होती हुई पायी जाती है।

इस उपन्यास में सब स्थान पर पाठक अपने चारों ओर की अपनी परिचित

---

१. राधाकृष्णदास : "निःस्सहाय हिन्दू", प्रथम परिच्छेद, पृ० १।
२. राधाकृष्णदास : "निःस्सहाय हिन्दू," तृतीय परिच्छेद, पृ० १३।
३. राधाकृष्णदास, : "निःस्सहाय हिन्दू", पृ० १६।

वस्तुग्रों को देखता है ग्रौर कथावस्तु का निर्माण करता है। यद्यपि "नि:सहाय हिन्दू" का कथानक सुसगठित नहीं है, परन्तु उसके कथानक का मूल आधार यथार्थवादी मानव पृष्ठभूमि है। पात्रों की सख्या भी लेखक ने आवश्यक रूप से बढा दी है, लेकिन सबके सब पात्र निर्जीव न होकर सजीव हैं, जो स्वाभाविक ढग से अपना कार्य करते रहते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा ने कहा है- "अपने चारों ग्रोर के मानव समुदाय को चित्रित करने की उत्सुकता में लेखक ने यह नही सोचा कि उपन्यास के लिए कितनी सामग्री यथेष्ठ होगी। वार्त्तालाप म यथार्थ चित्रण का आदर्श नाटको मे था ही। पात्रो के अनुरूप उनकी बातचीत भी है। गन्दी गलियो ग्रौर कोठरी के टाटो के वर्णन को ग्रोर भारतीय उपन्यास साहित्य म यह पहला प्रयत्न था। नि सन्देह राधाकृष्णदास में एक महान् उपन्यासकार की प्रतिभा बीजरूप में विद्यमान थी। यदि उसे विकास का अधिक अवसर मिलता तो प्रेमचन्द का मार्ग ग्रौर भी सरल ग्रौर परिष्कृत हो जाता।"[1]

राधाकृष्णदास के उपन्यास-रचना कौशल को देखकर समीक्षा-जगत मे एक नयी प्रेरणा मिली। पात्र ग्रौर उनके द्वारा कथोपकथन मे लखक का पूर्ण सफलता मिली है। राधाकृष्णदास ने यथार्थवादी धरातल पर कथानक को चित्रित करके कथा को रोचक ग्रौर स्वाभाविक बनाकर उपन्यास शैली को एक नया प्रशस्त मार्ग दिखाया है। प्रेमचन्द की सुधारात्मक प्रवृत्तियों को जन्म देने में राधाकृष्णदास का भी महान् योगदान रहा है। भारतेन्दु युग मे उपन्यास के अनेक अगो का विकास हो चुका था। बारहवें परिच्छेद में "गो हितकारिणी सभा" का अधिवेशन इस बात का सूचक है कि सारी हिन्दू जाति 'गो सेवा', 'गो रक्षा' के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थी। सभाएं बुलाकर 'गो रक्षा कमेटी' की स्थापना करती थी। भाषा ग्रौर शैली की दृष्टि से उस समय की प्रचलित भाषा के उदाहरण मिलते हैं, जिसमे अंग्रेजी, ब्रजभाषा, हिन्दी तथा उर्दू सब शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'एक फौजी गोरा आया सब तो डरे ग्रौर उठ खडे हुए। बडी नम्रता से उमको एक कुर्सी पर बैठाया। गोरे ने कहा—"वैल, हम आज का पायानियर देखना मांगटा है, शीतलाप्रसादजी चट हाथ जोड़कर बोले, हुजूर अभी लाया ग्रौर भीतर से पायोनियर लाकर गोरे को दिया। मन मे कहते थे कि यह कहाँ की आफत आई, नहीं कुछ कह न दे।"[2]

डॉ० रामविलास शर्मा की विचारधारा से हम पूर्णरूप से सहमत हैं कि राधाकृष्णदास एक उच्च कोटि के प्रतिभावान उपन्यासकार थे। हिन्दी के उपन्यास साहित्य में यह प्रथम प्रयास था, यदि इन्हें ग्रौर अधिक अवसर प्राप्त होता तो प्रेमचन्द का मार्ग ग्रौर भी अधिक प्रशस्त ग्रौर सरल हो जाता।

---

१. डॉ० रामविलास शर्मा : "भारतेन्दु", पृ० १३२।
२. राधाकृष्णदास : "नि सहाय हिन्दू", पृ० ६५।

"गन्दी गलियों और कोठरी के टाटों के वर्णन की ओर भारतीय उपन्यास साहित्य में यह पहला प्रयत्न था। निःसन्देह राधाकृष्णदास में एक महान् उपन्यास-कार की प्रतिमा बीजरूप में विद्यमान थी। यदि उसे विकास का अधिक अवसर मिलता तो प्रेमचन्द का मार्ग और भी सरल और परिष्कृत हो जाता।"[1]

इनके बाद राधाचरण गोस्वामी का नाम लिया जाता है, जिन्होंने अनेक उपन्यासों की रचना की। जिनमें "विरजा" उपन्यास प्रमुख है। इनके द्वारा उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी प्रतिभा अनुवाद करने में ही अधिक प्रकट होती थी, अत "यमपुर की यात्रा", जो इनका अनूदित उपन्यास है, "विरजा" की तुलना में सुन्दर बना पड़ा है। ये स्वयं गोसाईं थे, फिर भी इनकी सहानुभूति नवीन शिक्षित वर्ग के साथ थी, जिससे ज्ञात होता है कि इनके उपन्यासों में उदारवादी दृष्टिकोण प्रसारित किया होगा।

१. डॉ० रामविलास शर्मा : "भारतेन्दु युग", पृ० १३२।

(ब) : द्विवेदीयुगीन उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ
(सन् १६०० से सन् १६२० तक)

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का साहित्य के प्रांगण में पदार्पण करना सरस्वती की वरद पूजा प्रमाणित हुई। जिस शुभ कार्य का श्रीगणेश भारतेन्दु बाबू ने अपनी पवित्र लेखनी से किया, उस लक्ष्य का विकास और चरम सीमा द्विवेदी युग में दिखाई दी। द्विवेदीयुगीन लेखकों ने जन जीवन की ओर दृष्टि डाली। अब साहित्य का विकास जीवन के सभी क्षेत्रों में होने लगा। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक सभी परम्पराओं और धाराओं की प्रतिच्छाया के रूप में साहित्य का बहुमुखी रूप इस युग में दृष्टिगोचर हुआ। द्विवेदी युग में हिन्दी गद्य की विभिन्न शैलियों का विकास उपलब्ध हुआ। व्यक्ति-प्रधान और वस्तु-प्रधान दोनों प्रकार की शैलियों से प्रभावित होकर साहित्य की रचना हुई। भारतीय साहित्य और कला का क्षेत्र साहित्यकारों ने चुन लिया और उसके अन्तर्गत नाना प्रकार के शोध-कार्य हुए। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का जन्म हुआ। लेखकों की रुचि पत्रों के सम्पादन की ओर वर्द्धित हुई। *स्वयं द्विवेदीजी "सरस्वती" को जन्म देने वाले प्रथम सम्पादक* थे। मनोरंजन तथा चमत्कार को गौण स्थान देकर ज्ञान-सवर्द्धन तथा हिन्दी भाषा और उसके अंगों का परिष्कार हुआ। द्विवेदी युग संक्रान्ति-काल था, जब एक ओर प्राचीन मान्यताएँ वर्तमान थीं; दूसरी ओर, साहित्य में विभिन्न धाराएँ—नाटक, कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध इत्यादि अंगों का उदय हो रहा था। डॉ० उदयभानसिंह ने बतलाया है कि "आधुनिक हिन्दी साहित्य की मुख्य चार विशिष्टताएँ हैं—पद्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा, गद्य साहित्य का गौरव, विविध विषयक लोकोपयोगी वाङ्मय की सृष्टि और देशदेशान्तर में हिन्दी का प्रचार। इन सभी दृष्टियों से द्विवेदी युग महत्तम है। इस युग में खड़ी बोली का संस्कार और परिष्कार हुआ; उपन्यास, कहानी, जीवन-चरित्र, चम्पू आदि नवीन काव्य-विधानों की रचना हुई, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, विज्ञान, शिक्षा आदि विषयों पर ग्रन्थ लिखे गये, विद्यालयों आदि में हिन्दी को स्थान मिला, अमेरिका और बर्मा आदि देशों में भी उसका प्रचार हुआ।"[1]

---

१. उदयभानुसिंह : 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग," पृ० २६८।

१६ जुलाई सन् १८६३ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" का जन्म हुआ, जिससे हिन्दी गद्य की विभिन्न धाराओं का विकास हुआ। द्विवेदी युग के अधिकांश पत्र और पत्रिकाएँ अभी भी "आर्य भाषा पुस्तकालय" काशी में सुरक्षित रखे हैं। इस समय के अधिकांश लेखक सम्पादक थे। गोस्वामी किशोरीलाल भी 'वैष्णव सर्वस्व' तथा 'उपन्यास' मासिक पत्रिका के सम्पादक थे। इस समय का सामाजिक साहित्य नागरी प्रचारिणी पत्रिका, माधुरी, सरस्वती, मर्यादा, इन्दु चाँद, प्रभा आदि पत्रों में प्रकाशित होता था। इस युग के गद्य काव्यों में किसी न किसी प्रेमी हृदय के रहस्यों की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रेम का रूप शुद्ध लौकिक है। कथानक की दृष्टि से ये प्राचीन काव्य आधुनिक गद्य काव्यों के पूर्वज भी माने जाने चाहिए। भारतेन्दु युग में भी साहित्यकार राजाओं तथा कल्पित नायक-नायिकाओं से दूर हटने लगे थे और द्विवेदी युग में आकर तो स्पष्ट रूप से सामाजिक कुरीतियों पर आक्षेप होने लगा। सहानुभूति के प्रधान पात्र अछूत, किसान, मजदूर, अशिक्षित नारियाँ, विधवा, भिक्षुक हुए, यहाँ तक कि किसान और मजदूर की ओर भी विशेष ध्यान साहित्य में दिया जाने लगा। धार्मिक पण्डितों और पुजारियों का एक अलग वर्ग बन गया, जो वैष्णव धर्म के प्रतिनिधि थे तथा सुधारकों का दल आर्य-समाज का प्रतिनिधित्व करने लगा। जमींदार, महाजन, पूँजीपति, पुलिस, किसान सबकी स्थिति का यथार्थ ज्ञान द्विवेदी-युगीन साहित्य में प्राप्त होने लगा। भारतेन्दु के समय में ही साहित्य-निर्माण का कार्य बहुत ही उत्साह से प्रारम्भ हुआ था। इस समय अदालतों की भाषा बहुत पहले से उर्दू चली आ रही थी और अंग्रेजी तथा उर्दू की शिक्षा केवल सरकारी नौकरी के लिए प्रदान की जाती थी, अतः भारतेन्दु बाबू के लिए एक ओर हिन्दी का प्रचार करना आवश्यक था, दूसरी ओर, हिन्दी लेखक भी तैयार करने थे।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहनसिंह, राधाकृष्ण-दास, राधाचरण गोस्वामी, पण्डित अम्बिकाप्रसाद व्यास ने हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों का विकास पूर्ण साधना के साथ किया। अदालतों में 'नागरी प्रवेश' हुआ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना का भी मूल उद्देश्य यही था। भारतेन्दु और उनके साथियों ने हिन्दी के पढ़ने वालों की संख्या में वृद्धि की। इसी समय सभा के द्वारा "हिन्दी साहित्य का इतिहास" तथा "हिन्दी शब्द सागर" जैसे अमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए। सम्वत् १८९६ में 'गार्सा द तासी ने' हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास लिखा। सम्वत् १६४० में ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने "शिवसिंह सरोज" बनाया। डॉ० ग्रियर्सन ने सम्वत् १६४६ में "माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ नादर्न हिन्दोस्तान" (Modern Vernacular Literature of Northern Hindustan) प्रकाशित किया। हिन्दी का प्रामाणिक कोश "हिन्दी शब्द सागर" यहीं से प्रकाशित हुआ। सम्वत् १६६३ में एक "वैज्ञानिक कोश" निकला। इस काल के लेखकों के सामने

अनेक कठिनाइयाँ भी आई। यदि "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के पुराने अंक देखे जावें तो उनमें हिन्दी साहित्य के प्रचार के मार्ग में जो-जो कठिनाइयाँ आई हैं, उनका सच्चा स्वरूप प्राप्त होता है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "नागरी तेरी यह दशा" लेख लिखकर हिन्दी के प्रति अपने मनोभावों को व्यक्त किया। "भारतेन्दु मण्डल" मनोरंजक साहित्य-निर्माण द्वारा हिन्दी गद्य साहित्य की स्वतन्त्र सत्ता का भाव प्रतिष्ठित करने में ही अधिकतर लगा रहा। जब यह भाव पूर्ण प्रतिष्ठित हो गया था और शिक्षित समाज को अपने इस नये गद्य साहित्य का बहुत कुछ परिचय भी हो गया था।"[१]

शुक्लजी का कथन है कि भारतेन्दु के सहयोगियों को अत्यन्त लगन और निष्ठा के साथ कार्य करना पड़ा है, तभी प्राचीन हिन्दी साहित्य किसी एक निश्चित धारा की ओर लग सका है। शुक्लजी ने और कहा: "हमारा हिन्दी साहित्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई क प्रवर्त्तक द्विवेदी ही थे। "सरस्वती" के सम्पादक क रूप में उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखा-दिखा कर लेखकों को बहुत कुछ सावधान कर दिया।"[२]

साहित्य जन-साधारण के जीवन के कार्य व्यापारों को समझने में सफल हुआ है और नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध और समालोचना प्रत्यक क्षेत्र में द्विवेदी युग सम्पन्न बना है। इस युग के लेखकों ने अपूर्व शक्ति तथा साहस का परिचय देकर हिन्दी के साहित्य भण्डार को भरा है। मौलिक रचनाएं तथा अनुवाद दोनों की धूम मची। समालोचना तथा निबन्धों की प्रगति के लिए मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों के प्रकाशन की ओर लेखकों का ध्यान गया। हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में भी अनुवाद और मौलिक दोनों प्रकार की रचनाएँ प्रकाश में आने लगी। एक ओर नाटककारों तथा कवियों की भाषा और शैली में आचार्य द्विवेदी ने सुधार लाने की चेष्टा की तो दूसरी ओर, कथा और उपन्यास की धारा की ओर उनका ध्यान गया। समाज के उत्थान और पतन तथा देश-काल का प्रभाव साहित्यकार पर पड़ने ही वाला था। साहित्य के मूल उद्देश्य पर स्वयं द्विवेदीजी ने अपने विचार प्रकट किये हैं—"उपन्यास" के विषय में उन्होंने कहा है: "साहित्य का एक अंग उपन्यास भी है। यह अंग बड़े महत्व का है। यह संस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रन्थ साहित्य में भी पाया जाता है, पर अंकुर रूप में ही उनके दर्शन होते हैं। हाँ, जैन लेखकों ने इस तरह के कुछ अच्छे ग्रन्थ जरूर लिखे हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। सम्भव है, ऐसी पुस्तकें बहुत रही हों, पर वे सब उपलब्ध नहीं हैं। इन पुस्तकों में कथा कहानियों के बहाने धर्म-तत्व और सदाचार

---

१ रामचन्द्र शुक्ल: "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ५३७।
२. रामचन्द्र शुक्ल: "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ५३६-४०।

की शिक्षा दी गयी है। इनको छोड़ कर संस्कृत भाषा में लिखी गयी "कथा सरित्सागर", "कादम्बरी", "वासवदत्ता" और "दशकुमार चरित्र" आदि पुस्तकों से कोई विशेष शिक्षा नहीं मिल सकती, मानस-शास्त्र के आधार पर किये गये चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता भी सर्वत्र नहीं मिलती—हाँ, किसी हद तक इनसे मनोरंजन जरूर होता है।"[1]

द्विवेदीजी नाटककारों तथा उपन्यासकारों की अपेक्षा काव्य-पद्धतियों में सुधार करना चाहते थे। वे भाव, भाषा और आदर्श को ध्यान में रखकर काव्य कला में सुधार लाना चाहते थे। कथा-प्रेमियों की बाढ़ से द्विवेदीजी परिचित थे। हिन्दी के लेखक और पाठक चमत्कारपूर्ण तिलस्मी, जासूसी तथा ऐयारी कहानियों में अत्यधिक रुचि ले रहे थे। द्विवेदीजी को सबसे पहले इस बात की चिन्ता हुई कि कथा-प्रेमी तथा जन-साधारण की रुचि का सुधार होना आवश्यक है। युगीन परम्पराएँ तथा भावी लक्ष्य को ध्यान में रख कर वे आचार्य के समान हिन्दी के क्षेत्र में अवतरित हुए। सन् १९०३ से लेकर १९२५ तक कथा साहित्य के क्षेत्र में सैकड़ों लेखक हुए, जिन्होंने अनेक प्रकार की रचनाएँ रचीं। इसी समय महामनीषी किशोरीलाल गोस्वामी शास्त्रों तथा इतिहास के अध्ययन के फलस्वरूप उपन्यासों का निर्माण करने लगे। संस्कृत साहित्य और हिन्दी का रीति साहित्य का प्रभाव गोस्वामीजी की रचनाओं पर स्पष्ट दिखाई दिया, पर इस युग में उपन्यास साहित्य के लिए यह नूतन तथा मौलिक मार्ग प्रमाणित हुआ। रामायण, पुराण और भागवत आदि ने भी उनकी रुचि को रंग डाला। इतिहास के अध्ययन के फलस्वरूप उनके द्वारा "तारा", "रजिया बेगम", "लखनऊ की कब्र" आदि रचनाएं प्रकट हुईं। "माधवी माधव", "कुसुम कुमारी", "प्रणयनी परिणय" इत्यादि पर गोस्वामीजी के शास्त्रीय अध्ययन का प्रभाव है। इतना ही नहीं, संस्कृत के शास्त्रों के अतिरिक्त द्विवेदी युग के उपन्यास बंगला और अंग्रेजी साहित्य से भी विशेषकर प्रभावित हुए। 'परीक्षा गुरु" की भूमिका से स्पष्ट है कि उस पर उर्दू, संस्कृत और अंग्रेजी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है। अनुवाद की दृष्टि से किशोरीलाल गोस्वामी ने बंगला से हिन्दी में उपन्यास अनूदित किये। रामकृष्ण वर्मा ने उर्दू, अंग्रेजी और बंगला से उपन्यासों का अनुवाद किया। देवकीनन्दन खत्री को उर्दू और फारसी की कहानियों से प्रेरणा मिली। गोपालराम गहमरी (गहमर निवासी) के उपन्यासों पर अंग्रेजी की जासूसी विचारधारा का सहज प्रभाव पड़ा है। द्विवेदी युग की विशेषता थी कि प्राचीन शास्त्रों का मंथन करके उसके आधार पर नवीन साहित्य-रचना प्रारम्भ हुई। प्राचीन परिपाटियों, कर्मविधान, पाप-पुण्य की कसौटी, सामाजिक व्यवस्थाएँ, पूजा-अनुष्ठान आदि का प्रवाह एक ओर था और दूसरी ओर इस युग में साहित्यकारों

---

१. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : "साहित्य सन्दर्भ"—उपन्यास-रहस्य पाठ, पृ० १४६।

का ध्यान मानव-जीवन और जगत की अन्य परम्पराओं की ओर गया। लाला श्रीनिवासदास ने प्रथम मौलिक उपन्यास "परीक्षा गुरु" लिखकर प्रमाणित किया कि उपन्यास साहित्य भण्डार का द्वारा खुला पड़ा है। इस उपन्यास में अनेक नई बातें पायी गयीं। "अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी।"[1]

नवीन समस्याएँ, जैसे पात्रों के स्वाभाविक चित्रण, उनकी भिन्न-भिन्न मनोदशाएँ, *मानव-मन के उतार-चढ़ाव, घर, समाज, रीतियाँ, पारिवारिक समस्याएँ, राजनीति, दर्शन,* धार्मिक मान्यताएँ, अधिकार और कर्त्तव्य इत्यादि विषयों पर "परीक्षा गुरु" में प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। किशोरीलाल गोस्वामी तक आते-आते साहित्यिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक और जासूसी उपन्यास लिखे जाने लगे और "गोस्वामीजी" को हिन्दी में मौलिक साहित्यिक उपन्यासकार होने का श्रेय प्राप्त होता है। जिस परम्परा को गोस्वामीजी ने प्रारम्भ किया, उसका वास्तविक सामाजिक उत्कर्ष प्रेमचन्द की रचनाओं में दिखाई दिया है। यद्यपि कथा एवं उपन्यासों की उत्पत्ति मनोरंजन के लिए हुई थी और इसलिए नाटकीय एवं पारसी थियेटरों की रोमांचकारी घटनाओं का समावेश इन उपन्यासों में पाया गया तथा तिलस्मी और जासूसी उपन्यास तो स्पष्ट-रूप से इसी विचारधारा से प्रभावित थे। साथ ही साथ, द्विवेदीजी का गुरु एवं मार्गदर्शक के रूप में अवतीर्ण होना हिन्दी उपन्यास में सुधार के लिए भूमि सँजो रहा था, उस समय के धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों ने उपन्यासकारों के हृदय में अद्भुत हल-चल पैदा कर दी। पण्डित बालकृष्ण भट्ट के "सौ अजान एक सुजान" तथा "नूतन ब्रह्मचारी" इत्यादि उपन्यास इसी सुधार के दृष्टिकोण से प्रेरित होकर रचे गये थे।

सम्वत् १९६१ में "आदर्श दम्पत्ति" तथा सम्वत्१९६४ में "बिगड़े का सुधार" दोनों उपन्यासों की रचना पण्डित लज्जाराम शर्मा (मेहता) ने की। उन्होंने "आदर्श *हिन्दू", "विपती की कसौटी," "आदर्श दम्पत्ति" इत्यादि अन्य उपन्यास भी* इसी सुधार-वादी भावना से प्रेरित होकर रचे। भारतेन्दु युग के उपन्यासकारों में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लाला श्रीनिवास, ठा० जगमोहनदास, प०बालकृष्ण भट्ट, कार्तिकप्रसाद खत्री, पं० प्रतापनारायण मिश्र, गदाधरसिंह ठाकुर, रामकृष्ण वर्मा, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, हरेकृष्ण जौहर, प० लज्जाराम शर्मा (मेहता), बल्देवप्रसाद मिश्र, गगाप्रसाद गुप्त, बाबू ब्रजनन्दन सहाय, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, रामलाल वर्मा जयरामदास गुप्त, मन्नन द्विवेदी और दुर्गाप्रसाद खत्री के नाम लिये जा सकते हैं। द्विवेदी युग में मौलिक तथा अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यासों की धूम मच गयी। द्विवेदी युग के उपन्यासों की यथार्थवादी परम्परा ने प्रेमचन्द युग मे आदर्श का बीज बोया। द्विवेदी युग के अन्तिम उपन्यासकारों में प्रेमचन्द, वृन्दा-

---

१. श्रीनिवासदास : "परीक्षा गुरु", निवेदन से उद्धृत; दूसरी बार प्रकाशन का वर्ष सम्वत् १९४१।

वन लाल वर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" आदि आदर्शवादी यथार्थवाद से प्रेरित होकर उपन्यास जगत को नया मार्ग बतलाने लगे। द्विवेदी युग के कथाकारों की दो धाराएं स्पष्ट सामने आ गयीं—एक तो प्राचीन धारा के लेखक जो यथार्थवाद, मनोरंजन तथा चमत्कार और नैतिक आदर्शों को लेकर काव्य का निर्माण कर रहे थे; दूसरे, वे लेखक जो प्रेमचन्द के साथ ही नूतन सूर्योदय की लालिमा से प्रयत्न प्राप्त को रंग रहे थे। किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में एक ओर प्राचीन प्रचलित शास्त्रीय परिपाटी की झाँकी मिलती है, दूसरी ओर, उनके उपन्यासों ने नये लेखकों के लिए ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक, साहित्यिक उपन्यासों का बीज बो दिया, जिसके विकसित अंकुर प्रेमचन्द की रचनाओं में चमकते हुए दिखाई दिये। इस युग के उपन्यास चाहे जासूसी हों अथवा तिलस्मी या ऐयारी, पर उनमें वासना का विकृत रूप नहीं मिला। कहीं यथार्थ चित्रण है तो कहीं नैतिक आदर्श है। पुरुषों के लिए जासूसी और तिलस्मी उपन्यास पढ़ने के लिए आग्रह किया जाने लगा और नारीमात्र के लिए धार्मिक तथा नैतिक कहानियाँ पढ़ने और मनन के लिए बल दिया जाने लगा। इस युग की रचनाओं में बुद्धिवादी दृष्टिकोण नहीं आने पाया। जीवन के घात प्रतिघातों तथा समस्याओं का विश्लेषण और उनका निदान ढूंढ़ने पर भी पूरी तरह से नहीं मिला, जिसका उत्तर प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिला। इन साहित्यिक उपन्यासों में भी उपन्यास के सब अवयव लाने की चेष्टा की गयी है। वर्ण्य विषय (कथावस्तु), पात्र, चरित्र-चित्रण और भाषा शैली पर लेखकों का ध्यान तो अवश्य गया है। युग-प्रवर्तक गोस्वामी किशोरीलाल ने अपने उपन्यासों को पढ़े लिखे लोगों की रुचि के अनुकूल बनाया। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में कहीं-कहीं भाषा का चलता हुआ रूप है, तो कहीं पर संस्कृतनिष्ठ समासबहुला साहित्यिक भाषा है। पात्र भी कुछ देवोपम हैं, तो कुछ नीचतम और अपने-अपने कर्मों के अनुसार जगत में सुख-दुःख के भागी हैं। इन लेखकों ने सामाजिक कुरीतियों की निन्दा की है। कहीं पर सास की बुराई है, कहीं बहू का चरित्र है और कहीं पर दास-दासी के अनैतिक व्यवहार का कथन है। नारी का वासनाप्रेरक रूप, उसकी विवशता, पुरुष की विलास-पूर्ति का साधन, उसके साथ बलात्कार तथा प्रतिक्रियास्वरूप नारी के द्वारा नाना प्रकार के चक्मे, छलपूर्ण व्यवहार, धनवानों का वैभव, सामाजिक प्रतिष्ठा, निर्धनों के प्रति उनका शोचनीय व्यवहार, अत्याचार, धार्मिक निष्ठाएं, जिनके द्वारा अनैतिकता और अत्याचारों पर रोक का लग जाना, इत्यादि प्रसंगों की विशद व्याख्या है।

डॉ० उदयभानुसिंह ने द्विवेदी युग के उपन्यासों की मूलप्रवृत्तियों के बारे में लिखा है: "द्विवेदी युग के उपन्यासों की चार प्रधान पद्धतियाँ लक्षित होती हैं—कथात्मक, काव्यात्मक, नाटकीय और विश्लेषणात्मक। कथात्मक पद्धति मुख्यतः तीन रूपों में आयी है। लोक-कथा, तटस्थ, वर्णन और आत्म कथा। लोक-कथा-पद्धति मौखिक कथा प्रणाली का औपन्यासिक और उपन्यास कला का प्रारम्भिक रूप है। इस पद्धति

का उपन्यासकार कथा सुनाता चला गया है और बीच-बीच में पाठकों को सम्बोधन भी करता गया।"[1]

इसी के समान "तटस्थ वर्णन" प्रणाली है—लेखक स्वयं एक ओर दर्शक के समान खड़ा रहता है और कथा का वर्णन सुनाता रहता है। 'लोक-कथा प्रणाली' में वह कभी-कभी पाठकों को सम्बोधन भी कर देता है। 'आत्म-कथा पद्धति" भी द्विवेदी युग के उपन्यासो मे परिलक्षित हुई। गोस्वामीजी के "माधुरी माधव" मे तीनों प्रणालियों के दर्शन हो जाते हैं। बाबू ब्रजनन्दन सहाय के "सौन्दर्योपासक" भी इसी प्रकार की रचना है। इतना ही नहीं, "देवनन्दिनी पद्धति" और "पत्र-प्रणाली" भी इस युग के उपन्यासो मे मिली। "चन्द हसीनों के खुतूत" उग्रजी का पत्र-पद्धति पर लिखा गया उच्च कोटि का उपन्यास है।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी युग के उपन्यासों मे काव्यात्मक रूप तथा सरलता भी देखने को मिलती है। रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ मान, लज्जा, हास-परिहास, आदि रीतिमता इन उपन्यासों में है। गोस्वामी किशोरीलाल की "कुसुमकुमारी" (सन् १९१०) में रीतिकालीन परम्पराओं का पूरा दिग्दर्शन है, यहाँ तक कि उनकी "तारा" (सन् १९१०) और "अंगूठी का नगीना" (सन् १९१८) और बाबू ब्रजनन्दन सहाय का "राधाकान्त" और "राजेन्द्र मालती" उपन्यास भी काव्य की रसिकता प्रदान करते हैं। इन उपन्यासों में भावुक वर्णन-शैली तथा रसपूर्ण कथोपकथनों को आयोजना हुई है। प्राकृतिक दृश्य भी कवित्वपूर्ण है, जिनको पढ़कर काव्य जैसा आनन्द आता है। गोस्वामीजी का "त्रिवेणी" उपन्यास मे प्रयागराज मे गंगा की छवि तथा महिमा का विशाल चित्र प्राप्त होता है। चण्डीप्रसाद हृदयेश का "मनोरमा", ब्रजनन्दन सहाय का "सौन्दर्योपासक" तथा ठाकुर जगमोहनसिंह का 'श्यामा स्वप्न" अलङ्कृत शैली में लिखे गये कोमलकान्त पदावली से पूरित होकर 'रसपूर्ण उपन्यास" हैं। इस युग के उपन्यासो में नाटकीयता एक विशेष अंग है, उसका मूल कारण पारसी रंगमंच का प्रभाव था। हिन्दी का प्रारम्भिक उपन्यास साहित्य इस नाटकीयता से ओत-प्रोत है। उपन्यासो में भी कथोपकथन का विस्तार नाटक के समान ही होता है। इनमे चुटकियों से पूर्ण मनोरम दृश्य हैं। भगवानदीन का "सती सामर्थ", नयन गोपाल का "उर्वशी" (सन् १९२५) और रामलाल का "गुलबदन उर्फ रजिया बेगम" (सन् १९०३) आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं। द्विवेदी युग के उपन्यासो में नाटकीय अभिरुचि का प्रयोग हुआ है, पर उसका परिमार्जित रूप ही सामने आया है। कथावस्तु मे अन्तर्द्वन्द्व, बाह्य द्वन्द्व, घात-प्रतिघात का पूर्ण विकास प्रेमचन्द तथा कौशिकजी की रचनाओं में प्राप्त हुआ। विरोधी पात्रों तथा स्थान और देश-काल के माध्यम से उपन्यासों का चरित्र-गठन हुआ है। पात्रों का आपस में कथोपकथन, व्यंग्य, चुटकियाँ—कथोपकथन

1. उदयभानु सिंह: "महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग", पृ० ३१९-३२०।

के द्वारा कथावस्तु का संकेत और चरित्र-चित्रण इन सब प्रसंगों के अनुकूल उपन्यासों में नाटकीयता प्राप्त हुई है।

द्विवेदी युग के उपन्यासकारों में प्रमुख रूप से चार उपन्यासकारों के नाम लिये जायेंगे—किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी और बाबू ब्रजनन्दन सहाय, जिनके उपन्यासों में चार प्रमुख प्रकार प्राप्त हुए—घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान, भाव प्रधान और कौतूहल-प्रधान। गोस्वामी किशोरीलाल ने सब प्रकार के उपन्यास लिखे हैं। "त्रिवेणी" या "प्रणयिनी परिणय" को भाव प्रधान उपन्यासों की गिनती में रख लेना यथार्थ है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने इस युग के उपन्यासों के बारे में कहा है: "काशीधाम उपन्यासों का एक प्रधान सत्र हो गया और कितने ही उपन्यास प्रकाशित हुए, कुछ मौलिक थे और कुछ अनुवाद। पर सभी तरह के उपन्यासों का यथेष्ठ प्रचार हुआ। यही आधुनिक हिन्दी साहित्य का निर्माण-काल अथवा प्रयास-काल है।"[1]

द्विवेदी युग के सारे पौराणिक, तिलस्मी, घटना-प्रधान, जासूसी, सामाजिक, पारिवारिक, ऐतिहासिक तथा कौतूहल-प्रधान, चरित्र-प्रधान सब प्रारम्भिक उपन्यास *हिन्दी साहित्य की अनमोल धरोहर हैं। यद्यपि उनका साहित्यिक मूल्य उस श्रेणी का* नहीं था, जो आज के उपन्यासों में पाया जाता है, पर फिर भी उन्होंने आधुनिक उपन्यासों के लिए ईंट-कंक्रीट इकट्ठा करके मार्ग रचा, जिस पर आधुनिक उपन्यास-कार चले। प्राचीन उपन्यास-धारा हमारी चिरतन पूँजी है, जो सदैव हमारा पथ प्रशस्त करती रहेगी। आधुनिक युग की ठोस भित्ती (भित्ति) का निर्माण करने वाले द्विवेदी युग के प्रथम चरण के ये ही उपन्यासकार थे। अन्तिम चरण में तो प्रेमचन्द, कौशिक, प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा आदि महान् उपन्यासकार इस ओर जुट ही गये। इन प्राचीन उपन्यासकारों ने "कथा और उपन्यास" में केवल आकार का ही अन्तर समझा, अन्यथा दोनों को ही समभूमि पर तोला है, यहाँ तक कि गोस्वामीजी ने तो "इन्दुमती" को भी उपन्यास के ही नाम से सुशोभित किया। द्विवेदी युग वास्तव में गद्य के विकास का युग है, जिसमें सर्वांगीण उन्नति की ओर लेखकों का ध्यान गया है। जैसे जैसे कालचक्र आगे बढ़ता जाता है, जनसाधारण की नैसर्गिक कौतूहल वृत्ति जागरूक होती जाती है और वह अपने पूर्वजों का साहित्य पढ़ने के लिए लालायित होने लगता है। पूर्वजों की प्रत्येक प्रदत्त वस्तु हमारी पीढ़ी के लिए धरोहर है, जिसको इस युग के साहित्य-प्रेमियों को सँभाल कर रखना है। उनका पुनरुत्थान करके हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत करना है।

द्विवेदी युग के उपन्यासकारों ने अपनी संस्कृति प्रेम, अभिरुचि तथा अपनी

---

१. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी: "द्विवेदीजी की साहित्य सेवा", "साहित्यसन्देश" का द्विवेदी अंक—अप्रैल सन् १९३९, पृ० ३१३।

परम्पराओं का ज्ञान हमें मौलिक रचनाओं द्वारा कराया। राजकीय भाषा अंग्रेजी के अध्ययन और अध्यापन के फलस्वरूप भारतीय उपन्यासकारों में पाश्चात्य उपन्यासों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई और इसलिए द्विवेदी युग में मौलिक उपन्यासों के साथ ही अनुवादों की धूम मची। प्रथम, अंग्रेजी से बंगला भाषा में उपन्यास अनुवादित हुए और उसके बाद बंगला से अनूदित होकर हिन्दी में अवतरित हुए। अंग्रेजी शैली पर लिखे गये बंगला उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी पाठकों में भी लोकप्रिय बने। अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी अनूदित उपन्यास अब प्रकाश में आने लगे। अंग्रेजी शासन की आधारशिला मुसलमानों का राज्य था। अतः प्राचीन लेखकों को भारतीय संस्कृति और साहित्य की खोज के लिए प्राचीनतम पत्र और शिलालेखों की शरण लेनी पड़ी है। अंग्रेजी शासकों ने इतिहासकारों को इतिहास रचने के लिए प्रोत्साहित किया, जिसके फलस्वरूप खुदाई तथा खोज का कार्य आरम्भ हुआ। शिलालेख, मूर्तियाँ, मुद्राएँ, चित्र, प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ, हस्तकलाएँ, रेखाचित्र सब प्रकाश में आये। फारसी, अरबी में भी अनेक शिलालेख और ताम्र-पत्र मिले क्योंकि भारत में अनेक सदियों तक मुसलमानी शासन रहा है। दीर्घकालीन मुसलिम संस्कृति का अविच्छिन्न प्रभाव हिन्दी साहित्य तथा हिन्दू धर्म-प्रतिष्ठानों पर भी पड़ा है। एक ओर "हुमायूँनामा", "आइने अकबरी" तथा "तुजुक जहाँगीरी" आदि ऐतिहासिक रचनाएँ जनता के सामने आयीं तो दूसरी ओर धार्मिक मनोवृत्ति वाले साहित्यकार संस्कृत के अनमोल ग्रन्थ कल्हण की "राजतरंगिनी", "कादम्बरी" आदि का अध्ययन कर रहे थे। धार्मिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप युगीन अभिरुचि संस्कृत के महाकाव्यों की ओर उत्कृष्ट होने लगी। अनेक लोककथाएँ, लोकपरम्पराएँ तथा साहित्य और गीतों से मानव-मन परिचित हुआ। टॉड के द्वारा "राजस्थान का इतिहास" और विन्सेन्ट स्मिथ का "भारत का इतिहास" दोनों ही प्रकाशित हुए। पाठकों को विदेशी यात्राओं का वर्णन भी पढ़ने को मिला। द्विवेदी युग के लेखकों के सामने अनेक प्रकार की रचनाएँ तथा खोजपूर्ण कार्य उपस्थित थे, जो उन्हें नूतन प्रेरणाएँ प्रदान कर रहे थे। भाषा का परिमार्जित स्वरूप तथा व्याकरण की कारिकाएँ भी साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगीं।

प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती सभी उपन्यासों की आधार-भूमि कल्पना और रोमांस से पूर्ण थी, इसलिए यद्यपि कथावस्तु सामाजिक अथवा ऐतिहासिक रही भी है तो भी कल्पनाप्रसूत घटनाओं का उत्थान और पतन उन उपन्यासों में सहज में देखने को प्राप्त होता है। वास्तव में आधुनिक उपन्यास का वास्तविक रूप यूरोप के साहित्यिक आन्दोलन और विकास से प्राप्त होता है। सबसे प्रथम स्थान इटली है, जहाँ के प्रसिद्ध उपन्यासकार "बुकाचियो" की रचना "डी कैमरेन" साहित्य जगत के सामने आयी। यूरोप में कहानी-कला की दृष्टि से सबसे प्रथम महत्वपूर्ण ग्रन्थ यही है। इसकी भाषा सजीव और चुटकीली

है। इस ग्रन्थ का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। स्पेन के प्रसिद्ध उपन्यासकार "सर वाटे" की प्रसिद्ध रचना "डॉन क्विकजोट" सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही प्रकाशित हो गयी थी। इग्लैण्ड मे सर फिलिप सिडनी की "आर्केडियो", जॉन बैनियान की "पिलग्रिम्स प्रोग्रेस", डेनियल-डिफो की "राबिन्सन क्रूसो" तथा जोनेदन स्विफ्ट की "गुलीवर्स ट्रवेल" आदि उपन्यास और उपन्यासकार भारत से पहले ही पश्चिम मे ख्याति प्राप्त कर चुके थे। विदेशों मे उपन्यासकारों को उचित सम्मान भी प्राप्त होने लगा था और उनकी रचनाओं की ओर जनता की अभिरुचि बढ गयी थी। इसके उपरान्त अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी मे यूरोप के सेमुअल रिचर्डसन ने "पामेल," स्मालेट ने "राडेरिक रैंडम" तथा हेनरी फील्डिंग ने "टॉम जोन्स" नामक अमर उपन्यासो की रचना कर डाली। इस काल के प्रमुख उपन्यासकार इग्लैण्ड के स्टर्न, आलिवर गोल्डस्मिथ, जेन आस्टिन, सर वाल्टर स्कॉट, चार्ल्स डिकेंस, चार्ल्स ग्राट, ठेकरे तथा जार्ज इलियट, फ्रान्स के वाल्टेयर, विक्टर ह्यूगो, बाल्ज़क, स्टेंडाल, जार्ज सेंड, जोला, फ्लाबेयर तथा अनातोले फ्रान्स, जर्मनी के गेटे, रूस के पुश्किन, तुर्गनेव, डोस्टाविस्की, टालस्टाय आदि प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं, जिनकी रचनाओं ने देश-विदेशों मे उपन्यास साहित्य में एक अपूर्व हलचल मचा दी थी। यह स्वयं प्रकट है कि यूरोप की औपन्यासिक प्रगति अनुपम तथा असीम है, पर भारत म उपन्यासो की उत्पत्ति और विकास पश्चिम की नकल पर कभी भी नही हुआ है। यहाँ का मूल उद्गम स्थान तो सस्कृत साहित्य है। सस्कृत से हिन्दी में या बगला से हिन्दी मे उपन्यास अनुवादित हुए और उन्होंने ही हिन्दी पाठकों के हृदय मे अपना निकटतम स्थान बनाया। भारतीय संस्कृति की यही विशेषता है कि विभिन्नताओं के मेल मे भी यहाँ की भूमि मे सास्कृतिक एकता है। विदेशी संस्कृति और साहित्य का यहाँ अल्पकालीन प्रभाव पड पाता है। भारत की परम्पराएँ, रीति-रिवाज, वेशभूषा, बोल-चाल, मान्यताएँ और धार्मिक तथा सामाजिक विश्वास अपने मौलिक हैं, जिन पर उत्तर मे उत्तु ग हिमालय, दक्षिण मे विशाल हिन्दमहासागर, पूर्व मे बगाल की खाडी और पश्चिम मे अरब सागर का अमिट प्रभाव है। गगा-जमुना की चिरन्तन शीतल धारा, विन्ध्याचल की श्रेणियाँ तथा नर्मदा के स्रोत और तट का भारतीय सस्कृति और साहित्य मे अनादि काल से प्रभाव पडता रहा है। बगला साहित्य में हिन्दी की अपेक्षा पहले ही मौलिक उपन्यास लिखे जाने लगे थे, अतः हिन्दी साहित्य पर यदि किसी का प्रभाव पडा है तो वह अपनी अभिन्न भगिनी बगला का प्रभाव पडा है पर अंग्रेजी साहित्य की छाप तो किसी प्रकार से भी नही पडी है। शरदचन्द्र और रवीन्द्र नाथ ठाकुर तथा बंकिमचन्द्र की मनोवैज्ञानिक शैली और चरित्र-चित्रण का हिन्दी के उपन्यासकारों पर अटूट प्रभाव पडा है। नई शिक्षा और शासन-प्रणाली के प्रभाव के कारण बंगाल में सामाजिक और शैक्षणिक क्रान्ति सी मच गयी। देश-हित, समाज-सुधार और राष्ट्रीय भावना बंगाल के साहित्यकारों में पनप रही थी। इसी समय

हिन्दी में तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की भरमार हो रही थी। सन् १८६४ में बंकिमचन्द्र कृत "दुर्गेशनन्दिनी" प्रकाशित हुआ। यही समय था जब हिन्दी में गोस्वामी किशोरीलाल ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक उपन्यास रच रहे थे। मराठी साहित्य से "पूर्णप्रकाश" और "चन्द्रप्रभा" अनुवादित होकर हिन्दी साहित्य में प्रकाशित हुए। हिन्दी में धीरे-धीरे मराठी, बंगला, उर्दू और संस्कृत की कथाएँ अनुवादित होकर आने लगीं। स्वयं भारतेन्दुजी ने बंकिम कृत "राजसिंह" उपन्यास अनुवादित किया। राधाकृष्णदास ने तारकचन्द्र गांगोली कृत "स्वर्णलता", "पति प्राण अबला" जैसे सामाजिक उपन्यासों का अनुवाद किया और बंकिमचन्द्र कृत "राधारानी" का अनुवाद किया। गदाधरसिंह ने बंकिमचन्द्र के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास "दुर्गेशनन्दिनी" का हिन्दी में सन् १८८२ में और रमेशचन्द्र कृत दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास "बंग विजेता" हिन्दी में अनुवादित किया। किशोरीलाल गोस्वामी ने "प्रेममयी" (सन् १८८६) और "लावण्यमयी" (सन् १८९१) अनूदित किये। श्री राधाचरण गोस्वामी ने श्रीमती सरनकुमारी घोषाल कृत ऐतिहासिक उपन्यास "दीपनिर्वाण" और "विरजा" (सन् १८९१) हिन्दी में अनूदित किये। उदितनारायणलाल वर्मा ने "दीपनिर्वाण" (सन् १८९१) और बालमुकुन्द गुप्त ने "मडेल भगिनी" नामक सामाजिक उपन्यास को चार भागों में अनूदित किया। रामशंकर व्यास ने "मधुमालती" और "मधुमती" (सन् १८८१) अनूदित किया। विजयानन्द त्रिपाठी ने भूदेव मुखोपाध्याय द्वारा रचित "सच्चा सपना" (सन् १८९०) प्रकाशित किया। राधिकानाथ बन्धोपाध्याय ने सामाजिक उपन्यास "स्वर्ण बाई" (सन् १८९१) रचा। प्रतापनारायण मिश्र ने बंकिम बाबू कृत प्रेम-कहानी "युगुलाङ्गुरीय" और "कपाल कुण्डला" अनुवादित किये। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने "कृष्णकान्त का दानपत्र" (सन् १८९७) और "राधारानी" (सन् १८९७) और कार्तिकप्रसाद खत्री ने "पाँच कौड़ी दे" द्वारा रचित "कुलटा" और "मधुमालती" (सन् १८९७) और नारायणदास द्वारा रचित "दलित कुसुम" (सन् १८९८) उपन्यास रचे। स्कॉट की शैली पर लिखे गये बंकिम बाबू के उपन्यासों का हिन्दी में बहुत प्रचार हुआ। ये सभी उपन्यास रोचक, चमत्कारपूर्ण तथा प्रेम-कहानियों के सजीव उदाहरण हैं। इनमें कथावस्तु, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, भाषा और शैली सबका उचित विधान करने की चेष्टा की गयी है। वीरतापूर्ण कथानक के होते हुए भी सरसता और भावपूर्ण शैली का अंकन इन उपन्यासों में हुआ है। संस्कृत से बाणभट्ट का प्रसिद्ध उपन्यास "कादम्बरी" का हिन्दी में अनुवाद हो गया, जिसको पर्याप्त ख्याति मिली। पुस्तक रूप में आने से पहले "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में यह धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। काशीनाथ शर्मा ने संस्कृत रचना "चतुर सखी" का हिन्दी अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त "सावित्री सत्यवान," "दुष्यन्त और शकुन्तला" इत्यादि कहानियाँ हिन्दी में

अनुवादित होकर आई । अंग्रेजी से काशीनाथ खत्री ने "लेम्ब्स टेल्स फ्रोम शेक्सपीयर" (Lamb's Tales From Shakespeare) का हिन्दी अनुवाद "शेक्सपियर के (सन् १८८३) परम मनोहर नाटकों के आशय" नाम से अनुवादित किया, पर यह नाम गलत था। गदाधरसिंह ने सन् १८६४ में अंग्रेजी से "ऑथेलो" हिन्दी में अनूदित किया। पुरुषोत्तमदास टण्डन ने (सन् १६००) में शेक्सपीयर के पेरीक्लीज (Pericles) का "भाग्य के फेर" नाम से अनुवाद किया। उसके बाद "लन्दन रहस्य" (Mystries of London) का आठ भागों में अनुवाद हुआ तथा "पेरिस रहस्य" भी अंग्रेजी से आया। इन उपन्यासों के पढ़ने से जासूसी रहस्यों की ओर जन रुचि बढ़ी। अंग्रेजी के "फ्रूट्स ऑफ ऑनेस्टी" (Fruits of Honesty) का हिन्दी में अमला वृत्तान्तमाला' के नाम से अनुवाद हुआ तथा इससे पहले "ठग वृत्तान्त माला" (सन् १८८६) और 'पुलीस वृत्तान्त माला" (सन् १८६०) का हिन्दी में अनुवाद हो चुका था। तात्पर्य यह है कि इस युग म सन् १८६६ तक हिन्दी में रेनाल्ड्स, कॅनन डायल इत्यादि के सस्ते उपन्यासों की बाढ़ सी आ गयी थी। उर्दू के "तोता मैना," "गुल-बकावली," 'छबीली भटियारिन", 'हातिमताइ" इत्यादि किस्से-कहानियाँ भी हिन्दी में सस्ते और मनोरंजन उपन्यासों के काम दे रहे थे। इनके चरित्र अधिकतर कल्पित हैं और घटना, चमत्कार तथा मनोरंजन इन कहानियों का प्रथम और मूल उद्देश्य है। "तिलस्मे होशरुबा" और 'किस्सा साढे तीन यार" भी लोगों का मन-बहलाव कर रहे थे। साहसपूर्ण और शूरवीरता से भरे हुए प्रेम आख्यान इन उपन्यासों में प्राप्त होते हैं। जावन के सामाजिक और यथार्थ स पूर्ण पारिवारिक पहलू इन उपन्यासों में प्राप्त नहीं होते हैं पर 'कहानी' का एक और मौलिक रूप प्राप्त होता है।

द्विवेदी युग के विख्यात हिन्दी-उपन्यासकारों की श्रेणी में मेहता लज्जाराम शर्मा का उच्च स्थान है। वे अखबारनवीसी करते थे। बीच बीच में उन्हें भी उपन्यास लिखने का शौक हो जाया करता था। उन्होंने कई छोटे-बड़े उपन्यास लिखे, जैसे 'धूर्त रसिकलाल" (१८६६), "स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी" (१८६६), "हिन्दू गृहस्थ", "आदर्श दम्पति" (१६०४), "बिगड़े का सुधार" (१६०७) और "आदर्श हिन्दू" (तीन भाग—१६१५) उनके प्रमुख उपन्यास हैं। इनके सारे उपन्यास किसी न किसी विशेष लक्ष्य को लेकर लिखे गय हैं। नैतिकता का मूल आधार ग्रहण करके इन्होंने उपन्यास रचे। ये भी कट्टर हिन्दू थे। हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा करना अपने जीवन का चरम उद्देश्य समझते थे। पुरानी हिन्दू मर्यादा, हिन्दू धर्म, पारिवारिक व्यवस्थाओं की प्राचीनता म इनका अटूट विश्वास था। मेहताजी सम्पादक होने के साथ ही साथ उपन्यासकार भी बने। दोनों ही क्षेत्रों में इनकी मौलिक प्रतिभा के दर्शन हुए। समाज-सुधार की भावना इनकी रचनाओं में परिलक्षित हुई।

मेहता लज्जाराम का जन्म सम्वत् १९२० के चैत्र कृष्ण पक्ष २ को बूँदी में हुआ था। सारी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई थी और अपने परिश्रम से अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी, गुजराती तथा उर्दू भाषाओं का उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पहले प्रायः अठारह वर्ष तक शिक्षक रहे, फिर एमप्रेस के मैनेजर तथा "सर्वहित" नामक पाक्षिक पत्र के चार वर्ष तक सम्पादक रहे। उसके बाद सम्वत् १९५४ से सम्वत् १९६१ तक यह बम्बई के "श्री वेंकटेश्वर समाचार" के सम्पादक रहे और वहाँ पर अनेक साहित्यिक गतिविधियो में भाग लिया। इन्होने सारे उपन्यास सामाजिक, धार्मिक तथा पारिवारिक समस्याओं को लेकर लिखे हैं।

बाबू ब्रजरत्नदास ने कहा है कि "सभी उपन्यास सामाजिक घटना-प्रधान उपन्यास हैं, जिनमे प्राचीन हिन्दू मर्यादा, सनातन धर्म तथा हिन्दू पारिवारिक व्यवस्था की सुन्दरता तथा औचित्य को विस्तार से दिखलाने का अच्छा प्रयास है। भाषा सुबोध तथा सरल है।"[1]

मेहताजी ने अपने विचारो को दिखलाने के ही लिए कुछ उपन्यास रच डाले, जो अपने ढग के बहुत उच्च कोटि के बन पड़े हैं।

उपन्यास की कथा कहने की वर्णनात्मक शैली का प्रथम विकास इन भारतेन्दु-युगीन हिन्दी के उपन्यासकारों में पाया जाता है, जबकि उपन्यासकार श्रोताओं अथवा पाठकों का ध्यान रखे बिना ही तटस्थ रह कर कथा का पूरा वर्णन कर डालते हैं। लेखक एक अन्य पुरुष के समान पात्रो तथा दृश्यो का वर्णन करता है। नाना प्रकार के शब्दचित्र, पात्रो के रूप तथा कार्य-कलापों का वर्णन, वातावरण तथा कथोपकथन का सजीव वर्णन उपन्यासकार करता चलता है। यथार्थवादी तथा अलकृत चित्रण करना ही इन उपन्यासकारो की विशेषता है। मेहताजी की शब्दयोजना सुन्दर, सजीव और स्वाभाविक अलकारो से पूर्ण रूप से आवृत है। उदाहरण के लिए, लज्जाराम मेहता द्वारा "आदर्श हिन्दू" में बुढ़ापे का एक अलंकारयुक्त सुन्दर चित्र देख लें— 'बुढ़ापे ने जोर देकर उसके मुँह से सब दाँत छीन लिये हैं, उसके सिर, दाढ़ी, मोंछ के क्या—भौंहो तक के बाल सन से सफेद हो गये हैं। जवानी जब इन बूढे से नाराज होकर जाने लगी तो चलते-चलते गुस्से में आकर एक लात इस जोर से मार गयी कि जिससे बूढे की कमर झुक कर दोहरी हो गयी।"[2]

यहाँ मनोरजन के साथ ही साथ लक्ष्य की पूर्ति हुई है। विषय-वस्तु और वर्णन-शैली की दृष्टि से मेहताजी के उपन्यासों ने 'उपन्यास साहित्य' के विकास में अपूर्व योगदान किया है। उन्नीसवीं शताब्दी मे यथार्थवाद के बीज मेहताजी के उपन्यासों मे भरपूर मिले। "आदर्श हिन्दू" की भूमिका में स्वय मेहताजी ने कहा है:

१. बाबू ब्रजरत्नदास : "हिन्दी उपन्यास साहित्य", पृ० १६६।
२. मेहता लज्जाराम शर्मा . "आदर्श हिन्दू", पृ० २१।

"इतना मैं कह सकता हूँ कि जिस उद्देश्य से मैंने अब तक उपन्यास लिखे हैं, उसी से यह "आदर्श हिन्दू" भी लिखा है। इसमें तीर्थ यात्रा के ब्याज से, एक ब्राह्मण कुटुम्ब मे सनातन धर्म का दिग्दर्शन, हिन्दूपन का नमूना, आजकल की त्रुटियाँ, राजभक्ति का स्वरूप, परमेश्वर की भक्ति का आदर्श और अपने विचारों की बानगी प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। यदि इस पुस्तक में मैं आदर्श हिन्दू का अच्छा खाका तैयार कर सका तो मेरा सौभाग्य और पाठकों की उदारता।"[१]

"आदर्श हिन्दू" मेहताजी ने तीन भागों में रचा है। उन्होंने लिखा है : "श्रीमान् महाराव राजा सर रघुवीरसिंह जी साहब बहादुर, जी० सी० आई०, जी० सी० वी० ओ०, के० सी० एस० आई० बूंदी नरेश को मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ ? मैं असमर्थ हूँ। इस पुस्तक का अकिंचन लेखक उन महानुभाव का चिर आश्रित है। उनकी मुझ पर बढ़ंमती कृपा है और उन्हीं की सेवा में सम्वत् १९६९ में मुझे उसके साथ श्री जगदीशपुरी की यात्रा का अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ था। बस उसी यात्रा के अनुभव से इस पुस्तक रचना का बीजारोपण हुआ।"[२]

"आदर्श हिन्दू" उपन्यास की कथावस्तु पण्डित प्रियानाथ और उनकी पत्नी श्रीमती प्रियवदा के परस्पर प्रेम सम्भाषण से प्रारम्भ होती है। सन्तान के बिना प्रियवदा दुखी है। नर्क के भय से और पुत्र-कामना को लेकर दम्पत्ति तीर्थ-यात्रा के लिये जाते हैं। पण्डित प्रियानाथ विद्वान् पुरुष हैं, उन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, ज्योतिष, गुजराती, मराठी, उर्दू तथा कर्मकाण्ड का अच्छा ज्ञान है। मुहूर्त को निकलवा कर उन्होंने यात्रा प्रारम्भ की। यद्यपि प्रियवदा की उम्र अट्ठाइस वर्ष की है पर सन्तान न होने से अभी से अपने जीवन से निराश हो गयी है। प्रियवदा पतिव्रता नारी है, जो अपने प्राणनाथ को जन्म-जन्मान्तर तक पतित्व में ग्रहण करने की कामना करती है। पति-पत्नी दोनों धार्मिक प्रवृत्ति के जीव हैं। वह गरीब माँ-बाप की सुशिक्षित बाला है। प्रियानाथ का भाई कान्तानाथ तथा उसकी पत्नी सुखदा का भी इस कथानक के विकास में योगदान है। सब परिवार मथुरा-वृन्दावन जाता है और चौरासी कोस की ब्रजभूमि की यात्रा के उपरान्त प्रयागराज (इलाहाबाद) आया, जो सब तीर्थों का राजा है। वहाँ की महिमा का बखान करके वे लोग काशी पधारे। प्रयाग के भिखारी और पण्डों ने उन्हें बहुत तंग किया, उससे ऊब कर पण्डित प्रियानाथ ने काशी की छटा देखी। प्रियवदा के सतीत्व की प्रशंसा लेखक ने बहुत की है, जिसके कारण उसे अनेक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त हुई है। विपत्ति के समय में भी गंगा-स्नान, सन्ध्या-वन्दन, नित्य-कर्म, विष्णु सहस्रनाम का पाठ और विश्वनाथ के दर्शन प्रियानाथ ने नहीं छोड़े थे। यहाँ अनेक साधु-महात्माओं के दर्शन किये, सत्संग का लाभ उठाया, पुत्र के

१. मेहता लज्जाराम शर्मा : "आदर्श हिन्दू" भूमिका, पृ० २।
(प्रकाशक—काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
२. मेहता लज्जाराम शर्मा "आदर्श हिन्दू", प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ३।

प्रभाव ने इन्हें धर्म चर्चाओं में तल्लीन कर दिया और हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा के लिए नाना प्रकार के तर्क वितर्कों में इन्होंने भाग लिया। उसके बाद ये सब जगदीशपुरी के लिए रवाना हुए। चारों धाम की यात्रा करके अपत्यहीनता के पास का मोचन पण्डित प्रियानाथ और उनकी सहधर्मिणी प्रियंवदादेवी ने किया। यही आदर्श हिन्दू लक्षण है, जिसका उल्लेख मेहताजी ने अपने उपन्यास में किया है। हिन्दू धर्म की महत्ता उपन्यास में पूरी तरह से अंकित हुई है।

भाषा और शैली की दृष्टि से लेखक ने वर्णनात्मक शैली अपनायी है तथा भाषाओं के प्रचलित रूप को ग्रहण किया है, जिसमें अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती सब भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है। हिन्दी के प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कहावतें तथा सूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है, इनका रूप कहीं-कहीं पर रामायण के दोहा-चौपाई के रूप में है। कहीं कहीं पर संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग है, जिसके द्वारा धार्मिक चर्चाओं पर प्रकाश डाला गया है। भाषा अलंकृत है और कहीं कहीं पर शुद्ध तत्सम शब्दावली को लिये हुए उपलब्ध होती है। "मुझे ही इस लघु जीवन में ऐसे ऐसे अनेक भस्मासुरों से पाला पड़ चुका है किन्तु दुष्ट यदि अपनी दुष्टता से न चूके तो न चूके, उसका स्वभाव है, सज्जनों को अपना सौजन्य क्यों छोड़ना चाहिए।"[1]

'खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग पकड़ता है। इस एक व्यक्ति को परोपकार में प्रवृत्त होते देख कर दूसरे का मन भी पिघला। उसने लपके हुए तार घर में जाकर तार बाबू के हजार मना करने पर भी तुरन्त ही ट्राफिक सुपरिन्टेंडेंट को, ट्राफिक मैनेजर को और दूसरों को तार दिया।"[2]

कथोपकथन सहज और स्वाभाविक बन पड़े हैं।

"आ बहन! अच्छी तरह तो हो? आज बहुत दिनों में दिखलाई दी।"

"तेरी बला से! अच्छी हूँ—तो तुझे क्या? और बुरी हूँ तो तुझे क्या? तू अपनी करनी में कमी कसर न रखियो। जी तो यही चाहता है कि उमर भर तेरा मुँह न देखूँ।"[3]

अनेक प्रकार के भाषा के उदाहरण उपन्यास शैली के विकास में सफल हैं। मेहताजी भाषा और शैली की रचना में पारंगत हैं। कथोपकथन का भी समावेश पत्रतम प्राप्त होता है। कथावस्तु की धारावाहिकता समान गति से चलती रहती है। उसमें अवरोध नहीं आने पाता है।

लज्जाराम शर्मा (मेहता), बाबू ब्रजनन्दन सहाय इत्यादि की हिन्दी साहित्य की अमर सेवाएँ उल्लेखनीय रहेंगी, जो उपन्यासों का मार्ग द्विवेदी युग में

---

१. मेहता लज्जाराम शर्मा, "आदर्श हिन्दू", भाग २, पृ० १३५।
२. मेहता लज्जाराम शर्मा, "आदर्श हिन्दू", भाग १, पृ० ६२।
३. मेहता लज्जाराम शर्मा, "आदर्श हिन्दू", भाग १, पृ० २२२।

प्रशस्त कर रहे थे। मेहताजी तो "गुजराती" भाषा से भी उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद कर रहे थे तथा हिन्दी में भी अनेक उच्च कोटि के आदर्शपूर्ण उपन्यासों की रचना की। हिन्दू धर्म व नैतिक आदर्शों से प्रेरित होकर मेहताजी ने अपने उपन्यास लिखे, जिनको हिन्दू जनता ने रुचिपूर्वक पढा है और उनसे नैतिक मान्यताएं ग्रहण की हैं। बाबू ब्रजनन्दनसहाय ने "सौन्दर्योपासक" और "राधाकान्त" नामक भावात्मक उपन्यास रचे। इसके अतिरिक्त 'अद्भुत प्रायश्चित', "अरण्य बाला", "राजेन्द्र मालती" इत्यादि सामाजिक उपन्यास भी रचे। 'चरित्र चित्रण' और 'भावों की यथार्थ अभिव्यक्ति' के लिए बाबू ब्रजनन्दनसहाय को बंगला साहित्य से प्रेरणा मिली है, और हिन्दी साहित्य में "सौन्दर्योपासक" तो इस दिशा में प्रथम मौलिक कदम है। शिवनारायण श्रीवास्तव ने "सौन्दर्योपासक" के विषय में लिखा है :

"सौन्दर्योपासक" तो केवल एक व्यक्ति की अनुभूतियों की व्यंजनामात्र है। जिस प्रकार उसके सौन्दर्यप्रेमी मन ने उसे कभी चैन नहीं लेने दिया और सदैव हृदय में एक टीस बनी रही, इस उपन्यास में उसी की अभिव्यक्ति है। भाव, घटनाएं और चरित्र तीनों के सम्यक् योग में ही उपन्यास की सफलता है क्योंकि जीवन में तीनों का योग है। इनमें से किसी भी तथ्य की उपेक्षा से इस कला में पूर्णता न आ सकेगी, परन्तु हिन्दी के बाल्यकाल में इन तथ्यों की सामञ्जस्य के स्थान पर एकांगिता की ही ओर अधिक दृष्टि रही और प्रधान तथा घटनाओं का ही बोलबाला रहा। बाबू ब्रजनन्दनसहाय का प्रयत्न भी एकांगी ही रहा है, इसलिए उपन्यास-कला की दृष्टि से उसका बहुत अधिक महत्व नहीं, जैसा बाबू ब्रजनन्दनसहाय ने स्वयं ही स्वीकार किया है, अधिकतर पाठक घटना वैचित्र्य ही के लिए उपन्यास पढ़ते हैं।"[1]

बाबू ब्रजनन्दनसहाय उपन्यासकार के रूप में कभी भी विख्यात नहीं हुए, फिर भी भावों का विश्लेषण थोड़ा-बहुत इन्होंने करने का प्रयास अपने उपन्यासों में किया है।

द्विवेदी युग के उपन्यासकारों में सबसे अधिक ख्याति बाबू देवकीनन्दन खत्री को प्राप्त हुई। सन् १८६१ में "चन्द्रकान्ता" और उसके कुछ दिन बाद उनका प्रसिद्ध उपन्यास "चन्द्रकान्ता सन्तति" अनेक भागों में प्रकाशित हुआ। अहिन्दी भाषियों ने भी इन कौतूहलवर्द्धक मनोरंजक उपन्यासों को पढ़ने के लिए हिन्दी भाषा सीखी।

डॉ० नगेन्द्र ने अपने निबन्ध "हिन्दी उपन्यास" में देवकीनन्दन खत्री से एक वृहद् साहित्य समारोह में कहलाया है; "हम तो उपन्यास को कल्पित कथा समझते थे। इसके अतिरिक्त उसका कुछ और स्वरूप हो सकता है, यह तो हमारे ध्यान में भी नहीं आता था। मैंने स्वदेश विदेश की विचित्र कथाएं बड़े मनोयोग से पढ़ी थीं और उनको पढ़कर मेरे दिल में यह आया था कि मैं भी इसी प्रकार के अद्भुत कथानक लिख कर

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव "हिन्दी उपन्यास", पृ० ८८।

जनता का मनोरंजन करके यह लाभ करूँ। इसलिये मैंने चन्द्रकान्ता सन्तति लिख डाली। अद्भुत के प्रति बहुत अधिक आकर्षण होने के कारण मेरी कल्पना उत्तेजित होकर उस चित्रलोक की रचना कर सकी। आखिर लोगों के पास इतना समय था और जीवन की गति इतनी मन्दी थी कि उन्हें आवश्यकता थी किसी ऐसे साधन की जो उसमें उत्तेजना भर सके। बस, वे साहित्य में उत्तेजना की माँग करते थे। इसके अतिरिक्त मनुष्य यह तो सदा अनुभव करता है कि यह जीवन और जगत अनन्त रहस्यों का भण्डार है, परन्तु साधारणतः कल्पना की आँखें खुली न होने के कारण यह उनको देख नहीं पाता। उसका कौतूहल जैसे इस तिलिस्म के द्वार से टकरा कर लौट आता है और उसे यह इच्छा रहती है कि ऐसा कुछ हो जो जादूघर को खोल सके। मेरे उपन्यास मनुष्य की ये दोनो माँगें पूरी करते हैं। उनके मन्द जीवन में उत्तेजना पैदा करते हैं और उनकी कौतूहलवृत्ति को तृप्त करते हैं। इसलिए वे इतने लोकप्रिय रहे हैं।"[1]

इन उपन्यासों की माँग इतनी बढ़ी कि अन्य लेखक भी उपन्यास-रचना के क्षेत्र में अग्रसर हुए। लेखकों तथा प्रकाशकों को ऐसे मनोरंजक तथा कौतूहलवर्द्धक उपन्यास रचने से आर्थिक लाभ बहुत होता था। देवकीनन्दन खत्री की स्मरण-शक्ति अत्यन्त प्रखर थी कि उपन्यास लिखते जाते थे और उसी समय उसे छापेखाने में भी भेजते जाते थे। चुनार की पहाड़ियाँ, किला, तहखाने और सुरंगों ने खत्रीजी को अपार प्रेरणा प्रदान की है, जिसके आधार पर उन्होंने हजारों पन्ने भर दिये हैं।

स्वयं खत्रीजी ने अपने उपन्यासों के विषय में लिखा है: "आज हिन्दी के बहुत से उपन्यास हुए हैं, जिनमें कई तरह की बातें व राजदरबारों में ऐयार (चालाक) भी नौकर हुआ करते थे, जो हरफन मौला याने सूरत बदलना, बहुत सी दवाओं का जानना, गाना, बजाना, दौड़ना, शस्त्र चलाना, जासूसों का काम देना वगैरः बहुत सी बातें जाना करते थे। जब राजाओं में लड़ाई होती थी तो ये लोग अपनी चालाकी से बिना खून गिराये या पलटनों की जान गँवाये लड़ाई खत्म कर देते थे। इन लोगों की बड़ी कदर की जाती थी। इन्हीं ऐयारी पेशे में आजकल बहुरूपिये दिखायी देते हैं। वे सब गुण तो इन लोगों में रहे नहीं, सिर्फ शक्ल बदलना रह गया, वह भी किसी काम का नहीं। इन ऐयारों का ध्यान हिन्दी किताबों में अभी तक मेरी नजरों से नहीं गुजरा। अगर हिन्दी पढ़ने वाले भी इस मजे को देख लें तो कई बातों का फायदा हो। सबसे ज्यादा तो यह है कि ऐसी किताबों को पढ़ने वाला जल्दी किसी के धोखे में न पड़ेगा। इन सब बातों का ख्याल करके मैंने यह "चन्द्रकान्ता" नामक उपन्यास लिखा है।"[2]

---

१. नगेन्द्र : "विचार और अनुभूति", पृ० २६-२७।
२. देवकीनन्दन खत्री : "चन्द्रकान्ता", उपन्यास की भूमिका से।

दूसरा उदाहरण देखिये—

"कुछ दिनों की बात है कि मेरे कई मित्रों ने सम्वाद-पत्रों में इस विषय का आन्दोलन उठाया था कि इसका (चन्द्रकान्ता) कथानक सम्भव है या असम्भव। मैं नहीं समझता कि यह बात क्यों उठाई और बढ़ाई गयी। जिस प्रकार पंचतन्त्र, हितोपदेश, बालकों की शिक्षा के लिए लिखे गये, उसी प्रकार यह लोगों के मनोविनोद के लिए, पर यह सम्भव है कि असम्भव, इस पर कोई यह समझेगा कि चन्द्रकान्ता और वीरेन्द्रसिंह इत्यादि पात्र और उनके विचित्र स्थानादि सब ऐतिहासिक हैं तो बड़ी भारी भूल है। कल्पना का मैदान बहुत विस्तृत है और उसका यह एक छोटा सा नमूना है। चन्द्रकान्ता में जो बातें लिखी गयी हैं, वे इसलिए नहीं कि लोग उनकी सचाई-झुठाई की परीक्षा करें, प्रत्युत इसीलिए कि पाठ कौतूहलवर्द्धक हो।"[1]

सारे उत्तरी भारत में देवकीनन्दन के उपन्यासों ने मानव जगत में तूफान सा दिया। खत्रीजी के उपन्यासों में तिलस्म और ऐयारी की धूम है। जासूसी और खूनी उपन्यास भी उन्होंने रचे हैं। खत्रीजी के उपन्यासों की भाषा सरल और स्वाभाविक है, जिससे दीर्घकाय उपन्यासों में भी आकर्षण कम नहीं होने पाता है। "काजर की कोठरी", "कुसुम कुमारी", "नरेन्द्र मोहनी", "वीरेन्द्र वीर" इत्यादि उनके जासूसी और खूनी उपन्यास हैं। "भूतनाथ" भी २४ भागों में खत्रीजी ने लिखना प्रारम्भ किया, जिसकी समाप्ति उनके सुपुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री के द्वारा हुई है। बाबू देवकीनन्दन खत्री के दिखाये हुए मार्ग पर अनेक जासूसी उपन्यासकार चल पड़े, जिनमें गोपालराम गहमरी और हरेकृष्ण जौहर प्रमुख हैं। जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में गहमरीजी का उच्च स्थान है, जिन्होंने जनता की तत्कालीन माँग की पूर्ति को ध्यान में रखकर डेढ़ सौ घटना-प्रधान उपन्यास रचे और कुछ मौलिक और कुछ अनूदित करके उपन्यासों की बाढ़ सी ला दी। इन्होंने "जासूस" नामक पत्र को जन्म देकर उसके सम्पादन का कार्य किया, जिसमें उनके लिखे हुए उपन्यास धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते रहे। फिर भी यह तो स्पष्ट है कि गहमरीजी के उपन्यासों में भी चरित्र-चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, वरन् घटनाओं को ही प्रमुख स्थान मिला है। आज भी गहमरीजी का "ठनठनगोपाल" फिर से प्रकाशित होकर जन-साधारण का मनोरंजन कर रहा है। जासूसी उपन्यासों की कथावस्तु में किसी का खून, कोई सनसनीपूर्ण घटना अथवा डकैती और उसका रहस्य, अभियुक्त को पकड़ना इत्यादि मुख्य प्रसंग रहते हैं। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने जासूसी उपन्यासों के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं : "जासूसी उपन्यास में लेखक की विश्लेषण करने की प्रतिभा का पूर्ण प्रदर्शन होता है, उसे प्रत्येक बात को अलग करके उसका सूक्ष्म विश्लेषण करना पड़ता है। साधारण उपन्यासों में कई घटनाओं और प्रसंगों का संश्लेषण करके उसे एक कथानक

---

१. देवकीनन्दन खत्री, "चन्द्रकान्ता" उपन्यास की भूमिका से।

के रूप मे दे देना पडता है। परन्तु जासूसी उपन्यास ठीक उसके विपरीत हुआ करते हैं, जिसमे सश्लेषण के स्थान पर विश्लेषण प्रधान होता है।"[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वय "गहमरी" के उपन्यासो के बारे मे लिखा है: "द्वितीय उत्थान के आरम्भ में हमे बाबू गोपालराम (गहमरी) बग भाषा के गार्हस्थ्य उपन्यासो के अनुवाद में तत्पर मिलते हैं। उनके कुछ उपन्यास तो इस उत्थान (सम्वत् १९५७) से पूर्व लिखे गये, जैसे चतुर चचला (१९५०), भानमती (१९५१), नये बाबू (१९५१), और बहुत से इसके आरम्भ मे जैसे बडा भाई (१९५०), देवरानी जिठानी (१९५८), दो बहिन (१९५९), तीन पतोहू (१९६१), और सास बहू। भाषा उनकी चटपटी और वक्रतापूर्ण है। ये गुण लाने के लिए कहीं-कहीं उन्होने पूर्वी शब्दो और मुहावरों का भी बेधडक प्रयोग किया है। उनके लिखने का ढंग बहुत ही मनोरजक है।"[2]

जासूसी उपन्यासो मे घटना, चमत्कार तथा विलक्षण कार्यों पर ही सारा रस निर्भर रहता है। स्वय गोपालराम गहमरी ने अपने उपन्यासो के विषय मे अपने विचार प्रकट किये हैं: "पहले जानने योग्य बात को घटना की जवनिका म छिपा रखना और इधर-उधर की जो बेसिलसिल और बेजोड हो पहले कहना और घटना पर घटना का तूमाल बाँधकर असल भेद जानने के लिए पाठको के हृदय मे कौतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य साज कर ऐसा उपन्यास गढना कि पूरा पढे बिना पूरा स्वाद न मिले। जिसका उपन्यास पढकर पाठक ने समझ लिया कि सब सोलहो आने सच है, उसी की लेखनी सफल परिश्रम हुई समझना चाहिए।"[3]

हरेकृष्ण जौहर ने भी लगभग बावन उपन्यास लिख डाले, जिनमे अनुवादो की संख्या अधिक थी। उन्होने अंग्रेजी के "फास्ट" का "नर पिशाच" के नाम से हिन्दी भाषा मे चार भागो में अनुवाद किया। रेनाल्ड्स के "ब्रोज स्टेच्यू" उपन्यास का "पीतल की मूर्ति" के नाम से निर्माण किया। तीसरा "मावर मफिकन ब्लून" नामक उपन्यास की रचना "भयानक भ्रमण" नाम के अनूदित की। मौलिक रचनाएँ "कुसुम लता" (चार भाग), "कमल कुमारी" (चार भाग), "आश्चर्य प्रदीप", "छाती का छुरा," "डाकू," "जादूगर" (चार भाग) और "निराला नकाबपोश" लिख डाले। इतना ही नही, "पीला प्रकाश", "भयानक खून", "शीरी फरहाद", "काला बाघ", "गवाह गायब" इत्यादि उपन्यास लिखकर जासूसी दुनियाँ में उन्होने आश्चर्य भर दिया। यदि जासूसी उपन्यासों को पश्चिम के उपन्यास साहित्य से प्रेरणा मिल रही थी तो तिलस्मी उपन्यासों का भाव फारसी कहानियो से आया। अमीर हम्जा ने अनेक

---

१. श्रीकृष्णलाल: "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० २९८-२९९।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५४६।
३. गोपालराम गहमरी: उनके उपन्यासो से उद्धृत।

११

तिलस्मी उपन्यास लिखे, जिनमें अद्भुत तिलस्म थे। सम्राट् अकबर के दरबार के कवि फैजी की "तिलस्म होश रूबा" का प्रभाव भी खत्रीजी पर पड़ा है, जो फारसी का एक बड़ा पोथा है। इसका अनुवाद उर्दू में भी हो गया है, जिसमें कम से कम बीस हजार पृष्ठों का समावेश है। इतना ही नहीं "किस्सा तोता मैना", "किस्सा साढे तीन यार", "बहार दर्वेश", "बागो बहार", "किस्सा हातिमताई" और "दास्ताने अमीर हमजा" का भी जन-साधारण में बड़ा प्रचार था। फिलिप ग्रोपेनहम, शरलाक होम्स, एडगेर वैलेस आदि पश्चिमी उपन्यासकार अपनी रचनाओं से जन-मनोरंजन कर रहे थे। इसी समय अंग्रेजी में "ब्लैक सीरिज", "सिक्स पैन्स सीरीज", "फोरपेन्स सीरीज" इत्यादि पुस्तक मालाएं प्रकाशित हुईं। हिन्दी में भी जासूसी उपन्यास इसी मात्रा में प्रकाशित होने लगे। आचार्य शुक्लजी ने हरेकृष्ण जौहर के साहित्य के लिए कहा है: "बाबू देवकीनन्दन के तिलस्मी रास्ते पर चलने वालों में बाबू हरेकृष्ण जौहर विशेष उल्लेख योग्य हैं।"[1]

गंगाप्रसाद गुप्त ने रेनाल्ड्स के उपन्यास "दी यंग फिशरमैन" का "किले की रानी" नाम से हिन्दी में अनूदित करके रखा। जयरामदास गुप्त ने "काश्मीर पतन", "चम्पा", "कनकलता", "चन्द्रलोक की छाप", "जहर का प्याला", "दो खून", "देवी या दानवी", "प्रभात कुमारी", "फूल कुमारी", "नवाबी परिस्तान", "किशोरी" इत्यादि आश्चर्यपूर्ण उपन्यास लिखे, जिनमें घटना वैचित्र्य प्रधान अंग है। "ठग वृत्तान्त माला", "अमला वृत्तान्त माला", "पुलिस वृत्तान्त माला", "लन्दन रहस्य", "पेरिस रहस्य" भी हिन्दी उपन्यास-जगत में प्रचलित थे। ये उपन्यास अधिकतर अनूदित होकर हिन्दी में आये। इनके अनुवादकर्त्ताओं में बाबू रामकृष्ण वर्मा का नाम विख्यात है, जिन्होंने उर्दू तथा अंग्रेजी भाषा से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। बाबू रामचन्द्र वर्मा ने लगन-पूर्वक मराठी से "छत्रसाल" उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद किया, अंग्रेजी से "लैला", "लन्दन रहस्य" और "टाम काका की कुटिया" का अनुवाद हुआ। बाबू ईश्वरीप्रसाद शर्मा, रूपनारायण पाण्डेय का भी अनुवादकर्त्ताओं में उच्च नाम है, यहाँ तक कि गहमरी ने भी बंगला से हिन्दी में निम्नलिखित उपन्यासों का अनुवाद किया—"घटना घटाटोप", "जयपराजय", "जीवन रहस्य", "नीलवसनसुन्दरी" और "मायावी" उनकी विख्यात रचनाएँ हैं। बाबू गंगाप्रसाद गुप्त का "पूना हलचल" उपन्यास अत्यन्त कौतूहलवर्द्धक रहा। मुंशी उदितनारायण लाल ने "दीपनिर्वाण" नामक ऐतिहासिक उपन्यास को अनूदित किया, जिसमें पृथ्वीराज चौहान के युग का चित्र अंकित किया गया है।

प्रेमचन्द युग तक जिन्होंने जासूसी उपन्यास धारा को प्रवाहित रखा है, उनमें दुर्गाप्रसाद खत्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके प्रसिद्ध जासूसी तथा

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५१।

तिलस्मी उपन्यास "मनगपाल", "प्रवागे का भाग्य", "उपन्यास कुसुम", "एकलव्य", "कलंक कालिमा", "प्रोफेसर भोंदू", "बलिदान", "माया", "रक्त मण्डल," "रोहितास मठ" (भाग दो), "लाल पजा", "सागर सम्राट्", "सुफेद शैतान" (चार भाग), "स्वर्ण रेखा" और "स्वर्ण पुरी" प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन्होंने अपने पिता का लिखा उपन्यास "भूतनाथ" भी पूरा किया। इनमे ऐयारी और जासूसी उपन्यासा को लिखने की पूरी योग्यता है। "लाल पजा", "प्रतिशोध" और "रक्त मण्डल" तो विशेष प्रसिद्ध उपन्यास हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पिता से पैतृक सम्पत्ति के रूप में दुर्गाप्रसाद को जासूसी उपन्यासों की परम्परा प्राप्त हुई। रोचक कहानी लिखने मे य पूरे सिद्धहस्त थे, जिसके फलस्वरूप अन्य भाषा भाषियों ने भी हिन्दी सीखी और इनके उपन्यासों के पाठकों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गयी। दुर्गा प्रसाद खत्री तो आज भी जासूसी-परम्परा को जीवित रखकर उपन्यास रचता में सलग्न हैं।

पण्डित बलदेवप्रसाद मिश्र ने भी हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत का अध्ययन करके मौलिक तथा अनूदित रचनाएँ प्रकाशित करायीं। "अद्भुत लाश," "अनारकली" और "पानीपत" नामक तीन उपन्यास इन्होंने लिखे और बंकिम बाबू के "देवी" नामक उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद किया। टॉड के "राजस्थान" का भी हिन्दी में सुन्दर अनुवाद किया गया। जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी भी द्विवेदी युग के उपन्यासकारा म अत्यन्त विख्यात हैं। इन्होंने "संसार चक्र" उपन्यास पहले लिखा और सम्वत् १६५६ में "टेम्पेस्ट" का हिन्दी में "तूफान" नाम से अनुवाद किया।

भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में हिन्दी जगत में उपन्यास के क्षेत्र में एक अनोखी हलचल सी मची, जिसके फलस्वरूप मौलिक और अनूदित उपन्यास धड़ाधड़ निकल पड़े। भाषा का कोई भी रूप अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया था। भावों के क्षेत्र में जन साधारण का मनोरंजन करना और बाजार में अपने अपने उपन्यासों को खपत करना ही इस युग के लेखकों का लक्ष्य रहा है। कथा-कहानी के माध्यम से जीवन के अद्भुत कार्य, चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णन और पाठकों के मन में कौतूहल की वृद्धि ही इन उपन्यासकारों का मूल लक्ष्य था। स्वयं बालकृष्ण भट्ट ने "हिन्दी प्रदीप" की टिप्पणी म कहा था: "सम्प्रति हिन्दी भाषा मे उपन्यासों की बड़ी भरती देख पड़ती है। इनमें से अधिक बंग भाषा से अनुवादित हुए थे। हिन्दी उपन्यासों की गणना थोड़ी है। बल्कि यों कहा जावे कि मूल उपन्यास का अभाव है तो फब सकता है।"[1]

द्विवेदी युग के प्रथम मौलिक उपन्यासकार गोस्वामी किशोरीलाल हैं, जिन्होंने साहित्य का प्रमुख अंग "उपन्यास" अपने कार्य-क्षेत्र के लिए चुन लिया और उसकी विभिन्न धाराओं का विकास किया। स्वयं शुक्लजी ने इन्हें "मौलिक उपन्यासकार,

---

१. बालकृष्ण भट्ट: "हिन्दी प्रदीप", सन् १८६६ की टिप्पणी से उद्धृत।

जिनकी रचनाएं साहित्य-कोटि में आती हैं",[१] मान लिया है। इन्हें खत्रीजी की तुलना में भी प्रथम स्थान देना पड़ेगा क्योंकि उनकी "चन्द्रकान्ता" से पहले गोस्वामीजी "कुसुमकुमारी" की रचना सन् १८८६ में कर चुके थे, पर अनेक कारणों से इसका प्रकाशन सन् १६०१ से पहले नहीं हो सका था। उन्होंने साहित्यिक समाज की बहिर्मुखी वृत्ति को सुरक्षित रखते हुए भी अपने उपन्यासों में अन्तर्मुखी वृत्तियों का अधिक चित्रण सफलता से किया है। डॉ० सावित्री सिन्हा ने प्रेमचन्द से पहले के हिन्दी उपन्यासों के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं: "इस युग में साहित्य का उद्देश्य सामाजिक और नैतिक मान्यताओं की स्थापना और सुधार था, इसलिए उपन्यासों के माध्यम से नैतिक शिक्षाएं प्रदान की जाती थीं। पुण्य से पाप को प्रताड़ित किया जाता था। समाज-सुधार, पश्चिमी संस्कृति का लांछित करना, भारत और भारतीय नारियों का गौरव प्रदान करना इन उपन्यासों का उद्देश्य था। सबसे बड़ा कार्य इन उपन्यासकारों ने यह किया कि जन-साधारण के हृदय में हिन्दी उपन्यासों को पढ़ने की रुचि पैदा कर दी। यद्यपि इन उपन्यासों का उद्देश्य मानव-जीवन की आलोचना नहीं था, न इसलिए वे लिखे गये थे, बल्कि इनका मूल उद्देश्य जन-साधारण का मनोरंजन तथा नैतिक शिक्षा प्रदान करना था।"[२]

गोस्वामी किशोरीलाल ने सामाजिक और प्रेमपूर्ण आख्यान को ध्यान में रख कर "लवंगलता" और "कुसुम कुमारी" उपन्यास लिखे। ऐतिहासिक तथा तिलस्मी उपन्यासों की श्रेणी में 'लखनऊ की कब्र" और "रजिया बेगम" रचा तथा भावात्मक और कलापूर्ण उपन्यासों के क्षेत्र में "लीलावती", "चन्द्रावती" और "माधवी-माधव" जैसे महत्वपूर्ण उपन्यासों की सृष्टि की।

डॉ० रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु युग के साहित्यिक उत्थान के विषय में बहुत सुन्दर तर्कपूर्ण उत्तर दिया है और विशेषकर यह उत्तर उनके लिए है, जो प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों को साहित्य की कोटि में मानने के लिए ही तैयार नहीं हैं। "भारतेन्दु युग के एक ओर मध्यकालीन दरबारी संस्कृति थी तो दूसरी ओर

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५१।
२. डॉ० नगेन्द्र (edited by) "Indian Literature", p. 660.
"Hindi" written by Dr. (Mrs) Savitree Sinha. (p. 660).
"In that age, the aim of literature was to reaffirm the social and moral values, so in these novels, too, ethical lessons were conveyed through the triumph of good over evil. To reform society, to criticise the Western civilization and to glorify India and the Indian women—these were the chief aims of these novels. The greatest contribution of the novelists of that period is that they created in the minds of the people a desire to read Hindi. Those novels do not contain a criticism of life, they were written, rather with a view to provide recreation or moral education.

ग्राम जनता में एक सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन के लिए वातावरण तैयार करना था।"

"साहित्य में देश के बढ़ते असन्तोष को प्रकट करना भर न था, सदियों से चले आते समाज की हड्डियों में बसे हुए सामन्ती कुसंस्कारों को छूना उसके धर्म को चुनौती देना था। एक बार उकसाई जाकर जनता सभी नये विचारों को सन्देह से देखने लगती, परन्तु भारतेन्दु और उनके साथियों ने इसकी चिन्ता न करके दृढ़ता से अपना युद्ध छेड़ दिया। नास्तिक किरिस्तान कहे जाने पर भी उन्होंने अपना सुधार का मार्ग न छोड़ा। इसके साथ ही उन्हें अपनी भाषा के लिए लड़ना था। वे अपने जन-साहित्य की रचना कचहरियों की भाषा में न कर सकते थे, उसके लिए जनता की भाषा को अपनाना आवश्यक था। कचहरी, सरकार और अन्य विशिष्ट वर्गों के विरोध के होते हुए भी उन्होंने हिन्दी गद्य का एक रूप स्थिर कर दिया। जो लोग सोचते हैं कि हिन्दी तभी मिट जाती तो बड़ा अच्छा होता, उनकी बात दूसरी है, परन्तु जो समझते हैं कि हिन्दी न मिटी तो अच्छा हुआ, उन्हें भारतेन्दु और उस युग के लेखकों का कृतज्ञ होना चाहिए, जिन्होंने उसे जीवित रखने के लिए प्राणों की बाजी लगा दी।"[1]

गोस्वामी किशोरीलाल ने जितने उपन्यास लिखे, उतने अन्य कोई लेखक नहीं रच पाया। पूर्व-प्रेमचन्द युग मे गोस्वामीजी का अपना विशिष्ट स्थान है। भारतेन्दु और द्विवेदी युग की सांस्कृतिक तथा सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार करके ही उन्होंने अपनी लेखनी उठाई थी और अपने उपन्यासों मे यथार्थ चित्र अंकित किये। यह निश्चित है कि वे अपने युग की सीमाओं म बँधे थे, अत तात्कालिक परिस्थितियों का निष्पक्ष चित्र नहीं उतार पाये हैं।

बाबू विपिनविहारी श्रीवास्तव के "हिन्दी म मौलिक नाटकों की आवश्यकता" शीर्षक लेख में इस युग के उपन्यासों के बारे में विस्तृत वर्णन मिलता है :

"एक समय वह था जब हिन्दी म उपन्यासों की बड़ी धूम मच रही थी, कोई भी कलम चला बैठता और एक मनगढ़न्त उपन्यास तैयार करके अपने को लेखकों के वर्ग म समझने लगता था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी में अश्लील, अयोग्य और निन्दनीय उपन्यासों का भण्डार बढ़ गया। उपन्यासों की ओर लोगों की बढ़ती हुई अभिरुचि को देखकर कुछ प्रेसों ने तो यहाँ तक किया कि कई मियाँजी और भैयाजी पाँच रुपये महीने के वेतन पर, उपन्यास-लेखकों के रूप मे अपने यहाँ नौकर रख लिये गये। फिर क्या था? रोज एक नवीन उपन्यास तैयार होकर साहित्य-क्षेत्र मे पदार्पण करने लगा। "किस्सा साढ़े तीन यार", "नौलखाहार", "रात की दो दो बातें" इत्यादि पुस्तकें जिनका नाम लेने म जी हिचकता है, बड़ी सजधज के साथ इन प्रेसों से छप कर निकलने लगी। यह देख कर कुछ दूसरे वर्ग के लेखकों का ध्यान

---

१. डॉ० रामविलास शर्मा : "भारतेन्दु युग", पृ० ६।

भी साहित्य-क्षेत्र में टाँग अड़ाने के लिए आकर्षित हुआ और उन्होंने भी हिन्दी साहित्य के पक्ष मे लम्बी-चौड़ी भूमिका देते हुए "चोर से बढ़ कर चोर", "चाँद का टुकड़ा", "दरोगा कैद से छूटे", "चाचा का खून", "डाकू का पैर", 'लेखक का सिर" इत्यादि क समान अनेक जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी कहानियाँ लिख कर उपन्यासों का बाजार गर्म कर दिया।"[1]

युग की माँग को समझना गोस्वामीजी की ही विलक्षण प्रतिभा का कार्य था, इसलिए डॉ० वार्ष्णेय ने कहा है "उपन्यास-लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी का वही स्थान है जो नाटककारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का है।"[2]

इनके जीवन का मूल लक्ष्य सनातन धर्म की प्रतिष्ठा, आर्यसमाज के विरुद्ध झण्डा गाड़ना और उसके सिद्धान्तों का खण्डन करना, ईसाई तथा इस्लाम धर्म से हिन्दुओं को बचाना, हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य तथा हिन्दू संस्कृति की रक्षा ही गोस्वामीजी की रचनाओं का मूल लक्ष्य था। गोस्वामीजी "उपन्यास-कला" में पूरी सम्पन्नता लाने की चेष्टा कर रहे थे। प्रकृति-वर्णन, समाज के विभिन्न चित्रों का अंकन, पात्रों का चरित्र-चित्रण, भावों और मनोविकारों का विश्लेषण तथा भाषा और शैली सभी पहलुओं पर गोस्वाजीजी का ध्यान गया है। जिस प्रकार से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'नाट्य कला" के विकास के लिए अटूट परिश्रम कर रहे थे, गोस्वामीजी ने भी सभी प्रकार के उपन्यास लिख कर अपना अद्भुत योगदान दिया।

विजयशंकर मल्ल ने गोस्वामीजी को सम्मानित करते हुए कहा · "सनातन-धर्मी किशोरीलाल गोस्वामी ने यद्यपि इस प्रकार कर्म फल पर दृष्टि रख कर कथा का आविष्कार किया, पर कलाकार किशोरीलाल ने विभिन्न विवरणों और वर्णनों की व्यवस्था की है, इसलिए अतिरंजनाओं के बावजूद जीवन और समाज के कतिपय यथार्थ चित्र इनकी रचनाओं क द्वारा प्रस्तुत हो सके हैं।"[3]

दृश्य और रूप-वर्णन, सम्वादों की योजना गोस्वामीजी के उपन्यासों में कलात्मक ढग से निखर उठी है।

गोस्वामी किशोरीलाल ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में "पायनियर" का कार्य किया है। वे युगद्रष्टा के रूप में सामयिक समस्याओं को अनुभव करके उनकी सुचारु अभिव्यक्ति अपने उपन्यासों में कर रहे थे। उपन्यास-रचना की दृष्टि से यह युग अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसमें सामाजिक, अर्द्ध-सामाजिक, तिलस्मी, जासूसी, ऐयारी, भाव प्रधान व ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये। इसी प्रकार बंगला, मराठी, अंग्रेजी

---

१. बाबू विपिनविहारी श्रीवास्तव : एकादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता; कार्य-विवरण, भाग २, पृष्ठ ६५, सं० १९८३।
२. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० १७९।
३. विजयशंकर मल्ल · "आलोचना"—उपन्यास अंक, अक्टूबर १९५४, उदयकाल, प्रेमचन्द के आगमन तक, पृ० ७५।

तथा उर्दू आदिभाषाओं से भी अनूदित होकर हिन्दी में उपन्यास अवतरित हुए। उपन्यास कला और शिल्प विधि का प्रारम्भिक रूप इन रचनाओं मे उपलब्ध है, जिसका उन्नत स्वरूप प्रेमचन्द तथा उनके बाद के उपन्यासकारों में दिखाई दिया। इन उपन्यासो का मूल उद्देश्य पाठको का मनोरंजन करना था। उनमें आश्चर्यजनक घटनाओं की प्रधानता रहती थी, जिसमें पाठकों का मन रमा रहता था। फलस्वरूप, उपन्यास साहित्य की मांग बढ़ती जाती थी और नये-नये उपन्यासकार अपनी प्रतिभा को लेकर उपन्यास रचना के क्षेत्र में प्रविष्ट हो रहे थे।

किशोरीलाल गोस्वामी का जीवन-चरित्र

जिला मथुरा, इलाका शेरपुर, परगना छाता के अन्तर्गत गांव बन्दई, सूरई के माफीदार और वृन्दावन केशी-घाटस्थ ठाकुर अटलबिहारीजी के मन्दिर के स्वत्वाधिकारी एवं सेवाधिकारी तथा श्रीमद्गग वल्लिम्बार्क सम्प्रदायाचार्य श्रीस्वयम्भू देवकी के वराघर राज मान्य श्रीमद् गोस्वामी केदारनाथ वृन्दावन में एक बड़े विद्वान् पुरुष हो गये हैं, जिन्होंने ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता पर भाष्य तथा श्रीमद्भागवत पर तिलक की रचना की है। महामान्यवर गोस्वामी केदारनाथ के पुत्र गोस्वामी वासुदेवलाल देवाचार्य हुए हैं, जो महान् विद्वान् थे। हिन्दी संस्कृत, बंगला, ब्रजभाषा में जिनकी योग्यता अनुपम थी। उनकी जीवन सम्बन्धी घटनाएं आश्चर्य से पूर्ण उपलब्ध होती हैं। इनकी अल्पायु में प्रथम सहधर्मिनी की मृत्यु हो गयी, तब इनका दूसरा विवाह काशी के परम विद्वान् गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्यदेव की कन्या से हुआ। इसी सौभाग्यवती कन्या-रत्न ने हमारे चरित्र-नायक गोस्वामी किशोरीलाल को माघ कृष्ण पन्द्रह अमावस्या के दिन सम्वत् १९२२ में काशी के पवित्र धाम में अपने मातामह गोस्वामी कृष्ण चैतन्यदेव के यहाँ जन्म दिया। इनके मातामह काशी के प्रसिद्ध गोलघर नामक मन्दिर में विराजते थे। वे काशी के प्रसिद्ध रईस हरिश्चन्द्र के गुरु तथा राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के पड़ोसी थे, इसलिए गोस्वामी किशोरीलाल के जीवन में काशी के रीति-रिवाजों, रूढ़ियों, व्यवहार, मान्यताओं और सामाजिक परम्पराओं का बहुत प्रभाव पड़ा। वहीं पर उनका सारा पठन-पाठन चलता रहा। उसी वातावरण में वे पालित हुए। वहीं उनका शारीरिक और मानसिक विकास हुआ। जिन विचारधाराओं ने गोस्वामी किशोरीलाल के हृदय पर प्रभाव डाला है, उनका स्पष्ट प्रतिबिम्ब उनकी रचनाओं पर पड़ा है। अपने नाना के यहाँ पर अत्यन्त लाड़-चाव से इनका लालन-पालन हुआ। इनकी सारी धार्मिक शिक्षा दीक्षा भी काशी में ही हुई। काशी नगरी सदा से ही पुण्य-भूमि एवं धार्मिक संस्कृति का केन्द्र रही है, जिसका इन पर अमिट प्रभाव बचपन से ही पड़ा है। इनके मातामह गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्य भारतेन्दुजी के साहित्य-गुरु थे, इस कारण धार्मिक प्रवचनों और सत्संग से ही इनकी अपनी रुचि हिन्दी की सेवा की ओर गयी। संस्कृत की ओर

इनकी विशेष रुचि थी। उसमें "आचार्य" की उपाधि-परीक्षा पास की तथा अन्य विषयों में भी "प्रथमा" परीक्षा की निपुणता प्राप्त की। काशी और वृन्दावन दोनों पवित्र धामों की संस्कृति और परम्पराओं का इन पर पूर्ण प्रभाव पड़ा है। शैक्षणिक क्षेत्र में केवल संस्कृत ही नहीं उर्दू, फारसी, अंग्रेजी भाषा और साहित्य का भी इन्हें अपूर्व ज्ञान था। गोस्वामीजी स्वयं अध्ययनशील तथा पाण्डित्यपूर्ण अभिरुचि के साहित्यकार थे। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित थे। कुछ दिनों तक ये आरा में भी रहे और वहाँ के जन जीवन के सम्पर्क में आये। आठ वर्ष की अवस्था होने पर इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और यही समय था, जब इनको विद्या का प्रारम्भ कराया गया। इन्होंने संस्कृत में व्याकरण, वेदान्त, न्याय, सांख्य-योग और ज्योतिष की प्रथम परीक्षा तक के ग्रन्थ पढ़े और "साहित्य" में आचार्य परीक्षा पास की। इनके पिता कुछ दिन आरा (बिहार) में आकर रहे और उन्हीं के साथ ये भी आरा आये, जहाँ पर आकर "आर्य पुस्तकालय" की स्थापना की।

पण्डित पीताम्बर मिश्र तथा पण्डित रुद्रदत्त से इन्होंने व्याकरण आदि ग्रन्थ पढ़े थे। बालगोविन्द त्रिपाठी से 'वर्णधर्मोपयोगिनी" सभा स्थापित कराई। ये "आर्य पुस्तकालय" तथा "वर्ण-धर्मोपयोगी" सभा दोनों के मन्त्री थे और इसी समय इन्होंने कुर्मी जाति की वर्ण-व्यवस्था पर एक पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी थी, जो "विज्ञ-वृन्दावन" नामक पत्र में छपा करती थी। इस "वर्ण-धर्मोपयोगी" सभा के द्वारा एक पाठशाला स्थापित कराई थी और उसी सभा के प्रतिनिधि होकर सम्वत् १६४७ में "भारत धर्म महामण्डल" में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली गये। वहाँ से आकर फिर काशी बस गये। काशी में इनकी बैठक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के यहाँ पर अधिक होने लगी क्योंकि इनके मातामह श्रीकृष्ण चैतन्यदेव उनके साहित्य गुरु थे। भारतेन्दुजी के संसर्ग में आने का गोस्वामीजी को अनेक बार सुअवसर प्राप्त हुआ। काशी से वृन्दावन में आकर रहे जहाँ पर सुदर्शन प्रेस की स्थापना की। स्वयं ही लेखक, मुद्रक और प्रकाशक तीनों रूपों में अटूट लगन के साथ कार्य करते रहे। सम्वत् १६४७ के लगभग काशी में आकर बस गये तथा कविता, संगीत, जीवन चरित्र, नाटक, जगनामा, मासिक पत्र और उपन्यास आदि लिखे तथा "उपन्यास" पत्र का सम्पादन किया। यदाकदा लेख भी गोस्वामीजी ने बहुत लिखे, जो भिन्न भिन्न प्रकार की पत्र पत्रिकाओं में छपते रहते थे। अनेक बार अध्यक्षीय भाषण देने का भी इन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ। गद्य और पद्य दोनों पर ही इनका पूर्ण और समान अधिकार था, पर जीवन में उपन्यास लेखन को ही इन्होंने अपना विशेष और प्रमुख क्षेत्र चुना और लगनपूर्वक लगभग ६५ उपन्यास लिख डाले। कई पत्रों के ये स्वयं सम्पादक रहे और इन्होंने भी "उपन्यास" नामक मासिक पत्र को सन् १८६८ में जन्म दिया, जिसमें इनके स्वयं के लिखे उपन्यास छपते थे। यह सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित होता था। वह प्रेस भी इनकी ही थी। गोस्वामी किशोरीलाल पक्के कट्टर सनातनी

हिन्दू थे। इन्होंने सदैव विदेशी शासन का विरोध किया। चाहे वह अंग्रेजी राज्य हो अथवा मुसलमानी शासन-काल, ये तो हिन्दू राष्ट्र के समर्थक थे। आज भी वृन्दावन में काछीघाट पर निम्बार्क सम्प्रदाय के स्मारक का मन्दिर है, जिसकी स्थापना इनके द्वारा हुई। अब तक उस मन्दिर के ठाकुर अटलबिहारी आपके वंश के सरक्षण में हैं। इस मन्दिर के एक दालान में बड़े भाले में इसका चिह्न खुदा हुआ है। काश्मीर में बाहरी लोगों की पहली लड़ाई हुई थी, वह आपके पूर्वजों ने लड़कर जीती थी। सम्राट् अकबर आदि आपके पूर्वजों के यहाँ आये और सनदें भेंट कीं, लेकिन वे स्वीकार नहीं की गयीं। इनके द्वारा ग्रहण किये हुए निम्बार्क सम्प्रदाय ने अब तक किसी भी विदेशी शासन का साथ नहीं दिया और सदैव भारतीय संस्कृति, कला, धर्म एवं साहित्य का पोषण किया है। इन्हें सनातन धर्म के प्रसार और पालन में अत्यन्त निष्ठा रही। भारत के प्रथम स्वतन्त्रता-युद्ध में, जो सन् १८५७ में हुआ था, आपके पूर्व पुरुषों ने दृढ़ता से विदेशी शासन से सघर्ष किया, यहाँ तक कि दिल्ली और लखनऊ आदि में जो मकान थे, वह तोपों से उड़ा दिये गये। आपके पिता वेश बदलकर काशी में वर्षों रहे। आपकी सम्पत्ति नष्ट हो गयी, पर राष्ट्र-गौरव जागृत रहा।

वृन्दावन के इतिहासज्ञों ने बताया कि सन् १८५७ में आपका वंश छिन्न-भिन्न हो गया। राजा शिवप्रसाद तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को गोस्वामीजी के घर से प्रोत्साहन मिला है। सच तो यह है कि हिन्दी के उत्थान में इस वश ने उस युग में अपूर्व सहायता पहुँचाई। पुरस्कारस्वरूप जो जमींदारी व शाही महल इन्हें मिले, इन्होंने उनका कभी उपभोग नहीं किया। स्वय ही इतना धन उपार्जन किया कि सारा जीवन सुख के साथ उपभोग किया। हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा इन्होंने प्राण देकर के भी की। कभी पराधीनता स्वीकार नहीं की।

गोस्वामी किशोरीलाल के एकमात्र सुपुत्र गोस्वामी छबीलेलाल थे। अपने पिता के ही जीवन-काल में, इन्होंने स्वय भी साहित्य के क्षेत्र में अपना एक पृथक् स्थान बना लिया था। अपने पिता किशोरीलाल के लिखे हुए उपन्यासों को उन्होंने स्वय ही प्रकाशित भी किया। उस साहित्य के प्रसार का समस्त कार्य-भार छबीले-लाल के हाथों ही होता था। गोस्वामी छबीलेलाल के राजनैतिक जीवन में घोर कांग्रेस की विचारधारा की छाप रही है। वे स्वतन्त्रता-संग्राम में कई बार स्वयं जेल गये हैं और कष्ट पाये हैं। इन्होंने मथुरा तथा काशी के नागरिक जीवन में सदैव सक्रिय भाग लिया है। हिन्दी की स्थापना और प्रचार के कार्य में वे जीवनपर्यन्त लगे रहे, हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा स्थायी रखी है। सन् १९१९ से १९२२ तक राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में व्रजभूमि में आपकी अध्यक्षता में अनेक सभाएँ आयोजित हुईं, जिनके सभापतित्व में पण्डित मदनमोहन मालवीय, डाक्टर अन्सारी, मोतीलाल नेहरू इत्यादि सबके भाषण हुए। गोस्वामी छबीलेलाल मथुरा मण्डल के अग्रणीय नेता थे।

सन् १९२१ में इन्हें डेढ वर्ष के लिए खुर्जा में दिये गये भाषण के उपलक्ष में बुलन्दशहर जेल में भेज दिया गया, उसी समय इनकी सारी धन सम्पत्ति नष्ट हो गयी। छबीलेलाल के जेल-काल मे इनका सुदर्शन प्रेस नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। इससे इन्हें करीब दस लाख रुपये की हानि हुई। ब्रिटिश सरकार ने छबीलेलाल को कई प्रलोभन दिये, पर ये देश-भक्ति के कार्यों में सक्रिय भाग लेते रहे। सरकार के द्वारा प्रदान की जाने वाली ५०० रुपये की मासिक वृत्ति को इन्होने स्वीकार नहीं किया। उपन्यास-सम्राट तथा साहित्यमनीषी किशोरीलाल के पुत्र छबीलेलाल जीवन भर आर्थिक अभाव के चक्कर मे पिसते रहने पर अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहे। सन् १९४२ की राष्ट्रीय क्रान्ति के अवसर पर आपको लकवे की बीमारी हो गयी तथा मृत्युपर्यन्त आप निरन्तर बीमार रहे। आपकी पत्नी, जो अभी भी जीवित हैं, उन्होने वृन्दावन मे राष्ट्रीय आन्दोलन म सक्रिय भाग लिया तथा महिलाओ में जागृति फैलाई। आपके ज्येष्ठ पुत्र पुरुषोत्तमशरण गोस्वामी ने सरकारी नौकरी का परित्याग कर दिया और लघु पुत्र बालकृष्ण गोस्वामी ने भी अपने पिता की विचारधारा को दृढतापूर्वक अपनाया। सन् १९४२ की क्रान्ति मे बालकृष्ण अनेक बार वृन्दावन में पुलिस की गोलो के छर्रों से घायल हुए। इस होनहार युवक की शिक्षा-दीक्षा स्वतन्त्र विचारों के कारण नही हो पाई। केवल एफ० ए० तक पढ़ाई करके इन्हें अपने पिता के परिवार के भरण-पोषण के लिए सेवा-वृत्ति ग्रहण करनी पड़ी। बालकृष्ण से जब मैंने भेंट की तो वे अपनी करुण अवस्था एवं आर्थिक अभावों पर मौन रहे। उनकी पूज्य माता (छबीलेलाल की धर्मपत्नी) ने सारी पारिवारिक करुण कथा सुनाई। ऐसे महान् उपन्यास सम्राट् किशोरीलाल के पौत्र तथा पुत्रवधू की करुण दशा देखकर हृदय रो उठता है। राष्ट्रीय सरकार का महान् तथा प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि इस साहित्यसेवी तथा जन सेवी परिवार की सहायता करे।

गोस्वामी छबीलेलाल द्वारा रचित अनेक कथा-संग्रह अभी भी जन-साधारण की आँखों से छिपे हुए हैं। प्रकाशकों ने उनका पुन मुद्रण नहीं किया, इसलिए हिन्दी की अधिकारी संस्थाएँ तथा राष्ट्रीय सरकार का प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि महान् साहित्य-स्रष्टा किशोरीलाल और छबीलेलाल की रचनाओ की खोज करें। उनका पुनः प्रकाशन करें। उसकी सुरक्षा करें। मेरी खोज करने की शक्ति हार मान बैठती है, जब मथुरा, वृन्दावन, काशी, आगरा जैसे स्थानों के अनेक चक्कर लगाकर बड़ी कठिनाई से थोड़ी-बहुत किशोरीलाल की रचनाओ को एकत्र करने मे सफल हो सकी। बालकृष्ण गोस्वामी से मैं अनेक बार मिली, पर उनके अपने घर वृन्दावन तथा काशी मे भी उनके पितामह सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी। मुझसे कहा गया कि वृन्दावन मे यमुना में बाढ़ आ जाने से गोस्वामी का घर बह गया और पानी से भीग कर उनका साहित्य बहुत कुछ नष्ट हो गया। काशी मे ज्येष्ठ शुक्ल ५ सम्वत् १९८९ को किशोरीलाल गोस्वामी अमरधाम बैकुण्ठ सिधारे।

गोस्वामी किशोरीलाल का युग नव-निर्माण का काल था। उसी समय बंगाल में फोर्ट विलियम कॉलिज का प्राविर्भाव हुआ तथा हिन्दी गद्य के विकास को साकार रूप प्राप्त हुआ। प्रत्येक नागरिक को अपनी विचार-धारा को प्रकट करने के लिए गद्य का सरल तथा स्वाभाविक माध्यम प्राप्त हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यद्यपि गद्य के विकास के लिए खुला क्षेत्र प्राप्त हुआ, पर इस समय तक मध्यकालीन परम्पराएँ, काव्य-धाराएँ हिन्दी साहित्य अपना घर किए हुए बैठी थी। रीतिकालीन रूढियों का प्रभाव भरपूर दिखाई देता था। गद्य तथा पद्य दोनों ही क्षेत्र में प्राचीन शैली के दर्शन होते थे। प्राचार्य-परम्परा का भाषा के क्षेत्र में प्रयोग हुआ, जिसके फलस्वरूप प्रालंकारिक तथा दुरूह तत्सम शब्दावली के दर्शन हो रहे थे। काव्य का बाह्य पक्ष अभी भी पूरी सज-धज के साथ कलाकारों के द्वारा प्रदर्शित किया जाता था। उसका अन्त पक्ष (प्रात्मा) का स्वरूप स्पष्ट नहीं हाने पाया था, इसलिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य प्राप्त हाने पर भी उनकी उन्मुक्त विचारधारा स्पष्ट नहीं हाने पायी। इस युग के साहित्यकारों ने संस्कृत साहित्य के गद्य के नमूनों को अपना प्रादर्श मानकर हिन्दी क क्षेत्र मे नवीन गद्य का निर्माण किया। दण्डी, सुबंधु, बाण आदि महान् गद्यकारों की शैली का पूर्णरूपेण हिन्दी में अनुकरण किया गया, फिर भी इस सबक बाच हिन्दी के साहित्यकारों को मौलिक प्रतिभा दृष्टिगोचर होने लगा। यह पुनरुत्थानवादी युग रहा है, जिसमें नई शैली तथा नई भाव-धारा का जन्म हुआ। हिन्दी के विभिन्न साहित्यांगों का निर्माण होने लगा।

साहित्य क अतिरिक्त सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे ही राजा राममोहनराय द्वारा चलाया हुआ "ब्रह्म-समाज" फैलने लगा था, जिसने देश की सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक मान्यताओं पर अपना प्रभाव डाला। रूढिवादी गहन विश्वास तथा प्रतिभावान व्यक्तियों की विचारधारा का प्रापस में संघर्ष हुआ। केवल बंगाल मे ही नहीं, इसका प्रभाव सारे भारतवर्ष के जन-जीवन पर पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के बंगला साहित्य ने हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक साहित्यिक धाराओं को अत्यन्त प्रभावित किया। इतना ही नहीं, इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा चलाया हुआ "आर्य-समाज" भी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्र मे अपूर्व कार्य कर रहा था। यह युग जन-साधारण क हृदय मे एक अद्‌भुत तूफान पैदा कर रहा था। नये विचारों तथा नई मान्यताओं का जन्म हो रहा था। इसस पूर्व ईसाई मिशनरियों न धर्म-प्रचार क उद्देश्य से नई पद्धति पर अनेक पाठशालाएँ स्थापित की और ईसाई धर्म-ग्रन्थों का भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं मे अनुवाद होने लगा। इनका प्रचार-साहित्य निःशुल्क बाँटा गया। इन्होंने भारतीय जनता में अपूर्व जागृति फैलाई, जिससे मनुष्य-मात्र के हृदय में चेतना पैदा हुई। रहन-सहन, रीति रिवाज, परम्पराएँ तथा शिक्षा-विषयक नई विचारधारा का प्रसार हुआ। यद्यपि मिशनरियों ने भारत में बड़े परिश्रम से जागृति फैलाई, पर जनता का इनके

प्रति कभी भी विश्वास उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि इनका सम्बन्ध विदेशी सरकार से था, जो यहाँ शासक बन कर आई थी। स्वामी और सेवक का व्यवधान इनके साथ सदैव ही बना रहा। अंग्रेजी शिक्षा का प्रधानता ने भारतवर्ष के नव शिक्षित युवकों को पुरानी परम्पराओं से एकदम विच्छिन्न कर दिया। यूरोपीय संस्कृति तथा शिक्षा के सम्पर्क में भारतीय जन रुचि बदी तथा उसका अमिट प्रभाव पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम अंश में *मौर्य तथा गुप्त काल सम्बन्धी अपूर्व साहित्य रचा गया, जिसमें प्राचीन* ऐतिहासिक गौरव जीवित था। धीरे-धीरे शिक्षा के प्रसार के साथ ही साथ मन्दिर *और धर्मशाला के स्थान पर स्कूल कालेज, अस्पताल बनवाये जाने लगे* विधवा-विवाह की मान्यता बाल विवाह का विरोध, सती प्रथा का निषेध, अछूतोद्धार की भावना का समाज में प्रसार हुआ। सारा हिन्दी साहित्य उससे प्रभावित हुआ, परिणाम-स्वरूप, व्यंग्य कटाक्ष तथा स्पष्टोक्तियों का प्रयोग जी भर कर हुआ। इसी काल में भारत में नवीन साहित्यिक चेतना जागृत हुई। देश में स्वाभिमान तथा संस्कृति-प्रेम की भावना जागृत हो चुकी थी जिसकी प्रेरणा नवीन शिक्षा प्रणाली से मिली, जिसके जन्मदाता अंग्रेज थे। *स्वतन्त्र* विचारों की सरिता उमड़ने लगी थी। इसी समय काशी नागरी प्रचारिणी सभा का जन्म हुआ जिसने हिन्दी साहित्य को उन्नत बनाने में भरपूर काम किया है। इसने लेखकों को प्रोत्साहित किया, जिन्होंने नई नई रचनाओं को जन्म दिया। सांस्कृतिक और साहित्यिक जागरण तथा शैक्षणिक प्रसार ही भारतेन्दु और द्विवेदी युग की प्रगति का प्रतीक है। रेलगाड़ी का विकास समाचार-*पत्र, नय नये वैज्ञानिक आविष्कारों* ने पुरानी रूढ़ियों को अत्यन्त जबरदस्त धक्का पहुँचाया था। ऐसे संक्रान्ति-काल में गोस्वामी किशोरीलाल हिन्दी साहित्य के क्षेत्र *में अवतरित हुए। गोस्वामीजी पूर्ण रूप से कट्टर वैष्णव थे। उन पर सनातन धर्म* और उसकी रूढ़ियों का गहरा प्रभाव पड़ा था। वे हिन्दू धर्म और संस्कृति के रक्षक *तथा पक्के समर्थक थे। वे हिन्दू होने के नाते अपना प्रथम कर्तव्य समझते थे कि* अपने धर्म की रक्षा मुसलमान आततायियों तथा ईसाई धर्म प्रचारकों से करना चाहिए। उनकी रचनाओं में स्थान स्थान पर हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का अनेक प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। वे प्राचीन साहित्यकारों के समान धर्म तथा नीतिपूर्ण आदर्शों का भी उल्लेख करते चलते हैं। यद्यपि गोस्वामीजी के युग में आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज जैसे आन्दोलन चल रहे थे, फिर भी उन्होंने अपनी धर्मनिष्ठा का पूर्ण प्रयोग धर्म की रक्षा के लिए किया है। भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के अध्ययन के लिए उन्होंने अनेक स्थानों से सामग्री एकत्र की एवं ऐतिहासिक पुस्तकों का बड़ा गहरा अध्ययन किया है। उनके उपन्यासों पर एक ओर ऐतिहासिक रंग चढ़ा *हुआ है तो दूसरी ओर, उनमें समसामयिक सामाजिक पहलू भी यथावत् चित्रित हुए हैं।*

शैली के द्वारा लेखक के व्यक्तित्व का ज्ञान होता है। इस कथन को यदि गोस्वामीजी पर लागू किया जावे तो इनके उपन्यासों में रीतिकालीन साहित्यकारों की

विभिन्न प्रवृत्तियाँ स्पष्ट लक्षित होंगी । इनकी पाण्डित्यपूर्ण प्रतिभा ने भाधुनिक युग के बाहर भी कलाकार की सामग्री चयन का अवसर दिया। वास्तव म य तो वर्तमान युगीन उपन्यासकार थे। इस युग में रह कर भो तत्कालीन समाज की विभिन्न समस्याओं को अपने उपन्यासों मे चित्रित नहीं किया। सन् १८६५ से १६३२ का युग उपन्यास साहित्य के लिए सक्रान्ति-काल था। एक ओर बाबू देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास धड़ाधड़ लिखे जा रहे थे, उनकी खपत पाठकों में यहाँ तक थी कि उनको पढ़ने के लिए जनता हिन्दी भाषा सीखने को तैयार थी। कितने ही उर्दू के विद्वानों ने हिन्दी सीखी, यहाँ तक कि "चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता सन्तति" ने लोगों को उपन्यास लिखने की ओर भी प्रेरित किया। तिलस्मी और ऐयारी की धूम मच गयी। इन्होंने चरित्र प्रधान उपन्यास लिखे तो इनके सहयोगी बाबू गोपालराम गहमरी ने घटना-प्रधान जासूसी उपन्यासों से हिन्दी क पाठकों का मनोरजन किया। इस कारण गोस्वामी किशोरीलाल के उपन्यासा का ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अधिक मूल्य है। बाबू शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है . "उनके उपन्यास जासूसी तिलस्मी उपन्यासों और स्वर्गीय प्रमचन्दजी के सामाजिक उपन्यासों के बीच की कड़ी हैं।"[1] इनके उपन्यास प्रकाशित होकर खत्रीजी से भी पहले पाठकों के सम्मुख आ गये।

गोस्वामीजी तन, मन और धन से पक्के वैष्णव थे, यही कारण था कि उनकी रचनाओं पर सनातन धर्म क सस्कारो का गहरा प्रभाव पड़ा है। हिन्दू धम और सस्कृति की रक्षा मे प्राणपण से सदैव लगे रहते थे, यहाँ तक कि प्रत्येक हिन्दू को परामर्श देना भी वे अपना कर्त्तव्य समझते थ कि मुसलमानों तथा इसाइयों से धर्म और भाषा की रक्षा करो। आर्यसमाज-आन्दोलन तत्कालीन सामाजिक क्रान्ति थी, गोस्वामीजी ने उस पर सनातन धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने की निरन्तर चेष्टा की। तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़िवादी जीवन-क्रम का गोस्वामीजी ने यथावत् चित्रण किया है, जिससे उनके उपन्यासों में सजीवता आ गयी है। उनके चरित्र सप्राण हो गये हैं और यही उपन्यासकार की सच्ची सफलता मानी जाती है। शिवनारायण श्रीवास्तव इन्हें "हिन्दी का पहला उपन्यासकार मानने को तैयार हैं।"[2] सम्वत् १६४७ के लगभग यह काशी आकर बस गये। इनके मातामह गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्य भारतेन्दुजी के साहित्य गुरु थे, अतः उनसे हिन्दी में रचना की प्रेरणा किशोरीलालजी को भी मिली तथा कविता, कजरी, सगीत, जीवन-चरित्र, कहानी, योग, रूपक, नाटक और उपन्यास सब प्रकार की करीब सौ रचनाओं को हिन्दी साहित्य में इन्होंने जन्म दिया। कई समाचार-पत्रों के सम्पादक रहे। स्वाभिमानी गोस्वामीजी के उपन्यास सर्वप्रथम अपने ही पत्र "उपन्यास" में प्रकाशित होते थे। डॉ० लक्ष्मीसागर

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ७७।
२. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ८२।

वार्ष्णेय ने कहा है : 'उपन्यास-लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी का वही स्थान है, जो नाटककारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का। भारतेन्दु के "नाटक" की भाँति उनका इरादा भी "उपन्यास" नामक ग्रन्थ लिखने का था।"[1]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह गौरव की वस्तु थी कि भारतेन्दुजी के मार्ग-दर्शन में उपन्यास साहित्य में भी अपूर्व सम्पन्नता आई, जिसका सारा श्रेय गोस्वामीजी को है, जिन्होंने निरन्तर 'उपन्यास-रचना' के लिए अपनी सारी शक्ति खर्च की।

गोस्वामीजी ने बहुत कुछ लिखा है। इन्होंने उपन्यास साहित्य का अपूर्व भण्डार भरा है। इन्होंने ६५ उपन्यास लिखकर प्राचीन युग में हिन्दी में उपन्यासों की बाढ़ ला दी है। इनकी सच्ची लगन ने पाठकों का अद्भुत मनोरंजन किया है। सामाजिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक, तिलस्मी और ऐयारी सभी प्रकार के उपन्यास लिखे हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'त्रिवेणी'[2] को इनकी सर्वप्रथम रचना मानी है, जिसका प्रकाशन सन् १८८८ में हुआ है और जिसका मूल उद्देश्य सनातन धर्म की आर्यसमाज पर विजय है। 'त्रिवेणी" उपन्यास में लेखक का महान् लक्ष्य है। उपन्यास का नायक मनोहरदास, जो जाति का वैश्य है, उसका विवाह प्रेमदास की तेरह वर्षीय कन्या त्रिवेणी से हो जाता है। इस अल्पायु में ही उसका सनातन धर्म के प्रति दृढ़ विश्वास है। उसका तीर्थ-यात्रा के लिए जाना, सनातन धर्म की महत्ता-सम्बन्धी लम्बी-लम्बी भाषण-मालाएँ देना ही कथा का मूल है। लेखक का सच्चा कट्टर हिन्दूपन यहीं प्रथम रचना से ही स्पष्ट दिखाई देने लगता है। यह सोद्देश्य उपन्यास है। सन् १८८९ में दूसरा उपन्यास "स्वर्गीय कुसुम" या "कुसुम कुमारी" लिखा गया, जिसके द्वारा किशोरीलाल की प्रशस्त कल्पना का परिचय प्राप्त होता है। इस उपन्यास का मूल उद्देश्य उस समय की प्रचलित देवदासी प्रथा का विरोध है। इसमें अनेक घटनाओं की आयोजना की गयी है तथा वर्णन प्रणाली सुन्दर है। इसकी कथावस्तु में प्रेम की ही प्रधानता है तथा कुसुम एक आदर्श प्रेमिका के रूप में अंकित की गयी है। इस बाला का जीवन लेखक ने भारतीय नारी के आदर्श का प्रतीक, त्याग, तपस्या, दुख एवं संयम से पूर्ण बतलाया है। कहीं-कहीं तो अनेक गुप्त षड्यन्त्रों का भी लेखक ने वर्णन किया है, जिससे उसकी प्रकाण्ड प्रतिभा का ज्ञान होता है। सामाजिक उपन्यास होते हुए भी "कुसुम कुमारी" उपन्यास में ऐयारी के अनेक दृश्य देखने को मिलते हैं। बाबू शिवनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है : "गोस्वामीजी के उपन्यासों के नामकरण से ही विदित हो जाता है कि सबके मूल में

---

१. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० १७६।
२. माताप्रसाद गुप्त : "हिन्दी पुस्तक साहित्य", पृ० २६।

कोई न कोई स्त्री है। चाहे वह चपला, मस्तानी, प्रेममयी, वनविहंगिणी, लावण्यमयी और प्रणयिनी हो अथवा कुलटा।"[1]

इसके साथ ही साथ दूसरा कथन देखिए—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है, "साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए। इस द्वितीय उत्थान-काल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे, पर व वास्तव म उपन्यास-कार न थे और चीजें लिखते लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पड़ते थे, पर गोस्वामीजी वहाँ घर कर बैठ गये। एक क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुन लिया और उसी में वे रम गये।"[2] 'गोस्वामीजी वहीं घर कर बैठ गये' यह उक्ति लेखक की लगन की परिचायक है। इनके अन्य उपन्यास 'हृदय-हारिणी' अथवा "आदर्श रमणी" में रंगपुर के राजकुमार नरेन्द्रसिंह और कृष्णनगर की राजकुमारी कुसुमकुमारी की कथा है। 'स्वर्गीय कुसुम", "तिलस्मी घर" और 'लवंगलता" में नवाब सिराजुद्दौला के गोल तिलस्मी कमरे अत्यन्त आकर्षक बन गये हैं। इन्होंने पहले अपने मातामह गोस्वामी कृष्ण चैतन्यदेव से भाषा साहित्य और पिंगल पढ़ा और उसके बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा राजा शिवप्रसाद की प्रेरणा से हिन्दी में सन् १८९० में इनका दूसरा उपन्यास "प्रणयिनी परिणय"[3] प्रकाशित हुआ, जिसमें अनेक आश्चर्यपूर्ण घटनाओं का उल्लेख है। इसमें प्रणयिनी के प्रेमी महल पर कमन्द लगा कर भी चढ़ते हुए दिखाई देते हैं, पर यह उपन्यास पूर्णरूपेण सुखान्त है। उसके बाद "सुख शर्वरी" सम्वत् १९४९ में प्रकाशित हुआ। यद्यपि कहा जाता है कि इस उपन्यास का मूल रूप बंगला का उपन्यास है और इनका दूसरा उपन्यास "इन्दिरा" भी बंकिमचन्द्र चटर्जी के बंगला उपन्यास के आधार पर है, पर गोस्वामीजी की अनुवाद की ओर विशेष प्रवृत्ति नहीं थी। उनके सारे उपन्यास उनकी अपनी कल्पनाओं की उपज हैं, यद्यपि सूत्र बंगला से मिल गया है, फिर भी गोस्वामीजी कल्पना के इतने धनी थे कि एक के बाद एक मौलिक उपन्यास लिखते रहे, जो उनकी मौलिक प्रतिभा के परिचायक हैं। "हृदय हारिणी" और "लवंगलता" उपन्यास यद्यपि सन् १८९० में प्रकाशित हुए, पर उसका प्रकाशन-काल अभी भी संदिग्ध है।

सन् १९०१ में इनका प्रसिद्ध उपन्यास "कुसुम कुमारी" छपा, उसके बाद उसी वर्ष "लीलावती" निकला। उसके बाद सन् १९०२ में "राजकुमारी" और "तारा" उपन्यास के दोनों भाग प्रकाशित हुए।

---

१ शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ८०।
२. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५२।
३ बाबू श्यामसुन्दरदास के "हिन्दी कोविद रत्नमाला—सचित्र" में "प्रणयिनी परिणय" को गोस्वामीजी का हिन्दी में पहले-पहल रचा उपन्यास माना है। (सन् १९१४ का संस्करण), पृ० १११।

सन् १६०३ मे "कनक कुसुम" और "चपला" के चार भाग रचे गये। "चपला" उपन्यास ने हिन्दी जगत के सामने एक अनोखा तूफान सा ला दिया, घर घर में व साहित्य-समाज मे इसकी विशद चर्चा हुई। गोस्वामीजी ने सन् १६०५ मे "चन्द्रावती", "हीराबाई" और "चन्द्रिका" नामक उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये। इनके जीवन की सबसे बडी विशेषता यह थी कि ये स्वय ही लेखक थे और 'सुदर्शन प्रेस', वृन्दावन स स्वयं ही प्रकाशक का काय करते थे। इनका तिलस्मी उपन्यास "कटे मूड की दो दो बातें" सन् १६०५ मे बनारस मे प्रकाशित हुआ। उसके बाद "मल्लिका देवी" नामक प्रसिद्ध रचना भी वहीं से छपी।

सन् १६०६ म "इन्दुमती" अथवा "वन विहगिनी", 'तरुण तपस्विनी' अथवा "कुटीर तपस्विनी" दोनो आदर्श उद्देश्यपूर्ण रचनाएँ सामने आई। इतना ही नही, जासूसी और तिलस्मी अन्य दा उपन्यास 'याकूती तख्ती या यमज महोदर", "जिन्दे की लाश" दोनो उपन्यास सन् १६०६ मे प्रकाशित हुए। उसके बाद इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लखनऊ की कब्र" आठ भाग म सन् १६०३ १६०७ तक प्रकाशित होता रहा। (आठवें भाग का अन्त देखने म ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी नवाँ भाग भी लिखना चाहते थे। एक ओर इस उपन्यास मे ऐतिहासिक घटनाओ का समावेश है तो दूसरी ओर अनोखी रहस्यपूर्ण तिलस्मी करामातें हैं। इस उपन्यास का आकार भी विशाल है, पर कहीं भी पाठकों को विरक्ति नही उत्पन्न हो पाती है। उसके बाद सन् १६०७ म 'पुनर्जन्म" या "सौतिया डाह" प्रकाशित हुआ। सन् १६०६ और सन् १६१० के बीच 'माधवी माधव" के दानों भाग वृन्दावन से छप कर निकले। यहाँ तक आते-आते इनक उपन्यासो ने हिन्दी साहित्य-जगत में अपना स्थान बना लिया था, पर गोस्वामीजी का लखन-कार्य अपनी द्रुत गति पर अब भी चल रहा था। इनकी लेखनी म अपार चमत्कार था, जिससे "सोना, सुगन्ध और पन्नाबाई" नामक उपन्यास के प्रथम और द्वितीय भाग दोनों ही सन् १६१० और सन् १६१२ के बीच छप कर तैयार हो गये। उसके बाद "लाल कुँवर" अथवा "शाही महल" दूसरा उपन्यास सन् १६१३ मे छपा। "रजिया बेगम" भी सन् १६१५ मे वृन्दावन से प्रकाशित हुआ तथा "अँगूठी का नगीना" सन् १६१८ में प्रकाशित हो गया। "गुप्त गोदना" जैसा प्रसिद्ध तिलस्मी और जासूसी उपन्यास गोस्वामीजी ने लिखा, पर जिसका प्रकाशन इनके पुत्र छबीलेलाल गोस्वामी ने मथुरा से सन् १६२३ में किया। इस समय प्रेमचन्द जैसे महान् उपन्यास-सम्राट् का उदय हो चुका था। "सेवासदन" जैसा प्रसिद्ध उपन्यास सन् १६१८ में, "सूरदास" सन् १६२० में और "प्रेमाश्रम" सन् १६२२ में प्रकाशित हो चुके थे। कहानी के क्षेत्र में तो प्रेमचन्दजी अपना घर कर ही चुके थे। "बड़े घर की बेटी" ने उनकी ख्याति चारों ओर फैला दी थी, पर गोस्वामीजी के कार्य में कोई अन्तर नहीं आने पाया। गोस्वामीजी के उपन्यासों के विषय में

शिवनारायण श्रीवास्तव का कथन पूर्णत सत्य है : "उनके उपन्यास जासूसी-तिलस्मी उपन्यासो और स्वर्गीय प्रेमचन्दजी के सामाजिक उपन्यासो के बीच की कडी हैं। चरित्र-चित्रण की ओर थोडा उत्साह दिखाकर नवीन उत्थान के लिए उन्होंने भूमि को उर्वर बनाया।"[1] 'उपन्यास-भण्डार' को भरने का गोस्वामीजी ने अपूर्व परिश्रम किया है। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने कहा है: "हिन्दी मे स्कॉट (Walter Scott) की शैली पर उपन्यास लिखने वालों में किशोरीलाल गोस्वामी का पहला स्थान है।"[2] जिस मौलिक प्रतिभा का गोस्वामीजी ने परिचय दिया है, भावी पीढी के लिए वही मार्ग-प्रदर्शिका बन गयी। अंग्रेजी साहित्य मे स्कॉट का जन्म उस समय हुआ था, जब उपन्यास साहित्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा ही नहीं थी। उस समय स्कॉट के उपन्यासों को पढने के लिए लोग उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करते थे। इनके "वैवरली उपन्यासों" ने अंग्रेजी उपन्यास-जगत में एक नवीन दिशा बताई थी। गोस्वामीजी के समान स्कॉट भी उपन्यास लेखक थे। वाल्टर स्कॉट भी अपनी मुद्रित रचनाओं का स्वयं ही प्रकाशन करते थे। दोनों की आय का साधन उपन्यासों की बिक्री थी और इस विक्रय-क्षेत्र को भी इन्हें स्वयं ही देखना पडा है, पर गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासो से बहुत धन कमाया। इनके उपन्यास युग की माँग थी। स्कॉट और गोस्वामीजी एक समान रोमांटिक थे। "इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" के बीसवें खण्ड में स्कॉट के बारे मे लिखा गया है : "इन्हें अत्यधिक परिश्रम करना पडता था क्योंकि हमेशा दुगना कार्य भार उठाना पडा। मुन्शी और उच्च सामन्त, कवि और उपन्यास-कार—लेखक, प्रकाशक और मुद्रक—इन सब कार्यों ने शीघ्र ही स्कॉट की सेहत को नष्ट कर दिया।"[3]

स्कॉट के समय मौखिक रूप से कथा कहने वालों की संख्या ही अधिक थी। लिखित उपन्यास साहित्य नगण्य सा था। गोस्वामीजी को भी उपन्यास में सामाजिक क्षेत्र शून्य मिला। मौखिक तथा लिखित जो कथा-आख्यान प्रचलित थे, उनमें हीं गोस्वामीजी को अपने उपन्यासों के बीज खोजने पडे। उनको भी उपन्यासों का कोई प्राचीन आदर्श प्राप्त नहीं हुआ। उन्हें स्वयं आधार खोजना पडा व अपने उपन्यासो की सामग्री जुटानी पडी। प्राचीन उपन्यासों के विषय में कहा जाता है कि उनमे शिल्प-विधान का अभाव था अथवा उनका रूप विदेशी है, पर ध्यान से देखने से ज्ञात हो

१ शिवनारायण श्रीवास्तव · "हिन्दी उपन्यास", पृ० ७७।
२. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० १८०।
3. *Encyclopaedia Britannica* (1768 Ed.), Vol. 20, p 181.
'The immense strain of this double or quadruple life as sheriff and clerk, hospitable lavied poet, novelist and miscellaneous man of letters, publisher and printer, though the prosperous excitement sustained him for a time, soon told upon his health"

—Sir Walter Scott (1771-1832).

जाता है कि इन उपन्यासा की परम्परा सूफी कवियो की रचनाओं के समान ही है। सूर्यकान्त शास्त्री ने कहा है - "कथाओं को जो रूपरेखा आदिकाल के उपन्यासों में लक्षित होती है, एक नायक, एक नायिका, नायिका के प्रति नायक का अटल प्रेम, प्रेम की बाधा, प्रेम-पात्र की प्राप्ति का प्रयत्न, बाधाओं का परिहार और मिलन, सक्षेप म यही ढाँचा आदिकाल के उपन्यासो में अपनाया गया।"[1]

गोस्वामीजी के उपन्यासों में भी प्रम की प्रखण्ड सरिता बह रही है। गोस्वामीजी रसिक तबियत क लेखक थे। पण्डित विश्वनाथ मुखर्जी ने गोस्वामीजी की रसिकता के विषय म कहा है : "हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक किशोरीलाल गोस्वामी महाराज भी यही किया करते थे और फक्कड साव को भाँति आप भी गाली देने वाले को ऊपर बुलाकर माफी माँगते और नये वस्त्र पहिनाकर उसे विदा कर देते थे।"[2] उन्होंने ऐयारी, सामाजिक, ऐतिहासिक सब प्रकार के उपन्यास लिखे, जिन सबके मूल में कोई न कोई स्त्री प्रेरक है, चाहे वह चपला हो, चाहे मस्तानी, लावण्यमयी या प्रेममयी अथवा कोई कुलटा हो। गोस्वामीजी की उपन्यास-कला मे वह नूतन शक्ति थी, जिससे उनके द्वारा सृजित साहित्य ने समाज-सेवा का ठोस कार्य किया। धर्म और सस्कृति एव नर और नारियों के अनुपम आदर्शों की स्थापना का कार्य गोस्वामीजी के ही हाथो होना था, अत यत्र-तत्र उपदेशामृत की पावन धारा भी प्रवाहित होती रही है। इनके उपन्यास पात्र-प्रधान और घटना प्रधान दोनो ही प्रकार के थे, जिन्होंने जन-जीवन के निकट पहुँचकर मनोरजन किया। स्कॉट की शैली पर लिखे गये गोस्वामीजी के उपन्यासा ने हिन्दी साहित्य मे अपना घर कर लिया। उनके उपन्यासा की कथावस्तु ने जन-साधारण को मोह लिया था। चाहे ऐतिहासिक उपन्यास हो अथवा सामाजिक, उनमें लेखक ने रोमाचकारी घटनाएँ तथा लौकिक प्रेम की सृष्टि की है। सुन्दर से सुन्दर चित्त को मोहने वाले दृश्य-वर्णन हैं। वस्तु-वर्णन के साथ ही साथ चरित्र चित्रण को भी चेष्टा की गयी है। गोस्वामीजी को समाज, उसके कार्य-व्यापारा, भले और बुरे, दोनों प्रकार का अनुभव था, इसलिए उनके उपन्यासों मे नग्न यथार्थवादी कार्य कलापो तथा घटनाओं के सजीव साकार चित्र मिलते हैं। इनक उपन्यासो में वर्णित प्रेम का स्वरूप शुद्ध तथा सात्विकता से परे लौकिकता के रग मे डूबा हुआ है। उनके उपन्यासों मे कथोपकथन सरल, सहज तथा स्वाभाविक है। "बनारस" में अधिक समय तक रहने के कारण बातचीत में बनारसीपन स्पष्ट झलकता है। पात्रों की बातों में तीव्र वक्रता है, चटपटापन है। हँसी-विनोद की पर्याप्त मात्रा है। गोस्वामीजी को उपन्यासकार के क्षेत्र का पूर्ण ज्ञान था, इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासों को रचना के समय भी इतिहासकार के समान उन्होने शुष्कता तथा नीरसता नहीं आने दो है। इतिहास में केवल घटनाएँ,

१. आचार्य सूर्यकान्त शास्त्री : "साहित्य मीमांसा", पृ० २८२।
२. प० विश्वनाथ मुखर्जी : "बना रहे बनारस", "बनारसी रईस", पृ० ६५।

पात्र तथा समय का यथावत् चित्रण होता है, पर उपन्यास में इस कटु सत्यता को कम ही स्थान उपादेय है। गोस्वामीजी पूर्ण साहित्यकार थे। वे जानते थे कि "उपन्यास" का मूल उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना है, उनके जीवन में रस और रोचकता लाना है, अतः गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्र भी सजीव, चलते-फिरते और सांसारिक सुख-दुखों में भाग लेते हुए दिखाई देते हैं। उनकी बोल-चाल, उनका खान-पान, वेश भूषा, रहन-सहन आदि सारे कार्य व्यापार सभी उस समय की सामाजिक परम्पराओं और मान्यताओं के अनुकूल हैं। युगीन सामाजिक व्यवस्था को उपन्यासों का मूल आधार बना कर ही गोस्वामीजी ने अपनी रचनाओं का निर्माण किया है। संस्कृत और पाली के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ ही साथ गोस्वामीजी का उर्दू तथा फारसी पर भी उच्चकोटि का अधिकार था। उनकी भाषा में सजीवता, सरसता तथा निखार रहता था। कहीं-कहीं हास्य का पुट देने के लिए उर्दू-फारसी के शब्दों को असीम भरमार कर दी है। आचार्य शुक्लजी ने लिखा है : "गोस्वामीजी संस्कृत के अच्छे जानकार, साहित्य के ममज्ञ और हिन्दी के पुराने कवि और रसक थे।"[1]

दूसरे स्थान पर शुक्लजी ने ही और भी लिखा है

'वह है उनका भाषा के साथ मजाक। कुछ दिन पीछे इन्हें उर्दू लिखने का शौक हुआ। उर्दू भी ऐसी-वैसी नहीं, उर्दू-ए मुअल्ला। इस शौक के कुछ आगे पीछे उन्होंने राजा शिवप्रसाद का जीवनचरित्र लिखा, जो 'सरस्वती' के आरम्भ के तीन अंकों (भाग १, संख्या २,३,४) में निकला।'[2]

जिस प्रकार मानव जीवन का क्रम शाश्वत है, उसके मनोवेगों का उत्थान-पतन सहज तथा स्वाभाविक है। प्रेम घटनाओं की सृष्टि भी सहज तथा शाश्वत है। दो मनुष्यों में प्रेम होना, बाधाओं का आना तथा अन्त में दोनों का मिलन उसका सुखान्त स्वरूप है। यह शाश्वत मानव-जीवन का आधार है। अतः हिन्दी का उपन्यास साहित्य का क्षेत्र संकुचित न होकर अत्यन्त विशाल है, जिसमें सब प्रवृत्तियाँ और सब मान्यताएँ पूर्ण समाहित हो जाती हैं। भारतीय संस्कृति में जीवन का अन्त सुखान्त माना गया है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में इसलिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इत्यादि चारों अवस्थाओं की अनुकूल व्यवस्था है। प्रत्येक पात्र दुःख-सुख में प्रायश्चित करके अथवा पुण्य में भाग लेकर स्वर्गवासी होता है। उनके उपन्यासों का मूल रूप प्रेम-गाथाएँ हैं। ये प्रेम-आख्यान ही उनके उपन्यासों के आधार-पृष्ठ हैं। इसने ही उनके उपन्यासों में तिलस्मी तथा ऐयारी घटनाओं को जन्म दिया है। गोस्वामीजी ने पूर्व-प्रेमचन्द युग की जिन सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जन-रुचियों के चित्र उपस्थित किये हैं, वे उनकी मौलिकता तथा प्रगतिशीलता के परिचायक हैं।

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५२।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५२।

डॉ० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है "इन उपन्यासों की सफलता के कारण लेखकों को बड़ा प्रोत्साहन मिला और वे पौराणिक कथाओं, ऐतिहासिक घटनाओं, मौलिक कथाओं, किम्वदन्तियों तथा घर, समाज और उनके पारिपार्श्विक उपकरणों को लेकर नाटक के रूप में उपन्यास की रचना करने लगे।"[1]

गोस्वामीजी के उपन्यासों में एक ओर रीतिकालीन मान्यताओं के चित्र हैं तथा दूसरी ओर भौतिक जीवन के चित्र हैं। किशोरीलाल गोस्वामी ने सबसे पहले हिन्दी उपन्यासों में नाटकीय कला के विविध गुणों को सफल आरोपित किया है। उनके प्रसिद्ध नाटकीय उपन्यास "कुसुम कुमारी" की रचना सबसे पहले सन् १८८९ में हो चुकी थी, जिसकी सम्पूर्ण प्रेरणा उन्हें रीति कवियों से मिली है। इस उपन्यास की मूल पृष्ठ भूमि नायिका-भेद का विषय-सूत्र है। वे स्वयं भी उसी परम्परा के कवि और प्रकाण्ड पण्डित थे तथा रीति साहित्य के ज्ञाता होने के बाद ही उन्होंने अपने उपन्यास की आधार-भूमि निश्चित की थी। उन्होंने "कुसुम कुमारी", "तारा", "अँगूठी का नगीना", "माधवी माधव" इत्यादि उपन्यासों में जिस प्रेम-कहानी का निर्माण किया है, उसको पढ़कर संस्कृत के हर्ष और राजशेखर के प्रेम नाटकों का स्मरण सहज में ही हो जाता है।

हिन्दी उपन्यासों की उत्पत्ति का मूल कारण मानव-मन का मनोरंजन रहा है। सन् १८५७ की राज्य-क्रान्ति के पश्चात् जनता में थोड़ी सी जागृति हुई थी। यद्यपि अभी भी व्यावसायिक रूप से आधी से अधिक जनसंख्या या तो छोटी मोटी नौकरी में लगी हुई थी या मेहनत मजदूरी करके अथवा छोटी सी दुकान या खेती से अपना पेट पालती थी। समाज के दो वर्ग स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे—एक तो वह वर्ग, जिसमें बड़े बड़े सामान्त, जमींदार अपनी अपार धन सम्पत्ति के बल पर सुखी तथा विलासी जीवन व्यतीत कर रहे थे, जिन्हें देख कर भारतेन्दु बाबू को कहना ही पड़ा—

"अँग्रेज राज सबै सुख साज प्रजा सुखारी
पै धनि विदेश चलि जात हम यही ख्वारी।"

यह उनके हृदय की अपार वेदना थी। दूसरा वह निम्न वर्ग था, जो अपने स्वामी धनवान अधिपतियों की सेवा में ही जीवन यापन कर देना अपना सौभाग्य समझते थे। इस गदर ने जनता को जागरूक तो अवश्य कर दिया, विदेशी शासन और सत्ता के लिए आग की चिन्गारी डाल दी, पर समाज के आन्तरिक चोर अभी भी छिपे रहे। उच्च और निम्न वर्गों भेद ने समाज में राग रंग का बीज बोया। समाज में विलासिता ने सुषुप्तावस्था ला दी और इसलिए इस युग के उपन्यासकारों का मूल उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना रहा है और साथ ही साथ जीवन के यथार्थ अंगों को प्रकाश में लाना था।

---

१ श्रीकृष्णलाल : "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास", पृ० २७८।

डॉ० श्रीकृष्णलाल ने कहा है : "कथानक उनका पूर्णतया लौकिक होता था, उनमें मानवीय भावनाओं, साहित्यिक छटा और उच्च विचारों तथा चरित्रों का एकान्त अभाव था, केवल कल्पना की जादूगरी और कथा की विचित्रता होती थी। उनमें बालक की भाँति पाठकों को सभी बातें मान लेनी पड़ती थीं, मरे हुए मनुष्य भी जीवित हो जाते थे।"[1]

हिन्दू पाठका का मस्तिष्क, जो निरन्तर पौराणिक और धार्मिक कथाएँ सुनता रहता था, किसी भी प्रकार के अन्धविश्वास को सहज में ही ग्रहण करने को तैयार रहता था। उन्हें अब नई कथावस्तु, जिसमें लौकिक रूप था, पढ़ने को मिली, जिससे उनकी जिज्ञासा को तुष्टि मिली। उपन्यासों की लोकप्रियता दिन पर दिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बढ़ने लगी, जिसका मूल कारण था—देश में धर्म-प्रचारकों, समाज सुधारकों और मिशनरियों के कार्य असीम हो जाना। सनातनी तथा आर्य-समाजियों ने नाना प्रकार के कथा-वार्त्ता के साधन अपने धर्म-प्रचार के लिए खोज डालें। उपन्यासों में उपदेशों की भरमार हो गयी। लेखकों को समाज-सुधार का मूल मार्ग उपन्यासों में मिला। उदाहरण के लिए, भाई भाई का झगड़ा, सम्पत्ति का बँटवारा, स्त्रियों की दासता, बाल-विवाह, विधवा के प्रति अत्याचार, जाति भेद, ऊँच-नीच की समस्या, दहेज, भ्रूण-हत्याएँ, अस्पृश्यता इत्यादि सैकड़ों प्रकार की कुरीतियाँ हिन्दू समाज में राजरोग के कीटाणुओं के समान घर किये हुए थे। अतः उपन्यास-कारों को अपनी रचनाओं के लिए अनेक विषय-सूत्र मिले, जिनके द्वारा उन्होंने साहित्य का निर्माण किया। सामाजिक और धार्मिक उन्नति के लिए उपन्यासों की रचना हुई। गोस्वामीजी ने जितने उपन्यास रचे हैं, आज तक हिन्दी साहित्य में कोई अन्य लेखक इतने उपन्यास नहीं लिख पाया है। उन्होंने विषय-वस्तु की दृष्टि से भावी पीढ़ी के उपन्यास-लेखकों का मार्ग प्रशस्त किया। नवीन युग के निर्माण की रूपरेखा गोस्वामीजी ने डाली, जिसका श्रेय उनके सामाजिक उपन्यासों को है। प्रसिद्ध समीक्षक, जनार्दन झा "द्विज" ने गोस्वामीजी की आलोचना करते हुए लिखा . 'उनकी रचना में साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव नहीं है, किन्तु वह सौन्दर्य कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक चटकीला और कुप्रभावोत्पादक हो गया है। उनके रस सञ्चार की प्रणाली कुछ-कुछ असात्विक भावों और दृश्यों को भी अपने साथ रखती हुई सी दिख पड़ती है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने मौलिकता के नाते हिन्दी के इस क्षेत्र में बड़ी मुस्तैदी से काम किया और उनमें उपन्यासकार होने की सच्ची क्षमता थी। यह दूसरी बात है कि इस क्षमता को वे बहुत अच्छे ढंग से और बहुत अच्छी रुचि के साथ काम में न ला सके।"[2]

---

१. डॉ० श्रीकृष्णलाल : "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास", पृ० २८६।
२. जनार्दन झा 'द्विज' : "प्रेमचन्द की उपन्यास-कला", पृ० ८।

गोस्वामीजी के उपन्यास चाहे सामाजिक हों, चाहे ऐतिहासिक पर सबका मूल रूप प्रेमाख्यान था, जहाँ पर प्रेमी और प्रेमिकाओं के हाव-भाव, सयोग-वियोग का सुन्दर और विस्तृत वर्णन मिलता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की नायिकाओं के चरित्र, भाव, सकेत, कथन, तथा उनकी भाव-भगिमाओ ने उनके उपन्यासो में एक अनोखी मोहकता ला दी है।

विजयशंकर मल्ल ने गोस्वामीजी की प्रशंसा में लिखा है : "प्रेमचन्द के पूर्व एक ऐसे उपन्यास-लेखक हिन्दी में आये, जिन्होने अपने युग की समस्त औपन्यासिक प्रवृत्तियो का स्वायत्त कर लिया था और जीवनादर्श एव रचना-विधि-सम्बन्धी नई और पुरानी प्रवृत्तियो को अपने ढग से समन्वित करने की चेष्टा की थी।"[1]

गोस्वामीजी अपने स्वभाव से रसिक तथा कट्टर सनातनी वैष्णव थे। दैनिक पाठ-पूजा, उपासना, मन्दिर की सेवा, कीर्तन, वार-त्योहार, उपवास-व्रत, कथा-वार्त्ता इत्यादि सब क्रियाओ में इनका अटूट विश्वास था। उपन्यासो की परम्परा संस्कृत गद्य-काव्य "कादम्बरी", "वासवदत्ता", "दशकुमार चरित" इत्यादि महा-काव्यो से जोडते थे, इसका उल्लेख गोस्वामीजी ने अपनी रचना "प्रणयिनी परिणय" में स्वयं किया है।

"जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अगों मे से 'नाटक' का प्रचार प्रथम यहाँ *हुआ था, उसी तरह 'उपन्यास' की सृष्टि भी प्रथम यहीं हुई थी, यह बात अयोक्तिक* नहीं है। किसी-किसी महाशय का यह कथन है कि उपन्यास पूर्व समय में यहाँ प्रचलित नहीं था, वरन् अंग्रेजों की देखा देखी लोगों ने नोवेल (Novel) शब्द के स्थान मे उपन्यास शब्द की कल्पना कर ली है इत्यादि, परन्तु इन महाशयों को प्रथम इसकी मीमासा कर लेनी चाहिए क्योंकि उपन्यास 'उप-नी' उपसर्गपूर्वक 'आस' धातु से बना है, यथा (उप) समीप (नी) न्यास (आस) रखना अर्थात् इसको रखना अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक हो एव इसकी कथा कुछ छिपी हुई, क्रमशः समाप्ति म परिस्फुटित हो। अमरकार का भी "उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्", अर्थात् "वाङ्मुखी वाचा" यह अर्थ उपन्यास के तात्पर्य से ही घटता है, इत्यादि प्रमाणो से उपन्यास भी प्राचीन काल मे भारतवर्ष में प्रचलित है और दशकुमार चरित, वासवदत्ता श्रीहर्षचरित, कादम्बरी, भोजराज, विक्रमादित्य आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता के जाज्वल्यमान प्रमाण हैं।"[2]

गोस्वामीजी ने स्वय इस उपन्यास को अपनी प्रथम रचना माना है। इतना ही नहीं, 'उपन्यास' को गोस्वामीजी 'प्रेम का विज्ञान' मानते थे, जैसा उन्होंने "सुखशर्वरी" उपन्यास के निदर्शन में स्वय लिखा है :

---

१. विजयशंकर मल्ल : "आलोचना उपन्यास अक",
उदयकाल—प्रेमचन्द के आगमन तक, पृ० ७३।

२. गोस्वामी किशोरीलाल : "प्रणयिनी परिणय" के प्रथम संस्करण की भूमिका।

"प्रेम और प्रेम-तत्व को सभी चाहते हैं, पर इसका उपाय बहुत कम लोग जानते होंगे। प्रेमिक प्रेम पाने के लिए व्याकुल तो होते हैं, सभी अपने लिए दूसरे को पागल करना चाहते हैं पर अभी तक इसका उपाय बहुतों ने नहीं जाना है। इसका अभाव केवल उपन्यास ही दूर करता है, इसीलिए प्राचीनतम कवियों ने और साम्प्रतिक यूरोपीय कवियों ने उपन्यास की सृष्टि की, जो बात झूठ सच से नहीं होती, तन्त्र मन्त्र यन्त्र से नहीं बनती, वह प्रेम के विज्ञान 'उपन्यास' से सिद्ध होती है। इसके पढने से मनुष्य के हृदय के ऊपर बडा असर होता है और सब बात बनती है।"[1]

आगे गोस्वामीजी ने स्वयं और भी लिखा है :

"इसमें प्रेम की प्रबलता, प्रणय की उन्मत्तता, चाह की महत्ता, यौवन का पूर्ण विकास, लालसा का प्रबल प्रवाह, कामना का वेग, रस की तरग, प्रीति की लहरी सभी कुछ रहते हैं, इसीलिए कवियों ने साहित्य-श्रेणी में उपन्यास को श्रेष्ठ गद्दी दी है।"[2]

गोस्वामीजी की सारी रचनाएँ अधिकांश रूप से सुखान्त हैं। यदि कहीं-कहीं दुख की मात्रा अधिक बढ गयी है तो लेखक ने सनातनी होने के नाते उसे मनुष्य का कर्मफल माना है। एक जन्म के पाप का फल मनुष्य को दूसरे जन्म में भी भोगना पडता है। गोस्वामीजी ने "कुसुम कुमारी" या "स्वर्गीय कुसुम" में लिखा है "कुसुम मर गयी, पागल बसन्त (उसका प्रेमी) भी मर गया, उन दोनों के मरने पर (बसन्त की पत्नी) गुलाब ने भी अपनी जान देकर अपने पाप अर्थात् सपत्नी-वध और पति हत्या का प्रायश्चित कर डाला। (पर) हा खेद! भला हम आपसे यह पूछते हैं कि कुसुम या बसन्त ने धर्म कर्म, समाज, लोक, परलोक, देश, विदेश या किसी वियोगान्त प्रेमी विशेष का क्या बिगाडा है कि ये दोनों या ससार से निकाल कर बाहर किये जायँ और जिन अर्थ पिशाच नर-राक्षसों से धर्म, कर्म, ससार, समाज, देश, विदेश और व्यक्ति विशेष का सत्यानाश हो रहा है, वे दुराचारी लोग मूछों पर ताव फेरते हुए *मार्कण्डेय बनकर दीर्घजीवी हों ?* हा, धिक्!!!"[3]

गोस्वामीजी अपने उपन्यासों में भिन्न भिन्न प्रकार का विवरण उपस्थित करते हैं। उन्होंने उस समय के जीवन और समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है, इसलिए कहीं-कहीं पर नग्नता भी समाविष्ट हो गयी है। अपनी रचनाओं में कथोपकथन को यथा-आवश्यक स्थान दिया है, जिससे सरसता और मनोहरता आ गयी है। इतना ही नहीं, चरित्र चित्रण करने के कथोपकथनों से अपूर्व सहायता मिलती है। नायक-नायिकाओं का स्वभाव तथा उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का पता कथोपकथनों से चलता है। सब प्रकार के पात्र इनकी रचनाओं में पाये हैं। प्रथम, उस

१ गोस्वामी किशोरीलाल : "सुखशर्वरी" के निवेदन से उद्धृत।
२. गोस्वामी किशोरीलाल : "उपन्यास सुखशर्वरी" के निवेदन से उद्धृत।
३. वहीं- "स्वर्गीय कुसुम या कुसुम कुमारी" का 'एक प्रश्न' शीर्षक, पचासवाँ परिच्छेद।

श्रेणी के पात्र हैं, जो पुण्यात्मा तथा देवतास्वरूप हैं, जिनका जीवन दूसरों की भलाई तथा सहायता-कार्य के लिए हुआ है, जो दूसरों को सुखी करके स्वयं बाद में सुख की चिन्ता करते हैं, परोपकारी जीवन है तथा कर्त्तव्यनिष्ठ है। प्रतिज्ञा को प्राण देकर भी पूरी करना अपना जीवन का मूल उद्देश्य समझते हैं। दूसरे उस श्रेणी के पात्र हैं, जो मानवीय निर्बलताओं के साथ जीवन-पथ में चलते रहते हैं। उनमें गुण भी हैं, भलाई की प्रवृत्ति भी है तथा बुराई करने का स्वभाव भी है, जो कभी स्वार्थ की भावना से प्रेरित होकर अपने सुखों मे डूब जाते हैं और नशा उतरने पर उनमे मानवता परिलक्षित होने लगती है।

तीसरी श्रेणी के वे पात्र हैं, जो दुष्ट तथा राक्षसी प्रवृत्ति वाले हैं, जिनका मूल लक्ष्य दूसरों को दुखी करना और कष्ट देना रहता है। गोस्वामीजी ने इस श्रेणी में मुसलमान (मलेच्छ) पात्रों को ग्रहण किया है। उनकी दृष्टि में जो हिन्दू नहीं हैं, वे आसुरी प्रवृत्तियों से पराभूत रहते हैं। मुसलमानों के दुष्ट कार्यों का गोस्वामीजी ने बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया है।

गोस्वामीजी ने सब प्रकार के उपन्यास लिखे हैं- ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी, पारिवारिक और सामाजिक, पर सब में उनका रोमानीपन पूर्णरूप से परिलक्षित होता है। रोमानी आख्यान उनके उपन्यासों का मूल धरातल है। भले ही आधुनिक युग के आलोचक उनके उपन्यासों में मूल खोजते रहें, उनके उपन्यासों को ऐतिहासिक न मानें, पर उन्होंने तो समीक्षकों की इस भूल का स्वयं ही निवारण कर डाला है कि शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लिखना उनके जीवन का लक्ष्य कभी नहीं रहा है।

"तारा" की भूमिका मे उन्होंने स्वयं लिखा है "हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को गौण और कल्पना को मुख्य रखा है और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार भी कर दिया है। इसलिए हमारे उपन्यास के प्रेमी पाठक हमारे अभिप्राय को भलीभाँति समझ लें कि यह उपन्यास है, इतिहास नहीं और इसमे आर्यों के यथार्थ गौरव का गुण-कीर्तन है। इसलिए इसे लोग इतिहास न समझें और इसकी सम्पूर्ण घटना को इतिहासों मे खोजने का उद्योग भी न करें।"[1]

इनके उपन्यासों मे धारावाहिकता है तथा कथा मे क्रमबद्धता है। घटनाओं मे गति है, इसलिए कथावस्तु का सफल चित्रण हुआ है। पण्डित होने के कारण वस्तु-वर्णन के साथ ही साथ इनमें उपदेश देने की प्रवृत्ति पाई जाती है, पात्रों के विषय में वर्णन के बीच-बीच मे अपनी विचारधारा वे प्रकट करते चलते हैं और उनका मार्गदर्शन करते चलते हैं। वे उनको नैतिक उपदेश प्रदान करते रहते हैं। वे साहित्यकार के कर्त्तव्य से पूर्ण परिचित थे जिसे उन्होंने अपनी रचनाओं मे निभाया है।

---

१. गोस्वामी किशोरीलाल : "तारा", प्रथम भाग की भूमिका से उद्धृत।

गोस्वामीजी ने एक ओर हिन्दी जगत में उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में अपना उच्चतम स्थान बनाया, दूसरी ओर, वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के इक्कीसवें अधिवेशन के विद्वान् सभापति भी रहे, जिसका समारोह झाँसी (उत्तर प्रदेश) में २८ दिसम्बर सन् १९३१ में हुआ था। उनका अध्यक्षीय भाषण पाण्डित्य-पूर्ण है, जो ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों की प्रतिभा का परिचायक है। उनके गद्य और पद्य दोनों के अध्ययन और प्रकाण्ड ज्ञान का आभास मिलता है। संस्कृत की तत्सम पदावली और अलंकारयुक्त शैली के दर्शन होते हैं। उनका काव्य-प्रेम भाषण के प्रथम छन्द से ही प्रकट होता है—

"साहित्य-संगीत कला निधानम्,
वेणु सदा वामकरे दधानम्।
गो-गोप-गोपी जन सन्निधानम्,
वन्दे ब्रजेन्दु विबुध प्रधानम्।"[1]

सम्पूर्ण भाषण की भाषा प्रभावोत्पादक तथा भारतेन्दु हिन्दी की परिचायक है। केवल हिन्दी भाषा ही नहीं, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का उच्चकोटि का ज्ञान गोस्वामीजी को था। अंग्रेजी साहित्य के प्रमुख कवि की पंक्तियाँ उन्होंने उद्धृत की हैं:

"Thou art love and life, O Come ?
Make once more my heart thy home" — Shelley.

इसका हिन्दी अनुवाद भी गोस्वामीजी ने अपने भाषण में किया:

"आजा, तू, प्रेम अरु प्राण मोरि!
निज करिय गेह या हिय बहोरि!" —शैली

गोस्वामीजी का भाषण कला का पूरा अनुभव था। मथुरा और वृन्दावन में दाऊजी, बलदाऊजी और द्वारिकाधीश के मन्दिरों में आयोजित कथा-वार्त्ताओं में वे सदैव प्रमुख भाग लिया करते थे। स्वयं विषय का प्रारम्भ करते थे, उस पर चर्चा करते थे और धार्मिक प्रवचनों का आयोजन करते थे। अपने भाषण के प्रारम्भ में हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डाला करते थे। आपने हिन्दी प्रेमियों को सावधान किया है कि उन्हें भाषा के ऐतिहासिक क्रम विकास का अनुसन्धान करके व्यर्थ के झगड़ों में नहीं पड़ना है।

गोस्वामीजी के राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि के विषय में उनके विचार देखिये:

"जिस देश के इतिहास, धर्म-ग्रन्थ, गणित, भूगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण, दर्शन, स्मृति, पुराण, नाटक, प्रहसन, काव्य और महाकाव्य आदि ग्रन्थ जिस भाषा और लिपि में लिखे जाते हैं, वही भाषा और लिपि उस देश की राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि

---

१. गोस्वामी किशोरीलाल का "अध्यक्षीय भाषण", पृ० १।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इक्कीसवाँ अधिवेशन।

मानी जाती है। युग-युगान्तर से इस देश मे जो लिपि और भाषा गृहीत थी और आज भी जिसके द्वारा इस देश का जीवन-संचार हो रहा है, उस संस्कृत भाषा और देवनागरी *लिपि की वैज्ञानिकता के सम्मुख अब भी भूमण्डल को नतमस्तक होने के लिए बाध्य* होना पडता है। वही संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि सहस्त्रो धाराओं मे प्रवाहित होती हुई हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के रूप में आज आपके सामने उपस्थित है।"[1]

उसी पृष्ठ पर राष्ट्र भाषा की व्यापकता का दूसरा उदाहरण देखिये :

"महाराष्ट्र, गुजरात, पजाब, बगाल आदि भारत के विभिन्न भागो मे राष्ट्र-भाषा हिन्दी और राष्ट्र-लिपि नागरी मे जो भिन्नता प्रतीत होती है, वास्तव में वह भिन्नता नही है क्योंकि ये सभी संस्कृतमूलक हैं, अतएव मराठी, गुजराती, पजाबी, बगला, उडिया सिन्धी आदि भाषाओं को हिन्दी भाषा मानना चाहिए क्योंकि भिन्न भिन्न पात्रो मे अनेक रूप प्रदर्शित होने पर भी जल का वास्तविक गुण और रूप नष्ट नही होता और न घट-मठ आदि अवयवों म आकाश ही छिन्न भिन्न हो सकता है।"[2]

गोस्वामीजी ने संस्कृत को देवभाषा तथा सब भाषाओं की पूर्वज माना है। *संस्कृत सबकी जन्मदात्री माँ है। गोस्वामीजी को भाषा-विज्ञान और हिन्दी साहित्य* के इतिहास का अपूर्व ज्ञान था। जो कुछ उन्होंने कहा, वह अनेक वर्षों के चिन्तन, मनन और व्यावहारिक अनुभव का परिणाम था। हिन्दी भाषा के व्याकरण प्रयोग के बारे में गोस्वामीजी न कहा है "हिन्दी भाषा के व्याकरण का प्रश्न समय-समय पर आता रहा है, किन्तु *यह ध्यान मे रखना चाहिए कि हिन्दी भाषा के व्याकरण* बनाने के प्रयत्न अभी असफल होंगे क्योंकि जो भाषा शतसहस्रमुखी होकर समस्त भारत में प्रवाहित हो रही है, वह अभी व्याकरण के बन्धन म बाँधी नहीं जा सकेगी। कारण यह है कि विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में जो वास्तव में हिन्दी म ही हैं, की क्रियाएँ, मुहावरे आदि इसमे सम्मिलित होंगे और जब इसके सभी अवयव मिल जायँगे तब इसके रूप को स्थिर करने के लिए व्याकरण की शृंखला गढी जा सकेगी।"[3]

शब्द-कोष रचना के बारे में गोस्वामीजी का विचारधारा यह थी : "ब्रज-*भाषा के कोश बनाने का विचार होता रहा है*, पर यह भी एक अनोखी सूझ है। हिन्दी भाषा का जो कोश बनाया जाय और उसमें ब्रजभाषा के शब्द न रखे जायँ तो उसे

---

१. गोस्वामी किशोरीलाल का "अध्यक्षीय भाषण" पृ० ४।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इक्कीसवाँ अधिवेशन, झाँसी, २८ दिसम्बर सन् १९३१।

२. गोस्वामी किशोरीलाल का "अध्यक्षीय भाषण," पृ० ४।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इक्कीसवाँ अधिवेशन, झाँसी, २८ दिसम्बर सन् १९३१।

३ गोस्वामी किशोरीलाल का "अध्यक्षीय भाषण", पृ० २०।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इक्कीसवाँ अधिवेशन, झाँसी, २८ दिसम्बर सन् १९३१।

अपूर्ण ही समझना चाहिए क्योंकि ये दोनों एक ही हैं। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि हिन्दी भाषा का कोश सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें बंगला, तामिल, तेलगू, आसामी, उड़िया, अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि सभी भाषाओं के शब्द लिये जायेंगे, जो हिन्दी में आ गये हैं और धीरे-धीरे आ रहे हैं।"[1]

उनके भाषण की धारा-प्रवाहिकता का एक और उदाहरण देखिये: "सच तो यह है कि भूमण्डल के मनुष्य मात्र की भाषा का उद्गम स्थान एक ही है और वह आदि भाषा—देवभाषा—संस्कृत ही है। जैसे "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" होने पर भी "एकमेवा द्वितीय ब्रह्म" ही कहा जाता है। वायु का विशुद्ध लक्षण "अरूप स्पर्शवान है किन्तु शीत, उष्ण, सुगन्धि, दुर्गन्धि आदि के संसर्ग से उसकी एकता और निर्विकारिता नष्ट नहीं होती।"[2]

गोस्वामीजी की मौलिक प्रतिभा का ज्ञान इस भाषण के द्वारा भलीभाँति हो जाता है। सम्मेलन के समस्त कार्य-कलापों में उसकी रचनात्मक प्रवृत्तियों और हिन्दी-प्रचार के कार्यों में गोस्वामीजी की पूर्ण अभिरुचि थी। सम्मेलन के कार्य के लिए वे सदैव परिश्रम करते थे, उसके प्रचार में तन, मन और धन से सहायक थे। समय-समय पर अनेक सुझाव देते रहते थे। सम्मेलन के रचना-विधान और कार्य-कलापों में अपनी अमूल्य सहायता प्रदान करते थे। कर्मठ सदस्य होने के उपरान्त भी उन्हें भगवान जगदीश्वर के प्रसाद पर विश्वास था। किसी भी शुभ कार्य का प्रारम्भ और अन्त ईश-वन्दना से ही करते थे। भाषण का अन्त भी सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के प्रसाद से हुआ—

"सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तुमा, कश्चिद्दुःख भागभवत्।"
"ॐ शान्ति ! शान्ति ! शान्ति।"

जिस समय बंगला साहित्य में बंकिमचन्द्र, शरतचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महारथी उच्चकोटि की रचनाओं के द्वारा उपन्यास साहित्य का भण्डार कूट कूट कर भर रहे थे, उसी समय हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में गोस्वामी किशोरीलाल अपनी अद्भुत लेखनी से नूतन मौलिक उपन्यासों की रचना में संलग्न थे। यज्ञदत्त शर्मा ने गोस्वामीजी के विषय में आक्षेप करते हुए कहा कि उनमें समाज के प्रति विद्रोह करने की शक्ति का अभाव था. "अपने समाज की बुराइयों से गोस्वामीजी पूर्णरूप से भिज्ञ थे, परन्तु उन बुराइयों के प्रति विद्रोह करने की शक्ति का उनमें अभाव था। गोस्वामीजी

१. गोस्वामी किशोरीलाल का "अध्यक्षीय भाषण", पृ० २१।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इक्कीसवाँ अधिवेशन, झाँसी,
२८ दिसम्बर सन् १९३१।

२. गोस्वामी किशोरीलाल का "अध्यक्षीय भाषण," पृ० ५।
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इक्कीसवाँ अधिवेशन, झाँसी,
२८ दिसम्बर सन् १९३१।

की धममीरुता उन्हें सामाजिक अत्याचारों के सामने सिर झुकाने पर बाध्य कर देती थीं।"[1]

इस आरोप का हमारे पास प्रबल स्पष्टीकरण है। ऐसा प्रतीत होता है कि समीक्षाकार ने गोस्वामीजी की रचनाओं को ध्यान से नहीं पढ़ा है। उनका सूक्ष्म अध्ययन नहीं किया म यथा स्पष्ट हो जाता कि यथार्थ घटना वर्णन के साथ ही साथ उनका ध्यान सदव नतिक आदर्शों की ओर रहा है। उनकी रचनाओं म उनकी उपदेश प्रधान प्रवृत्ति सदव जागरूक है वे सदव पापों को दण्ड की व्यवस्था करते हैं तथा पुण्यात्मा को सुखदायक फल प्राप्त होता है। पापी सदा अपनी अन्तरात्मा मे दुखी रहकर जलता रहता है। उनके उपन्यासों की विविधता ने छोटी छोटी धर्म और रूढ़ि सम्बन्धी बुराइयों और परिपाटियों का पूर्ण उद्घाटन किया है। यदि युग की कसौटी पर उनके उपन्यासों को कसा जाय तो एक ओर तो उन्होंने उपन्यास साहित्य के निर्माण म अभूतपूर्व योगदान दिया है दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप स सामाजिक परम्पराओं का खुला वर्णन कर उन्होंने परोक्ष रूप से समाज कल्याण का कार्य किया है। कट्टर सनातनी होने के कारण उन्होंने अनाचारों और पापों का यथार्थ विश्लेषण करके उनको स्पष्ट प्रकट किया है। पापी यदि पाप को छिपाना भी चाहे तो नहीं छिपा पाता पाप का फल उसे इस जीवन म भोगना पड़ता है। यद्यपि हिन्दू शास्त्रों म यदि तैतीस करोड़ देवताओं का विधान है तीनों लोकों की चर्चा है स्वर्ग लोक मृत्यु लोक पाताल लोक हैं फिर भी यमपुरी के दुःख प्राणिमात्र के हृदय को कपा देते हैं। मूल म भी यदि पाप घटित हो जावे तो उसके प्रायश्चित का विधान रखा गया है। भगवान के दर्शन ब्राह्मण भोजन तीर्थ यात्रा, भगवान की कथा के सुनने, उपवास व्रत से पापों का मोचन हो जाता है फिर भी पापी को अपने पापों का फल मिलता है और पुण्यात्मा सुखी होते हैं। गोस्वामीजी के साहित्य ने पाप और पुण्य की समाज म व्याप्त धारणा को स्पष्ट किया है। अपने युग म गोस्वामीजी को अनेक संस्थाओं की ओर स सम्मान मिला है। महारानी विक्टोरिया की डायमण्ड जुबली के समय उन्होंने उक्त राजराजेश्वरी का जीवन-चरित्र संस्कृत में लिखकर वष्णव समाज द्वारा विलायत को भेजा था जिस पर होम डिपार्टमेंट से गोस्वामीजी को धन्यवाद का परवाना मिला। इस समय आप काशी से आकर मथुरा रहने लगे थे और सुदर्शन प्रेस का कार्य करने रहते थे।

गोस्वामी किशोरीलाल का साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ काशी से हुआ है, जहाँ पर उनका प्रथम उपन्यास प्रणयिनी परिणय रचा गया, पर आरा (बिहार) वाले उनकी प्रतिभा का जन्म-स्थान आरा मानते हैं। अभी अभी रामलोचनशरण बिहारी की स्वर्ण जयन्ती पर जयन्ती स्मारक ग्रन्थ' प्रकाशित हुआ है जिसमें लेखक सूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव ने 'बिहार के कथाकार'

---

१ पद्मदत्त शर्मा हिन्दी के उपन्यासकार,' पृ० १५।

नामक निबन्ध में गोस्वामीजी की प्रतिभा का गान करते हुए इस प्रकार लिखा है : "हिन्दी के स्वनामधन्य मौलिक कथाकार पण्डित किशोरीलाल के प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन का बहुत बड़ा भाग बिहार में ही बीता है। आपके औपन्यासिक जीवन का प्रारम्भ बिहार के आरा शहर में हुआ था। सेठ नारायणदास के कृष्ण-मन्दिर में लगातार कई साल आप प्रधान पुजारी रहे। आपके ६५ उपन्यासों में शुरू के दो-चार बिहार में लिखे गये और आपके एक सुपुत्र पण्डित छबीलेलाल गोस्वामी भी, जो स्वयं बड़े प्रसिद्ध गल्प-लेखक हैं, बिहार के आरा नगर में ही जन्म हुआ था। इस प्रकार आपकी कृति और कीर्ति की जन्म-भूमि बिहार ही है।"[1] वृन्दावन, काशी, मथुरा और आरा स्थान की ख्याति व्यक्ति से प्राप्त होती है। गोस्वामीजी जहाँ-जहाँ रहे, उनकी महिमा से वे स्थान भी गौरवान्वित हुए। स्वामीजी महान् सुकवि और सुलेखक थे, जिनकी रचनाएँ नवयुवकों तथा हिन्दी के पाठकों को अत्यन्त प्रिय थीं। खोज के फलस्वरूप संकेत मिला है कि गोस्वामीजी ने एक उपन्यास, एक चम्पू और तीन काव्य-ग्रन्थ संस्कृत में भी रचे हैं। हिन्दी, उर्दू और संस्कृत तीनों भाषाओं में गोस्वामीजी पूर्ण पारंगत थे, अतः जिस किसी रचना के लिए वे अपनी लेखनी उठाते थे, उनका पूरा आत्म-विश्वास उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होता था। यदि कोई सूत्र अन्य भाषाओं की रचना से मिल भी गया तो केवल उस सूत्र को लेकर उस पर उपन्यास का पूरा जगमगाता भवन अपनी प्रतिभा से खड़ा करते थे। "चोरी" जैसी बातें तो उनके सामने कभी आने ही नहीं पायी। दूसरे की पिटी पिटाई रचनाओं को गोस्वामीजी ने कभी भी अपने हाथ से ग्रहण नहीं किया। अपनी मौलिकता, रचना-कौशल और पाण्डित्य पर उन्हें पूर्ण विश्वास था।

"मिलन" नामक कहानी को गोस्वामीजी अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानी मानते थे, जैसा उनके सुपुत्र छबीलेलाल गोस्वामी ने अप्रैल सन् १९३४ की "वीणा" (मासिक) के सम्मेलनाक की टिप्पणी में कहा है। उनकी प्रिय मौलिक कहानी "इन्दुमती" का भी हिन्दी साहित्य की मौलिक कहानियों में द्वितीय स्थान है, पर स्वयं लेखक ने "इन्दुमती" को उपन्यास माना है। छोटे आकार का उपन्यास तो मान ही लेना चाहिए क्योंकि उपन्यास और कहानी में केवल आकार और सीमित घेरे का ही अन्तर होता है। उपन्यास के क्षेत्र की परिधि में पात्रों को भ्रमण करने के लिए अपार क्षेत्रफल मिलता है, जिससे उनका चरित्र-चित्रण सफल हो जाता है, पर कहानी में कथावस्तु को एक रूप देते हुए भी लेखक को सामाजिक शैली के द्वारा अपने लक्ष्य को स्पष्ट करना होता है, जिसके साथ ही पात्रों का चरित्र-चित्रण भी हो जावे। आरा और पटना के हिन्दी प्रचारकों में गोस्वामीजी का नाम बहुत ऊँचा है। हिन्दी भाषा की सुप्रसिद्ध (मासिक) पत्रिका "सरस्वती" के प्रथम वर्ष के सम्पादकों में गोस्वामीजी

१. सूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव : 'बिहार के कथाकार," पृ० ५५६।
'रामलोचनशरण बिहारी की स्वर्ण जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ"।

ये और इसके साथ ही साथ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नागरी प्रचारिणी ग्रन्थ माला, बालसखा इत्यादि के सम्पादक और उप सम्पादक किशोरीलाल रह चुके हैं। लगभग पच्चीस वर्ष तक सफलतापूर्वक इन्होंने "उपन्यास" नामक मासिक पत्र का सम्पादन और प्रकाशन किया तथा लगभग दस वर्ष तक "वैष्णव सर्वस्व" नामक मासिक पत्र निकाला। सन् १६१३ में वृन्दावन म अपना 'सुदर्शन प्रेस' खोला और अनेक वर्षों तक चलाया। ये आरम्भ से ही काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के सभासद् थे और सभा के काय सचालन में ये बाबू श्यामसु दरदास के पक्ष का समर्थन करके और अपना त्याग-पत्र देकर सभा से बाहर निकल आये। आप आगरा की गौड महासभाओं के अधिवेशन के समय अध्यक्ष का पद सँभालते रहे हैं। रीवाँ राज्य की चतु सम्प्रदाय श्री वैष्णव महासभा के ये ट्रस्टी थे। रीवाँ के स्वर्गीय राजा इनका बहुत सम्मान करते थे। गोस्वामीजी ने कभी भी अपनी ख्याति बढाने के लिए कोई प्रचार कार्य नहीं किया, पर सुकवि की प्रतिभा का सौरभ यत्र-तत्र अपने आप प्रसारित होता रहा। गोस्वामीजी का नाम वतमान मध्यप्रदेश से भी जोडते हो गौरव का अनुभव होता है। क्या उत्तर प्रदेश, क्या मध्यप्रदेश, लखक तो देश, काल और समाज के घेरे से सदा स्वतन्त्र है, फिर भी सामाजिक यथाथ चित्रो का अंकन वह अपनी रचनाओं में करन के लिए प्रस्तुत रहता है। गोस्वामीजी ने भी यही किया है।

षष्ठम अध्याय

गोस्वामीजी के उपन्यासों का वर्गीकरण

गोस्वामी किशोरीलाल हिन्दी के प्रथम साहित्यिक उपन्यास-सम्राट् के रूप में समीक्षा जगत में विख्यात हैं। उनकी उपन्यास कला की समीक्षा करते समय सर्वप्रथम हमें ध्यान में रखना है कि उनके द्वारा रचित उपन्यासों के आख्यान का मूल आधार मुगलकालीन संस्कृति है, जिस पर अंग्रेजी सभ्यता और परम्पराओं का बहुत कम प्रभाव परिलक्षित होता है। सारा हास-विलास, विषय, वासना-सम्बन्धी संकेत, शृंगारिक प्रक्रियाएं, सामाजिक रीति-रिवाजों तथा मानवीय जीवन के कार्य-कलाप, सब भारतीय संस्कृति के इतिहास विशेषकर मुस्लिम युग से प्रभावित हैं। सबसे अधिक उन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लिखे हैं, उसके बाद जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों का स्थान है।

समीक्षा की सुगमता की दृष्टि से गोस्वामीजी के उपन्यासों का वर्गीकरण तीन विभागों में करना उचित जान पड़ता है—प्रथम, ऐतिहासिक उपन्यास, जिनकी रचना का मूल आधार भारतवर्ष का इतिहास है, कथावस्तु का चयन इतिहास की पृष्ठ-भूमि के आधार पर हुआ है व जिसमें हिन्दू संस्कृति की मुस्लिम सभ्यता पर विजय है। यद्यपि इस युग के हिन्दू राजाओं तथा सामन्तों ने मुसलमान बादशाहों के आश्रित होकर अपना जीवन यापन किया है, पर कभी भी उन्होंने अपने धर्म और वंश-परम्परा तथा संस्कृति पर आंच नहीं आने दी है।

दूसरे, वे उपन्यास हैं, जो सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि पर लिखे गये हैं। इन्हें सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में निर्धारित करना यथार्थ जान पड़ता है। इन उपन्यासों में उस युग की सामाजिक मान्यताओं, रूढ़ियों, परम्पराओं, पारिवारिक मर्यादाओं तथा नर-नारी की वास्तविक मनोस्थिति का यथार्थ वर्णन है।

तीसरे प्रकार में वे उपन्यास हैं, जिनका मूल आधार जासूसी एवं तिलस्मी तथा ऐयारीपूर्ण घटनाएं हैं, जो उस समय जन-साधारण का मनोरंजन कर रही थीं, जिनके मूल जन्मदाता देवकीनन्दन खत्री थे। खत्रीजी की रचनाओं से प्रभावित होकर गोस्वामीजी ने भी अपनी प्रतिभा का परिचय जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों

के क्षेत्र में भी दिया है। जासूसी उपन्यासों मे मुख्य आकर्षण घटनाओं की विलक्षणता पर ही निर्भर होता है। कहीं चोरी, कभी हत्या की आयोजना लूट-मार, नायिका को उडा ले जाना, ऐयारी के करिश्मे बतलाना, कौतूहलवर्द्धक दृश्यों की रचना ही इन जासूसी उपन्यासों में निहित रहती है। ज्ञान-वर्द्धन तथा मनोरंजन दोनों कार्य इन उपन्यासो के द्वारा सफलता से कार्यान्वित हुए हैं। गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यासों के बारे मे कहा है "पहले जानने योग्य बात घटना की जवनिका मे छिपा रखना और इधर उधर को जो बेसिलसिले और बेजोड न हो, पहले कहना और घटना पर घटना का तुमार बाँध कर असल भेद जानने के लिए पाठको के हृदय में कौतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य साजकर ऐसे उपन्यास गढना कि पूरा पढे बिना पूरा स्वाद न मिले।"

युगीन मनोवृत्ति को पहचानकर ही बाबू देवकीनन्दन खत्री ने "चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता सन्तति" द्वारा तिलस्मी और ऐयारी के चमत्कार दिखाये हैं। उन्होने स्वय कहा है : "आज हिन्दी के बहुत से उपन्यास हुए हैं, जिनमे कई तरह की बातें व राजनीति भी लिखी गयी है, राजदरबार के तरीके व सामान भी जाहिर किये गये हैं, मगर राजदरबारो में ऐयार (चालाक) भी नौकर हुआ करते थे, जो हरफन मौला याने सूरत बदलना, बहुत सी दवाओं का जानना, गाना, बजाना, दौडना, शस्त्र चलाना जासूसी का काम देखना वगैर बहुत सी बातें जाना करते थे। जब राजाओं मे लडाई होती थी तो ये लोग अपनी चालाकी से बिना खून गिराये व पलटनों की जान गँवाये लडाई खत्म करा देते थे। इन लोगों की बडी कदर की जाती थी। इन्ही ऐयारी पेशे में आजकल बहुरूपिये दिखाई देते हैं। वे सब गुण तो इन लोगों में रहे नहीं, सिर्फ शक्ल बदलना रह गया, वह भी किसी काम का नहीं। इन ऐयारों का बयान हिन्दी किताबों मे अभी तक मेरी नजरों से नहीं गुजरा। अगर हिन्दी पढ़ने वाले भी इस मजे को देख लें तो कई बातों का फायदा हो। सबसे ज्यादा तो यह है कि ऐसी किताबों का पढने वाला जल्दी किसी के धोखे में न पड़ेगा। इन सब बातों का ख्याल करके मैंने यह "चन्द्रकान्ता" नामक उपन्यास लिखा है।"[1]

गोस्वामीजी की भी मूल अभिरुचि जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासो मे घर किये हुए थी। उन्हें समकालीन परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान था कि जासूसी उपन्यासो को पढ़ने के लिए जनसाधारण की हिन्दी पढ़ने तथा सीखने की ओर अभिरुचि बढ़ रही है। दूसरी ओर, इन उपन्यासों ने जनता का अपार मनोरंजन भी किया है, अतः गोस्वामीजी ने भी जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यास रचे। बाबू देवकीनन्दन खत्री इनके समकालीन सहयोगी थे। खत्रीजी ने दूसरे स्थान पर "चन्द्रकान्ता"

---

१. देवकीनन्दन खत्री : "चन्द्रकान्ता" की भूमिका से।

के विषय में लिखा है : "कुछ दिनों की बात है कि कई मित्रों ने सम्वाद-पत्रों में इस विषय का आन्दोलन उठाया था कि इसका (चन्द्रकान्ता) कथानक सम्भव है या असम्भव। मैं नहीं समझता कि यह बात क्यों उठाई और बढ़ाई गयी। जिस प्रकार "पचतन्त्र", "हितोपदेश" बालकों की शिक्षा के लिए लिखे गये, उसी प्रकार यह लोगों के मनोविनोद के लिए, पर यह सम्भव है कि असम्भव, इस पर कोई यह समझेगा कि चन्द्रकांता और वीरेन्द्रसिंह इत्यादि पात्र और उनके विचित्र स्थानादि सब ऐतिहासिक हैं तो बड़ी भारी भूल है। कल्पना का मैदान बहुत विस्तृत है और उसका यह एक छोटा सा नमूना है।"

× × × ×

"चन्द्रकान्ता में जो बातें लिखी गयी हैं, वे इसलिए नहीं कि लोग उनकी सचाई-झुठाई की परीक्षा करें प्रत्युत इसीलिए कि पाठ कौतूहलवर्द्धक हो।'[२]

देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी ही नहीं, गोस्वामीजी ने भी उस युग की नाड़ी की चाल को भलीभांति पहचाना और जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों की स्वयं भी रचना की। इस प्रकार उनके उपन्यासों को तीन प्रकारों में विभाजित करना उचित है—(१) ऐतिहासिक, (२) सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक और (३) जासूसी एवं तिलस्मी उपन्यास।

सर्वप्रथम हम उनके ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन करें। सर्वप्रसिद्ध कहावत है कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। प्रत्येक राष्ट्र के जन-जीवन में समय के व्यवधान के साथ ही साथ अनेक घटनाएँ क्रम से घटा करती हैं क्योंकि मानव, उसका मस्तिष्क तथा उसके जीवन की मूल समस्याएँ प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में समान और शाश्वत होती हैं। ये समस्याएँ चाहे आज के मानव की हों अथवा चार हजार वर्ष पूर्व के प्राणी की हों, जीवन के मूलभूत आधार तो सदैव एक समान ही रहते हैं। हमारे स्वयं के संस्कार और प्रवृत्तियाँ इस भौतिक जगत की रूढ़ियों और परम्पराओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं और जीवन की जड़ों में गहराई से गुँथी हुई रहती हैं। यदि 'उपन्यास' के साथ 'इतिहास' की सामग्री जोड़ दी जावे तो सोने में सुगन्ध का कार्य हो जावेगा। प्रत्येक उपन्यास मानव-जीवन का इतिहास है और प्रत्येक इतिहास मानव-चरित्र का उपन्यास है। इसके फलस्वरूप, एक ओर तो साहित्यिक वैभव उपलब्ध हो जावेगा और दूसरी ओर, हमें हमारे पूर्वजों के इतिहास, रीतिरिवाज, परम्पराएँ और रूढ़ियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। ऐतिहासिक उपन्यासकार का कार्य बढ़ जाता है कि उसे एक ओर इतिहास के तथ्यों की रक्षा करनी है तथा दूसरी ओर, 'उपन्यास' के अवयवों की व्याख्या।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में उपन्यासकार का कार्य महान् हो जाता है। एक ओर उसे जनता की ऐतिहासिक रुचि को तृप्त करना पड़ता है, दूसरी ओर उसे कथानक

---

२ देवकीनन्दन खत्री : "चन्द्रकान्ता" की भूमिका से।

का सूत्र बनाए रखना पड़ता है। ऐतिहासिक उपन्यास की सबसे अधिक सफलता इसी में है कि एक ओर वह इतिहास के पृष्ठों का अंकन करे और दूसरी ओर उसमें रोमांस की धारा बह रही हो। इतिहास की नीरसता, कटु सत्यता उपन्यास में आकर सजल और सरस बन जाती है। उपन्यासकार की प्रतिभा और रचना-कौशल से जो घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं हैं, वे भी ऐतिहासिक प्रतीत होने लगती हैं। यदि उपन्यासकार ऐतिहासिकता का कठोर आग्रह करने लगे तो उपन्यास म नीरसता का समावेश हो जाता है। ऐतिहासिक उपन्यास परम्पराओं, जनश्रुतियों तथा अनुलखों पर भी आधारित होता है।, साथ ही साथ उसमें इतिहास का सूत्र आदि से अन्त तक वर्णित रहता है। देश, काल तथा घटनाओं का निर्वाह बड़ी सावधानी से उपन्यासकार को करना होता है। ऐतिहासिक उपन्यासों के विषय में शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है 'इन उपन्यासों का आकर्षण और साहित्यिक मूल्य बहुत कुछ उनके द्वारा किये गये भूभाग और काल-विशेष के जीवन, रीति-नीति, रहन-सहन आदि के वर्णन पर निर्भर रहता है।'"[१]

ऐतिहासिक उपन्यासों को दो भागों में विभाजित कर लेना उचित जान पड़ता है :

(१) शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास और

(२) ऐतिहासिक रोमांस।

'शुद्ध ऐतिहासिक' वे उपन्यास हैं, जिनका कथानक इतिहास की सच्ची घटनाओं के आधार पर अंकित किया जाता है। उपन्यासकार इतिहास की किसी प्रकार से काट-छांट नहीं करता है तथा कथा का स्वरूप जैसे का तैसा रखता है। इसमें यथार्थ चित्रण को महत्व दिया जाता है। इन उपन्यासों में देश, काल, पात्र और घटनाएं सभी पूर्ण रूप से ऐतिहासिक रहती हैं। ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर सारे पात्र अवतरित होते रहते हैं। घटनाओं का यथावत् अंकन होता है। उदाहरण के लिए, यदि मुगल-काल में मज़दूर आन्दोलन तथा खाद्य-समस्या का वर्णन होने लगे तो असंगत प्रतीत होगा। ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास तथा काल-विरुद्ध घटनाओं का समावेश अवांछनीय है। इससे भी अधिक आवश्यक तो यह है कि उस काल-विशेष के पात्रों के आचार-विचार, प्रकृति, स्वभाव, परिस्थितियों तथा परम्पराओं का यथार्थ चित्रण होना अपेक्षित समझा जाता है। डॉ० जगदीश गुप्त ने लिखा है : "इतिहासकार केवल द्रष्टा है, उपन्यासकार द्रष्टा-सृष्टा दोनों। अपने व्यक्तित्व को आरोपित करने का अधिकार, सृष्टा का मौलिक स्वत्व है। ऐतिहासिक उपन्यास लिखते समय भी इस अधिकार से उसे वंचित नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि इतिहास की मर्यादा को अक्षुण्ण रखना उसका पवित्र कर्त्तव्य बन जाता है, जिसको वह त्याग नहीं सकता।"[२] हम

१. शिवनारायण श्रीवास्तव "हिन्दी उपन्यास," पृ० ४२।
२. जगदीश गुप्त "आलोचना" का उपन्यास अंक, अक्टूबर सन् १९५४।
पाठ—इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासकार, पृ० १७७।

मानते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यासकार इतिहास की चौखट में बँधा हुआ है, पर इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने में उसका अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण भी तो है, जिसे वह अपनी कल्पना के माध्यम से पाठकों के सम्मुख प्रकट करता है। मानवीय संवेगों को स्पर्श करना उपन्यासकार का प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है और इतिहास के प्रस्तर-खण्डों से यदा-कदा उसे अपना ध्यान जीते जागती मानवीय भावनाओं के साथ रखना पड़ता है।

ऐतिहासिक उपन्यास के बारे में प्रसिद्ध साहित्यकारों की कुछ विचारधाराएँ इस प्रकार हैं :

राहुल सांकृत्यायन ने कहा है : 'ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज या उसके व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है, किन्तु उसमें कुछ पदचिह्न जरूर छोड़े हैं, जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते। जिस समय की कुछ भी प्रमाणित समकालीन लिखित सामग्री प्राप्य है, उसे ही क्या साहित्य के लिए ऐतिहासिक मान सकते हैं। इस प्रकार हमारे यहाँ ऐसा काल तीन-चार हजार वर्ष तक का हो सकता है।"[1]

बटरफील्ड का कथन है : "ऐतिहासिक उपन्यास गल्प और इतिहास दोनों का समान रूप से एक प्रकार है। वह एक कहानी और आविष्कार है। भूत काल में मानव-जीवन के तथ्यों से ही उसका सम्बन्ध है।"[2]

ऐतिहासिक उपन्यासों का लेखक इतिहास की घटनाओं को अपने कथानक के अनुकूल बना लेता है। कथानक का मानव-जीवन के अधिक निकट ले आना उसका प्रमुख कार्य होता है। इतिहास की गम्भीरता तथा क्रूरता उपन्यासों में आकर शीतल आलेपन का कार्य करती है। यदि इतिहास उत्तेजक पदार्थ है तो उपन्यास शीतल-सुगन्धित आलेप है, जो मन को संवेदना प्रदान करता है।

प्रसिद्ध समीक्षक पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की ऐतिहासिक उपन्यास के सम्बन्ध में धारणा है : "ऐतिहासिक उपन्यासों में हम अतीत गौरव को प्रत्यक्ष देख लेते हैं और उनसे हम जीवन की चिरन्तन महिमा को जान लेते हैं।"[3]

दूसरा उदाहरण है : "श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासों से भी इतिहास का काम नहीं लिया जा सकता। उनमें ऐतिहासिक घटनाओं का अनुसरण कर पात्रों का वर्णन भले हो किया जाय, पर उनकी जीवन-धाराएँ ऐतिहासिक घटनाएँ नहीं होतीं। औपन्यासिक पात्रों को अपने जीवन की अभिव्यक्ति के लिए किसी देश और

---

१. राहुल सांकृत्यायन : "आलोचना," अक्टूबर सन् १६५४, पृ० १७० ।
2. H. Butterfield—"*The Historical Novel*, 1924, p. 4.
"*The historical novel is a 'form' of fictions as well as of* history. It is a tale, a piece of invention only, it claims to be true to the life of the past".
३. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : "हिन्दी कथा साहित्य," पृ० २२६ ।

काल का आश्रय लेना पड़ता है। यहीं तक उनकी ऐतिहासिकता है।"[१]

प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ने स्वयं कहा है "जिन स्थलों पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड़ सकता, उनका कल्पना द्वारा सृजन करके उपन्यास-लेखक भूली हुई या खोई हुई सच्चाइयों का निर्माण करता है। उनमें वही चमक दमक आ जाती है, जो इतिहास के जाने माने तथ्यों में अवश्यमेव होती है पर यह है कि उन तथ्यों या परम्पराओं को ताश के पत्तों का महल या कलबघर न बना दिया जावे।"[२]

प्रत्येक ऐतिहासिक उपन्यास में किसी एक राष्ट्र अथवा एक छोटे राज्य के उत्थान पतन की कहानी होती है, जिसमें व्यक्तियों का प्रमुख भाग रहता है। उनका चरित्र चित्रण उपन्यासों ही म सम्भव है। भारत का प्राचीन गौरव तथा सांस्कृतिक परम्पराएं इन उपन्यासों के द्वारा जीवित रहती हैं।

'ऐतिहासिक रोमांस' वे उपन्यास हैं, जिनमें उपन्यासकार इतिहास का सूत्र तो अवश्य ग्रहण करता है, पर उसकी कथावस्तु में पात्रों के नाम चाहे ऐतिहासिक हों, पर घटनाओं की आयोजना प्रेम तथा रोमांस के आधार पर होती है। इतिहास में घटित वीरतापूर्ण तथा साहसिक कार्य कलापों का मूल आधार भी उद्दात्त प्रम रहता है। इन रोमांसों में इसी प्रकार के वीरतापूर्ण प्रेम प्रसंगों का उल्लेख होता है। किसी नारी के प्रेम म मतवाला हो जाना, उससे प्रेरित होकर युद्ध का आह्वान करना तथा राज्य और अधिकारों की प्राप्ती (प्राप्ति) के लिए भी शूरवीरता तथा शौर्यपूर्ण युद्ध लड़े जाते हैं। भारतीय इतिहास में अधिकतर नारी प्रेम (भोग की लालसा) ही पात्रों को घमासान युद्ध तथा रक्तपात क लिए उत्तेजित करती है। इस प्रकार के उपन्यासों के हिन्दी साहित्य में मूल सृष्टा गोस्वामी किशोरीलाल हैं। उनके सारे ऐतिहासिक उपन्यासों के बीज में कोई न कोई नारी पात्र है, जिसके फलस्वरूप मार-काट तथा हृदय-विदारक युद्ध लड़ जाते हैं। प्राचीन ऐतिहासिक उपन्यासों का मूल वर्ण्य विषय-प्रेम तथा रोमांस-प्रधान घटनाएं रही हैं, जिनका बीज रीतिकालीन परम्परा पर नायक नायिकाओं की परस्पर प्रेम लीलाएं हैं। इन उपन्यासों में अनेक प्रकार के राजनैतिक दावपेंच, कूटनीति, वीरतापूर्ण साहसिक कार्य तथा नायक का अनेक प्रकार के षड्यन्त्रों में भाग लेना सहज में कथानक का स्वरूप बन जाता है। इतिहास के खुले पृष्ठ म से *प्रत्येक उपन्यासकार स्वतन्त्र मनोवृति के आधार पर अपने लिए* कथावस्तु का चुनाव करता है। गोस्वामीजी ने मुस्लिम युग को चुना है।

आधुनिक काल में वृन्दावनलाल वर्मा ने अपनी कथावस्तु को इतिहास

---

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी . "हिन्दी कथा साहित्य", पृ० २२७-२२८।
२ वृन्दावनलाल वर्मा का "विचार परिमल परिसंवाद" म पठित 'ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत, बाद मे "नये पत्ते", जनवरी फरवरी, सन् १९५३ के अंक म प्रकाशित।

के विस्तृत मैदान से चुना है। पर उन्होंने भी "गढ़कुण्डार," "मृगनयनी" जैसे प्रमुख ऐतिहासिक रोमांसों की रचना की है। राजपूत और मराठा-काल में इतिहास गम्भीर अध्ययन की वस्तु थी, पर मुसलमानों के शासन-काल में इतिहास गम्भीर अध्ययन की वस्तु नहीं थी, अतः किशोरीलाल गोस्वामी ने उसमें से रोमानी घटनाओं को ही ग्रहण किया। इसका एक यह भी कारण था कि सन् १८५० तक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों का उपलब्ध होना दुरूह था। बाद में अँग्रेजों के आगमन तथा अँग्रेजी राज्य की पूर्ण स्थापना के बाद ही इतिहास की रचना की ओर विद्वानों का ध्यान गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के साथ कल्पना का भी सम्मिश्रण होता है, पर इतिहास में कल्पना का कोई स्थान नहीं होता है। इतिहास में वैज्ञानिक तथ्यों का पूर्णरूपेण पालन होता है, पर ऐतिहासिक उपन्यास जीवन का एक मनोहर तथा सजीव चित्र है, फिर भी ऐतिहासिक उपन्यासों में यथावस्तु की सफलता की दृष्टि से ऐतिहासिक पात्रों का आधार तो लेना ही पड़ता है। इतना ही नहीं, उन पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय तात्कालिक सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का भी ज्ञान होना लेखक के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार विवेकपूर्ण हो ताकि किसी भी युग-विशेष की घटनाओं को क्रमबद्ध संग्रह करके अपनी मौलिक कल्पना द्वारा उन्हें सजीव बनाकर उपन्यास की चित्रपटी पर अंकित करदें।

प्रसिद्ध वयोवृद्ध समीक्षक गुलाबराय ने कहा है : "ऐतिहासिक उपन्यास में लेखक अपने इतिहास-ज्ञान तथा कल्पना द्वारा अपने प्रतिपाद्य ऐतिहासिक युग की मान्यताओं, विश्वासों तथा वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। ऐसे वर्णन में इतिहास-विरुद्ध बातों का समावेश नहीं होता। कथानक को रोचक बनाने के लिए अथवा जहाँ-कहीं ऐतिहासिक तत्व विशृंखलित हों, वहाँ नवीन घटनाओं का निर्माण कर शृंखला जोड़ने के लिए ही कल्पना का उपयोग होता है।"[1]

प्राचीन ऐतिहासिक उपन्यासों को शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास न कहकर 'ऐतिहासिक रोमास" कहना अधिक उचित जान पड़ता है। पूर्व-प्रेमचन्द युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की कथावस्तु अधिकतर प्रेम अथवा घटना-प्रधान होती थी। ऐतिहासिक पात्रों की प्रेम लीलाएँ भी रीतिकालीन परम्परा के प्रभाव से अछूती न रह सकी हैं। युद्धों के वर्णन की ओट में अनेक प्रकार की साहसिक घटनाओं का वर्णन है। अन्य विषय उनमें गौण रूप से पाये जाते हैं। यदि ऐतिहासिक यथार्थवाद की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में उपन्यासों की खोज करें तो नितान्त अभाव मिलेगा। बंगला साहित्य में तो राखालदास बन्द्योपाध्याय के ऐतिहासिक उपन्यास उच्च-

१. गुलाबराय : "आलोचना", त्रैमासिक उपन्यास अंक, अक्टूबर सन् १९५४, पृ० १८०।

कोटि के हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है : "जब तक भारतीय इतिहास के भिन्न-भिन्न कालों की सामाजिक स्थिति और संस्कृति का अलग अलग विशेष रूप से अध्ययन करने वाले और उस सामाजिक स्थिति के सूक्ष्म ब्यौरों की अपनी ऐतिहासिक कल्पना द्वारा उद्भावना करने वाले लेखक तैयार न हो तब तक ऐतिहासिक उपन्यासों में हाथ लगाना ठीक नहीं।"[1]

ऐतिहासिक उपन्यासकार एक ओर तो अतीत के सत्य चित्र उतारता है, दूसरी ओर वह काव्य का 'रसास्वादन' कराकर पाठकों का सच्चा मनोरंजन करता है। ऐतिहासिक परम्पराओं तथा कठोर सत्यता का नितान्त पालन करना उपन्यासकार के लिए कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव भी है।

हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का युग किशोरीलाल गोस्वामी की रचनाओं से प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रतापनारायण मिश्र जब "हिन्दुस्थान" पत्र के सम्पादन विभाग में थे, उस समय उनकी प्रेरणा से धारावाहिक रूप में गोस्वामीजी का—

(१) "हृदय हारिणी" शीर्षक या अपने उपसंहार-सहित "लवंगलता" (सन् १८६०) नामक उपन्यास हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी के नौ अन्य ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(२) तारा (सन् १६०२), (३) कनक कुसुम (सन् १६०३); (४) रजिया बेगम (सन् १६०४); (५) हृदयहारिणी (सन् १६०४); (६) लखनऊ की कब्र (सन् १६०६), (७) सोना और सुगन्ध या पन्नाबाई (सन् १६०६); (८) लाल कुँवर (सन् १६१२); (६) सोने की राख; (१०) मल्लिकादेवी या बंग सरोजिनी (सन् १६१७)।

स्वामीजी की मौलिक सूझ-बूझ का संकेत उनकी ऐतिहासिक रचनाओं में ही उपलब्ध हो जाता है। उनके उपन्यासों में इतिहास का केवल आधारमात्र ग्रहण किया गया है तथा उसके सहारे पात्रों तथा घटनाओं की रचना द्वारा अधिकतर ऐतिहासिक रोमांस चित्रित किये गये हैं। उनकी रुचि के अनुकूल जिन्होंने उपन्यासों की कथावस्तु का निर्माण किया है, उसे तोड़ा-मरोड़ा और जोड़ा है। गोस्वामीजी के युग में तिलस्मी तथा ऐयारी से भरी हुई परम्परा समाज में अत्यन्त लोकप्रिय थी, इसलिए इनकी रचनाओं में भी, चाहे वह ऐतिहासिक उपन्यास ही क्यों न हो, इस परम्परा के दर्शन हो जाते हैं। इन सभी उपन्यासों में तिलस्मी महल, सुरंगें, कमंद, भेष बदलना और जादू की करामातों आदि का उल्लेख है। "लखनऊ की कब्र" उपन्यास तो प्रारम्भ से अन्त तक तिलस्मी व्यापारों से भरा हुआ है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है : "हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का

---

[1] १. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ५६५।

प्रारम्भ सम्भवतः किशोरीलाल गोस्वामी से होता है। उनकी लवंगलता (१८९०) इस परम्परा के प्रारम्भिक उपन्यासों में से है।"[1]

स्वयं गोस्वामीजी ने "हृदय हारिणी" की भूमिका में लिखा है: "उन्हीं दिनों प्यारे प्रताप की प्रेरणा से हमने "हृदय हारिणी" उपन्यास लिखा और वह (उपन्यास) ७वीं अक्टूबर सन् १८९० के "हिन्दुस्थान" में छपना आरम्भ होकर कई संख्याओं में समाप्त हुआ।"[2]

"लवंगलता" मे नायिका को एक ऐसी वीरांगना के रूप में लेखक ने चित्रित किया है, जिसने अनेक विपत्तियाँ झेल कर भी अपने सतीत्व की रक्षा की है। भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा की स्थापना गोस्वामीजी की रचनाओं का मूल लक्ष्य था। "हृदय-हारिणी" व "आदर्श रमणी" उपन्यास सन् १९१५ में दूसरी बार सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से किशोरीलाल के पुत्र छबीलेलाल गोस्वामी द्वारा प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के प्रकाशन के साथ ही साथ किशोरीलाल गोस्वामी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि प्रकाशन का कार्य-भार भी वे स्वयं ही सँभालेंगे। लेखन, प्रकाशन, समालोचना और विक्रय-विभाग सबकी देख-रेख स्वयं गोस्वामीजी के निरीक्षण में ही होती थी। "उपन्यास" नाम की मासिक पत्रिका अत्यन्त सज धज के साथ इसी समय प्रकाशित हुई। गोस्वामीजी केवल उपन्यासकार ही नहीं थे, वरन् 'उपन्यासों' के प्रति निरन्तर जनता का मन आकर्षित करते रहते थे, जैसा उन्होंने स्वयं लिखा है: "उपन्यास नाम की मासिक पुस्तक जो प्रेस न होने के कारण कई वर्षों से बन्द थी, अब वह नयी सजधज क साथ निकाली जावेगी। अतएव हिन्दी के प्रेमी और उपन्यास रसिकों को अब शीघ्र ही अपना-अपना नाम ग्राहक श्रेणी मे जल्द लिखा लेना चाहिए।"[3]

इस उपन्यास के उपसंहार "लवंगलता व आदर्श बाला" के रूप में एक सुन्दर उपन्यास १ जनवरी सन् १९१५ को सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित हुआ।

सन् १९०२ मे गोस्वामीजी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास "तारा" तीन भागों मे प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में राजपूती गौरव की उज्ज्वलता को गोस्वामीजी ने दिखाने की चेष्टा की है, इसलिए मुसलमानी पात्रों मे सदैव चरित्र-हीनता तथा अनैतिकता मिलती है। इस उपन्यास की भूमिका में गोस्वामीजी ने अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है, जिससे उनके उपन्यासों की ऐतिहासिकता पर यथेष्ठ प्रकाश पड़ता है। "हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को

१. माताप्रसाद गुप्त : "हिन्दी पुस्तक साहित्य", पृ० ३०।
२. गोस्वामी किशोरीलाल : "हृदय हारिणी", प्रथम संस्करण का निवेदन, काशी, १-३-१९०४।
३. गोस्वामी किशोरीलाल : "हृदय हारिणी", द्वितीय संस्करण का निवेदन, वृन्दावन १-१ १९१५।

'गौण' और अपनी कल्पना को 'मुख्य' रखा है और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर ही से नमस्कार भी कर दिया है। इसलिए हमारे उपन्यास के प्रेमी पाठक हमारे अभिप्राय को भलीभाँति समझ लें कि यह 'उपन्यास' है, इतिहास नहीं। यहाँ कल्पना का राज्य है यथेष्ठ लिखित इतिहास का नहीं और इसमें आर्यों के यथार्थ गौरव का गुण कीर्तन है। कुछ मुसलमान इतिहास लेखकों की भाँति स्वजाति-पक्षपात नहीं है इसलिए लोग इसे इतिहास न समझें और इसकी सम्पूर्ण घटना को इतिहास में खोजने का उद्योग भी न करें।''[1]

इस कथन ने गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में सारा रहस्य प्रकट कर दिया है। इससे गोस्वामीजी की विचारधारा का पता चल जाता है।

इनके ऐतिहासिक रोमांसों में एक ओर सम्पन्न वर्ग की स्थितियों का ज्ञान होता है, जिसमें भोग की तृष्णा तथा अतृप्तियों का प्रवेश है, दूसरी ओर निम्न श्रेणी के पात्र इन सामन्तीय परम्परा के सेवक बन कर ही अपना जीवनयापन करते हैं। गोस्वामीजी ने इतिहास का आधार लेकर सामाजिक और नैतिक परम्पराओं का पूर्ण चित्रण किया है और ऐतिहासिक कटुता तथा शुष्कता से अपने उपन्यासों को बचाया है। हमें महान् दुःख उस समय होता है, जब विरोधी समीक्षाएं साहित्य जगत में दिखाई देती हैं, जैसा शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है "तारा में चमत्कार पूर्ण, ऐयारी से भरी हुई घटनाओं की इतनी प्रधानता है कि इसे ऐयारी उपन्यास मान लेना भी असंगत नहीं। जो बातें "तारा" के विषय में कही गयी हैं, वे ही प्रायः गोस्वामीजी के सभी उपन्यासों के विषय में कही जा सकती हैं। उनके प्रायः सभी ऐतिहासिक पात्र देश काल का बन्धन तोड़ लेखक के मौजी मन के इशारे पर नाचने वाली पुतलियाँ हैं।'[2]

अब धीरे-धीरे भारत की हिन्दी भाषी जनता अपने पूर्वजों की धरोहर को समझने में सफल हो रही है। इस आलोचना का निराकरण तो स्वयं लेखक ने "तारा" लिखने से पहले ही अपने निवेदन में कर दिया है, अतः प्रत्येक समीक्षक का प्रथम और महान् कर्त्तव्य हो जाता है कि प्रत्येक लेखक की रचना का लक्ष्य समझकर ही उसे अपनी कसौटी पर परीक्षण करें।

गोस्वामीजी के उपन्यासों में ऐतिहासिक उपन्यासों के बीज पाये जाते हैं। उन्होंने उस भूमि की रचना की है जिस पर आज के अनेक दिग्गज ऐतिहासिक उपन्यासकार, जैसे वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, रांगेय राघव इत्यादि अपना विशाल भवन तैयार कर सके।

"कनक कुसुम", "रजिया बेगम", "राजसिंह" आदि अनेक अन्य ऐतिहासिक

---

१. गोस्वामी किशोरीलाल "तारा" उपन्यास का निवेदन, तीसरा संस्करण, सन् १६२४।
२. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ८३-८४।

उपन्यास उनके द्वारा रचे गये पर "लखनऊ की कब्र" उपन्यास की धारावाहिकता ने हिन्दी के पाठकों को चकाचौंध में डाल दिया। सर्वप्रथम सन् १६०६ में यह उपन्यास आठ भागों में सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित हुआ। आठ भाग भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुए हैं। वे नवाँ भाग भी लिखना चाहते थे, पर नहीं लिख पाये। उनकी लेखनी में वह चमत्कार था कि यदि प्रेस में छापने के लिए सामग्री कम पड़ जाती थी तो वे उसी समय उपन्यास रचना में निमग्न हो जाते थे। प्रत्येक उपन्यास की भूमिका में गोस्वामीजी अपने विचार प्रकट कर दिया करते थे, चाहे वह ऐतिहासिक हो अथवा सामाजिक।

"लखनऊ की कब्र" या 'शाही महल सरा' की भूमिका में लेखक ने इतिहास पर प्रकाश डाला है कि "लखनऊ" का नाम कैसे पड़ा है। उन्होंने वहाँ के शासकों की वंश-परम्परा का भी सूक्ष्म परिचय दिया है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है "लखनऊ की कब्र (१६०६) अवध के नवाब नासिरुद्दीन हैदर के समय की घटनाओं को उपस्थित करता है।"[1] इस उपन्यास में एक ओर इतिहास की कहानी धारावाहिक रूप से चलती है, दूसरी ओर जासूसी और ऐयारीपूर्ण करामातों की कुशलता प्रकट होती है। लखनऊ, अवध और दिल्ली के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल इस उपन्यास की कथावस्तु के प्रमुख घटना-केन्द्र हैं इन तीनों नगरों में मुस्लिम संस्कृति ने सारे जन-जीवन को पूर्णरूप से आवृत्त कर रखा था। बादशाह और प्रजा सब युग-विशेष की प्रचलित परम्पराओं से प्रभावित थे। इस उपन्यास के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हैं तथा अधिकांश घटनाएँ, सन्, सम्वत् घटना-स्थल, परिस्थितियाँ—सब ऐतिहासिक हैं, जिनमें गोस्वामीजी को मौलिक कल्पना का रंग भरने के लिए अवसर प्राप्त हुआ है। यह वह समय है, जब भारतवर्ष में मुसलमानों राज्य अपनी जड़ें जमा चुका था। इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा देश के कोने-कोने में हो गयी थी। हिन्दू प्रजा उन दिनों में मुस्लिम संस्कृति का घर कर लेना, मजारों के प्रति आकर्षण, हिन्दुओं के द्वारा दासता स्वीकार कर लेना, बादशाहों द्वारा हिन्दू नारियों को (बलात्) उड़वा लेना, सुन्दर से सुन्दर हिन्दू औरत का बादशाह के हरम में दाखिल होना, उनकी अस्मत का लुट जाना, कभी बेगम बना लेना और कभी निकाल कर बाहर कर देना आदि उस युग की आम घटनाएँ हैं, जो नित प्रतिदिन घटा करती थीं। गोस्वामीजी के उपन्यासों में प्रेम की सृष्टि यौन-पोषण के लिए हुई है, जिसके पीछे योग की भावना पूर्णरूप से व्याप्त है।

डॉ० सत्येन्द्र ने कहा है - "पर पुरुष तथा पर स्त्री के कामुक मिलन के लिए अनेकों अद्भुद् आश्चर्यजनक उपाय और काण्डों की कल्पना की गयी है।"[2] गोस्वामीजी

---

१. माताप्रसाद गुप्त : "हिन्दी पुस्तक साहित्य", पृ० ३१।
२. सत्येन्द्र : "आलोचना"—त्रैमासिक, सन् १६५२।

का ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना के लिए भी मूल उद्देश्य था कि लोक हृदय मे उपन्यास साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करें और यही ध्यान मे रखकर उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, ऐयारी, तिलस्मी तथा ऐतिहासिक सब प्रकार के उपन्यास लिखे हैं।

प्रथम साहित्य कोटि के ऐतिहासिक उपन्यासकार गोस्वामीजी ने पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए अभिनयात्मक ढग अपनाया है । इनके पात्र तिलस्मी महलों, सुरगों मे, कमन्द के सहारे अपनी करामातो से कथानक का आगे विकास करते हैं। "लखनऊ की कब्र" म युसुफ और आस्मानी, "सोना और सुगन्ध" में निहालचन्द्र का निवास-स्थान तिलस्मी सकेतो को प्रदान करता है। गोस्वामीजी के पात्रो की विशेषता है कि उपन्यास पढने के उपरान्त चाहे हम इतिहास क पृष्ठों को भूल जावें, पर "तारा" का अमरसिंह, 'कनक कुसुम" की मस्तानी, "सोना और सुगन्ध" का मानिकचन्द्र, "रजिया-बेगम" के रजिया और याकूब, 'लखनऊ की कब्र" की आस्मानी और निहालचन्द्र तथा "मल्लिका देवी" का नरेन्द्रसिंह कभी भुलाये नहीं जा सकते हैं। नाटकीय शैली का प्रभाव पाठकों के हृदय पर अमिट रूप म पडता है। गोस्वामीजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासो क लिए अनुकूल वातावरण तथा देश-काल की बडी चतुराई से सृष्टि की है। "सोना और सुगन्ध", "सोने की राख" और "मल्लिका देवी" व "वग सराजिनी" भी सुन्दर तथा चित्ताकर्षक उपन्यास हैं। उस युग मे इतने उपन्यास *लिख देना गोस्वामीजी की सच्ची प्रतिभा क परिचायक हैं।*

इसके अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक, जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यास लिखे हैं। वास्तव मे सामाजिक उपन्यासों क भी जन्मदाता गोस्वामीजी हैं। मनुष्य सामाजिक *प्राणी है और समाज क चक्रम निरन्तर घूमता रहता है। सामाजिक परम्पराओ तथा* रूढियो का एक ओर वह स्वय निर्माता है तो दूसरी ओर वही पालनकर्त्ता है। निर्माता और निर्मित दोनों कारणो से वह अपने जीवन मे एक छोर मे दूसरे छोर तक सामाजिक शृंखलाओ मे बँटा हुआ है। गोस्वामीजी ने सामाजिक परम्पराओं को बडे ध्यान से परखा, युग विशेष की मान्यताओ और तर्क-वितर्कों को समझा है। एक विप्लवकारी नेता क समान शृखलाओ को तोडा नहीं, वरन् साहित्य सृष्टा के रूप म उनके प्रति अपनी रचनाओ के द्वारा जन-साधारण म जागृति फैलाई है। गोस्वामीजी के सामाजिक उपन्यासों का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। उसके अन्तर्गत रूढ़िवादी, सांस्कृतिक, पारिवारिक सब प्रकार की रचनाओ का समावेश हो जाता है। धार्मिक, नैतिक, उपदेशपूर्ण और भाव प्रधान इत्यादि रचनाएँ उसके अन्तर्गत आ जाती हैं। *सामाजिक* समस्याएँ, मन की ग्रन्थियाँ, पुरुष के अधिकारों की व्याख्या, उनकी उद्दण्डताएँ, विलासप्रियता, आक्रमणकारी प्रवृत्तियाँ और नारी की चतुराई, अबला अवस्था, अछूतों की दशा, वेश्या-प्रथा, विधवाओं की स्थिति इत्यादि अनेक प्रश्नों को बडी गहराई मे

गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में आकलन किया है। उनकी यथार्थ व्याख्या की है, जिससे पाठकों के हृदय में संवेदना जागे।

जो उपन्यास सामाजिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हैं, वे सामाजिक उपन्यास कहलाते हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने सामाजिक उपन्यासों के चार भेद किये हैं : "सामाजिक उपन्यासों में हमें चार भेद मिलते हैं—(अ) उद्देश्य-प्रधान; (आ) रस-प्रधान; (इ) वस्तु-प्रधान तथा (ई) चरित्र-प्रधान।"[1]

गोस्वामीजी ने चारों प्रकार के सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। उनका "त्रिवेणी" (१८८८) तथा "स्वर्गीय कुसुम" (१८८९) दोनों उद्देश्य-प्रधान उपन्यास हैं। "त्रिवेणी" में गोस्वामीजी ने आर्यसमाज जैसे सुधारवादी आन्दोलन के विरुद्ध सनातन धर्म के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा और स्थापना का समर्थन किया है। "स्वर्गीय कुसुम" में उन्होंने प्रचलित देवदासी-प्रथा का घोर विरोध किया है तथा हिन्दू समाज की दुरावस्था का परिचय यथार्थ में अंकित किया है। इस समय के उपन्यासकारों की मूल दृष्टि में नारी-चरित्र प्रधान रूप से था तथा समाज की अन्य समस्याएँ भी इसके साथ ही साथ उन्हें उपन्यास-रचना के लिए प्रेरित कर रही थीं। समाज, सम्प्रदाय तथा हिन्दू परिवारों ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इस युग में रस-प्रधान उपन्यास लिखने में गोस्वामी किशोरीलाल का प्रमुख हाथ रहा है। "लीलावती" (१९०१), "चन्द्रावली" (१९०४), "हीराबाई" (१९०४), "चन्द्रिका" (१९०५) तथा "तरुण तपस्विनी" (१९०६) में गोस्वामीजी के रस प्रधान उपन्यास प्रकाशित हुए, जिनके द्वारा एक स्वतन्त्र परम्परा को उपन्यास साहित्य में जन्म मिला है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि यद्यपि उपन्यासों में सामाजिक भावना को बल मिल रहा था, पर फिर भी लेखकों के द्वारा रस-राज "शृंगार" की उपासना विशेष रूप से की जा रही थी। कहीं-कहीं प्रेम-रस का वर्णन करते-करते वासनाओं के चित्रण में लेखकों की रचनाओं में अश्लीलता आ जाती है, पर इसने कुलीन प्रवृत्तियों को अनुकृष्ट किया है। जन-साधारण की अभिरुचि इसी ओर थी, जिससे इस युग का उपन्यासकार नहीं बच पाया।

'वस्तु-प्रधान' उपन्यास कम लिखे गये हैं, फिर भी गोस्वामीजी ने सफल उपन्यास "पुनर्जन्म" (१९०७) में लिखा, जिसके अन्तर्गत गृहस्थ जीवन का चित्र, घरेलू झगड़ों इत्यादि का सजीव वर्णन प्राप्त होता है। वस्तु-प्रधान उपन्यास जीवन की वास्तविकता के निकट थे, जिसने मानव-जीवन की कटु सत्यता और व्यावहारिकता को प्रकट किया है।

'चरित्र-प्रधान' उपन्यास भी कम ही लिखे गये। पात्र-विशेष के चारों ओर कथावस्तु केन्द्रित रहती है। गोस्वामीजी के समस्त उपन्यासों में चरित्र समाज विशेष

१. माताप्रसाद गुप्त : "हिन्दी पुस्तक साहित्य", पृ० २६।

के प्रतिनिधि के रूप में परिलक्षित होते हैं। किन्हीं उपन्यासों मे तो चरित्र और वस्तु दोनों ही एकरूप हो गये हैं, जिससे उनका भेद समझना दुरूह हो जाता है।

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है : 'किशोरीलाल गोस्वामी के पात्र और चरित्र मध्यवर्गीय समाज के प्रतिनिधि हैं, यद्यपि उनका चित्रण सामाजिक वास्तविकता की भूमि पर न होकर परम्परागत प्रेम-पद्धति की भूमिका पर हुआ है। गोस्वामीजो ने ऐतिहासिक, सामाजिक, गार्हस्थिक और काल्पनिक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे, परन्तु सबके मूल म प्रेम चर्चा ही प्रधान रूप से आ पाई।'[1]

गोस्वामीजी के सामाजिक और पारिवारिक उपन्यासों के अन्तगत हम निम्न-लिखित रचनाओ को ग्रहण करना उचित समझत हैं—

रचना	प्रकाशक	सन् | सम्वत्	सस्करण
१—हीराबाई	काशी	१९०४	प्रथम सस्करण
२—चन्द्रावली	काशी	१९०४	प्रथम सस्करण
३—लीलावती	वृ दावन	१९२६	तृतीय सस्करण
४—सुखशर्वरी	काशी	१९४९ वि० स०	प्रथम सस्करण
५—लावण्यमयी	काशी	१८९१	प्रथम सस्करण
६—राजकुमारी	वृन्दावन	१९१०	द्वितीय सस्करण
७—माधवी माधव	वृन्दावन	१९०९	प्रथम सस्करण
८—प्रेममयी	वृन्दावन	१९१४	संदिग्ध
९—प्रणयिनी परिणय	काशी	१८९०	प्रथम सस्करण
१०—पुनर्जन्म या सौतिया डाह	काशी	१९०७	प्रथम सस्करण
११—त्रिवणी या सौभाग्य श्रेणी	काशी	१९०७	प्रथम संस्करण
१२—तरुण तपस्विनी	काशी	१९०५	प्रथम सस्करण
१३—चपला (चार भाग)	वृन्दावन	१९१६	द्वितीय सस्करण
१४—कुसुम कुमारी	वृन्दावन	१९१५	द्वितीय संस्करण
१५—अगूठी का नगीना	वृन्दावन	१९१५	द्वितीय सस्करण

य उपन्यास 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के आर्य पुस्तकालय म अभी भी सुरक्षित हैं। "याकूती तख्ती" या "यमज सहोदर" को नागरी प्रचारिणी सभा को सूची में *उपन्यास को श्रेणी मे रखा गया है*, पर वास्तव में वह जासूसी उपन्यास की गणना में आता है। शिवनारायण श्रीवास्तव ने इनके सामाजिक उपन्यासों के विषय में लिखा है : "गोस्वामीजी को तत्कालीन समाज का अच्छा ज्ञान था और उनके सामाजिक चित्रण में पर्याप्त सजीवता है। अपने सामाजिक उपन्यासों में उन्होंने देश-काल का भी ध्यान रखा है। कथोपकथन में भी उनको अच्छी सफलता मिली है।"[2]

---

१. नन्ददुलारे बाजपेयी : "आधुनिक साहित्य," पृ० १३८।
२ शिवनारायण श्रीवास्तव : 'हिन्दी उपन्यास', पृ० ८२।

जिस प्रकार से बंगला साहित्य में बंकिमचन्द्र और शरतचन्द्र सामाजिक उपन्यासों का भण्डार भर रहे थे, उसी प्रकार *हिन्दी साहित्य में किशोरीलाल गोस्वामी ने उपन्यासों को* विषय-वस्तु के लिए सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्र चुना। समाज के सजीव एवं यथार्थ चित्र इनके उपन्यासों में देखने के लिए मिलते हैं। स्वयं उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द ने लिखा है : "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहन और विकासपूर्ण होगा, उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा।[1]"

यज्ञदत्त शर्मा ने लिखा है : "जो सामाजिक दृष्टिकोण हिन्दी उपन्यास साहित्य को किशोरीलाल गोस्वामी ने प्रदान किया, वह बहुत पिछड़ा हुआ था, परन्तु यहाँ इतना अवश्य मानना पड़ता है कि गोस्वामीजी इस साहित्य को मानव जीवन के अधिक निकट लाने में सफल हुए और हिन्दी उपन्यास साहित्य को गोस्वामीजी की *यही सबसे बड़ी देन है।*"[2]

शर्माजी की इस उक्ति ने लेखक के साथ न्याय कर दिया है।

गोस्वामीजी पर किसी विदेशी परम्पराओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। कुछ समीक्षकों ने अपने उथले विचारों के आधार पर उन्हें अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रभावित माना है, पर गोस्वामीजी कट्टर सनातनी तथा रूढ़िवादी थे। भारत में जो कट्टर मुस्लिम संस्कृति पाँच सौ वर्ष तक घर किये रही, उसी से उन्हें सख्त घृणा थी और अपने सामाजिक उपन्यासों में यद्यपि मुगलकालीन परम्पराओं और विलासिता-पूर्ण घटनाओं का वर्णन किया है, पर उनके हृदय में व्याप्त हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठा तथा हिन्दू संस्कृति का प्रेम अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। गोस्वामी मत के मानने वाले जन्मजात ही कट्टर वैष्णव होते हैं, वे किस प्रकार अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति से प्रभावित हो सकते हैं। इस कटु आलोचना को तो हम शून्य अंश में भी मानने को तैयार नहीं हैं कि उनके साहित्य पर अंग्रेजी के उपन्यासकारों का प्रभाव पड़ा है। बंगला साहित्य में उपन्यासों की धूम से ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक उपन्यासों की रचना करते समय गोस्वामीजी का ध्यान तो अवश्य ही बंगला के साहित्यकारों की ओर गया होगा, इसलिए हिन्दी में कुछ बंगला से उनके द्वारा उपन्यास भी अनूदित हुए हैं। यद्यपि उन्होंने बंगाल की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को निकट से परखा है, वहाँ की साहित्यिक रचनाओं का गहन अध्ययन किया है, पर हिन्दी साहित्य में गोस्वामीजी ने सामाजिक तथा पारिवारिक मौलिक उपन्यास प्रथम बार लिखे, जिनकी गणना साहित्य-कोटि में की जाती है। उनके उपन्यासों में उस युग की प्रचलित सारी औपन्यासिक मान्यताओं का समावेश है तथा

---

१. प्रेमचन्द "कुछ विचार", पृ० ३८, ५४।
२. यज्ञदत्त शर्मा, "हिन्दी के उपन्यासकार", पृ० २५।

उसके साथ ही साथ कुछ नवीन धारणाएँ भी समाविष्ट की गयी हैं। उपन्यास की नूतन विधाओं के दर्शन गोस्वामीजी के उपन्यासों में हुए हैं। चरित्र-चित्रण उस समय तक के उपन्यासों में गौण वस्तु थी, पर गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में इस अंग का समावेश किया है। नयी-नयी विचारधाराओं और मान्यताओं का उन्होंने समावेश किया है। इसलिए कहा जाता है कि गोस्वामीजी के उपन्यास जासूसी और तिलस्मी उपन्यास-प्रणाली तथा प्रेमचन्द युग के उपन्यासों के बीच की कड़ी हैं। "कथा-विधान" के क्षेत्र में भी गोस्वामीजी ने अपने अथक परिश्रम का स्पष्ट आभास दिया है। एक प्रमुख कथा के साथ अनेक उपकथाएँ जुड़ी हुई हैं। उनके सामाजिक उपन्यासों ने कथावस्तु तथा शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में नूतनता को जन्म दिया है। नया रचना कौशल गोस्वामीजी के उपन्यासों में पाया गया है।

जासूसी, तिलस्मी तथा ऐयारी उपन्यासों के क्षेत्र में भी गोस्वामीजी का उच्च स्थान है। इनके सहयोगी देवकीनन्दन खत्री ने जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों के क्षेत्र में अपना घर कर लिया था। जन साधारण की रुचि इस प्रकार के उपन्यासों को पढ़ने में विकसित हो रही थी। सन् १८८१ में जनमात्र की रुचि को तुष्ट करने के लिए और मनोरंजन की भावना से प्रेरित होकर काशी के प्रसिद्ध व्यवसायी देवकीनन्दन खत्री ने हिन्दी में नये ढंग के उपन्यासों की परम्परा चलाई जिन्हें तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास कहते हैं। पाश्चात्य उपन्यास साहित्य में तो यह परिचित परम्परा थी, पर हिन्दी के लिए यह एकदम नयी घटना थी। "चन्द्रकान्ता" (चार भाग), "चन्द्रकान्ता सन्तति" (२४ भाग), "भूतनाथ" (१८ भाग) सभी तिलस्मी तथा ऐयारी उपन्यास हैं। इन मनोरम उपन्यासों ने पाठकों के मन को इतना मुग्ध किया कि हिन्दी न जानने वालों ने हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। "भूतनाथ" के कुछ भाग लिखकर ही देवकीनन्दन खत्री स्वर्गवासी हुए, तब उनके योग्य पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने भी अनेक ऐयारी और तिलस्मी उपन्यास लिखे और "भूतनाथ" को भी पूरा किया। इन उपन्यासों से जादू की करामातें, तिलस्म का चमत्कार तथा कल्पना की अनोखी उड़ानों का ज्ञान होता है। सबसे अधिक ख्याति "चन्द्रकान्ता" उपन्यास को प्राप्त हुई, उसके अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए तथा अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। छपते ही हाथोंहाथ चन्द्रकान्ता की प्रतियाँ बिक जाती रहीं और आज भी बिकती हैं। ऐसा आभास होता है कि उपन्यास की कथावस्तु और शिल्प चाहे बदल गया है अथवा वैज्ञानिक युग ने भौतिक सत्यता के दर्शन कराये पर अभी भी "चन्द्रकान्ता" के प्रति लोगों में वही आकर्षण है, जो प्रारम्भ में था। नाना प्रकार की सुरंगें, धुनार की पहाड़ियाँ, गुफाएँ तथा तहखाने, और ऐयारी के करिश्मे मानव मात्र को पागल बनाकर काल्पनिक जगत में उड़ा ले जाते हैं। खत्रीजी ने जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यासों में प्रेम और शृंगार को भाव भूमि को निम्न धरातल पर नहीं आने दिया।

"चन्द्रकान्ता" अथवा किसी भी जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यास का कथानक

प्राय एक सा होता है। कोई प्रेमी राजकुमार किसी गुण-सम्पन्न सुन्दर राजकुमारी के प्रेम में विकल होकर उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। उस राजकुमार या राजकुमारी को मिलाने का कार्य जासूस तथा ऐयार करते हैं। ऐयारी के बटुए, तिलस्मी कारनामें, कमन्द फेंकना, चकमक घिसना, दुर्गम से दुर्गम स्थान में पहुँच जाना तो साधारण सी बात है। घोड़े के समान तेज दौड़ना, रूप बदल लेना, बेहोश कर देना और औषधि के द्वारा होश में ले आना भी सहज कार्य है। तिलस्मो में अपार धन-राशि प्राप्त होती है। मीठे फलों के बगीचे होते हैं। ठण्डे पानी के झरने होते हैं। कठिनाइयों के बाद प्रेमी प्रेमिका से मिल जाता है। मध्य युग का वीरता से पूर्ण प्रेम-कथानक इन उपन्यासों में पाया जाता है। मानव मन जासूसी चमत्कारों में उलझा रहता है। उसका समययापन आनन्दपूर्वक हो जाता है। उसी समय "लन्दन का रहस्य", "पेरिस का रहस्य" नामक जासूसी उपन्यास भी अनेक भागों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रहे थे। खत्रीजी ने लिखा है: "सबसे ज्यादा फायदा तो यह है कि ऐसी किताबों को पढ़ने वाला जल्दी किसी के धोखे में न पड़ेगा।"[1]

इन उपन्यासों में जासूसों तथा ऐयारों के पास भी नैतिकता का एक मानदण्ड पाया जाता है और व्यभिचार तथा अन्याय नहीं मिलता है। पापी के लिए दण्ड का विधान रहता है और पुण्यात्मा के लिए मौलिक सुख का अखिल भण्डार खुला रहता है।

पढ़ी लिखी जनता ने भी इन उपन्यासों की वैचित्र्य-प्रधान घटनाओं का स्वागत किया। तभी खत्रीजी के दूसरे सहयोगी गोपालराम गहमरी भी जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। गोस्वामी किशोरीलाल के समान उन्होंने भी "जासूस" नामक मासिक पत्र को जन्म दिया, जिससे अधिक से अधिक रहस्यमय और चमत्कार से पूर्ण घटनाओं का समावेश रहता था। इंगलैण्ड में पुलिस तथा सी० आई० डी० विभाग का विशेष सगठन हुआ तथा "शरलाक होम्स" जैसे चरित्रों की रचना हुई तथा भारत में गहमरीजी ने भी एक से एक बढ़कर जासूसी उपन्यासों को जन्म दिया। इन रचनाओं के सम्बन्ध में देवकीनन्दन खत्री ने लिखा है: "चन्द्रकान्ता में जो बातें लिखी गयी हैं, वे इसलिए नहीं कि लोग उनकी सचाई झुठाई की परीक्षा करें, प्रत्युत इसलिए कि पाठक कौतूहलवर्द्धक हो।"[2]

जासूसी उपन्यासों का क्षेत्र ऐयारी तथा तिलस्मी उपन्यासों की अपेक्षा सीमित होता है। गहमरीजी ने जासूसी कथाओं द्वारा घटना-प्रधान उपन्यासों का ढेर लगाया। जासूसी उपन्यासों में प्रत्येक घटना क्रम से अवतरित होती है। उसमें कौतूहलवर्द्धकता होती है, पर कल्पनाएं मौलिकता के निकट जान पड़ती हैं। ऐयारी उपन्यासों में घटनाओं की भीड़ सी लग जाती है। पात्रों का बाहुल्य हो जाता है कि

---

१. देवकीनन्दन खत्री: "चन्द्रकान्ता" भूमिका से।
२. देवकीनन्दन खत्री: "चन्द्रकान्ता" भूमिका से।

कभी-कभी पाठक भूल-भुलयों में पड़ जाता है। ऐयारी उपन्यासों ("चन्द्रकान्ता", "भूतनाथ") की अपेक्षा गहमरीजी के उपन्यास मानव-जीवन के अधिक निकट हैं। जासूसी उपन्यासों में सनसनी फैलाने वाली घटना का वर्णन होता है। किसी का खून, किसी भयंकर डकैती के समय खून तथा खूनी और चोरी का पता लगाना ही इन उपन्यासों की विशेषता है। *गहमरीजी के जासूसी उपन्यास आज भी जन-साधारण का* मनोरंजन कर रहे हैं। गहमरीजी के पात्र साहसी तथा प्रमुख जासूस हैं। "जासूस" मासिक पत्रिका का प्रकाशन तीस वर्ष तक होता रहा। खत्रीजी तथा गहमरीजी की देखा-देखी अनेक उपन्यासकार जासूसी तथा तिलस्मी उपन्यास लिखने के लिए आगे बढ़े।

युगीन वातावरण में चमत्कारपूर्ण घटनाओं के लिए प्रमुख स्थान बन गया। खत्रीजी के उपन्यासों की भाषा के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है: "उन्होंने ऐसी भाषा का व्यवहार किया है, जिसे थोड़ी उर्दू पढ़े लोग भी समझ लें। कुछ लोगों का यह समझना कि उन्होंने राजा शिवप्रसाद वाली उस पिछली "आम फहम" भाषा का बिलकुल अनुसरण किया जो एकदम उर्दू की ओर झुक गयी थी, ठीक नहीं। कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि उन्होंने साहित्यिक हिन्दी न लिखकर "हिन्दुस्तानी" *लिखी जो केवल इसी प्रकार की हलकी रचनाओं में काम दे सकती है।*"[1]

हरेकृष्ण जौहर और गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यासों में भी खत्रीजी के समान हलकी-फुलकी भाषा का जन-साधारण के मनोरंजन के लिए प्रयोग हुआ है। इस प्रकार की रचनाओं के अनुकूल यही मिश्रित भाषा थी, जो लोगों के कण्ठ में समाई थी।

किशोरीलाल गोस्वामी ने निम्नलिखित तिलस्मी ऐयारी और जासूसी उपन्यास लिखे—

(१) कटे मूड़ की दो-दो बातें (सन् १६०५)
(२) याकूती तख्ती या यमज सहोदर (सन् १६०६)
(३) खूनी औरत के सात खून (सन् १६७५ वि० संवत्)
(४) जिन्दे की लाश (सन् १६१४)
(५) गुप्त गोदना (काल सन्दिग्ध अवस्था में है)

आज तो इनके किसी उपन्यास का प्रथम संस्करण उपलब्ध है और किसी का द्वितीय अथवा तृतीय प्राप्य है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त का कथन है: "इन ऐयारी, तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यासों का प्रचार खूब हुआ, यहाँ तक कि दूसरी परम्पराओं के उपन्यासों में भी कभी-कभी ऐयारी और तिलस्म ढूँढे जाने लगे। एक अति प्राकृत

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५१।

भावना के आधार पर ही इन उपन्यासों की रचना हुई थी। इसके लिए मेरा ध्यान है कि उनकी मध्ययुगीन विकृत रुचि को ही उत्तरदायिनी समझना चाहिए।"[1]

गोस्वामीजी के युग में हिन्दी उपन्यास साहित्य तिलस्म तथा ऐयारी से जासूसी क्षेत्र मे आया और जासूसी क्षेत्र से निकलकर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पारिवारिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ। यही कारण है कि गोस्वामीजी के उपन्यासों में सामाजिक, ऐतिहासिक व तिलस्मी सब दृष्टिकोणों का सरस समन्वय हो जाता है। लक्ष्य की विभिन्नताएं एकता मे परिणत हो गयी हैं। उन्होंने उपन्यासों का जन-साधारण के सामने ढेर लगा दिया, जो भिन्न-भिन्न रुचि वाले जन-साधारण का मनोरंजन सफलता-पूर्वक करते रहे। हिन्दी उपन्यास साहित्य को उन्होंने नवीन धारा एवं नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है तथा नया सन्देश भी देने में सहायता की है। इसीलिए आचार्य शुक्लजी ने गोस्वामीजी के विषय में लिखा है : 'और लोगों ने भी उपन्यास लिखे हैं, पर वह वास्तव में उपन्यासकार न थे और चीजें लिखते-लिखते वह उपन्यास की ओर भी जा पड़ते थे। पर गोस्वामीजी वहीं पर घर करके बैठ गये। एक क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुन लिया और उसी मे रम गये।"[2]

इस समय के उपन्यास साहित्य की विशेषता रहती थी कि कथानक के अन्तर्गत कोई न कोई नैतिक आदर्श निहित रहता था। भारतीय जन-जीवन के पतन और संस्कृति का ह्रास देखकर लेखकों को मानसिक पीड़ा होती थी, इसलिए उपन्यास का कथानक चाहे सामाजिक हो, चाहे ऐतिहासिक अथवा जासूसी या तिलस्मी, सब में लोक-जीवन के हितकारी आदर्श गुम्फित रहते थे।

गोस्वामीजी के उपन्यासों में भी कौतूहलवर्द्धकता अत्यधिक मात्रा में प्राप्त होती है। "लखनऊ की कब्र" एक ओर ऐतिहासिक उपन्यास है, दूसरी ओर सफल तिलस्म पाया जाता है। उसके सारे कार्य-व्यापार और घटनाएं तिलस्म के सहारे चलते हैं। प्रेम घटनाओं की अवतारणा भी तिलस्म के सहारे ही होती है। "तारा" उपन्यास मे भी "रंभा" के द्वारा अनेक ऐयारी के करिश्मे दिखलाइ देते है। गोस्वामीजी वास्तव में पूर्व-प्रेमचन्द युग के प्रतिनिधि उपन्यासकार हैं, जिन पर उर्दू काव्य और पारसी नाटकों का प्रभाव पूर्ण लक्षित होता है। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है : "साधारण जनता तो तिलस्म, जासूस तथा ऐयारों के पीछे पागल हो रही थी और ऐतिहासिक उपन्यासों में भी इन्हीं की खोज करती थी। इसलिए उपन्यासकार ऐतिहासिक उपन्यासों में भी तिलस्म, ऐयार आदि की सृष्टि किया करता था।"[3]

गोस्वामीजी के उपन्यासों मे भी इतिहास की आड़ मे तिलस्म, ऐयार और

---

१. माताप्रसाद गुप्त : "हिन्दी पुस्तक साहित्य", पृ० ८२-८३।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५२।
३. डॉ० श्रीकृष्णलाल : "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास", पृ० ३०२।

प्रेम-प्रसंगों की पूरी तरह से अवतारणा हुई है। इन रचनाओं से कल्पना की अद्भुत उड़ान के साथ ही साथ पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन भी हो जाया करता था। उस युग-विशेष में उपन्यासों के समस्त अवयव इसी प्रकार निर्धारित किये जाते थे। उस युग में इसी प्रकार के उपन्यासों की माँग थी, जिसको पूरा करने वालों में उपन्यास-सम्राट् गोस्वामी किशोरीलाल का प्रमुख स्थान रहा है। उनके उपन्यासों में भारत की प्रचलित संस्कृति तथा परम्पराओं की अपूर्व पुष्टि प्राप्त होती है वे यहाँ के रीति-रिवाजों के पूर्ण समर्थक थे और यद्यपि उनमें कहीं-कहीं बुराइयाँ भी थीं, पर वे जान-बूझ कर उनका समर्थन करते थे। जीवन की शाश्वत बँधी हुई धारा में उनका अटूट विश्वास था, तोड़ फोड़ अथवा किनारे काटने में उनकी सनातनी आत्मा साथ नहीं देती थी। उनकी समस्त रचनाओं में कर्मवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है। इस जन्म और पूर्व जीवन, दोनों के पापों का फल मानव को भोगना पड़ता था, अतः उनके पात्रों में संकट को सहन करने का अपूर्व मानसिक बल है। पाप-यातनाओं से उनकी भौतिक आत्मा दुखी रहती है और जिसका छुटकारा केवल इस जगत में मृत्यु से ही प्राप्त होता है। भारतीय नारियाँ भी अपनी परम्परागत रूढ़ियों से बँधी हुई हैं। वे सदैव मर्यादाओं का यथावत् पालन करती हैं और पुरुषों की दासता में रहकर उनका गुरुत्व मानकर अपने जीवन को सफल समझती हैं। वे अनुगामिनी हैं और अपने भौतिक जीवन को रूढ़िगत मान्यताओं के अनुसार ही व्यतीत करती हैं। गोस्वामीजी के सब प्रकार के उपन्यासों में इस प्रकार के नियमों तथा बँधी हुई मर्यादाओं का सफल चित्रण हुआ है। कहीं कहीं पर बातों तथा हाव-भावों में वासना के चटकीले चित्र भी अनायास अवतरित हो गये हैं।

गोस्वामीजी के बाद जितने भी उस युग के हिन्दी के उपन्यासकार हुए हैं, उन्होंने किशोरीलाल के उपन्यासों में अंकित मान्यताओं का अनुकरण अपनी रचनाओं में भी किया है। ब्रजनन्दन सहाय और गंगाप्रसाद गुप्त इसी परम्परा पर आधारित होकर साहित्य में अपना योगदान दे रहे थे। प्रमुख रूप से गोस्वामी किशोरीलाल का स्थान प्रथम सामाजिक उपन्यासकार के रूप में लिया जाना चाहिए, यद्यपि उन्होंने ऐतिहासिक, तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास भी लिखे हैं। युगीन जन-रुचि को ध्यान में रखकर उपन्यास के क्षेत्र में गोस्वामीजी ने मौलिक नूतन सामाजिक उद्भावनाएँ की हैं। वास्तव में तो ऐतिहासिक उपन्यासों में भी सामाजिक और पारिवारिक समस्याएँ गुथी रहती हैं। सबका मूल लक्ष्य मानव-जीवन की शाश्वत समस्याओं की अभिव्यक्ति है, अतः प्रारम्भिक रचनाओं में भी भारतीय प्राचीन समाज और संस्कृति के चित्र अंकित हुए हैं। हो सकता है कि नवीन दृष्टिकोण के आधार पर आधुनिक उपन्यासों के श्रेष्ठ गुण उनमें न आने पाये हों, पर फिर भी जीवन की मूलभूत प्रवृत्तियाँ—हँसना, रोना, आश्चर्य, दुःख, चमत्कार, कलह, संघर्ष इत्यादि मानवीय विचार-धाराएँ उन रचनाओं में भली-भाँति चित्रित हुई हैं। इन प्राचीन रचनाओं को आज

की पृष्ठ-भूमि में पढ़ने से हमारा एक ओर मनोविनोद होता है तो दूसरी ओर हमें अपनी प्राचीन सम्पत्ति की गौरव-गाथा का ज्ञान प्राप्त होता है।

डॉ० गोविन्दप्रसाद शर्मा ने लिखा है "श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने प्रारम्भिक युग का नेतृत्व किया और पण्डित बल्देवप्रसाद मिश्र, गंगाप्रसाद गुप्त, जैरामदास गुप्त और बलभद्रसिंह आदि ने उनका अनुकरण किया। इन सभी ने काव्य, धर्म तथा नीति-शास्त्रों की सूक्तियों का आधार लेकर आदर्श कर्त्तव्य-पथों का निर्देशन किया है।"[1]

गोस्वामीजी के उपन्यासों में पूर्व-प्रेमचन्द युग के मानव की सच्ची लगन और निर्बलताओं का वर्णन है। अत: युगीन गौरव अथवा हीनता से पूर्ण चित्र दोनों का ही अंकन करना उपन्यासकार का प्रथम कर्त्तव्य होता है। यही सच्चा चित्र होता है, चाहे उसमें वासना के रंगीन चित्र उतर आवें। किशोरीलाल के उपन्यास मानव-जीवन के यथार्थ चित्र हैं, जिनसे तत्कालीन रीतियों, प्रथाओं एवं परम्पराओं का ज्ञान उपन्यास के पाठकों को प्राप्त होता है।

सप्तम अध्याय

गोस्वामीजी के उपन्यासों का कथावस्तु की दृष्टि से शास्त्रीय अध्ययन

(अ) ऐतिहासिक उपन्यास

प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों में प्रमुख रूप से कथावस्तु को महत्व दिया जाता है। उस युग के समस्त उपन्यासकार कथानक को सबसे अधिक सबल बनाने में प्रयत्नशील रहे हैं। उनके पास रोचक और कौतूहलपूर्ण सामग्री होती है, जिसका सूत्र पकड़ कर वे उपन्यास मे विकसित करते जाते हैं। कथावस्तु की दृष्टि से प्रत्येक उपन्यास को दो भागों में विभाजित कर लेना उचित जान पड़ता है—

(१) घटना प्रधान अथवा वस्तु-प्रधान, (२) चरित्र-प्रधान अथवा पात्र-प्रधान।

घटना प्रधान—वे उपन्यास हैं जिनमे कथाकार का मूल लक्ष्य घटनाओं का उत्थान और पतन दिखाना रहता है। किसी न किसी महत्वपूर्ण घटना से वे प्रभावित हो जाते हैं और वहीं से उन्हें उपन्यास की कथावस्तु का का सूत्र मिलता जाता है। प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों में घटना प्रधान कथावस्तु की प्रधानता पायी गयी है। लेखकों का समूचा ध्यान 'घटना' की ओर केन्द्रित रहता है जिसे उन्होंने यथाशक्ति मनोरंजक तथा चमत्कारपूर्ण बनाया है।

चरित्र प्रधान—वे उपन्यास हैं जिनमे कथाकार का सारा ध्यान पात्रों के चारों ओर केन्द्रित रहता है। किसी भी चरित्र के गुणों अथवा उसके कार्यकलापों अथवा उसके सुख-दुख की मार्मिक कथा से लेखक प्रभावित हो जाता है और उस चरित्र के नाम पर ही वह उपन्यास का नामाकन करता है। लेखक का अधिकार रहता है कि चाहे तो वह पात्रों के नामों को बदल दे अथवा जीते जागते पात्रों को जैसा का तैसा ग्रहण कर ले। *चरित्र-प्रधान उपन्यासों में कथावस्तु चरित्रों को मूल* लक्ष्य बना कर ही आगे विकसित होती है। यद्यपि प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों मे घटनाओं की कथावस्तु मे प्रधानता है, फिर भी उपन्यासों का नामकरण पात्रों के नाम पर ही हुआ है। यदि ध्यानपूर्वक कथावस्तु के भावपक्ष की ओर दृष्टि डालें तो गोस्वामी किशोरीलाल के उपन्यासों में हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा का प्रश्न ही प्रमुख है। मुस्लिम संस्कृति के काले पक्ष विलासिता के चित्र तथा हिन्दू नारियों की वीरता,

उनके सतीत्व की रक्षा गोस्वामीजी के उपन्यासों की मूल कथावस्तु रही है। इसी थीम से प्रभावित होकर चमत्कारपूर्ण घटनाओं की भी आयोजना लेखक ने की है।

कलापक्ष की दृष्टि से प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में कथा संगठन का मूल उद्देश्य रूढ़िवादी, सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक रहा है। आधुनिक उपन्यासों के समान वचन-विदग्धता तथा वक्रता और पटुता उनमें नहीं पायी जाती है। आधुनिक युग जिस प्रकार से नई नई समस्याओं तथा जीवन के प्रति आवरण लेकर चल रहा है, उस युग की रचनाओं में भी अजीब सी उलझन सहज में कहीं-कहीं पर आ जाती है। वृत्त के चयन में प्रेमचन्द-युग का तो विशेष स्थान है ही, पर इसके पश्चात् जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी इत्यादि उपन्यासकार तो कथावस्तु के विकास में अनोखी उलझनें उपस्थित करते हैं और उनका निदान भी प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं। पूर्व-प्रेमचन्द युग में कथावस्तु का प्रमुख सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष से रहा है। कथावस्तु के चरम विकास पर ही उस व्यक्ति की रक्षा होती है और इस कार्य के लिए किसी भी सबल पात्र की अवतारणा कर ही देता है। उस युग की छाया में कथानक का निर्माण लेखक के लिए सबसे सरल कार्य था। इसलिए उस युग के सारे उपन्यास सुखान्त हैं। जीवन भर दुख झेलकर भी अन्त में सुखद मिलन होता है। नायक और नायिका को अटूट विश्वास रहता है कि विपत्ति के काले बादल दूर हो जावेंगे और सुखद चन्द्रमा का प्रकाश फैलेगा। इतना ही नहीं, इन उपन्यासों में कथावस्तु के विकास के लिए आकस्मिक घटनाओं की आयोजना की जाती है। कभी कभी ऐसी अनोखी घटनाएं घटित हो जाती हैं, जिससे पाठकों को महा अचरज लगता है, पर लेखक पीछे संयोग की भावना का प्राधान्य रहता है। कथावस्तु ही प्रत्येक उपन्यास का वास्तविक ढाँचा होता है, अतः इसके अन्तर्गत घटनाओं और पात्रों के विकास के लिए पूर्ण स्थान रहना चाहिए। किसी-किसी उपन्यास में उपन्यासकार स्वयं ही कथा कहता है। कहीं पात्रों के द्वारा कथा कही जाती है पर समूची कहानी मनोरंजक तथा चित्ताकर्षक होनी चाहिए। इसके साथ ही साथ उपन्यास कितना ही लम्बा हो पर कथावस्तु का तारतम्य नहीं टूटना चाहिए। आदि से अन्त तक कथा का प्रवाह समतल गति से होना चाहिए व उसमें धारावाहिकता हो। पाठकों के मन को सन्तुष्ट तथा आकर्षित करने के लिए कथावस्तु में सरसता, सुगमता तथा प्रभावोत्पादकता होनी चाहिए। शिवनारायण श्रीवास्तव ने कथावस्तु की दृष्टि से उपन्यासों के दो भेद किये हैं : "एक तो वे *जिनकी कथावस्तु असम्बद्ध या शिथिल होती है (novels of loose* plot) और दूसरे वे जिनकी कथावस्तु सम्बद्ध या सुगठित हो (novels of organised plot)। पहले में बहुत सी घटनाओं का घटाटोप मात्र होता है, उनमें आपस में कोई सहज अथवा तर्कसंगत सम्बन्ध प्रायः नहीं होता।"[1]

उपन्यास में कथानक के द्वारा भिन्न-भिन्न अवयव एक-दूसरे से मिले रहते हैं।

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास," पृ० १२।

कथाकार की अपनी इच्छा होती है कि वह अतीत से अपनी कथावस्तु का सूत्र खोजे अथवा वर्तमान से। अतीत की कहानी कहने वाला तथा उसका यथार्थ चित्र उतारने वाला लेखक ऐतिहासिक उपन्यासकार की श्रेणी में भी आ जाता है। यदि कथानक का मूल स्रोत सामाजिक एवं पारिवारिक घटना है तो कथावस्तु सामाजिक ढाँचे को ग्रहण करके सामाजिक-पारिवारिक उपन्यासों को जन्म देती है। यदि धार्मिक, नैतिक आदर्शों और मान्यताओं के बीच से कथानक का माध्यम मिला है तो उन रचनाओं की धार्मिक भावनाएँ प्रधान रहेंगी। शास्त्रीय दृष्टि से कथावस्तु के दो उपनियम हैं—आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथावस्तु। आधिकारिक कथावस्तु में लेखक के द्वारा निर्धारित की हुई प्रमुख कथा रहती है तथा प्रासंगिक कथावस्तु में वे सहायक कथाएँ आ जाती हैं जो मुख्य कथानक को विकसित करने में अपना योगदान प्रदान करती हैं। प्रत्येक उपन्यास में दोनों प्रकार की कथाएँ साथ ही साथ आदि से अन्त तक निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं। कथानक का विस्तार भी इसी प्रकार से होता है और उपन्यास का आकार विशद् हो जाता है। गोस्वामीजी ने दोनों प्रकार की कथावस्तु को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। लेखक की अपनी स्वयं की विचारधारा में किसी भी उपन्यास की कथावस्तु का सगठन होता है तथा लेखक के दृष्टिकोण को जन्म देने वाले उसके पारिवारिक, *सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक वातावरण होते हैं एवं वह युग विशेष भी है जिसके* साथ-साथ उसने दिक्षा दीक्षा पाई है व उसके मस्तिष्क और विचारों में परिपक्वता आई है। अतीत और वर्तमान दोनों युगों को पृष्ठ-भूमि का ध्यान में रख कर गोस्वामी किशोरीलाल ने अपने उपन्यास लिखे हैं। उनके उपन्यासों का मूल आधार विगत हिन्दू राज्यों का वैभव तथा सम्पन्नता और वर्तमान मुस्लिम संस्कृति का अनाचार और अनैतिक अत्याचार है। दूसरे, उनके साथी देवकीनन्दन खत्री निरन्तर जासूसी, तिलस्मी तथा ऐयारी उपन्यास लिख रहे थे। इस युगीन प्रवृत्तियों ने गोस्वामीजी की विचारधारा पर भी अटूट प्रभाव डाला है। उनकी समस्त रचनाएँ उनके विचारों की प्रतिकृति हैं।

गोस्वामीजी ने अपने जीवन-काल में लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे, उतने आज तक किसी लेखक ने भी नहीं लिखे हैं। आचार्य शुक्लजी ने स्वयं ही उन्हें हिन्दी का प्रथम "साहित्यिक उपन्यासकार" कहा है। उनकी रचनाएँ मौलिकता की दृष्टि से खरी हैं। प्रत्येक उपन्यास के लिए उनके पास पूर्व-निश्चित योजना रही है और उसका सफल अंकन उनके उपन्यासों में हुआ है। लोकप्रिय परम्पराओं तथा कौतूहलवर्द्धक प्रवृत्तियों को उन्होंने पूरी तरह से अपने उपन्यासों में अपनाया है। यथार्थवादी तथा आदर्शवादी मान्यताओं को अपने उपन्यासों में पूर्ण स्थान दिया है। वास्तव में आदर्श *तथा यथार्थ का उचित समन्वय करना ही गोस्वामीजी का लक्ष्य रहा है।* सर्वप्रथम हम गोस्वामी किशोरीलाल के ऐतिहासिक उपन्यासों की कथावस्तु का मूल्यांकन करेंगे।

"हृदय हारिणी व आदर्श रमणी" गोस्वामीजी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। सन् १६१५ में दूसरी बार यह सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से किशोरीलाल के सुपुत्र छबीलेलाल गोस्वामी के द्वारा प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व सन् १८६० में इसका प्रथम सस्करण किशोरीलाल के अन्तरंग मित्र व "ब्राह्मण" के सम्पादक स्वर्गीय प्रेमदेव पण्डित प्रतापनारायण मिश्र (कानपुर निवासी) के द्वारा "हिन्दुस्थान" दैनिक पत्र मे प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास के साथ ही किशोरीलाल ने निश्चित कर लिया था कि "उपन्यास" नामक मासिक पुस्तक भविष्य में सजधज के साथ निकला करेगी।

हृदय हारिणी—इसकी कथावस्तु भारतीय संस्कृति के आदर्श के आधार पर रची गयी है। समस्त कथानक आदर्श रमणी के चारो ओर ताने-बाने सा गुंथा हुआ है, यद्यपि इसका मूल आधार ऐतिहासिक है। बगाल के नवाब सिराजुद्दौला का अस्त, अंग्रेजों की सहायता से मीरजाफरखाँ का उदय और मुर्शिदाबाद की अवनत अवस्था "हृदय हारिणी" में धारावाहिक रूप से दृष्टिगोचर होती है। सिराजुद्दौला के राज्य मे प्रजा की दुर्दशा, अशान्ति और अन्याय, जन साधारण के हृदय में नवाब के अत्याचारों का भय, नवाब साहेब के मनमाने अत्याचार तथा निरंकुश शासन, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उस समय परिलक्षित हुआ जब मुर्शिदाबाद के राजमार्ग पर अपार भीड और नवाब साहेब का आदेश कि अपार भीड पर एक मतवाले हाथी को छोडना और उसके द्वारा जनता को कुचलना, फाडना, चीरना, घायल करना और इस निष्ठुर तमाशे के द्वारा नवाब सिराजुद्दौला के दिल को आनन्द मिलता है। जब इस प्रकार की दुघटना घट रही थी, उसी मार्ग से एक परम सुन्दरी बालिका "कुसुम" का "धान का लावा" आँचल म बाँध कर जल्दी-जल्दी घर की ओर जाना, भीड के धक्के से उसके लावे का फल जाना, वहीं पर भोली हिरनी के समान उसका रोना, हाथ मल मल कर पश्चात्ताप करना, इतने में मतवाले हाथी का उसकी ओर लपकना, उसका घबडाकर चिल्लाना, इसी समय एक वीर राजपूत युवक के द्वारा तीर का चलाना और हाथी का मर जाना तथा लडकी का मुक्त होकर अपने घर की ओर चल जाना घटित होता है। दूसरे परिच्छेद मे कथावस्तु का मूल आधार प्राप्त होता है कि बग देश के कृष्णनगर नामक नगर मे महाराजा धनश्वरसिंह का राज्य करना, उनके शासनकाल में प्रजा म सुख और सम्पन्नता, उनकी स्त्री कमलादेवी साक्षात लक्ष्मी रूपा जिसके पिता राजगृह के राजा लक्ष्मणसिंह थे। सन् १७४० मे मुसलमानो क अत्याचार से सारा राजगृह तहस नहस हो गया था और स्वय राजा लक्ष्मणसिंह वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए स्वर्गवासी हुए थे। कमलादेवी की अवस्था विधवा होन पर महान् दयनीय हो गयी थी। सारा कृष्णनगर श्मशानवत् बन गया था, पर उनके मन्त्री महीश्वर शर्मा न बडी निपुणता से राजकार्य चलाया था। इसी समय कमलादवा के कन्यारत्न का जन्म होना, एक तरफ उसके पालन पोषण का भार, दूसरी ओर सिराजुद्दौला मुहम्मद के द्वारा

कृष्णनगर पर कब्जा कर लेना होता है। अतः सन् १७४५ में कमलादेवी भेष बदल कर तीन-चार वर्ष की *कन्या तथा चम्पा नामक* दासी को लेकर वहाँ से भाग कर मुर्शिदाबाद में अपने मामा राजसिंह और मामी विमलादेवी के यहाँ दुःख के दिन काटने लगी। धीरे धीरे यह बालिका युवा हो गया, पर घर की अत्यन्त दयनीय अवस्था के कारण उसे अपनी तथा परिवार की आवश्यक वस्तुओं को क्रय करने के लिए स्वयं बाजार जाना पड़ता था और इस दुर्घटना के समय भी वह अपनी रोगिनी माँ के लिए "धान का लावा" लेने गयी थी। एक भारतीय परिवार के आर्थिक दुःख की कहानी लेखक ने उठाई है। इस आपत्ति के समय एक अपरिचित युवक ने आकर उसकी *मतवाले हाथी* से रक्षा की और लावे के साथ सुरक्षित उसे उसके घर तक पहुँचा दिया था। बालिका कुसुम कुमारी और वह युवक दोनों इसी समय से एक-दूसरे पर मोहित हो गये। युवक *वीरेन्द्रसिंह के प्रेम-वार्त्तालाप से तो यहाँ तक प्रतीत होने लगा, जैसे इन दोनों का जन्म*-जन्मान्तर का प्रेम-सम्बन्ध है। इसके पहले भी दो वर्ष पूर्व वीरेन्द्रसिंह ने कुसुम को माला बेचती हुई एक मेले में देखा था। उस समय भी उसकी निर्धन तथा दयनीय *अवस्था का आभास पाकर उसने सारी मालाएँ खरीद ली थीं। अब तक मामी विमला*-देवी का स्वर्गवास हो गया था तथा कमलादेवी और उनकी बेटी कुसुम दोनों दुखी जीवन बिता रही थीं। पाँच मालाओं के बदले में पाँच रुपये पाकर माँ बेटी को *अनायास आर्थिक सहायता प्राप्त हुई थी। वीरेन्द्र ने कुसुम की माँ को समझा दिया* कि महाराज रणधीरसिंह की सेना के सिपाहियों को कुमारी कन्या के हाथ की सिली हुई टोपियों की आवश्यकता है, जिसके बदले में काफी धन मिलेगा। इस काम को पाकर *कुसुम की माँ बड़ी प्रसन्न हुई और कुसुम का भी नित्य बाजार में जाना और दर*-दर मारा फिरना समाप्त हो गया। वीरेन्द्रसिंह ने टोपी का नमूना, कपड़ा, सुई डोरा सब सीने का सामान उसको घर पर ही भिजवा दिया। कुसुम ने भी जी लगा कर इस *कार्य को किया और एक महीने में ही बीस टोपियाँ तक तैयार करने लग गयी और* इस प्रकार वीरेन्द्रसिंह से उसे सौ रुपया मासिक प्राप्त होने लगा। 'वीरेन्द्र की शिक्षा' से कुसुम "आदर्श रमणी" बन गयी और उसका सन्दूक भी रुपये-पैसों से भर गया।[1]

धीरे-धीरे वीरेन्द्र कई दिनों के लिए कहीं दूसरे स्थान को चल गये। कई वर्ष बीत गये और कुसुम सूख-सूख कर काँटा हो गयी। उसके घर की अवस्था भी अत्यन्त दयनीय हो गयी। कई बार दासी चम्पा और कुसुम को कोरा उपवास ही करना पड़ता था। ऐसी विपत्ति में भी नवाब सिराजुद्दौला से डर कर इन अबलाओं ने अपने संकट का समय अपने सतीत्व की रक्षा करके व्यतीत किया। यह उपन्यास बंग देश की घटनाओं से सम्बन्धित है, जिसकी स्वाधीनता का नाश करने वाला पहला नवाब बख्तियार खिलजी हुआ था। उसके बाद मुसलमान बादशाहों की परम्परा में कई

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : 'हृदय हारिणी' व "आदर्श रमणी", पृ० १६।

हाकिम हुए। जब सन् ११३५ में मुहम्मद तुगलक दिल्ली का बादशाह हुआ, तब उसने क्रम से बहादुरशाह और बहरामखाँ को बंगाल का हाकिम बनाया। इब्राहीमखाँ बंगाल का हाकिम हुआ तथा वास्तव में हिन्दुस्तान में अंग्रेजी की जड़ जमाने वाला यही था। उसके बाद सन् १७०१ में मुर्शिदकुलीखाँ बंगाल का नवाब हुआ। उस मार कर अलीवर्दीखाँ नवाब बना। सन् १७५६ में वह मर गया और उसी खानदान में अलीवर्दीखाँ का जानशीन नाती सिराजुद्दौला बंगाल के तख्त पर बैठा। वह अन्तिम नवाब था। उसके बाद मीरजाफर इत्यादि कई नवाब हुए, पर वे सब अंग्रेजों के हाथ के खिलौने थे। इस समय रंगपुर के बूढ़े राजा महेन्द्रसिंह बड़े तेजस्वी और प्रतापी थे। वे संस्कृत के पण्डित और धर्मनिष्ठ थे। इनका सुयोग्य पुत्र नरेन्द्रसिंह (वीरेन्द्रसिंह) था। ये अपने युवा पुत्र को राज्य का भार सौंप कर स्वयं काशी यात्रा को चल दिये। नरेन्द्रसिंह २१ वर्ष की आयु में ही संस्कृत और फारसी के पण्डित हो गये थे। इनका भी विवाह नहीं हुआ था और इनकी छोटी बहिन लवंगलता भी चौदह वर्ष की हो गयी थी, पर अभी तक उसके विवाह की भी कहीं चर्चा नहीं था। राजा नरेन्द्रसिंह कर्त्तव्यनिष्ठ, धैर्यवान तथा पुरुषार्थी युवक थे। नवाब सिराजुद्दौला के पतित चरित्र का प्रमाण पाकर भी, जबकि उसने नरेन्द्रसिंह की बहिन लवंगलता पर अपनी पापी दृष्टि लगाई, उस समय भी वह नहीं घबराया बल्कि तब नरेन्द्रसिंह ने तलवार के कब्जे पर हाथ डाल कर कहा है— 'इस पाजी की इतनी मजाल ! क्या भारत से आज हिन्दुओं का बिल्कुल नाम ही मिट गया ! तब मेरा नाम नरेन्द्र नहीं कि उस बदमाश को इस कमीनेपन का मुँहतोड़ जवाब दूँ।'[1] बहुत दिनों बाद वीरेन्द्र (नरेन्द्र) फिर कुसुम से मिला। वह कमलादेवी से भी मिला जो इस समय असाध्य रोग से दुखी थी। वीरेन्द्र की इतने दिनों की अनुपस्थिति ने इन युगल नारियों को चिन्तित कर रखा था। वीरेन्द्र ने स्पष्ट उन्हें समझा दिया कि वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लार्ड साहेब का गुप्तचर होकर तथा भेष बदलकर रहता था और बंगाल के नवाब के अत्याचारों का समाचार लार्ड साहेब को भेजता रहता था। उसके बाद पिता की मृत्यु उनका श्राद्ध, तर्पण-क्रिया-कर्म करना, वृन्दावन-यात्रा और अंग्रेजों के शुभचिन्तक तथा उनके मित्र मीरजाफरखाँ का पत्र कि बहिन लवंगलता को दुराचारी सिराजुद्दौला लूट ले गया था, पर मित्र मदनमोहन के द्वारा बहिन का उद्धार करना, इसलिए बहिन से मिल कर कुसुम के यहाँ पहुँचना आदि बातों को सुनकर कमला देवी उद्विग्न हो उठी। उसने भी कुसुम को वीरेन्द्र को सौंप कर अपने प्राण त्याग दिये। कुसुम, वीरेन्द्र और चम्पा को इस दुखदायी घटना से बड़ा मानसिक आघात पहुँचा। वीरेन्द्र ने स्वयं कमलादेवी का दाह-संस्कार किया। अब उनके सिवाय कुसुम को धीरज देने वाला संसार में कोई शेष नहीं रहा। उन्होंने कुसुम और चम्पा को अपने डेरे पर ले जाकर

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी : "हृदय हारिणी," पृ० ३२।

गुप्त रूप से रखा। नवाब सिराजुद्दौला के आदमी उसी दिन कुसुम को पकड़ ले जाने के लिए आये, पर खाली हाथ वापस लौट गये। अब कुसुम के जीवन का दुखपूर्ण समय बदला। अभी वीरेन्द्र ने उसे मुर्शिदाबाद में ही एक आलीशान बंगले में छिपा कर रख छोड़ा था। कमलादेवी की मृत्यु को छः महीने हो चुके थे। वीरेन्द्र के मुख से प्रेम की बातें न सुन कर कुसुम को लगने लगा कि वे शायद विवाह न करें, इसके उपरान्त एक दिन वीरेन्द्र ने आकर इसी प्रकार की उड़ी-उड़ी बातें कुसुम से कह डालीं कि तुम सामन्त घराने की लड़की हो, अतः तुम्हें किसी राजा की रानी बनाया जावे तो ठीक है। वीरेन्द्र कुसुम के प्रेम की थाह लेना चाहता था, पर उसने स्पष्ट बता दिया कि सिवाय वीरेन्द्र के वह किसी को भी अपने पति के रूप में स्वीकार नहीं करेगी। इतना कह कर उसने वीरेन्द्र के गले में 'वर-माला" पहना दी। एक दिन शुभ मुहूर्त में वीरेन्द्र कुसुम को साथ लेकर रंगपुर गया। सौ सवार मीरजाफरखां के इनके साथ चले जा रहे थे। पहले वीरेन्द्र ने अपने आपको रंगपुर के महाराजा का सिपाही बतलाया था और उस (कुसुम) को कृष्णनगर की राजकन्या कहा था, पर उनका यह ठाट बाट देख कर कुसुम बड़ी चकित हुई। दोनों रास्ते भर हँसी-विनोद करते जा रहे थे। जैसे ही वीरेन्द्र रंगपुर के राजमन्दिर पर पहुँचे तो तोपों से उनका स्वागत हुआ। वीरेन्द्र का हाथी और कुसुम का रथ दोनों ही फूलों की ढेरी में छिप गये। उसके बाद कुसुम ने अन्तःपुर में प्रवेश किया, जहाँ पर सजी हुई तीन सौ स्त्री-सैनिक थीं। वीरेन्द्र (राजा नरेन्द्रसिंह) की छोटी बहिन लवंगलता कुसुम को मिली। उसके व्यवहार से ऐसा लगा कि वह भी अपने भाई के बताये हुए संकेता पर चल रही थी। राजसी ठाठ देखकर कुसुम को वीरेन्द्र को समझने में कठिनाई हुई। बाद में लवंगलता ने कुसुम को वीरेन्द्र की सब चालाकी समझा दी कि वीरेन्द्र और नरेन्द्र कोई दो व्यक्ति नहीं हैं। इस कथन से कुसुम ने परमात्मा को अनेक धन्यवाद दिया। वीरेन्द्र ने कुसुम को बतलाया कि लवंगलता मदनमोहन को चाहती है, अतः उन दोनों को विवाह-सूत्र में शीघ्र बाँध देना चाहिए। गोस्वामीजी ने प्रेम का स्वर्गीय आधार स्थापित करके इस भूतल को स्वर्ग बनाया है, जहाँ जीवन में असन्तोष तथा अतृप्ति को तो कोई स्थान ही नहीं है: "अपूर्व और विशुद्ध प्रेम स्वर्गीय सम्पत्ति है और वही इस जड़ जगत का एकमात्र जीवन या आधार है। इसकी महिमा का पार नहीं है, इसके गुण का भी अन्त नहीं है।"[1]

उन्होंने नायक-नायिका के रूप और वैभव का स्वतन्त्र होकर अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। नायक वीरेन्द्र का वैभव रंगपुर के राज-भवन में दिखाई दिया। पुरुष का शौर्य और राजसी ठाठ नारी को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त था। इधर लेखक ने नायिका कुसुमकुमारी का रूप-चित्र वर्णन में अद्वितीय ढंग से किया है, जिसमें काव्य की अनुपम छटा दिखाई देती है।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "आदर्श रमणी," पृ० ५७।

"चन्द कैसो भाग-भाल, भृकुटी कमान कैसी,
मन कैसे पैने सर, नैननि विलास है।
नासिका सरोज, गंध वाह से सुगंध वाह,
दार्यो से दसन, कैसी बिजुरी सो हास है।
शंख कैसी ग्रीवा, भुज पान से उदर प्रस,
पंकज से पाय, गति हंस कैसो जास है।
देखी वर बाम, काम बाम सो सरूपमान,
सोने सो शरीर, सब सोंधे की सी बास है।"[1]

यह काव्य-छटा उपन्यास में देखकर निःसन्देह लेखक की काव्य-प्रतिभा की ओर ध्यान चला जाता है। लेखक का कविहृदय रस-प्रेमी है, जो उपन्यास में माधुर्य की यत्र-तत्र सृष्टि करता है। चुने हुए शब्द, अनुप्रास तथा उपमाओं की छटा और श्लेष शैली पाठकों के मन को मोह लेती है।

लेखक की विनम्रता सराहनीय है, जब वह स्वयं अपने मुख से अपने आपको कवि नहीं मानता है। "हो अब हम क्या करें। कुसुम की रूप-राशि के चित्रित करने के लिए जब-जब हम दुमुँही लेखनी को पकड़ते हैं तब तब वह नागिन की तरह थिरक कर हाथ से छूट कोसों दूर भागती और अपना मुँह चुराती है तथा सारे उपमान भी अपनी जड़ता का आप ही आप अनुभव कर लज्जित हो, इधर-उधर दुम दबाकर खसक जाते हैं तो ऐसी अवस्था में हम क्या करें।"[2]

लेखक की महानता का परिचय उपरोक्त पंक्तियों से प्राप्त होता है। अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण व खुले हृदय से करते थे। वे पात्र अनुपम, उदार एवं शोभनीय होते थे। लेखक ने कालिदास से लेकर "बिहारी सतसई" का भी सारा मंथन कर डाला, पर "कुसुमकुमारी" नायिका के लक्षणों का वर्णन करने में प्रत्येक कलाकार प्रतिभाहीन प्रमाणित हुआ। ऐतिहासिक उपन्यास होते हुए भी लेखक ने कुसुमकुमारी और वीरेन्द्र व वीर तथा लवंगलता का हास विलास उपन्यास में चित्रित किया है। ननद लवंगलता और भाभी कुसुमकुमारी का हास्य-विनोद सराहनीय है, जो भारतीय समाज की शाश्वत परम्परा का प्रतीक है। लवंगलता का मदनमोहन से अटूट प्रेम है, यह देख कर वीरेन्द्र (नरेन्द्र) ने निश्चय कर लिया कि पहले अपनी बहिन का विवाह धूम-धाम से कर दिया जाना चाहिए। इसी समय सिराजुद्दौला के साथ क्लाइव और ब्रिटिश कम्पनी की लड़ाई छिड़ गयी और नरेन्द्र को विदा होना पड़ा। १मई सन् १७५७ को प्लासी के मैदान में नरेन्द्र को उपस्थित होना पड़ा।

ऐतिहासिक दृष्टि से सिराजुद्दौला ने अँग्रेजों के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया। कलकत्ते की कालकोठरी वाली घटना (Black Hall) इसी समय घटी है

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "आदर्श रमणी", नवतिंश परिच्छेद, पृ० ५७।
२. वही "आदर्श रमणी", नवतिंश परिच्छेद, पृ० ५८।

क्योंकि अंग्रेजों ने वहां पर अपने किलों में मजबूत करना प्रारम्भ कर दिया था। इस बात से सिराजुद्दौला नाराज हो गया और एक सौ छियालीस अंग्रेजो को एक साथ एक कोठरीमें रात भर के लिए बन्द कर दिया। उनमे से सुबह केवल तेईस गोरे जीवित निकले। वे भी अधमरे थे। इससे चिढ़कर क्लाइव ने २ जनवरी सन् १७५७ मे कलकत्ते पहुँच कर पहले कलकत्ते पर अधिकार किया और सिराजुद्दौला की बुरी तरह पराजय हुई। उसी समय अंग्रजों ने कलकत्ते मे अपना मजबूत किला बनाया। वहाँ पर टकसाल भी प्रारम्भ कर दी। सिराजुद्दौला ने फ्रासीसियों का सहारा लिया। अंग्रेजों ने उसे गिरफ्तार करके मीरजाफर को उसकी जगह बगाल का नवाब बनाया, जो केवल उनके हाथ का खिलौना था। अंग्रेजो का मुर्शिदाबाद पर अधिकार हो गया और कलकत्ते तथा वहाँ के खजाने से करोड़ों का माल मिला। प्लासी की लड़ाई मे भागकर सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद आया। अंग्रेजों ने सेठ अमीचन्द को ऐसा धोखा दिया जिससे वह परलोक सिधारा। मीरजाफर के बेटे मीरन ने सिराजुद्दौला को कत्ल कर दिया, जिससे उसकी सैकड़ा बेगमें दुखी हुई। एक महीना बाद अग्रेजो की सहायता करके नरेन्द्रसिंह सिराजुद्दौला के साथ प्लासी के युद्ध म विजयी होकर अपने रगपुर महल वापस लौटा। कुसुम और लवगलता दोनो अत्यन्त आनन्दित हुई इससे पूर्व कुसुम ने एक मास का व्रत किया था, जिसके बत्तीसवें दिन हवन हुआ, तेतीसवें दिन अष्टोत्तर सहस्त्र ब्राह्मणों और कुमारियों को भोजन कराकर वस्त्र और यथोचित दक्षिणा दी गयी। यह व्रत शान्ति-स्थापना के लिए किया गया, जिससे घर पर तथा युद्ध मे शान्ति स्थापित हो जाय और नरेन्द्र कुशलपूर्वक अपने घर लौट आये। नरेन्द्र ने वापस लौटकर सबको प्रसन्न किया। उन्होंने आकर कुसुम के उपवास व्रत की बात सुनी और वे चकित हो गये। उसके बाद मदनमोहन के साथ लवगलता का विवाह धूम-धाम से हुआ तथा शुभ मुहूर्त में नरेन्द्रसिंह ने शास्त्रानुसार अपना विवाह कुसुम के साथ किया। कुसुम को उसकी सारी पैतृक सम्पत्ति प्राप्त हो गयी थी, उसे अपनी मामी बिमला की जागीर भी मिल गई थी। महफिल और ज्योनार धूम धाम से हुई। चम्पा दासी को भी उचित पुरस्कार मिला। इसके बाद "टोपियो" का सारा रहस्य खुला कि नरेन्द्र कुसुम की किस प्रकार सहायता करते थे और प्रत्येक टोपी की सिलाई पाँच रुपया अपने पास से उन माँ-बेटी को आर्थिक सहायता के लिए देते थे। "कुसुम" की सुहागरात का भी लेखक ने बड़ा ही मनोरजक और सुखदायी वर्णन किया है। गोस्वामीजी की रसिकता का परिचय "हृदय हारिणी" उपन्यास के अन्त में पूर्ण रूप से प्राप्त होता है। इतने से ही लेखक को आत्मतुष्टि नहीं होती है, वरन् इस उपन्यास के उपसहार के रूप में "लवगलता" लिख कर अपनी लेखनी सफल की है। "हृदय हारिणी" अथवा "लवगलता" दोनों ही "आदर्श रमणी" अथवा "आदर्श बाला" के रेखाचित्र हैं, पर गोस्वामीजी ने इन उपन्यासो को ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में रखा है। उन्होने लवंगलता की भूमिका में स्वय निवेदन किया है "आशा है कि जैसे साहित्यमर्मज्ञ उपन्यास प्रेमियों

ने "आदर्श रमणी" के उदार चरित्र पर भक्ति प्रगट की है, वैसी ही वे इस "आदर्श बाला" को भी पूज्य दृष्टि से अवलोकन करेंगे।" गोस्वामीजी ने बतलाया कि जब दुःख के दिन व्यतीत हो गये और सुख के दिन आये तो चारों ओर से सुखदायी खबरें उपलब्ध हुई।

यह उपन्यास ऐतिहासिक होते हुए भी मनोरञ्जक है जो रसिक उपन्यास-प्रेमियों का मन प्रसन्न करता है 'लवंगलता" की रचना भी सन् १९०४ में कुछ के महीने में हो चुकी थी जैसा 'सम्पदा' के प्रसंग में ज्ञात होता है।

लवंगलता की कथा का ऐतिहासिक रूप इस प्रकार है कि दिल्ली से उठकर मुसलमानी राजधानी बंगाल में बनती गयी। अंग्रेज सौदागरों के जहाज आये और बड़े बड़े नगरों में कोठियाँ बनी थीं। सेठ अमीचन्द का नवाबी घराने में बड़ा मान था। उसकी ड्योढ़ी पर अंग्रेज सौदागर प्रायः सलाम टहला करते थे, पर सिराजुद्दौला के दरबार में अमीचन्द का आदर-सम्मान देखकर अंग्रेजों ने इस सेठ की तरफ से अपना मन हटा लिया, और उसे कैद कर लिया। सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पहुँच कर अंग्रेजों को हराया और अमीचन्द को छुड़ाकर स्वयं कलकत्ते का बादशाह बन गया। ऐसा कहा जाता है कि बाद में छल से अंग्रेजों ने अमीचन्द को अपनी तरफ मिला लिया जिसने भारतीय इतिहास में भेदिये का काम किया है। उसी प्रकार सिराजुद्दौला का सेनापति मीरजाफर और उसका बेटा मीरन दोनों अंग्रेजों से मिल गये तथा अपने दल के साथ ही छल का काम किया। रंगपुर का राजा नरेन्द्रसिंह भी गुप्त रूप से अंग्रेजों से मिल गया था और नवाब सिराजुद्दौला के शासन की सारी गुप्त बातों को नित्य सूचित करता रहता था। कलकत्ते में हीराझील के किनारे सिराजुद्दौला ने अपना सुन्दर राज-प्रासाद बनवा रखा था, जहाँ पर वह विलासी जीवन व्यतीत करता था। दिल्ली वाली फौजी रंडी का अपने हरम में बुलाकर रख लेना तो मामूली बात थी। अमीचन्द ने उचित अवसर देखकर नवाब से नरेन्द्र के भेदिये होने की शिकायत करदी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों सूबों में घोर अराजकता थी। मुसलमानों के भयानक अत्याचारों से पीड़ित होकर ही हिन्दुओं ने अंग्रेज जाति की शरण ली, जैसा इतिहासकारों ने बताया है। मीरजाफर को यद्यपि सिराजुद्दौला ने अनेक प्रकार के लालच दिये कि तुम्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा का सूबेदार बना दूँगा, फिर भी उसने नवाब का विश्वास नहीं किया और उसने एक ओर अंग्रेजों की भरपूर सहायता की, दूसरी ओर पत्र लिखकर नरेन्द्र को सावधान कर दिया। नरेन्द्र बड़ी उलझनों में था। एक ओर अंग्रेजों को दिन-रात नवाब की हरकतों की सूचना देना दूसरी किया[1] कृष्णनगर की राजकुमारी कुसुमकुमारी जो मुर्शिदाबाद में अपने कष्ट के ___ कर रही थीं, उसे नरेन्द्र चाहने लगा था। सैयद अहमद नामक बीस

१. विशोगैसेर नवयुवक की दृष्टि भी उस सुन्दरी आदर्श बाला पर पड़ी। वह भी अहमद की सब आशाओं पर पानी फिर गया। जब नरेन्द्र

को पकड़ने के लिए नवाब की फौज भेजी गयी, तब वह सवारों को दूर से ही देख कर भाग गया। जब सैयद अहमद कुसुम को प्राप्त करने में स्वयं असफल रहा तब उसने उसे नवाब सिराजुद्दौला को समक्ष करके उसे प्राप्त करना चाहा। पर नवाब उसकी चाल में नहीं आया। इतने में ही सैयद अहमद के पास मीरजाफर का लड़का मीरन आया तो उसने बताया कि उसका पिता मीरजाफर नवाब सिराजुद्दौला से उसका मेल करा देता, पर वह (सैयद अहमद) हीराझील के पास अमीचन्द से बातें कर रहा था, इस देख कर नवाब सख्त नाराज है। सैयद अहमद ने मीरन की बातों का सत्य मान लिया। नरेन्द्र मुर्शिदाबाद में रहकर अंग्रेजों के पास (कलकत्ते) दरबार का सच्चा हाल भेजता था, इसलिए उसने मीरजाफर महताबचन्द जगतसेठ राजवल्लभ, सैयद अहमद इत्यादि को अपनी ओर मिला कर रखा। सैयद अहमद ने कई चिट्ठियाँ लिखी थी, जिनमें किसी में नरेन्द्र की मित्रता का वर्णन था और किसी में सिराजुद्दौला के विरुद्ध जाल रचने का संकेत था। मीरजाफर ने सैयद अहमद के विरुद्ध नवाब को तमाम चिट्ठियाँ दिखला कर बहकाया और फिर अपने बेटे मीरन के साथ सिराजुद्दौला को उसी लताकुंज के पास भेजा, जहाँ पर मीरन और सैयद अहमद दोनों बातचीत कर रहे थे। सैयद अहमद को उसी क्षण गिरफ्तार कर लिया गया। मीरजाफर समझ गया कि सैयद अहमद बहुत चालाक तथा धोखेबाज है। जो कभी नरेन्द्र के बारे में नवाब को बता सकता है तो उसकी खुद की भी पोल वह कभी अवश्य खोल देगा। उसने सैयद अहमद का एक सन्दूक चुरा लिया, जो पत्रों से भरा था जिन्हें उसने नवाब सिराजुद्दौला को लिखे थे। मीरजाफर ने उसकी सारी चालाकी नरेन्द्र को लिख भेजी। सैयद अहमद की नरेन्द्र से घनिष्ठ मित्रता थी। एक बार जैसे ही वह रंगपुर गया तो उसकी बहिन लवंगलता के चित्र को देखकर मोहित हो गया। वह चाहता था कि इस चित्र को देकर नवाब को खुश किया जावे और बदले में स्वयं कुसुम को प्राप्त करे, पर दुर्भाग्य से बीच में ही वह कैद हो गया और जैसे ही उसकी तलाशी ली गयी, उसके पास लवंगलता का चित्र मिला। उसे देखकर नवाब मुग्ध हो गया और अपने आपे में नहीं रहा। उसे नजीरखाँ को सारा समाचार बताया तथा नरेन्द्र को लिखा कि अपनी बहिन लवंगलता को फौरन भेज दे। सिराजुद्दौला नरेन्द्र की अस्वीकृति पर बड़ा क्रोधित हुआ और नजीरखाँ को उसे एक महीने के समय में लाने का आदेश दिया। दिनाजपुर के राजकुमार मदनमोहन रंगपुर के राजकुमार नरेन्द्र के घनिष्ठ मित्र थे, वहीं पर रंगपुर के अन्तःपुर के बाग में लवंगलता से उनका प्रेम हो गया था। लवंगलता की मोती की माला पर ही वे रीझ गये, फिर दोनों एक दूसरे के प्रेम में अपने आपको निछावर कर बैठे। लवंगलता की मित्र कुन्दन ने दोनों के हृदय का रहस्य पहचान लिया और वह उनका अपूर्व मनोरंजन करने लगी। थोड़ी देर बाद मदनमोहन तो अपने डेरे पर चले गये और एक बुढ़िया कुटनी लवंगलता के पास आई, जिसने नवाब सिराजुद्दौला की तसवीर उसको दिखलाई और उसकी खूब प्रशंसा की।

इस पर लवगलता ने वह तसवीर खरीद ली। उसने छुरी से उस तसवीर से नाक काट ली, नवाब की तसवीर की बेइज्जती की तथा बुढ़िया को कुन्दन ने बुरी तरह मार कर भगा दिया। कुछ देर बाद मदनमोहन ने आकर सम्वाद दिया कि वह नवाब की भेजी हुई कुटनी थी और लवगलता को एक पत्र बतलाया, जो बुढ़िया फाटक पर गिरा गयी थी, उसमें नवाब ने अपना प्रेम प्रकट करके लवगलता को फौरन आने के लिए लिखा था। मदनमोहन ने उस पत्र को सँभाल कर रख लिया। नजीरखाँ भी दस-बारह आदमियों के साथ लवगलता के अन्त पुर में चोरी के मार्ग से आया और दासियों आदि के मुँह में कपड़ा ठूँस कर लवगलता को बेहोशी की दवा सुँघाकर ले गया। जब वह होश में आयी तो उसने अपने आपको दो शैतानों के बीच बैठा पाया। वह सारी चाल समझ गयी कि नवाब के आदमियों ने आज उसे कैद कर लिया है, तब उसने भी चतुराइ से काम लिया, नजीरखाँ को बतलाया कि वह नवाब की जो जान से चाहती है। तब उसे पता चला कि यही मनुष्य बुढ़िया बन कर आया था। धीरे धीरे लवगलता ने अपने चुराने वालों के नाम पूछ कर लिख लिये। उसने सबको लालच दिया कि वह नवाब से कह कर सबको ऊँची पदवी दिलवायगी। चौथे दिन वह सिराजुद्दौला के हीरा-महल नामक प्रासाद में पहुँचा दी गयी। उधर महल में कोलाहल मच गया और मदनमोहन को ज्ञात हुआ कि लवगलता के मुँह में कपड़ा ठूँस कर नवाब के आदमी उसे ले गये हैं। मदनमोहन तथा उसके मित्र माधवसिंह दोनों ने सिराजुद्दौला की चाल को समझ लिया। उधर नरेन्द्र के पिता का देहान्त हो गया था, अतः वह श्राद्ध इत्यादि कार्यों में लगा हुआ था। इतने में धीरसिंह ने एक पत्र और लवगलता के हाथ का कगन लाकर दिया जिसमें उसने जंगल में विश्राम करते समय अपने कष्टों का वर्णन लिखा था। बस मदनमोहन, माधवसिंह, धीरसिंह सबने मुर्शिदाबाद की ओर प्रस्थान किया। लवगलता सिराजुद्दौला के महल में अपनी तकदीर को कोस रही थी। उसने नवाब को कहला दिया कि वह बहुत थकी हुई है, अत उससे कोई न मिले। वहाँ पर उसे एक कटार मिल गयी। इतने में एक स्त्री भ्रमाद बन कर चोर-दरवाजे से उसके पास आयी। यह स्त्री फिर दूसरे दिन आने का वायदा करके चली गयी। अब उसने नवाब से भेंट की और बताया कि नजीरखाँ बड़ा दुष्ट आदमी है। उसने उसको एक जगह में छिपा कर रखा और वहाँ पर उसका सतीत्व नष्ट करके फिर बाद में यहाँ लाया है। यह सुनकर नवाब बहुत क्रोधित हुआ और उसने जल्लाद को बुला कर नजीरखाँ का सिर काटने का आदेश दे दिया। नवाब को लवगलता ने बतलाया कि एक चिल्ले तक वह उससे विवाह नहीं करेगी और केवल दूध पीकर रहेगी। बड़ी कठिनाई से नवाब ने उसकी बातें मान लीं। यह सारा कार्य उसने उसी स्त्री के कहने के अनुसार किया था। यह स्त्री और कोई नहीं थी, केवल मदनमोहन था जो अपनी प्रियतमा लवगलता से स्त्री रूप में मिलने आया था। उसने लवगलता का भेष धारण करके नवाब को खूब शराब पिलायी। उसके बाद उसने मदनमोहन बन जाना ठीक समझा। उन्होंने

नवाब को एक कोठरी में कैद कर दिया। अब वह बुरी तरह से चीखने लगा। लवगलता ने आकर भी नवाब को खूब धिक्कारा और मदनमोहन ने उससे डरा धमका कर एक पत्र लिखवा लिया कि लवगलता और उसके साथियों को महल के बाहर जाने से कोई न रोके और जो रोकेगा उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जावेगा और अन्त में सिराजुद्दौला की मोहरें भी मदनमोहन ने ले लीं। सैयद अहमद की औरत नगीना बेगम लवगलता को छुटकारा दिलाने में बहुत मदद कर रही थी। लवगलता ने मजीरखाँ तथा उसके बीस साथियों के सिर कटवा दिये, जिससे नवाब को कोई बुरी सलाह देने वाला जीवित न बचे। उसके बाद जब नवाब को लवगलता की सारी चालाकी का पता चला तो उसने सबको पकड़ने का हुक्म दिया पर सब भागकर अपने-अपने स्थान पर चले गये थे। नवाब सिराजुद्दौला इस घटना पर बहुत पछताया, पर प्लासी की लड़ाई प्रारम्भ हो गयी थी, जिससे नवाब रंगपुर और दिनाजपुर पर धावा नहीं कर सका। उसकी घुटन मन की मन में ही रह गयी। जब नरेन्द्र रंगपुर वापस लौटे तो उन्हें लवगलता से सारी कष्टपूर्ण कथा सुनी। मीरजाफरखाँ ने भी यही अत्याचार सुनाया, जिससे उन्हें नवाब से और भी अधिक घृणा हो गयी। उन्हें अब कुसुम की चिन्ता हुई। उन्होंने अपने गुप्त प्रेम के रहस्य को अब प्रकट कर दिया तथा प्लासी के युद्ध के पश्चात् उसे रंगपुर लाकर उससे विवाह कर लिया। इस युद्ध में मीरजाफर के पुत्र मीरन द्वारा सिराजुद्दौला मारा गया और मीरजाफर ने बदले में अंग्रेजों से बंगाल की गद्दी पाई। मदनमोहन का लवगलता और नरेन्द्र का कुसुम से धूम धाम से विवाह हुआ। दोनों ही आदर्श बालाएँ तथा अत्यन्त सुन्दरी स्त्रियाँ थीं और ये दोनों युगल-दम्पति आनन्द से अपना जीवन यापन करने लगे। सिराजुद्दौला की नवाबी का अन्त हो गया और उसकी बेगम लुत्फउन्निसा ने आत्म-हत्या कर ली।

ये दोनों उपन्यास सुखान्त हैं। लवगलता तथा कुसुमकुमारी को जीवन भर नाना प्रकार की विपत्तियाँ और कष्ट झेलने पड़ते हैं। आत्म रक्षा के लिए सैकड़ों प्रकार की चालाकियाँ अपनानी पड़ती हैं, पर अन्त में उनका अपने प्रेमियों से सुखद संयोग हो जाता है। कुसुम तथा लवगलता की कथावस्तु आधिकारिक है पर नवाब के घराने तथा उसके सहायकों की कथाएँ प्रासंगिक रूप से चलती रहती हैं।

गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में, विशेषकर मुसलमान काल को ही अपनाया गया है। चित्रण करते समय इतिहास की अपेक्षा कल्पना को प्रशस्त स्थान मिला है। उदाहरण के लिए, जब हम "तारा" व 'क्षत्रिय कुल कमलिनी" नामक ऐतिहासिक उपन्यास को ग्रहण करते हैं, तब पता चलता है कि लेखक ने उन वस्तुओं की सृष्टि भी कर डाली है, जो अकबर, शाहजहाँ या औरंगजेब के समय में कभी प्राप्त नहीं हो सका है। लेखक के पास असीम कल्पना शक्ति है जो "अकबर' के समय में तम्बाकू का रिवाज न होने पर भी लेखक ने पेचवानी (एक प्रकार का हुक्का) प्रस्तुत कर दिया है। इस

कल्पना की सम्पन्नता के अतिरिक्त और क्या कहेंगे कि सम्राट् अकबर के सामने हुक्का या पेचवान जब कभी रखा गया है। उन्होंने काल-दोष के साथ भी उपन्यास को रोचक बनाया है।

समीक्षा की दृष्टि से "लखनऊ की कब्र" और "तारा" गोस्वामीजी की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृतियाँ हैं। "तारा" का कथानक पूर्णरूपेण ऐतिहासिक है। नायिका तारा महारानी अमरसिंह की पुत्री है, जो उन दिनों (शाहजहाँ के युग) राजनैतिक परिस्थितियों से विवश होकर आगरा में ही रहा करते थे, इसलिए लेखक ने इस रचना में शाहजहाँ के अन्तिम दिनों के आगरा और शाही परिवार का विस्तृत चित्रण किया है। आगरा का राजमहल, जहाँ शाहजहाँ अपनी वृद्धावस्था में निवास करता था, वह उसके पुत्रों तथा सामन्तों की कुत्सित वासनाओं की पूर्ति का अड्डा बन गया था। दाराशिकोह के साथ उसके अन्य भाइयों ने घोर अत्याचार किया था। जीवन-*पर्यन्त जहाँनारा दाराशिकोह की सहायता करती रही है। "तारा" उपन्यास में दारा* के चरित्र में पूर्ण स्पष्टता नहीं आने पायी है, बल्कि किले के भीतर का सारा वातावरण शाहजादियों की उच्छृंखल और वासनामय प्रवृत्तियों के कारण दूषित सा हो गया है। मुस्लिम-काल में देश में अपूर्व सम्पन्नता पायी जाती है। शाही महलों में चारों ओर विलासिता से पूर्ण वातावरण था और लेखक की हिन्दू धर्म-निष्ठ दृष्टि ने इस रंग को और भी अधिक गहरा कर दिया है। 'तारा' का चरित्र-चित्रण भी अद्भुत वासनापूर्ण परिस्थितियों में हुआ है। गोस्वामीजी हिन्दू राजाओं और क्षत्रियों की वीरता तथा शौर्य से इतने प्रभावित थे कि इस उपन्यास में यदाकदा राजपूत गौरव की उज्ज्वलता दिखाने की उन्होंने चेष्टा की है। लेकिन भावावेश में कहीं-कहीं अस्वाभाविक घटनाओं को उपन्यास में स्थान दे दिया गया है, जैसे तारा जो भोली-भाली मेवाड़ बालिका है, 'क्षत्रिय-कुल-कमलिनी' है, वह भी कामुक और भोगी मुसलमान *प्रेमियों को छकाने की चेष्टा करती है। उन्हें धोखा देकर उनकी विलासपूर्ण* उक्तियों से अपना मनोरंजन करती है। तारा की परम सहेली रम्भा का चरित्र देखकर तो प्रत्येक पाठक हैरत में रह जाता है। समझ में नहीं आता है कि यह अद्भुत मायावी क्या चमत्कार कर दिखायेगी। तारा और रम्भा दोनों ही अद्भुत ढंग से अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं। उम्र में बहुत कम होकर भी रंभा में जो जासूसी तथा ऐयारी की प्रवृत्तियाँ हैं, उसके दिमाग में अनेक प्रपंचों की आयोजना, दूर की सूझ तथा उसकी चालाकी से भरी करतूतों को देखकर तो बड़ा आश्चर्य लगता है। "तारा" में ऐयारी से भरी हुई घटनाओं की इतनी अधिक प्रधानता है कि इसे जासूसी और ऐयारी-प्रधान उपन्यास मान लें तो अत्युक्ति न होगी। लेखक ने इसकी रचना का मूल आधार ऐतिहासिक बतलाया है, जैसा मुखपृष्ठ से ही ज्ञात होता है कि यह ऐतिहासिक उपन्यास है, अतः हमें लेखक के कथन को ध्यान में रखकर ही समीक्षा करनी पड़ती है।

"तारा" चरित्र-प्रधान उपन्यास है, जिसमें आधिकारिक कथावस्तु की नायिका 'तारा' है। इसकी विशेषता इसी कथन में है कि इसमें ऐयारी, जासूसी तथा ऐतिहासिक घटनाओं का सफल चित्रण हुआ है। इस उपन्यास के सभी पात्र ऐतिहासिक आधार लेकर भी देश काल का बंधन तोड़कर लेखक की कल्पनाओं के स्वतन्त्र संकेत पर यत्र तत्र थिरकते हुए से दिखाई पड़ते हैं। लेखक ने स्वयं ही शतरंज के कुशल खिलाड़ी के समान कह डाला है

"चाल शतरंज की चली कैसी,
आप देखें ये तमाशा बैठे।"[१]

कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि 'तारा' जैसी नायिका के चरित्र में भारतीय नारी के आदर्शों का क्यों अभाव है, जबकि लेखक में भारतीयता एवं हिन्दू संस्कृति कूट कूट कर भरी हुई है। इस कथन का उत्तर स्वयं लेखक ने भूमिका में दिया है कि कल्पना के आधार पर ही ऐतिहासिक चित्र अंकित किये गये हैं। तारा का स्वयं का जीवन तिलस्म और ऐयारी की कला से पूर्ण है, जिसके फलस्वरूप उसमें नारी सुलभ लज्जा तथा गुणों का अभाव सा पाया जाता है। भारतीय नारी की सौम्यता और गाम्भीर्य का अभाव यदि उसमें है तो इसे युग का ही प्रभाव कहना उचित लगता है। देश, काल और परिस्थितियों के प्रभाव के कारण तारा में अद्भुत साहस, वीरता, ऐयारी तथा छल और चालाकी से पूर्ण कार्यों की लेखक ने सृष्टि की है, यहाँ तक कि अपने मुसलमान प्रेमियों (दाराशिकोह और सलावतखाँ) को वह छिप-छिप कर कभी परेशान करती है और कभी रिझाती है। "तारा" की भूमिका में लेखक ने स्वयं ही लिख दिया है - "हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को गौण और अपनी कल्पना को मुख्य रखा है और कहीं कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार कर दिया है।"[२]

"तारा" उपन्यास की ऐतिहासिकता के बारे में स्वयं गोस्वामीजी ने अनेक प्रमाण खोज खोज कर रखे हैं। उदाहरण के लिए, भारतेन्दु बाबू द्वारा रचित "पुरावृत्त संग्रह" पुस्तक में से तारा के पात्रों के सूत्र खोज कर रखे हैं। टॉड साहब जैसे प्रसिद्ध इतिहासकार ने "राजस्थान" नामक पुस्तक में अमरसिंह की मृत्यु उनके साले अर्जुनसिंह के द्वारा हुई बतायी, यहाँ तक कि 'तारा' के निवेदन को ध्यान से पढ़ने से ज्ञात होता है कि लेखक ने उपन्यास रचना का मूल स्रोत इतिहास और कल्पना दोनों ही ठहराया है जैसे "इतिहास की मूल भित्ति सत्य है, वैसे ही उपन्यास की मूल भित्ति कल्पना है। जैसे बिना सत्य घटना के इतिहास इतिहास नहीं, वैसे ही ग्राम्य कल्पना बिना उपन्यास भी नहीं कहला सकता। इतिहास में जैसे वास्तविक घटना बिना काम नहीं चलता, वैसे ही उपन्यास में भी कल्पना का आश्रय लिये

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", पृ० ४१।
२. किशोरीलाल गोस्वामी "तारा" भूमिका से।

बिना प्रबन्ध नहीं लिखा जा सकता। ऐसी अवस्था में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए इतिहास के सत्यांश के साथ तो कल्पना की थोड़ी ही आवश्यकता पड़ती है, पर जहाँ इतिहास की घटना जटिल सन्धाभास-मात्र और कपोल-कल्पित भासती है, वहाँ लाचार हो इतिहास को बाँध कर कल्पना ही अपना पूरा अधिकार फैला लेती है।"[1]

लेखक के हृदय में यवनों के प्रति असीम घृणा है, उनकी दुष्टता से लेखक उद्विग्न सा हो जाता है, इसलिए महमूद गजनवी, अलाउद्दीन, औरंगजेब, नादिर सरीखे यवनों की बुराइयों से अपने उपन्यासों को निःसंकोच रँगा है। भारतवर्ष का धर्म, धर्म-कीर्ति, मान-मर्यादा, सतीत्व, वीरता आदि देवोपम गुणों को नाश करने वाले ये मुसलमान बादशाह और उनकी सल्तनत के सामन्त थे, जिन्होंने अपनी मीठी-मीठी बातों में हिन्दुस्थान का जातीय गौरव भ्रष्ट कर डाला। इतिहासकारों ने इस युग का इतिहास भी पक्षपातपूर्ण लिखा है। गोस्वामीजी ने स्वर्गीय पण्डित मित्रवर माधवप्रसाद मिश्र को कोटि-कोटि धन्यवाद दिया, जिन्होंने "तारा" की बड़ी इज्जत और कदर की और इसे हिन्दी भाषा साहित्य सदन में सर्वोच्च सिंहासन प्रदान किया।"[2] यहाँ तक कि बादशाह शाहजहाँ के राज्य का संक्षिप्त इतिहास भी "तारा" की भूमिका के साथ दिया गया है।

इस उपन्यास के कथानक को उपन्यासकार ने अपनी स्वेच्छानुसार ऐतिहासिक बनाया है। दारा और जहाँनारा का इतिहास-प्रसिद्ध प्रेम "तारा" उपन्यास में प्राप्त होता है। बहिन के द्वारा भाई की उन्नति का सोचना शाश्वत परम्परा है। जब जहाँनारा तारा के विवाह की बात दाराशिकोह के साथ तय करना चाहती है, उस समय तारा की व्यावहारिक बुद्धि का पूरा परिचय मिल जाता है। शाहजहाँ के बाद दारा का तख्त पर बैठना और तारा का बेगम बनना दोनों बातें लालच देने के लिए पर्याप्त थीं, जबकि तारा की शादी उसके पिता अमरसिंह ने राणा जगतसिंह के बहादुर लड़के कुँवर राजसिंह के साथ प्रायः तय ही कर दी थी, जो हिन्दुस्तान का प्रसिद्ध इज्जतदार और बहादुर तथा कट्टर हिन्दू घराना था। मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह की सहायता से बादशाह शाहजहाँ दिल्ली के तख्त पर बैठे थे और तभी से महाराणा जगतसिंह का दिल्ली में आवागमन अधिक था, पर अमरसिंह स्वयं आयरा रहा करते थे। जब से दारा ने तारा की तस्वीर को देखा था, वह तो अपना होश-हवास भूल चुका था और अपने मुसाहिब तथा गवैये नूरुलहक को भी उसने अपने दिल व प्रेम की बात बता दी। नूरुलहक पूरा खुशामदी तथा चालाक मुँहलगा मित्र था, जो बादशाह दारा को खुश करने के लिए रात-दिन काफिर हिन्दुओं की बुराई करता रहता था, जैसे "अगर एक अदने राजपूत की लड़की को बादशाह अपनी बेगम

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", निवेदन।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", निवेदन, पृ० 'ग' पर।

बनाना चाहे तो इसमें उस राजपूत को अपनी खुश-किस्मती पर खुश होना चाहिए। मगर नहीं, ये ऐसे बुजदिल और उल्लू हैं कि बादशाह के साथ रिश्तेदारी करने में अपनी बेइज्जती समझते हैं, बस जब तक सारे हिन्दुस्थान को मुसलमान न बना लिया जावेगा, यहाँ तक की सल्तनत के हमेशा बर्करार रहने के मुतलक उम्मेद न रखनी चाहिए।"[1]

नूरलहक के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमान बादशाह से हिन्दू रियाया कितनी भयभीत रहती थी और उसे अमन-चैन की साँस लेना कठिन था। ऐसा आभास हो रहा था कि अमरसिंह तारा को लेकर उदयपुर जावेगा और वहीं पर उसका विवाह कुँवर राजसिंह के साथ कर देगा। दूसरी ओर, बख्शी सलावतखाँ भी तारा के इश्क में पागल हो रहा था। वह भी दारा के चापलूस मुसाहिबों में से था, जो 'मुँह में राम और बगल में छुरी वाली' कहावत चरितार्थ करता था। नूरलहक औरंगजेब की तरफदार रोशनआरा बेगम का कृपापात्र जासूस था, जिसने चालाकी से सलावत के हृदय का सारा रहस्य समझ लिया था। जहाँनारा की प्यारी बाँदी जोहरा नूरलहक के दिल का सारा भेद समझ गयी थी और उसने उसको मार डाला। जोहरा ने जहाँनारा का काम इस प्रकार कर डाला क्योंकि नूरलहक रोशन-आरा का मददगार था, जो दारा की दुश्मन बहिन थी। इस कार्य से जहाँनारा प्रसन्न हो गयी। मारवाड के राठौर क्षत्रियत्व की रक्षा करते हुए भी शाहजहाँ के महान्, प्यारे, सहायक और वीर सेनापति थे। अमरसिंह ने सेनापति के पद पर रह कर नई लड़ाइयाँ जीती थीं, इसलिए बादशाह सलामत ने जमना के किनारे बड़ा भारी राजसी मकान उनके लिए बनवा दिया था। इसलिए शाही दरबार के अनेक कर्मचारी राव अमरसिंह से ईर्ष्या करने लग गये थे। अमरसिंह सीधे-सादे व्यक्ति थे। वे सलावतखाँ की चालाकी नहीं समझ पाते थे। उसने उनके वश में आग सी लगा दी और उन्हें अनेक प्रकार से कष्ट देने लगा। उनकी बेटी तारा अपनी अल्पायु से ही शाही महल में आती जाती रहती थी। बड़ी होने पर वह धीरे धीरे जहाँनारा का अपने विरुद्ध सारा जाल समझ गयी। पन्द्रह-सोलह वर्ष की बाला त्रैलोक्य-मोहिनी नारी बनी हुई थी। सलावत एक ओर तो अमरसिंह का दोस्त बनता था, दूसरी ओर तारा को बुरी निगाह से देखता था। तारा को पाने के लिए सलावतखाँ और दारा दोनों अलग-अलग अपनी चालें चलने लगे, यहाँ तक कि दारा ने तारा के मामा अर्जुनसिंह को प्रधानमन्त्री का पद देने का लालच देकर तारा के साथ विवाह की बातचीत के लिए राजी कर लिया। सलावत ने गुलशन नामक कुटनी तैयार की, जो उसके प्रति तारा का मन मुग्ध करे। तारा की सखी रंभा बहुत चतुर थी। उसने सच्ची स्थिति का ज्ञान तारा को कराया कि मुसलमानी राज्य में हिन्दू नारी के लिए सतीत्व-

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा," नूर का कथन, पृ० २०।

रक्षा का प्रश्न कितना कठिन बन गया है, जिससे उन्हें नाना प्रकार की चालाकी से काम लेना होगा और हिन्दू नारी का प्रण : "तू मुझसे साफ-साफ सुनले कि चाहे मेरी जान जाय तो भले ही चली जाय, पर मुसल्मानिन तो मैं कभी नहीं बनूँगी।"[1]

तारा के इस कथन से उसकी चारित्रिक दृढ़ता का पता चलता है। जब रंभा सलाबतखाँ द्वारा तारा के लिए भेजी हुई अँगूठी रख लेती है तथा इसके साथ ही दारा के रुमाल तोहफ़ को ग्रहण कर लेती है तब वह बहुत घबरा जाती है। अपने आप को वह एक प्रकार के जाल में पड़ा हुआ सोचती है। पर रंभा बहुत चालाक है। वह तारा को धीरज बँधाती है कि गुलशन, जो दारा और सलाबतखाँ दोनों का काम कर रही है, उसको बेवकूफ़ बना कर वहाँ से निकालना पड़ेगा। रंभा बहुरूपिया जोगिन बन कर दारा के महलों के नीचे जाती है, वहाँ जाकर उससे भेंट करती है और सुन्दर ग़ज़लें सुनाकर उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। वह जोगिन बन कर प्रसिद्ध ऐयारा कहलाती है, जिससे दारा का कोई भी गुप्तचर उसे पकड़ने में असफल सिद्ध हो जाता है। जोगिन बनकर वह दारा के हृदय में प्रेम की वह आग भड़का आती, जिससे वह अमरसिंह के बाग में आवे और रंभा उसको उसकी बदनीयती का स्वाद चखावे। जब दारा बगीचे में तारा से मिलने के लिए आता तब रंभा के सिखाने में तारा भी इश्क का स्वांग रचने लगती है। दारा और तारा के कथोपकथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी उसके साथ विवाह करने के लिए पूर्णरूपेण तैयार हो गई है। लेखक ने उपन्यास के अगले परिच्छेद में यह प्रकट किया है कि बातचीत करने वाली नारी तारा नहीं बल्कि रंभा है, जिसने वेश-भूषा तारा की बना रखी है, जिसको पूर्ण निद्रा ने तारा को अचम्भे में डाल दिया। उसके बाद सलाबतखाँ भी उसी बगीचे में आया और रंभा ने उसको भी अद्भुत चकमा देकर छला है, यह कहकर कि दिलरुबा तारा भीतर महल के अन्दर सो रही है क्योंकि विवाह के पहले राजपूतनी अपने पति के सामने नहीं निकलती है। रंभा ने अपनी चतुराई से सलाबतखाँ के हृदय की बातों को जान लिया है।

लेखक ने स्थान-स्थान पर हिन्दू घरों की लड़कियों का चतुराईपूर्ण व्यवहार बतलाया है : "हमने कई ऐतिहासिक उपन्यासों में यह बात साबित की है कि किसी राज-घराने की कोई भी लड़की मुसलमानों को नहीं दी गयी। जो दी गयीं, वे राज-कन्याएँ न थीं वरन् उन राजाओं की लौण्डा लौंडियों की लड़कियाँ थीं।"[2]

रंभा ने तो अपनी चतुराई से तारा की माता चन्द्रावती को भी अपने वश में कर लिया था और उसके मामा अर्जुनसिंह को घर से (जो मुसल्मानों से सम्बन्ध बनाने के लिए तैयार था) निकलवा दिया था। तारा के लिए जब घोर दुर्दिन का समय आ गया तब भी उसकी विपत्ति में मुसलमानों से एकमात्र रक्षा करने वाली

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", पृ० ५५।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", भाग दूसरा, पृ० ३३।

रमा ही थी, जिसने जान हथेली पर रख कर तारा को दारा और सलावतखाँ से रक्षा की। रमा की सारी चालाकियाँ और ऐयारी चन्द्रावती से छिपी न थी, इसलिए बाहर घूमने तथा अठवारों घर से बाहर रहने की आज्ञा उसने ले ली थी। जिस "यन्त्र और मुर्ग" का रमा प्रयोग कर कर रही थी वह ऐयारी के चमत्कारों से भरा पड़ा था। इस "यन्त्र और मुर्ग" को जो दो कागज के परचों पर बना था, एक पर यन्त्र यानी ताबीज लिखा था और दूसरे पर एक मुर्ग की तस्वीर थी, जिसे दारा और सलावत तारा के यहाँ कुर्सी पर छोड़ गये थे और जिसका प्रयोग रमा ने उन्हीं का नाश कराने के लिए किया। वह ज्योतिषी बनकर अब्बासखाँ, दारा तथा गुलदान, जाहरा इत्यादि सबको ठगती है। एक बार तारा की सखी रमा मुसलमान पिशाचों के द्वारा पकड़ भी ली जाती है, पर अपने छलपूर्ण व्यवहार से वहाँ से भी वह छुटकारा प्राप्त कर लेती है। हकीम इनायतुल्ला ने रमा के साथ पिता जैसा व्यवहार किया क्योंकि उसने उनकी जान बहादुरी के साथ बचाई थी। मुसलमान होकर भी वह नेक इन्सान था, जिसने रमा सरीखी समझदार, होशियार और कारगुजार औरत को परखने में अपनी योग्यता दिखलायी। वह तो जोगिन के रूप में ही रमा को पहचान गया था, उधर सलावतखाँ बुरी तरह से अपने ही आदमियों से अपमानित होकर चिढ़ गया था और उसने बादशाह से अमरसिंह को पकड़ लाने का हुक्म प्राप्त कर लिया क्योंकि उसने बतलाया था कि राणा बागी हो गया है। सलावत ने जो यह जाल रचा, उसकी खबर दारा को न मिल सकी क्योंकि वह तो फतहपुरसीकरी के पास जंगलों में शिकार खेलने के लिए गया था। इस उपन्यास में ऐसे यन्त्रों के चित्र भी उपलब्ध होते हैं, जिनसे पता चलता है कि उस समय जादू तथा तिलस्मों का भरपूर प्रभाव था। रमा के चक्र से सब तंग आ गये थे, केवल वह तारा के गले मिलकर अपना मन शान्त कर लेती थी। उसने तारा को राजसिंह से मिला देने में भरपूर सहायता की। इस कथन के द्वारा :

"सब संसार बिहँसि कहि है, तुमरी मुख जोई
राजसिंह की नारी, यवन सेज पर सोई।"

उसने राजसिंह के हृदय में अपूर्व उत्तेजना भर दी, जिससे उसमें तारा को प्राप्त करने की आग भड़कने लगी। लेखक ने राजसिंह का चरित्र चित्रण करते समय उसके अपूर्व शौर्य और वीरता का पूर्ण ध्यान रखा है। अनेक प्रकार के अन्धविश्वास तथा मनौतियाँ इस उपन्यास में दिखाई देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने परमात्मा की अपार कृपाएँ राजसिंह और तारा के लिए बटोर कर रख छोड़ी हैं। ब्राह्मण भुवनेश्वर मिश्र के द्वारा "मेवाड़ कुल-केशरी युवराज राजसिंह के करकमलों में उनकी परिचिता एक दुखिनी बाला का आत्म-समर्पण' तारा का पत्र देख कर राजसिंह बड़े दुखी हुए और उन्हें आश्चर्य हुआ कि राव अमरसिंह तारा का विवाह शीघ्रतापूर्वक क्यों नहीं कर रहे हैं। तारा की सखी रमा का महान् त्यागमय आदर्श चरित्र है, जो अपनी सखी के लिए उत्सर्ग करने को तत्पर रहती है। राजसिंह के पास तारा ने एक

पेटी भेजी, जिसमे एक मोतियों की गुथी हुई राखी, एक मानिक की अँगूठी और एक जर्दोजी का काम किया हुआ मखमली खलीता मिला, जिसमे राजकुमारी की पत्रिका थी। भुवनेश्वर मिश्र ने राजसिंह को राखी बाँधी और भरपूर आदर पाया। तारा की "पत्रिका" एक प्रकार से छोटा काव्य रूपक है, जिसमे क्षत्रिय राजाओं के कुल का गौरव है तथा सनातन धर्म की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाया गया है। राजसिंह का प्राणप्रिय मित्र चन्द्रावत था, जो दुःख एवं विपत्ति मे पूरी सहायता प्राणपण से करने को तत्पर रहता था। लम्बे लम्बे कथोपकथन इस उपन्यास मे बहुत ही अधिक दृष्टि गोचरहोते हैं, विशेषकर चन्द्रावत और राजसिंह के मध्य में या दारा और सलावतखाँ के बीच। चन्द्रावत का भेष बदल कर आगरा पहुँचना और तारा की स्थिति का पता लगाना, रंभा के द्वारा जहाँनारा तथा जोहरा के साथ चाल चलना और तारा की सहायता करना उपन्यास के अन्त को सुखद बना देती है। रनिवासों और महलों मे सुरगों का होना, छिपकर दूत तथा दूतियों का घूमना एवं चमत्कारपूर्ण कार्य करना, सलावतखाँ के द्वारा छिपकर काले कारनामे करना, तारा को उठा ले जाने का षड्यन्त्र रचना, यहाँ तक कि तारा और रंभा के द्वारा जहरीले साँप की नाई विषगर्भ अंगूठी पहन लेना, जिससे धर्म बचाने के लिए प्राण तक त्याग देने की तैयारी रखना तथा क्षत्रिय-कुल-केशरी राजसिंह की क्षत्रिय कुल-कमलिनी तारा की रक्षा के लिए प्राणपण से युद्ध करना, सलावत के गिरोह में शामिल हो जाना, सारा भेद मालूम कर लेना और जहाँनारा बेगम की मदद से राजसिंह का अपने साथियों के साथ तारा और रंभा को लेकर शाही पंजे की मदद से बेखटके आगरा शहर से बाहर निकल जाना ही प्रमुख कथानक है। इस युद्ध म अत्यन्त खून-खराबी हुई और राव अमरसिंह तो पागल हो गये। दुश्मनों को मार कर अकेले आमखास में जूझे और घोड़े से गिरकर अपनी जान दे दी। बादशाह ने उनके नाम से आगरा के किले में "अमरसिंह का फाटक" बनवा दिया तथा भारत के राजपूती इतिहास मे स्वर्णाक्षरों मे उनका नाम लिखा हुआ है। सन् १६५८ मे औरंगजेब ने बादशाह शाहजहाँ को कैद कर लिया। दारा का सत्यानाश हो गया तथा जहाँनारा बाप की सँभाल करती रही। रंभा ने चन्द्रावत को अपने प्राणनाथ के रूप म अपना लिया और तारा तथा राजसिंह का विवाह हो गया। उन दोनों मे इतना अधिक प्रेम उमडा कि अब दोनों एक-दूसरे का क्षण भर का भी विरह नहीं सहन कर पाते थे। इस प्रकार उपन्यास की कथावस्तु सुखान्त है। दोनों प्रेमी-युगल प्रेमिकाओं से मिल जाते हैं। सारा कथानक नयी-नयी तथा उत्तेजनापूर्ण घटनाओं से भरा हुआ है, जिससे पाठकों के हृदय में एक अद्भुत सनसनी मच जाती है। इस उपन्यास में एक ओर प्राचीन ऐतिहासिकता है तथा दूसरी ओर, रीतिकालीन ढंग पर नायक-नायिकाओं के परस्पर प्रेम-लीलाओं तथा प्रिय पात्र को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की साहसपूर्ण घटनाओं का वर्णन है एवं अनेक युद्धों की आयोजना है। जीवन के अन्य पहलुओं पर गौण रूप

से प्रकाश डाला गया है। गोस्वामीजी के प्रायः सभी ऐतिहासिक उपन्यासों में तिलस्मी, जादुई कार्य तथा महलों और सुरंगों का वर्णन मिलता है। "तारा" उपन्यास में अनेक ऐयारी और तिलस्मी घटनाएँ उपलब्ध हैं। कहीं-कहीं तो लेखक की भाव प्रवणता के कारण लम्बे-लम्बे प्रकृति-वर्णन, लम्बे-लम्बे प्रेमी तथा प्रेमिकाओं के पत्र, उनकी नकलें, लम्बे शेर तथा फारसी की सुन्दर-सुन्दर इश्कपूर्ण गजलें तथा अन्य कहावतें और मुहावरेदार भाषा उपन्यास के कथानक को दीर्घकायी बना देते हैं। कथानक के निर्माण में उलझकर भी लेखक को स्थान-स्थान पर अपने पाठकों को विश्वास दिलाना पड़ता है कि सत्य की जीत होगी, हिन्दू धर्म की जय होगी, मुसलमानों का सर्वनाश होगा तथा हिन्दू नारियों के सतीत्व की रक्षा होगी। कहीं-कहीं प्रेम-लीलाओं का वर्णन वासनामय हो गया है, जिससे श्रृंगार का अतिरेक दिखायी पड़ता है। अधिकतर कथानक में प्राचीन परम्पराओं और रूढ़ि का अक्षरशः पालन किया गया है, जैसे विवाह से पूर्व कन्या अपने वर के अंग को स्पर्श करने के लिए शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित है, जिसका प्रमाण "तारा" मे हमे प्राप्त होता है। "तारा" नायक उपन्यास मे प्रमुख पात्र तारा, रंभा, राजसिंह, दाराशिकोह और सलावतखाँ हैं तथा गुलशन, इनायतुल्ला-खाँ हकीम जहाँनारा, जोहरा, चन्द्रावत, राव अमरसिंह इत्यादि गौण पात्र हैं। तारा की कथा आधिकारिक है और उसको सफल बनाने मे रंभा का मुख्य हाथ है। अंत में नायिका तारा का विवाह राजसिंह से हो जाता है, अतः उपन्यास सुखान्त है। लेखक ने चेष्टा की है कि विदेशी शासकों के दोषों को पूर्णरूप से उघाड़ा जाय तथा हिन्दू पात्रों की धर्मनिष्ठता तथा सभ्यता बतलाई है। चरित्र चित्रणों मे पात्र कार्य-व्यापारों मे इतने उलझे रहते हैं कि उपन्यास में कहीं भी अकर्मण्यता दृष्टिगोचर नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए लेखक की अपनी निश्चित विचारधारा है और उसी लीक के आधार पर समस्त पात्रों का चरित्र-चित्रण होता चलता है।

"तारा" में रंभा और अमरसिंह का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर तथा सफलता-पूर्वक हुआ है। उनके पात्र अवश्य ही किसी वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि हैं, किसी विशेष संस्कृति के प्रतीक हैं, इसलिए कभी-कभी उनकी व्यक्तिगत विशेषताएँ पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होने पाती हैं। अधिक संख्या ऐसे ही पात्रों की है, जिनका जीवन सांसारिक सुख, विलास एवं भोग-विलास के साधन जुटाने में ही व्यतीत होता है तथा जो युद्ध इत्यादि भी इसीलिए करते हैं कि उन्हें या तो किसी सुन्दर प्रेमिका को प्राप्त करना है अथवा अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए सारे षड्यन्त्र रचने हैं। वे भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए अटूट परिश्रम करते हुए दिखाई देते हैं। लेखक प्रत्येक घटना, पात्र एवं परिस्थिति का स्वयं वर्णन करता है, वह स्वयं ही उपन्यास का सूत्रधार है और उत्सुक श्रोता-मण्डली उसकी वर्णन की कहानी को ध्यान से सुन रहा है। उदाहरण के लिए, तारा का यह प्रसंग ले लिया जावे : (१) "ताराबाई की तस्वीर

जहाँनारा ने मजरफखाँ से क्यों बनवाई थी ? तारा ने तारा की तसवीर को मजरफ-खाँ की बनाई हुई समझ पर मारा गया नूरुद्दीन, यह क्यों ? नूरुद्दीन कौन शख्स था और उससे मजरफखाँ या जहाँनारा से क्या सरोकार था ? (२) सलावतखाँ के पास तारा की तस्वीर कहाँ से आई ? (३) और जहाँनारा सलावतखाँ से नाखुश क्यों थी ? (४) इन बातों के जानने के लिए हमारे प्यारे पाठक लोग शायद घबराते होंगे, इसलिए इस परिच्छेद में ऊपर कहे हुए कई सवालों का जवाब दे देना ही मुनासिब है।"[1]

लेखक अपनी ओर से बार-बार पाठकों को सचेत करता है तथा कथावस्तु पर टिप्पणी करता चलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक के विचार से पाठक उसकी बातों को ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहे हैं, इसलिए लेखक को कहना ही पड़ता है : 'प्यारे पाठक, जहाँनारा की चालाकियाँ देखो", इससे कथा की रोचकता बढ़ती जाती है और कथानक की ओर पाठक जागरूक हो जाता है।

गोस्वामीजी ने हिन्दी साहित्य के पाठकों के लिए मनोहर और कौतूहलवर्द्धक उपन्यास भेंट किये हैं। जन-साधारण की रुचियों के अनुकूल ही गोस्वामीजी ने भाषा और शैली का प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है। उस युग के पाठकों में राजनैतिक, नवीन सुधारवादी, सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना का अभाव सा पाया गया तथा रीतिकालीन साहित्यिक तथा विलासपूर्ण शृंगारिक संस्कार अभी भी उनमें परिलक्षित हो रहे थे यहाँ तक कि नगर में पारसी थियेटर कम्पनियों का प्रभाव था और उर्दू काव्यों से "लैला मजनू", 'शीरी फरहाद" के आधार पर अभिनय हुआ करते थे, इसलिए हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में कला का जो स्वरूप और विधान दृष्टि-गोचर हुआ है उसका मूल्यांकन आधुनिक मानदण्ड के आधार पर नहीं किया जा सकता है। प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासों में जीवन का एक विशेष पहलू दृष्टिगोचर हुआ और वह सम्पन्न, वैभवपूर्ण तथा सुखी और विलासी जीवन का चित्र है, जिसमें एक ओर कल्पना की लम्बी-चौड़ी स्वच्छन्द उड़ानें हैं तथा दूसरी ओर तिलस्मी, जासूसी तथा मनुष्य को चकाचौंध में डाल देने वाली साहसपूर्ण घटनाओं का वर्णन है। इन कौतूहलवर्द्धक रचनाओं का मूल उद्देश्य उस युग की लोक-रुचि को सन्तुष्ट करके जन-साधारण का मनोरंजन करना है। गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों के द्वारा पाठकों को सरस रसास्वादन कराया है, जो काव्य का प्रथम तथा मूल उद्देश्य है। उन्होंने स्वयं अपने प्रसिद्ध उपन्यास "सुख शर्वरी" के निदर्शन में कहा है : "प्रेम और प्रेम-तत्व को सभी चाहते हैं, पर इसका उपाय बहुत कम लोग जानते होंगे, प्रेमिक प्रेम पाने के लिए व्याकुल तो होते हैं, सभी अपने लिए दूसरे को पागल करना चाहते हैं, पर अभी तक इसका उपाय बहुतों ने नहीं जाना है। इसका अभाव केवल उपन्यास ही दूर

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", भाग २, पृ० १-२।

करता है। इसीलिए प्राचीनतम कवियों और साम्प्रतिक यूरोपीय कवियों ने उपन्यास की सृष्टि की। "जो बात झूठ सच से नहीं होती, तन्त्र मन्त्र यन्त्र से नहीं बनती वह प्रेम के विज्ञान 'उपन्यास' से सिद्ध होती है। इनके पढ़ने से मनुष्य के हृदय के ऊपर बड़ा असर होता है और सब बात बनती है।"[1]

इनके उपन्यासों में घटना, वर्णन-प्रणाली अत्यन्त मनोरम रूप से प्रकट हुई है। नायक-नायिकाओं के रूप वर्णन करने में इन्होंने अपनी कलम तोड़ दी है। अतः यह निश्चित है कि इनके उपन्यासों की वर्णन-शैली पूर्वापेक्षा या अधिक मनोरंजक तथा कथानक के बिलकुल अनुरूप है। संवादों की स्वाभाविक आयोजना है तथा हिन्दी में उपन्यासों की भाषा को अधिक से अधिक सुसंस्कृत और व्यावहारिक रूप देने का श्रेय गोस्वामीजी को ही है।

"तारा" उपन्यास में ऐतिहासिकता के साथ ही साथ कल्पना के रंग से रंगे हुए चित्रों का प्रवेश हुआ है। उपन्यासकार की स्वच्छन्द तथा मौलिक प्रतिभा ने इस उपन्यास को विविधता से पूर्ण तथा सोद्देश्य रचा है।

'लखनऊ की कब्र' गोस्वामीजी का सबसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक एवं विस्तृत उपन्यास है, जो उन्होंने आठ भागों में लिखा है। वह आगे और भी लिखना चाहते थे, पर नहीं लिख पाये, जैसा आठवें भाग के अन्त में देखने को मिलता है। इसकी कथा-वस्तु देहली, लखनऊ तथा अवध की सभ्यता से ओत-प्रोत है। "लखनऊ की कब्र" या "शाही महलसरा" के पहले भाग में लेखक ने "उपोद्घात" के रूप में इतिहास से परिचय कराया है। लखनऊ का नाम कैसे पड़ा तथा आसफुद्दौला का सौतेला भाई सआदतअलीखाँ ने सन् १७६८ में लखनऊ के तख्त पर बैठकर १६ वर्ष तक उत्तमता से राज्य किया। उसने अपनी अनेक इमारतें बनवाईं। सन् १८१४ में उसका बेटा गाजीउद्दीन हैदर लखनऊ के तख्त पर बैठा। इसने अपनी कब्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं बनवाया। सन् १८२२ में उसे राजा की उपाधि मिली, सन् १८२७ में उसके मरने पर उसका बेटा नसीरुद्दीन हैदर लखनऊ के तख्त पर बैठा, परन्तु वह बहुत विषयी तथा भोग-विलासी था, जिससे उसका नाम बहुत बदनाम हो गया और ऐयारी में फिजूलखर्ची करने के कारण उसका सारा शाही खजाना बर्बाद हो गया। सन् १८३७ में वह नि:सन्तान मरा तो उसकी एक रखैल का लड़का मुन्नाजान तख्त पर बैठा, पर नसीरुद्दीन हैदर की प्रधान बेगम इस बात से बिगड़ गयी और परिणाम यह निकला कि नसीरुद्दीन हैदर का चचा नसीरुद्दौला गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने अपना नाम मुहम्मदअली शाह रखा। हुसैनाबाद का इमामबाड़ा उसने बनवाया। इसी पीढ़ी में जगतप्रसिद्ध विलासी नवाब वाजिदअली शाह हुए, जो लखनऊ के तख्त पर बैठे। ये प्रसिद्ध ठुमरी के आविष्कारक हुए, जिन्होंने "कैसर बाग" नामक विशाल

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुख शर्वरी" के निदर्शन से।

इमारत बनवाई, जिसकी दशा अब शोचनीय है। इनके पन्द्रह सौ बेगम थीं, जिनके साथ वाजिदअली शाह विलास-क्रीड़ाएँ किया करता था। सन् १८५७ की राज्यक्रान्ति के साथ वाजिदअली की शाही हुकूमत खत्म हो गयी। वे अंग्रेजों के द्वारा नजरबन्द करके देश के बाहर भेज दिये गये तथा उसी समय से अवध अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। गोस्वामीजी ने स्वयं लिखा है: "यह उपन्यास सन् १८२७ के अप्रैल महीने से प्रारम्भ होता है, जिस समय लखनऊ के तख्त पर अत्यन्त विलासी नवाब नसीरुद्दीन हैदर था। यह उपन्यास हमने "बादशाह के गुप्त चरित्र" नामक अंग्रेजी पुस्तक की कथा के आधार पर लिखा है। वह पुस्तक एक अंग्रेज की लिखी हुई है, जो नसीरुद्दीन हैदर के दरबार में रहता था।"[1] इस कथन से उपन्यास की ऐतिहासिकता के विषय में स्पष्ट संकेत प्राप्त हो जाते हैं।

गोस्वामीजी की कुशल लेखनी ने नवाब घराने के इतिहास का सूक्ष्मता से अवलोकन किया है और उसका यथार्थ चित्र उतारा है। 'शाही महलसरा' का इन्होंने बड़ा अद्भुत और हृदय दहलाने वाला वर्णन किया है। 'बियाबान जंगल' और 'कब्रिस्तान' भी शाही महलसरा के अन्दर हैं। लखनऊ का शाही महल भी खूबसूरत नाजनीनों की जैसे नुमाइश थी, जो अपने हुस्न की बदौलत बादशाह को अपने काबू में किये रहती थी: "जो खूबसूरत होती, वे ही महलों में रखी जातीं और जब तक उनकी खूबसूरती या चालाकी में बल न पड़ता वह बड़ी शानोशौकत के साथ महलों में चैन किया करती थीं, लेकिन यदि उनके बनाव या चालाकी में जरा भी फरक आता और बादशाह की तबियत उनसे हट जाती तो या तो वे फौरन निहायत बेइज्जती के साथ महल से निकाल दी जातीं या किसी दरबारी मुसाहिब को इनाम के तौर पर बख्श दी जातीं या उनका दर्जा बिल्कुल तोड़ दिया जाता और वे महलसरा के अन्दर ही बादशाह की किसी चहेती की लौंडी या सहेली बनाई जातीं और इस तरह अपना गुजारा करती थीं।"[2]

महलसरा के कमरों की सजावट भी अजीब थी। चारों ओर झाड़, फानूस वगैरह सदा रोशन रहते थे। मोमबत्तियों से युक्त सूरत की पीतल की कुप्पियाँ जलाई जाती थीं। बादशाही खजाने के लाखों रुपये हौज, फव्वारे तथा रोशनी के कल-पुर्जों को तैयार करने में खर्च होते थे। प्रत्येक जलसे में बादशाह का सारी नाजनीनें शरीक होती थीं। किसी तख्त पर 'मुश्तरी बेगम' रहती थी, किसी पर 'मलिका जमानी', पर इन सबके बीच में बादशाह की सबसे अव्वल 'बेगम हमीदा' कभी शरीक नहीं होती थी।

ऐयाश बादशाहों के महलों में खूबसूरत औरतों का बड़ा रुतबा होता था। वे

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी: "लखनऊ की कब्र", उपोद्घात, पृ० ५।
२. किशोरीलाल गोस्वामी: "लखनऊ की कब्र", चौथा भाग, पृ० २६।

अपनी खूबसूरती के दम पर शानोशौकत से महलों म रहती थीं और रियाया पर हुकूमत करता थी। बादशाह जिसे चाहता था, उससे अन्य बेगम चिढ़ जाती थीं। जहाँ 'मुख्तरी बेगम' रहती थी, वहाँ 'मलिका जमानी' नहीं पहुँचती थी। 'लखनऊ के बादशाही महल चौथाई शहर को घेरे हुए पड़े थे। दूर तक दरिया-ए-गोमती के किनारे-किनारे महलों का सिलसिला चला गया था और गोमती के उस पार भी बराबर बादशाही महल बने हुए थे और जा बजा बहुत ऊँचे ऊँचे 'पुल' बना कर दोनों किनारों के महल मिला दिये गये थे और कहीं-कहीं इस किनारे से उस किनारे तक जमीन के अन्दर ही अन्दर दरिया-ए गोमती के नीचे से जमीन खोद कर सुरंग गयी थी, लेकिन वह रास्ता बहुत पोशीदा था और महल के अन्दर रहने वाले हर खासो आम औरत मर्द इस रास्ते का नहीं जानते थे। इसके बाद, गोमती के दूसरे किनारे पर बड़ा भारी 'रमना" था, जिसमें बादशाह के शिकारी जानवरों का जखीरा इकट्ठा था। इस शाही किल या महलों की लम्बाई कोई कोई चार छः मील तक बतलाते हैं क्योंकि बादशाह मंजिल, रोशनुद्दौलाह की कोठी, नवाब सआदतअलीखाँ का मकबरा, घसियारी मण्डी, मरदली बाजार, चौहकी, हजरतगज वगैरह जैसे इन महलों के भीतर आ गये थे। इसके भीतर किले पर किला था। बादशाहीमहल अर्थात् माशूकमहल, सरदारमहल, खासमनमहल, फिरदौसमहल वगैरह बाहरी किले में थे। शाही महल के बारह दरवाजे थे, जिनमें हर एक फाटक इतना ऊँचा और चौड़ा था कि उसके भीतर दो अम्बारीदार हाथी निकल जाते थे।"[1]

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है 'किशोरीलाल गोस्वामी का 'लखनऊ की कब्र' (सन् १९०६) अवध के नवाब नसीरुद्दीन हैदर के समय की घटनाओं को उपस्थित करता है।"[2]

इसकी कथावस्तु में नायक तो नसीरुद्दीन हैदर तथा उसके बाद उसका चचा नसीरुद्दौला ही है, पर नायिकाओं की श्रेणी में तो अनेक खूबसूरत नाजनीनें आती हैं। महलसरा में अनेक खोजे हैं तथा बाँदियाँ हैं, जो बादशाह तथा उसकी चहेती की सेवा में हाजिर रहते हैं। पुतलों वाले कमरे, बड़े बड़े मनमोहक बाग तथा सुन्दर सा इमामबाड़ा, सुरंगें, यकायक गायब हो जाना, कभी साक्षात दीखना, उनके द्वारा वेश-भूषा का अनोखे ढंग से बदल लेना, एक व्यक्ति के अनेक रूप तथा अनेक नाम हो जाना आदि उपन्यास के कथानक म अद्भुत सनसनी भर देते हैं। पाठकों के हृदय में एक प्रकार का अजीब सा कौतूहल रहता है। नसीरुद्दीन बादशाह का दुलारी पर मुग्ध हो जाना, दुलारी का चुपचाप उससे मिलने जाना तथा अशर्फियाँ पाना और बाद में 'मलिका जमानी' के नाम से विख्यात होना, नसीरुद्दीन की प्रथम पाक बेगम हमीदा का सब बातों को जान लेना और दुलारी को निकाल देना, नकली दुलारी का प्रति-

१. किशोरीलाल गोस्वामी : 'लखनऊ की कब्र", चौथा भाग, पृ० ३१।
२. माताप्रसाद गुप्त : 'हिन्दी पुस्तक साहित्य," पृ० ३१।

दिन बादशाह नसीरुद्दीन से मिलना और बहुमूल्य जेवरों को माँग लेना, यहाँ तक कि उससे एक कोरे कागज पर दस्तखत करा लेना, "लखनऊ की कब्र" का तीसरा भाग इन्हीं घटनाओं से भरा है। प्रत्येक चरित्र कुछ न कुछ चालाकी से पूर्ण कार्य की करामात दिखला रहा है। इतिहास की दृष्टि से - "मलिका जमानी वही जिस्मतवर औरत थी कि उसके साथ नसीरुद्दीन हैदर की शादी होने के कुछ ही दिनों के बाद अवध की बादशाहत का तख्त उसके लिए खाली हो गया। यानी २८ अक्टूबर सन् १८२७ ई० को बादशाह गाजीउद्दीन हैदर वफात कर गया और बड़ी धूमधाम के साथ नसीरुद्दीन हैदर लखनऊ की गद्दी पर बैठा। फिर क्या था? फिर तो मलिका जमानी ने अपनी खूब ही शानशौकत दिखलाई और भरपूर अपना अमल जमाया। यहाँ तक कि अब नसीरुद्दीन की माँ बादशाह बेगम व नसीरुद्दीन की दीगर बेगमें भी दिल ही दिल में उससे डरने लग गयी थीं और सभी उसकी खुशामद में लगी रहती थीं।"[1]

इस उपन्यास के चौथे भाग में मलिका जमानी का युसुफ पर मोहित होना पाया जाता है। बाँदी अम्मजानी ने भी महल की समस्त बेगमों पर अपना अधिकार जमा रखा था। इसी प्रकार मुस्तरी भी नसीरुद्दीन हैदर के दिल पर चढ़ गयी थी और मलिका जमानी (दुलारी) के समान शान शौकत से रहती थी। शाही महल-सरा की बेगमें एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करती रहती थीं और बादशाह को अधिक से अधिक अपने वश में करने की चेष्टाएँ करती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी नारी की चौंसठ कलाओं से पूर्णतया भिज्ञ थे, जिनका चित्रण उन्होंने नारी-पात्रों के चरित्र में यथार्थ किया है, विशेषकर शाही घरानों में पर्दानशीन बेगमें अनेक प्रकार की ऐयाशी से पूर्ण जीवनयापन करती थीं और पुरुष पात्रों को लुभाने तथा उन्हें अपने वश में रखने में ही अपने जीवन की सफलता समझती थीं। मुस्तरी-बेगम पर मुग्ध कराने में नियामतहुसैन का भारी हाथ था, जिसको पाने में नसीरुद्दीन को लाखों अशर्फियाँ जौहरी और कपड़े वालों को देनी पड़ीं। मुस्तरी बेगम के एक-एक गाने पर हीरे का हार और जजीर बादशाह सलामत भेंट करते थे। जब नियामतहुसैन द्वारा बादशाह का मुस्तरी बेगम दिलाने से उसे मनोवांछित दलाली नहीं मिली, तब वह उनका उससे दिल फेरने लगा तथा अपनी पुत्री और विधवा बहिन को दो नई शाहजादियाँ बतला कर और नसीरुद्दीन से तथा मुस्तरी बेगम दोनों से अलग-अलग अशर्फियाँ प्राप्त करने लगा।

"लखनऊ की कब्र" का विशाल आकार है, वहाँ पर उपन्यास की धारावाहिकता स्थिर रखने में लेखक ने अत्यन्त पटुता दिखलायी है। पाँचवें भाग में कथावस्तु न फिर से जोर पकड़ा और युसुफ ने अपने आप को कब्रिस्तान पर सोया हुआ पाया, जो

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "लखनऊ की कब्र", तीसरा भाग, पृ० ११४।

शाही महलसरा के बाहर था। लियाकतहुसैन और आसमानी दोनों आकर युसुफ को महलसरा तथा इमामबाड़े के गुप्त रहस्यों से परिचित कराते हैं। छठवें भाग में नसीरुद्दीन हैदर के पूर्वजों का उल्लेख गास्वामीजी ने किया है। उदाहरण के लिए, अवध का नवाब जब आसफुद्दौला बना तो वह बड़ा उदार और दानवीर था, जिसके राज्य में मनमाना दान दिया जाता था व धन की नदियाँ बहती थीं। वह अपनी दानवीरता के नाम से विख्यात था। लखनऊ में महल बनवाने के लिए भारत के कोने कोने से कारीगर बुलाये गये। नवाब आसफुद्दौला अपनी ऐयाशी तथा नवाबी तबियत के लिए बहुत प्रसिद्ध था। शाही महलसरा के बनवाते समय उसे एक बड़ा भारी खजाना हाथ लगा था। उसका दरोगा नसीरुद्दौला था जो महल बनवाते बनवाते सुलखिया नामक एक लड़की पर मोहित हो गया था। अब तक आसफुद्दौला की प्रशंसा में कहावत है 'जिसे न दे मौला, उसे दे आसफुद्दौला'। नसीरुद्दौला व किस्सखाँ सज्जादहुसैन ने लखनऊ में शाही इमारत अपनी देख रेख में बनवायी जिसमें आसफुद्दौला स्वयं रहने लगा था। नसीरुद्दौला को भी पचास लाख मोहरें इनाम में मिलीं। तब वह सुन्दर सी हसीना लड़की सुलखिया को पाने की कोशिश करने लगा, जो भटियारे की लड़की थी और महलसरा के बनते समय मजदूरी करने आती थी। माता पिता के मरने पर पड़ोसी कल्लूमियाँ को सुलखिया के बदले में एक हजार अशर्फी और ऊँचा पद नसीरुद्दौला से मिला उसकी पत्नी गुलजार ने भी सुलखिया से प्रेम किया और अपने बेटे शमशाद से उसका विवाह कर दिया। नसीरुद्दौला महलसरा बनवाने में व्यस्त था। उसका लड़का शमशाद बादशाह को किस्से सुनाया करता था, जिस पर प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे जफरुद्दौला की पदवी दे दी और बाप के मरने पर दरोगा भी उसी को बनाया। विवाह के बाद सुलखिया का नाम हुस्नबानू रख दिया गया। इस प्रकार की प्रेम और विवाह-घटनाएँ महलसरा में अनेक होती रहती थीं। जब नया महल बन गया तो नसीरुद्दौला की पत्नी गुलजार की मृत्यु हो गयी और कारण खोजने पर पता लगा कि यह सुलखिया (हुस्नबानू) के द्वारा संखिया जहर देने के कारण हुई है। यह भी पता चलता है कि हुस्नबानू खजाना और शाही महलसरा का पता जानने के लिए बड़ी उत्सुक है। तब बाप बेटे उसे कैद करने का प्रयत्न करने लगे। इसी समय अवसर देखकर सारे आवश्यक कागज, एक लाख के जेवर, बटुआ इत्यादि लेकर सुलखिया (हुस्नबानू) गायब हो गयी। नसीरुद्दौला ने अब सुरंग के मार्ग पर ताला लगा दिया। उसके साथ एक बाँदी सुबकिया और गुलामसादिक नौकर भी गायब हो गया था। एक दिन बादशाह को एक पत्र मिला, उसमें मिलने के लिए बुलाया गया था तब उसने नसीरुद्दौला को बुलाया, जिसने खजाने के बारे में तथा हुस्नबानू के भाग जाने का सारा किस्सा बताया। रात्रि में बादशाह और नसीरुद्दौला इमामबाड़े में पहुँचे और उस पत्र भेजने वाली स्त्री की प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद उस नसीरुद्दौला का कटा हुआ सिर दिखाई दिया और उसका बेटा जफरुद्दौला भी बुलवाया गया। इसी समय बादशाह ने पाँच हजार

का इनाम घोषित किया जो मुलखिया, सुर्बिया तथा सादिक का पता लगा दे। बादशाह की इच्छा से जफरद्दौला ने देहली के मीर मुंशी नवाब (लुत्फ) लुत्फअलीखाँ, जो उसके मामा थे, की पुत्री मेहरनिगार से अपना विवाह कर लिया। सन् १७९७ में आसफुद्दौला बहुत बीमार पड़ा। उसने जफरद्दौला को बताया कि वह दिल्ली से अपनी पत्नी सहित भाग जाये क्योंकि उसके मरने पर वजीरअली फसाद मचायेगा। आसफुद्दौला के मरने पर कम्पनी सरकार ने वजीरअली को हरा कर उसे दूर पटना की तरफ भगा दिया। आसफुद्दौला का भाई सआदतअलीखाँ लखनऊ का बादशाह बनाया गया, जिसने ईमानदारी से राज्य किया। उसके मरने पर उसका बेटा गाजीउद्दीन हैदर तख्त पर बैठा। फिर उसका बेटा नसीरुद्दीन हैदर लखनऊ का बादशाह बना, जिसका विवाह जफरद्दौला ने देहली की शहजादी से कराया। वह उसी मकान में रहने लगा, जिसे जफरद्दौला ने बनवाया था। उसकी पत्नी मेहरनिगार भी दिलआराम और गुलआरा नामक दो बेटियों को छोड़ कर मर चुकी थी। नसीरुद्दीन की बीबी इन दोनों से स्नेह और उनकी देख-रेख करती थी।

अवध के खजाने में रुपये की तंगी आ गयी थी, इसलिए आसमानी द्वारा लियाकतहुसैन, जो मस्जिद बनवा रहा था, उसका कार्य भी धीरे-धीरे चल रहा था। सआदतअलीखाँ (नसीरुद्दीन के दादा) जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी से तंग आ गये तब उन्होंने अवध की आधी रियासत कम्पनी को दे डाली और इसी दुःख में वह स्वयं मर गये। उसके बेटे गाजीउद्दीन ने चौदह करोड़ रुपये की बचत की और समय-समय पर कम्पनी सरकार को कर्ज दिया। दरोगा जफरद्दौला को खजाने का पता मालूम होने, आसमानी द्वारा भेद खोल देने, जफरद्दौला की खोज करने, उसकी आत्म-हत्या और उसकी दोनों बेटियों के लापता हो जाने के साथ ही छठा भाग समाप्त हो जाता है।

उपन्यास के सातवें भाग में आसमानी के कार्यकलापों की पूरी कथा है। वास्तव में यह जफरद्दौला (शमशाद) की पत्नी हुस्नबानू ही थी। गोस्वामीजी की विशेषता है कि उनके उपन्यासों में एक ही पात्र के अनेक नाम होते हैं, जो समय और स्थान के परिवर्तन के साथ ही अपना नाम बदल कर उपन्यास के धरातल पर कार्य करते हैं। आसमानी के जीवन का आदि और अन्त अनुपम ढंग से विस्तारपूर्वक इस भाग में कहा गया है। जन्म से ही ठाकर खाई हुई, नसीरद्दौला के द्वारा कलूमियाँ से आसमानी का खरीदा जाना, बचपन का नाम मुलखिया, उसके बाद विवाह होने पर हुस्नबानू, बचपन में स्वतन्त्र, परन्तु-विवाह के बाद पर्दानशीन औरत, गुलजार तथा उसके पति शमशाद के द्वारा उसको पढ़ाया जाना, गाना-बजाना, सीना-पिरोना, खाना पकाना आदि की शिक्षा देना और शाही महल में बादशाह की बेगम की तरह उसका सुखद ऐशोआरामपूर्ण जीवनयापन करना, परन्तु घर में सुर्बिया तथा सादिक नामक दो गुलामों के पदार्पण से हुस्नबानू की बर्बादी होना कथानक का स्वरूप है। हुस्नबानू जब बारह वर्ष की भोली लड़की थी तभी से सुर्बिया ने बातों का जाल उस

पर फेंका था। सुबकिया के साथ दिन-रात उठना, बैठना, सोना एवं गुलामों के सामने उसे पर्दा न करने के लिए कहा गया था। सुबकिया अनेक किस्से सुनाना जानती थी, जिसके कारण हुस्नबानू पूर्णरूप से उसके वश में हो गयी। उसके हृदय में ससुराल के प्रति कभी स्नेह ही उत्पन्न न हो सका। वह सबको अपना शत्रु समझने लगी थी। सुबकिया ने उसे बेगम बनाने का विश्वास दिलाया और अपनी सास गुलजार तथा अपने पति शमशाद से घृणा करने लगी। उसे यहाँ तक बहकाया कि उसका पति शराबी, बदमाश और रोगी है और जो स्त्री ऐसे पति के पास भोग-विलास करेगी, उसकी मृत्यु निश्चित है। हुस्नबानू को पूरे महल में सुबकिया ही अपनी हितैषी दिखाई देने लगी। जैसे ही हुस्नबानू प्रथम बार रजस्वला हुई, सारे घर में जश्न मनाया गया, उसकी सुहागरात का अवसर आया, सुबकिया के कहने के अनुसार उसने अपने पति से सुहागरात के समय दुर्व्यवहार किया। सुबकिया उसे भ्रम में डाल कर, मूर्ख बनाकर अफलातूनी अर्क दवा के नाम पर देती रही, जो गर्भ निरोधक औषधि थी। सन्तान होने पर हुस्नबानू घर के मोह में पड़कर सुबकिया का साथ छोड़ सकती थी, इसलिए वह अवध के शाहजादे की रंगीन चर्चाएँ भी उसे सुनाया करती थी। एक दिन चालाकी से एक बुढ़िया से उस सुन्दर नवयुवक शाहजादे की तस्वीर भी सुबकिया ने हुस्नबानू को खरीदवा दी और बतलाया कि शाहजादा हुस्नबानू पर पूर्णरूप से आशिक है। सुबकिया सारा पत्र-व्यवहार अपने द्वारा कराती थी। हुस्नबानू अपने दिलबर अवध के शहजादे से मिलने के लिए व्याकुल हुई, तब सुबकिया ने शर्त रखी कि उसका दिलबर शाही महलसरा का नक्शा, सुरंग का पता तथा शाही खजाने का रहस्य जानना चाहता है, इसलिए हुस्नबानू को अपने श्वसुर नूरद्दौला के महल में जाकर चाबी चुरा कर वहाँ का सारा भेद जान लेना चाहिए। सुबकिया को प्रत्येक वस्तु के स्थान का भेद मालूम था। एक बार जब उसका शौहर और श्वसुर बादशाह के साथ शिकार खेलने चले गये और गुलजार भी महल में बेगम के पास चली गयी, तब आधी रात को सब नौकरों के सो जाने पर हुस्नबानू ने अपने श्वसुर के कमरे में जाकर चाबियों का गुच्छा खोजा और कमरा बन्द करके किताब तथा नक्शा ढूँढ़ लिया। उसने एक कागज पर नक्शे की नकल उतार ली और उसके आधार पर सुरंगों तथा तहखानों का पता लगा लिया, यहाँ तक कि विपत्ति के आने पर शराब की माँग की तथा अपना झूठा प्यार अपने पति को दिखाया, पर शमशाद ने इन्कार कर दिया कि कुरान शरीफ के अनुसार मुसलमान को शराब पीना मना है। इस पर हुस्नबानू फिर नाराज हो गयी। सुबकिया भी बहुत दिन बाद लौटी तो हुस्नबानू ने नाराज होकर उससे कह दिया कि किताब और नक्शा उसे कुछ भी नहीं मिला है। तब सुबकिया नाराज हो गयी, पर हुस्नबानू अपने दिलबर से मिलने के लिए व्याकुल होने लगी। सन् १७८७ में जब उसकी आयु बीस-इक्कीस वर्ष की थी तब "खजान गैंद" के कारण उसमें तथा उसकी सास में युद्ध हुआ और दूसरे ही दिन सुबकिया ने

समाचार दिया कि गुलजार बेगम ,सखिया खाकर मर गयी है। ग्रामदाद को अपनी बीवी हुस्नबानू पर ही सन्देह हुआ और सखिया की शीशी उसी के सन्दूक में प्राप्त हुई। उसके बाद वह सब जेवर, अशर्फियां, सोने के डिब्बे, नकदी, किताब आदि लेकर श्वसुर के कमरे में गयी और वहां से सुरंग के रास्ते होती हुई ग्रासफुद्दौला के बनवाये हुए इमामबाडे में पहुँची। वहां पर एक स्थान पर सारा सामान रख कर उस कब्रिस्तान में पहुँची, जहां से युसुफ ग्रासमानी के द्वारा शाही महलसरा में आया था तथा जिस मार्ग से बाहर निकाला गया था। इस उपन्यास का सारा केन्द्र बिन्दु शाही महलसरा है, जहां पर सब घटनाएं घटित होती हैं।

"लखनऊ की कब्र" का अन्तिम आठवां भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस भाग में हुस्नबानू अपने श्वसुर के घर से भाग कर सुरंग के रास्ते ग्रासफुद्दौला के इमामबाडें में पहुँच जाती है और अपनी सारी धन-सम्पत्ति एक सुरक्षित स्थान में रख कर वह कब्रिस्तान के बाहर कल्लूमियां से मिली, जिसके साथ वह अपने मैके चली गयी। हुस्नबानू को पता चलता है कि कल्लूमियां ने ही सादिक तथा सुबकिया को नौकरी करने के लिए नसीरुद्दौला के यहां भेज दिया था। तब हुस्नबानू भी कल्लूमियां के घर पहुँची और उसे बतलाया गया कि उसकी माता (ग्राबादी) बीमारी के कारण मैके गयी है, पर वास्तव में ग्राबादी वहीं पड़ोस में एक औरत याकूती के घर छिपी हुई थी और उसने चुपचाप आकर हुस्नबानू को सचेत किया कि उसका पिता कल्लूमियां, सुबकिया तथा सादिक सब उसके खून के प्यासे हैं, इसलिए उसे सतर्क रहना चाहिए। वजीरग्रली के साथ सुबकिया का नाजायज सम्बन्ध है, जहां वह हुस्नबानू को ले जाना चाहती है और उसके धन का नाजायज फायदा उठाना चाहता है। हुस्नबानू से 'खजाने गैब' का पता लगाकर सब मिलकर उसे मार डालेंगे, यहां तक कि वजीर-ग्रली की तस्वीर बेचने के लिए भी कल्लूमियां ने ही ग्राबादी को नसीरुद्दौला के महल में भेजा था। यह सब काले कारनामे सुनकर हुस्नबानू बड़ी परेशान हुई, लेकिन सब सोच-विचार कर उसने होशियारी से काम करने का निश्चय किया। थोड़ी देर बाद सुबकिया और सादिक भी आ गये तथा हुस्नबानू से चालाकी भरी बातें करने लगे। उससे उसके जेवरात, धन तथा 'खजाने गैब' का पता पूछने लगे। हुस्नबानू सब समझ गयी और उसने भी चालाकी से भरा उत्तर दिया। उसने देखा कि कल्लूमियां का सुबकिया से अनुचित सम्बन्ध है एवं रात भर दोनों ने छिप कर प्रेमालाप किया है, जिसे हुस्नबानू ने अपनी आँखों से देखा और वह अपने पालने पोसने वाले कल्लूमियां की धूर्तता को भलीभांति समझ गयी। सुबकिया की चालाकी से हुस्नबानू ने अपने आपको सतर्क रखा, जो रात्रि के प्रारम्भ में सोने का बहाना करके चली जाती थी और फिर अर्धरात्रि को जागकर सबकी चालाकी को देखती थी। दूसरे दिन रात्रि में वह सुबकिया और सादिक को लेकर कब्रिस्तान की ओर गयी। कब्र के मार्ग से वे सुरंग की ओर गये और इमामबाडे के पास पहुँच कर हुस्नबानू रुक गयी। वह चालाकी से

सादिक और सुबकिया को एक कोठरी में ले गयी। वहाँ पर सादिक ने उसके श्वसुर वसीरुद्दौला का सिर काट कर रूमाल में बाँध लिया। उस समय सादिक की तलवार खून से रँगी थी। हुस्नबानू उन दोनों को उसी समय पुतलों वाली कोठरी मे ले गयी और उनको कुएँ मे गिरा कर वापस आई। उसी समय उसने सोने की पच्चीस अशर्फियाँ अपनी धन-सम्पत्ति में स निकालीं और तुरन्त कब्रिस्तान के मार्ग से वापस आकर रात्रि होने पर बुरका ओढ़कर डोली मे सवार होकर याकूती क घर जा पहुँची, जहाँ उसे आबादी मिली। आबादी ने हुस्नबानू का याकूती से परिचय कराया। इन दोनों के सो जाने पर कल्लूमियाँ आया और याकूती के साथ उसका प्रेमालाप हुस्नबानू ने देखा। उसने आबादी को भी कल्लू के काल कारनामे दिखाए। उसने कल्लू और *याकूती का दरवाजा बाहर स बन्द कर दिया। इसी समय* दूसरे *गुप्त दरवाजे* से निकल कर याकूती ने खजर निकाल लिया और हुस्नबानू को धमकाने लगी। उसी समय वजीरअली कई व्यक्तियों के साथ आया और हुस्नबानू तथा आबादी को अपने यहाँ ले गया। कल्लूमियाँ लखनऊ वापस चला गया। रास्ते मे आबादी ने अपने जीवन भर की कहानी हुस्नबानू को सुनाई कि किस प्रकार से उसका सारा धन छीन कर जबर्दस्ती कल्लूमियाँ न उसे अपनी बीबी बना लिया। कुछ देर बाद वजीरअली की गाड़ी कानपुर पहुँच गयी और वहीं पर हुस्नबानू को उसने अपनी बेगम बना लिया। हुस्नबानू अथवा सुलखिया का जीवन अनेक प्रकार की रहस्यमयी घटनाओं से पूर्ण है।

समस्त उपन्यास मे भोग-विलास के सामयिक रंगीन चित्र उतारे गये हैं। समस्त नायक काम से पीड़ित हैं, वे उद्दाम प्रेमी हैं। वे अपनी प्रेमिकाओं को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचते हैं, कुकर्म करते हैं तथा उनको छिपाने के लिए रुपया पानी की तरह बहाते हैं। प्रत्येक घटना का लक्ष्य कोई न कोई स्त्री है, जिसको प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की गुप्त योजनाएँ चलती हैं। नारी पात्र भी पुरुषों को छकाने, उनसे छल-फरेब करने तथा रुपया छीनने में प्रवीण हैं। इस प्रकार के कार्यों से मध्ययुगीन सस्कृति का चित्र स्पष्ट परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक उपन्यासो मे अतीत काल के चित्र का दिग्दर्शन होता है तथा वह चित्रण जितना सजीव, सत्य तथा यथातथ्य होगा, उतनी ही उपन्यास की महत्ता बढ़ जाती है। देश-काल के विरुद्ध उपन्यासकार अपनी लेखनी नहीं उठा सकता है। गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यासों मे देश-काल की सीमाएँ यत्र-तत्र बिखी हुई हैं। घटनाओं की अवतारणा भी उसी आधार पर हुई है। उस युग की यथार्थ और पूरी झाँकी गोस्वामीजी के उपन्यासो में दिखाई देती है। लखनऊ, अवध और दिल्ली, ये तीनों ऐसे महत्वपूर्ण नगर रहे हैं, जहाँ पर मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से जन-जीवन ओत-प्रोत था। प्रत्येक बादशाह, नवाब तथा उनकी प्रजा युगीन प्रवृत्तियों से पूर्ण प्रभावित है। उपन्यास की कथावस्तु मे अधिकांश घटनाएँ, सन्, सम्वत्, स्थान, परिस्थितियाँ तथा पात्रों को ग्रहण करने का मूल आधार तो इतिहास ही है। जब भारतवर्ष में मुसलमानी राज्य पूर्ण जड़ जमा चुका था, इस्लाम धर्म का प्रचार एवं हिन्दू प्रजा के

दिलों में मुस्लिम संस्कृति का घर कर लेना, बादशाहों द्वारा हिन्दू नारियों को उड़-वाना, सुन्दर से सुन्दर औरत का बादशाह के हरम में दाखिल होना तथा उनकी अस्मत का लुट जाना, कभी बेगम बना लेना, कभी महल से निकाल बाहर करना, ये उस युग की नित्य-प्रतिदिन की घटने वाली घटनाएँ हैं।

यह उपन्यास 'घटना-प्रधान' होकर 'पात्र-प्रधान' हो गया है, जिसकी आधि-कारिक कथावस्तु 'लखनऊ के इमामबाड़े' के चारों ओर गुम्फित होकर विकसित हुई है। लेखक की सबल लेखनी अनेक सहायक प्रसंगों की अवतारणा सहज रूप में करती चलती है, जिसमें पाठकों का मनोरंजन करने की अपूर्व शक्ति है। शासन ने नागरिक जीवन को अपने ही रंग में रँग डाला था, जबकि प्रत्येक मानव की बुद्धि लुप्तप्राय सी हो चुकी है और उसे अपने जीवन का सच्चा मार्ग भी नहीं दिखायी देता है वह ऐयाशी और भोग-विलास में मस्त है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में प्रेम की सृष्टि का कारण यौन-आकर्षण है, जिसके पीछे भोग-विलास की अतृप्त और असयमित भावना व्याप्त है।

डॉ० सत्येन्द्र ने कहा है "पर पुरुष तथा पर-स्त्री के कामुक मिलन के लिए अनेकों आश्चर्यजनक उपाय और काण्डों की कल्पना की गयी है।"[1] कथावस्तु के विकास के लिए कथोपकथन की भी गोस्वामीजी ने अवतारणा की है, जो प्राचीन उप-न्यास साहित्य के लिए नूतन प्रयोग था। इतना ही नहीं, उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों में अनेक प्रकार की भूलों की खोज भी की है जिसमें जन साधारण के हृदय में उनकी कल्पना का प्रभाव अमिट पड़े तथा उपन्यास पढ़ने की अभिरुचि विकसित होवे।

"कनक कुसुम" व "मस्तानी" भी गोस्वामीजी का लघु ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें बाजीराव पेशवा और मस्तानी की कहानी है, जिसका प्रकाशन सन् १९१४ में दूसरी बार सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से हुआ। कथा का सूत्र प्रसिद्ध महाराष्ट्र वीर केसरी बाजीराव पेशवा से है, जो अपने सवारों के साथ दौलताबाद के प्रसिद्ध पहाड़ी किले के निकट पहुँच हो रहे थे कि एक खूबसूरत नौजवान न एक पत्र के द्वारा सन्देशा दिया कि हैदराबाद के निजाम ने उन्हें पूरा धोखा दिया है। उसमें बताया गया है कि जिस सुहदनामे पर आप दस्तखत कराने जा रहे हैं, उसके बहाने *निज़ाम आपसे* छल करेगा और सुलहनामे की बात गलत तथा नाना प्रकार के फरेबों से भरी हुई है। निजाम ने जाल बिछाया है और आपको दौलताबाद के किले में बंद किया जावेगा। वह सिपाही तो सतर्क करके चला गया तथा बाजीराव ने वह पत्र स्वयं पढ़कर अपने *सिपहसालार माधवराव को भी पढ़ने को दिया। शूरवीर बाजीराव* निडर होकर आगे बढ़ते गये। उन्होंने वहाँ से वापस लौटना अपनी शान और बहादुरी के खिलाफ समझा। पेशवा का ऐतिहासिक घराना अपनी वीरता के लिए सदैव से प्रसिद्ध रहा है। इतने में निजाम ने हमलावों के साथ और भी दो हजार सवारों को भेज दिया। पेशवा ने वीरतापूर्वक अपने चालीस साथियों के साथ उनसे घनघोर युद्ध किया और वे घायल

१. डॉ० सत्येन्द्र "आलोचना" (त्रैमासिक), सन् १९५२ का अंक।

हो गये। जब वे लाशों के बीच मे कराह रहे थे तब उसी नौजवान सिपाही ने आकर उनको खोज लिया और मस्तानी के सजे हुए कमरे में आराम से जाकर लिटा दिया। इस कथानक का मूल आधार मराठों का राज्य है, उनकी सबल शक्ति है, जिससे बादशाह औरंगजेब के मरने के बाद दक्षिण मे मराठा जाति दो भागों में विभाजित हो गयी थी—एक तो शिवाजी के बेटे शम्भूजी के पुत्र शाहूजी का दल और दूसरा, वीर पेशवाओं का दल। सन् १७२१ में पेशवा बालाजी विश्वनाथ के मरने पर उनके बड़े लड़के (प्रथम) बाजीराव पेशवा जिनका जन्म सन् १६६६ मे हुआ था, को उनकी गद्दी मिली। इस पद को पाते ही उन्होंने खानदेश और मालवा को जीतने के लिए यात्रा की थी और तीन वर्ष, अर्थात् सन् १७२४ के अन्त तक सारा खानदेश, मालवा और उनके आस-पास के प्रदेश मराठों के अधीन हो गये थे। बाजीराव बहुत ही चतुर, कायदस और साहसी पुरुष थे। इतिहास साक्षी है कि बाजीराव पेशवा के बाहुबल से महाराष्ट्र राज्य की खूब उन्नति हुई। निजाम-उल-मुल्क का सारा गर्व मिट्टी म मिल गया। यवन शत्रु को पदावनत देख कर बाजीराव ने सन्धि क प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था, जिसके बदल में निजाम ने छल से आक्रमण करा दिया। होलकर, फड़नवीस व सिंधिया ने बाजीराव को समझाया कि निजाम बेईमान है पर उनकी वीरता ने उनसे निजाम की सेना का सामना कराया और वे सग्राम म घायल हो गये। जब घायल अवस्था से वे चेतनता को प्राप्त हुए तो उन्होंने अपने आपको मखमली पलग पर लेटा हुआ पाया और एक सुन्दरी सिरहाने सेवा करती हुई दिखायी दी। उसन हकीम का इलाज शुरू किया। उसने बाजीराव के घावों पर एक प्रकार का अर्क टपकाया, जिससे खून का बहना तुरन्त ठीक हो गया। पेशवा वहाँ स्वस्थ होने लगे और उनके स्वास्थ्य का सदेश उनके मुसाहिबों के पास भेज दिया गया। इक्कीस दिन तक उन्हें रोग शैय्या पर पड़ा रहना पड़ा। बाजीराव ने उस अजनबी नौजवान उसमान क प्रति आभार माना। यद्यपि उसमान मुसलमान था, पर बाजीराव की रोग चर्या तथा भोजन-व्यवस्था के लिए हिन्दू ब्राह्मण का प्रबन्ध कर दिया गया था। उसमान निजाम के उमरावों में से था, पर वह बड़ा नेक तथा सच्चा परोपकारी जाव था तथा मस्तानी (उसमान) नामक अपरिचित सुन्दरी ने भी उनकी महान् लगन के साथ सेवा की, जिसके फलस्वरूप उनक स्वास्थ्य में शीघ्र सुधार हो गया। उसने बाजीराव को बतलाया कि वह दौलताबाद के प्रसिद्ध किले के अन्दर है और रात्रि के समय उन्हें सुरक्षित उनके साथियों के पास पहुँचा देगा। दौलताबाद औरंगाबाद से सात मील दूर एक प्रसिद्ध किला है, जिसको एक पहाड़ पर मजबूती से बनाया गया है। इसी किले का प्राचीन नाम देवगढ़ था। कहा जाता है कि महाराज युधिष्ठिर ने इसको बनवाया था और मुहम्मद तुगलक ने इसे दौलताबाद नाम देकर बसाना चाहा था। हैदराबाद का निजाम आसफजाह इसी किले में रहता था। आधी रात के बाद बाजीराव को उसमान ने किले से बाहर निकाला और उस किले की भूल-भुलैयों वाली सुरंगों से उन्हें परिचित कराया। बाजीराव उसमान से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और

-उसने उसमान से कुछ इनाम माँगने के लिए कहा। निशानी के रूप में बाजीराव ने अपनी भुजा पर बँधे हुए एक जड़ाऊ सोने के फूल को खोल कर उसमान को दे दिया, जिसका नाम 'कनक कुसुम' था और बतलाया कि इस फूल में इतनी शक्ति है कि जब चाहो तब मेरे सोने के महल में पहुँच सकते हो और जहाँ सिपाही तो क्या, सरदार लोग भी नहीं पहुँच सकते। जब निजाम को पता चला तब वह बड़ा लज्जित हुआ और भविष्य में अपने फरेबों को सुधारने का दिश्वास दिलाया। बाजीराव पेशवा और शम्भूजी से दुश्मनी भी निजाम ने करवा दी थी। आसफ्जाह निजाम ने शम्भूजी और शाहूजी को लड़वा दिया था। तब बाजीराव पेशवा से हार खाकर वह चुप हुआ। पेशवा ने अपने प्रधान अधिकारियों, ऊदाजी पँवार को धार रियासत, मल्हारराव होल्कर को इन्दौर तथा रानाजी सिंधिया को ग्वालियर का राज्य इनाम में दे दिया। बाजीराव ने निजाम को अपना मित्र मान लिया, इन बातों से पेशवा की धर्मनिष्ठा और कर्त्तव्य-परायणता का पूरा-पूरा ज्ञान होता है। कुछ दिनों बाद बाजीराव अपने खास तम्बू में बैठे हुए थे और उनकी मुशीला पत्नी काशीबाई रेशमी साड़ी बना रही थी कि 'कनक कुसुम' के प्रताप से उसमान जा पहुँचा। वे उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। अब उसमान ने अपना रहस्य प्रकट कर दिया कि वह पुरुष न होकर औरत है। उसका पिता हैदराबाद का अमीर उमरा व इमदादपली था, जो निजाम के जालिम हाथों से मारा गया था और अपनी माँ को भी वह नीच अपने हरम में दाखिल करना चाहता था, पर उसने आत्महत्या करके अपने सतीत्व की रक्षा की थी। निजाम की बड़ी बेगम आसमानी ने उसे उसी समय से पाला-पोसा था। बड़ी होने पर उसने अपने माता-पिता का बदला लेने का निश्चय किया, पर आसमानी ने उससे प्रतिज्ञा करवा ली थी कि निजाम के साथ दगा न की जावे। उसने जबसे बाजीराव को देखा था, वह उन पर मोहित हो गयी थी और उनकी जवाँमर्दी, दिलेरी, फैयाजी, नेकमिजाजी, परोपकार और उदारता से प्रभावित होकर मस्तानी ने अपनी वास्तविक रूपवती नारी की वेश-भूषा धारण कर ली। जैसे ही वह उस्मान से "मस्तानी" बनी, बाजीराव पेशवा अत्यन्त चकित हुए, पर उनकी पत्नी काशीबाई ने उस "यवन-कुल-बाला" को सहज ही ग्रहण करने का आग्रह किया। धीरे-धीरे उसने अपना भेद प्रकट कर दिया। मस्तानी और बाजीराव की कार्यवाहियों का सारा पता निजाम को चल गया और फिर उसने जीते-जी पेशवा से कभी वैर मोल नहीं लिया।

गोस्वामीजी के अधिकांश उपन्यास पात्र-प्रधान हैं, जैसा प्रत्येक के नामकरण से प्रतीत होता है, यद्यपि उनमें घटना-वर्णन प्रमुख रूप से किया गया होता है। आधुनिक समीक्षकों ने अपनी सुविधा की दृष्टि से उपन्यासों का वर्गीकरण कर डाला है और जिसका क्षेत्र प्रेमचन्द के पश्चात् का उपन्यास-जगत है। इससे पूर्व इस प्रकार की समस्या तथा वर्गीकरण की सीमाएँ उपन्यासकारों के सामने नहीं थीं। बाबू देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी तथा गोपालराम गहमरी जैसे महान् दिग्गज

उपन्यासकार इस उलझन में न पड़कर साहित्य-निर्माण में लगे रहे। उपन्यास साहित्य का भण्डार कूट कूट कर उन्होंने भरा। इस उपन्यास को पढ़ने के लिए जन-साधारण ने हिन्दी भाषा और लिपि का ज्ञान प्राप्त किया था। गोस्वामीजी ने भी अपने उपन्यासों में प्रमुख रूप से युग और उसके पात्रों को ग्रहण किया है। इनके उपन्यासों ने नूतन पाठकों का एक दल तैयार कर दिया था, जो 'उपन्यास' मासिक पत्रिका के प्रकाशित होने की प्रतीक्षा किया करते थे। पात्रों का चरित्र-चित्रण घटनाओं के क्रम विकास और उत्थान पतन में विकसित हुआ है। लेखक का सदैव ध्यान रहता है कि उपन्यास के जीवनमूल मनोरंजकता नष्ट न हो जावे। कौतूहलवर्द्धकता और जन-अभिरुचि का पूरा ध्यान रखकर ही गोस्वामीजी के उपन्यासों का निर्माण हुआ है। "हृदय हारिणी" व "लवंगलता", "तारा", "कनक कुसुम" ये सब पात्र प्रधान उपन्यास हैं, जिनके चारों ओर ऐतिहासिक घटनाएँ ताने-बाने के समान चारों ओर बुनी हुई हैं। यही स्थिति कथावस्तु के वर्गीकरण के लिए उत्पन्न होती है। उदाहरण के-लिए, 'लखनऊ की कब्र' गोस्वामीजी का सबसे लम्बा उपन्यास है, जिसकी कथा-वस्तु आठ भागों में भी समाप्त नहीं होती है। वहाँ पर भी अपूर्णता की ओर लेखक का संकेत है, पर उनके निकटतम सम्बन्धियों से ज्ञात होता है कि उन्होंने आठ ही भाग लिखे, फिर दूसरे उपन्यासों की रचना की ओर उनका ध्यान चला गया। इस लम्बे उपन्यास की कथावस्तु आधिकारिक और प्रासंगिक दोनों ही क्षेत्रों में प्रवाहित हो रही है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि अवध के नवाब नसीरुद्दीन हैदर के समय की घटनाओं का इसमें वर्णन है, पर साथ ही साथ देहली, अवध और लखनऊ—तीनों स्थानों के रंगीन विलासपूर्ण चित्र देखने को प्राप्त होते हैं। आधिकारिक कथावस्तु के साथ अनेक प्रासंगिक सहायक कथाएँ साथ ही साथ चलती हैं, इसलिए अनेक प्रमुख और गौण पात्रों का उपन्यासकार ने समावेश किया है। गोस्वामीजी की विशेषता है कि युगीन सामाजिक प्रवृत्तियों व अनुकूल उपन्यास में विचारधाराएँ तथा कार्य-कलापों का प्रवेश हुआ है। तिलस्मी तथा रहस्यमय एवं चमत्कारपूर्ण कार्यों के कारण उपन्यास में आदि से अन्त तक पाठकों की रुचि बनी रहती है और कहीं भी नीरसता का समावेश नहीं हो पाता है। "तारा" उपन्यास में भी क्षत्रिय-कुल-कमलिनी की वीरतापूर्ण दृढ़ता तथा साहस का परिचय प्राप्त होता है, साथ ही साथ अनेक प्रकार की शतरंजी चालों के परिणाम भी देखने को मिलते हैं। युगीन जन रुचि के अनुकूल तिलस्मी तथा ऐयारी से भरे कार्यों का गोस्वामीजी ने पूर्ण प्रदर्शन किया है, जिससे जन मनोरंजन हुआ है। ऐतिहासिक सूत्र को ग्रहण करके अपनी कल्पनाओं तथा अभिरुचि के अनुकूल गोस्वामीजी के उपन्यासों में कथावस्तु प्रवाहित होती रहती है। लेखक का ध्यान सुगठित तथा युगीन प्रवृत्तियों के अनुकूल कथावस्तु की ओर बराबर लगा रहता है। इतना ही नहीं, आदर्शवाद और यथार्थवाद की सीमाओं से भी गोस्वामीजी पूर्ण परिचित थे। एक ओर उनके उपन्यासों में नग्न यथार्थवाद के दर्शन होते हैं, जिसके कारण आलोचकों की क्रूर दृष्टि का उन्हें शिकार होना पड़ा और अन्याय की

करवट में अपने आपको रखना पड़ा। इन पर अश्लील प्रसंगों के समावेश का आरोप है, पर गहन अध्ययन और उनके जीवन के निकटतम सूत्रों की खोज से हमारी धारणा बनी है कि गोस्वामीजी के उपन्यासों की कथावस्तु में सत्य यथार्थवाद के दर्शन होते हैं। मानव-जीवन के सच्चे, भोग-विलास तथा काम-पूर्ण चित्रों का समावेश उनके उपन्यासों में यथावत् हुआ है, पर इनके साथ ही साथ हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू नर-नारी के कर्त्तव्यों और उनके चरित्रों की ओर लेखक का बराबर ध्यान रहता है। किसी भी हिन्दू नारी की 'अस्मत का खून' उन्होंने नहीं होने दिया, यदि उसका भंग भी हुआ है तो किसी 'यवन' की दुष्ट लीला तथा छल से हुआ है। हिन्दू पुरुष-पात्र भी क्षात्र धर्म का पूर्ण पालन करते हुए दिखाई देते हैं। अपनी प्रेयसी वीरबाला का उद्धार करने के लिए राजपूत शूरवीर अपने प्राणों की बाजी भी लगा देते हैं। संग्राम-कुशलता, वीरता और साहस पुरुष-पात्रों में अद्भुत रूप से पाया जाता है। यह गोस्वामीजी के उपन्यासों का आदर्शवाद है। यथार्थवाद के धरातल पर गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में आदर्शवादी महल निर्मित किया है, अतः उनके उपन्यासों की वस्तु यथार्थवादी और आदर्शवादी विचारधाराओं को साथ लेकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है। गोस्वामीजी के उपन्यासों का नारी आदर्श रीतिकालीन परम्पराओं के आधार पर है क्योंकि वे केवल गद्य-लेखक ही नहीं, वरन् ब्रजभाषा के उच्च कोटि के रीति-कवि भी थे। इतना ही नहीं, कथा के विकास के लिए पात्रों तथा उनके चरित्र-चित्रण के लिए कथोपकथन का भी उचित समावेश उन्होंने किया है।

"सुलताना रजिया बेगम" व "रंगमहल में हलचल" गोस्वामीजी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जो पात्र-प्रधान उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं। सन् १९१५ में यह सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से दूसरी बार प्रकाशित हुआ। इसका ऐतिहासिक आधार गोस्वामीजी के द्वारा इस प्रकार से वर्णित है कि महमूद गोरी के बाद उसका गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक हिन्दुस्थान का बादशाह बना, उसके बाद उसका बेटा आरामशाह, उसके बाद शमसुद्दीन अल्तमश और उसके बाद उसका ऐयाश बेटा रुक्नुद्दीन फीरोज-शाह गद्दी पर बैठा। वह बड़ा जालिम था और उसकी माँ भी उसी प्रकार की दुष्टा थी, अतः दरबारियों ने सात ही महीने के भीतर उसे तख्त से उतार दिया और उसकी बहिन रजिया बेगम को ३ नवम्बर सन् १२३६ में तख्त पर बिठाया। इस उपन्यास के के कथानक से प्रकट होता है कि यह बेगम बड़ी चतुर थी, यद्यपि बहुत पढ़ी-लिखी न थी, तो भी कुरान भलीभाँति पढ़ लेती थी। नित्य बादशाहों के समान कबा और ताज पहन कर वह तख्त पर बैठकर दरबार करती थी। नकाब मुख पर कभी नहीं डालती थी। बड़े ध्यान से लोगों की फरियाद सुनती और फैसला करती थी। धीरे-धीरे वह अपने अस्तबल के दरोगा याकूब पर मोहित हो गयी, जो अत्यन्त स्वस्थ, सुन्दर और बलवान युवक था और प्रतिदिन बेगम को अपने हाथ का उसकी बगल में सहारा देकर घोड़े पर चढ़ाया करता था। इतना ही नहीं, उसे "अमीर-उल-उमरा" का खिताब भी

दे दिया गया, जिसके कारण सारे दरबारी उससे नाराज हो गये। परिणाम यह निकला की रजिया बेगम केवल तीन वर्ष छ महीने और छ दिन राज्य कर पाई थी कि सन् १२३६ के नवम्बर मास में उसे तख्त से उतार दिया गया और भटिंडे के किले में कैद कर डाला। उस समय उस किले का मालिक एक तुर्की सरदार था, जिसका नाम अलतूनिया था। रजिया ने चकमा देकर उससे विवाह कर लिया और फौज इकट्ठी करके उसे दिल्ली पर चढ़ा लाई, किन्तु वह युद्ध में हार गयी और अलतूनिया के साथ अपने भाई बहरामशाह के हाथों मारी गयी और उसकी कब्र तो अब तक पुरानी दिल्ली में है। इस उपन्यास मे गोस्वामीजी ने रजिया बेगम के राजत्व-काल का इतिहासमात्र लिखा है। उस खानदान का भी वर्णन किया है जिसमें रजिया बेगम पैदा हुई थी। इस उपन्यास में ऐतिहासिकता का बहुत कुछ समर्थन किया गया है और साथ ही उपन्यास की रोचकता भी कम नहीं होने पाई है। 'रजिया बेगम' का जीवनवृत्त आधिकारिक कथावस्तु के रूप में प्रकट हुआ है। लेखक ने बतलाया है "हम इस उपन्यास में रजिया बेगम का हाल लिखते हैं, इसलिए हमें उसी के राजत्व काल का इतिहासमात्र लिखना था, किन्तु हमने स्वाधीन भारतवर्ष पर पश्चिम वालों की चढ़ाई के आदि से लेकर गुलाम खानदान तक का हाल, जिसमें रजिया पैदा हुई थी, इसीलिए लिख दिया है, जिससे इतिहास के सिलसिले मे गडबड नहीं हो और पढ़ने वाले उपन्यास के साथ ही साथ कुछ कुछ इतिहास का भी आनन्द ले लें जिससे लोगों की रुचि केवल उपन्यास ही पर न रह कर इतिहास की ओर भी झुके, जिससे हिन्दी भाषा में, जो इतिहास का बिलकुल अभाव है वह मिटे।"[1]

दिल्ली राज्य की यह धूम और विधि की विडम्बना थी कि इतने बड़े साम्राज्य पर राज्य करे गुलाम वंश! उस पर एक स्त्री का शासन, न्याय करना, फरियादें सुनना; रजिया बेगम का राजगद्दी पर बैठना और दिल्ली राज्य में महोत्सव, कुश्ती, दगल, पटेबाजी का आयोजन उस समय की शान शौकत की सूचक है।

गोस्वामीजी ने उपन्यास में साज-सजावट, शान शौकत, शाही दरबार की झलक और महलों की रौनक का अत्यन्त सुन्दरता से यथार्थ वर्णन किया है। 'शाही चौक' में करीब दो परिच्छेद भरे हुए हैं। लम्बे चौड़े मैदान में पशु-युद्ध और महल-क्रीडा के लिए रग भूमि का निर्माण तो साधारण सी बात है। रंग भूमि, ध्वजा, पताका, तोरण, बन्दनवार, फूल-पत्तों तथा झाड फानूसों की सजावट को देखकर हिन्दुस्तान की दौलत का अनुमान सहज में लग सकता है। 'नर-पशु-युद्ध' देखने के लिए रजिया बेगम और उसके आस-पास दो सुन्दरी षोड्शियाँ गुलशन और सोसन बैठी हुई थीं। इस वीर पुरुष को देखकर ही प्रथम दर्शन मे रजिया का मुग्ध हो जाना और दोनों सहेलियों को इसका आभास हो जाना, उस जवाँमर्द ने "नर-पशु युद्ध"

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुलताना रजिया बेगम" का उपोद्घात, पृ० 'घ', (१ जनवरी सन् १९०४)।

तथा "मल्ल युद्ध" दोनों में विजय प्राप्त की और सारे-शहर में उसे उस्ताद के साथ हाथी पर बैठाकर गौरव के साथ घुमाया गया। इस वीर का नाम 'याकूब' और उसके शागिर्द का नाम 'अय्यूब' था। इन दोनों वीरों ने रजिया, सौसन और गुलशन-तीनों के दिलों में एक अजीब हलचल सी मचा दी। इस उपन्यास में एक ओर मुसलमान गुलाम वंश के कार्यकलापों का वर्णन है तो दूसरी ओर, लेखक ने हिन्दुओं के आदर्शों को भी रखा है। मन्दिरों में देवताओं की पूजा, घड़ियाल और शंखों का बजना, गोशाला की देख-भाल, हिन्दुओं के हृदय की गम्भीरता, सहनशीलता और उदारता, मुसलमानों का उन पर अत्याचार, उनकी गौओं को खोल ले जाना, हिन्दू धर्म की विशालता और उदारता का परिचय इस उपन्यास से प्राप्त होता है। रजिया बेगम के द्वारा सच्चा न्याय, बूढ़े फकीर का हिन्दू पुजारी-हरिहर शर्मा के व्यवहार से प्रसन्न होकर कीमती नीलम के हारों को ठाकुरजी के लिए भेंट में दे जाना तथा रजिया बेगम के दरबार या शाही कचहरी के इन्साफ का गोस्वामीजी ने सुन्दर वर्णन किया है। रजिया बेगम मर्दानी पोशाक पहिनती थी। उसकी सहेलियाँ भी उसी तरह से रहती थीं और हाथ में नंगी तलवारें रखती थीं। जिस व्यक्ति को जो कुछ फरियाद करनी होती थी, वह बेखटके दरबार में चला आता था। कोई स्त्री अपने पति के खिलाफ मुकदमा लेकर आती थी कि उसके पति ने उसकी नाक काट ली है। पुजारी हरिहर शर्मा अपनी गौओं को चुरा ले जाने की फरियाद लेकर पहुँचे। सारे शहर में सभी छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान बेगम के अदल इन्साफ की बड़ाई करते थे। रजिया बेगम ने मुसलमानों के जुल्म से अनेक हिन्दुओं की जानें बचाई थीं, इसलिए मन्दिरों में हिन्दू इकट्ठे होकर बेगम साहिबा की मंगलकामना के लिए 'श्री हरिकीर्तन' करते थे और प्रसाद बाँटते थे। जो अपराधी होते थे, बेगम साहिबा उन्हें कठोर दण्ड दिया करती थीं। लेखक का मत है : "हमारी समझ से अपराध की संख्या घटाने में जैसा कठोर दण्ड हेतु हो सकता है, वैसा साधारण दण्ड नहीं, यही कारण है कि महर्षियों ने अपराधों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की है। हम उसी पक्ष को मानते हैं।"[1]

रजिया बेगम जितनी न्यायप्रिय, स्पष्टवादी, साहसी तथा जवाँमर्द थी, याकूब के पुरुषत्व ने, उसकी वीरता के कामों ने, उसके सुन्दर स्वस्थ आकर्षक शरीर ने 'रंगमहल' में हलाहल घोल दिया। रजिया बेगम के दिल और दिमाग में एक अपूर्व ढंग की बेचैन करने वाली हलचल मच गयी। 'गुलशन' का अय्यूब पर रंग-भूमि में ही मोहित हो जाना, 'सौसन' और रजिया बेगम का याकूब पर मोहित होना तथा एक ओर मुँहलगी बाँदी 'जौहरा' का बेगम रजिया के इश्क में मदद पहुँचाना, रजिया का जौहरा पर अटल विश्वास था कि वह हिनेतौर पर उसको इश्क में मदद

---

1. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुलताना रजिया बेगम", सन् १९१५ की प्रति, पृ० ५०।

पहुँचा सकती है व मियाँ याकूब को वहाँ लाकर उपस्थित कर सकती है। 'रजिया' के विषय में ज्ञात होता है " " किसी भी औरत के लिए एक दिलदार मर्द का होना बहुत जरूरी है।"[१]

चाहे वह बेगम हो और शाही शान शौकत में जिन्दगी के दिन काट रही हो, पर अपने प्रेमी के बिना उसका नारीत्व हाहाकार कर उठता है। नारी नारी रहेगी, चाहे वह दुनिया की ऊँची से ऊँची वस्तु प्राप्त कर लें। शाही खानदान के कायदे के अनुसार 'रजिया' का विवाह नहीं हो सकता है क्योंकि वह गुलाम वंश की है, परन्तु छिप कर वह अपनी दिलबस्तगी के लिए बेचैन थीं। उसने जोहरा को याकूब के पास भेज कर और स्वयं अपना पीछा सौसन और गुलशन से छुड़ाया तथा रंग महल में अकेली जाकर अपने इश्क की चिन्ता में तल्लीन हो गयी। गोस्वामीजी ने नर-नारी के यौन सम्बन्धी ज्ञान का भी उपन्यासों में यत्र-तत्र परिचय दिया है। याकूब अत्यन्त चतुर तथा बुद्धिमान व्यक्ति था। रजिया ने इश्क को "हुकूमत" के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा की। गुलामी से रिहा कर के जागीर देकर तथा दरबारी उमरा बनाकर उस पर अहसान का बोझ लादा पर याकूब ने सचेत कर दिया था कि दरबार तथा रियाया में अजीब तूफान आ जावेगा जो राजा को उखाड़ फेंक देगा, लेकिन रजिया अपने इश्क में अंधी थी। 'अमीर उल उमरा' का खिताब और खिल्लत के साथ 'दसहजारी मनसबदारी का पर्वाना तथा जागीर में दो लाख रुपये साल का ला खिराज इलाका याकूब को प्राप्त हुआ और 'दरोगा अस्तबल' के काम से रिहा होकर मुबारक महल' की आलीशान इमारत में रहने तथा दोनों के साथ शाही दरबार में हाजिर रहने और जब बेगम घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी के लिए जायें तो उसकी बगल में हाथ का सहारा देकर उसे घोड़े पर सवार करके खुद भी साथ ही दूसरे घोड़ पर तैनाती का हुक्म हुआ। इस हुक्म से और याकूब की इस तरक्की से सारे उमराव दोनों के दिलों का इश्क समझ गये। उन्होंने रजिया बेगम को तख्त से उतार दिया और उसे कैद भुगतनी पड़ी तथा अन्त में अपने भाई के ही हाथों उसे प्राण देने पड़े। रजिया जैसी बहादुर, चतुर, न्यायप्रिय, नेक बेगम को इश्क ने बुरी तरह से बर्बाद कर दिया और उसके दिल की आग ने उसे बादशाही के तख्त से उतार कर जमीन पर कुचल दिया।

१ - गोस्वामीजी ने इस उपन्यास के द्वारा इतिहास की एक स्त्री शासक का सफल चरित्र चित्रण किया है। मुसलमानी राज्य में रजिया बेगम जैसी चतुर तथा उदार और गरीबपरवर नारी हुई, जिसने अपना जीवन प्रजा के सुख के लिए लगाया, पर इश्क की आग ने उसके अन्तिम दिनों में हलाहल घोलकर उसे बुरी तरह से नष्ट कर दिया। इस 'चरित्र प्रधान' उपन्यास में सारी कथावस्तु आधिकारिक है। रजिया

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी . ' सुलताना रजिया बेगम", पृ० ७१।

बेगम की ही कथा आदि से अन्त तक चलती है। उसके दरबारी ठाट-बाट, रंगमहल की शौन-शौकत, ऐशोआराम तथा अन्त में उसका नैतिक पतन सब बातों का गोस्वामीजी ने यथावत् और प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। कथा मनोरंजक है और पाठकों के हृदय को अजीब उथल-पुथल में डाल देती है।

"सोना और सुगन्ध" व "पन्नाबाई" के मुख पृष्ठ पर ही लेखक ने उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहा है। इसकी रचना और प्रकाशन का कार्य स्वयं गोस्वामीजी ने वृन्दावन से सन् १६०६ में किया। इससे पूर्व उनके अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास "लखनऊ की कब्र", "तारा" इत्यादि की रचना हो चुकी थी। इस उपन्यास में सम्राट् अकबर की युगीन सामाजिक स्थितियों का सजीव चित्र प्राप्त होता है। "पन्नाबाई" अत्यन्त रूपवती नारी थी, जिसके पिता जौहरी सेठ हीराचन्द शहंशाह अकबर के खास विश्वासपात्र थे। सेठजी ने अपनी कन्या का विवाह मानिकचन्द नामक नवयुवक से निश्चित कर दिया, जिसका बाप लालचन्द अमीर होने पर भी फिजूलखर्च तथा ऐयाश था। माता पिता के मरने पर मानिकचन्द अनाथ हो गया और उसके पिता की फिजूलखर्ची ने उसे कंगाल बना दिया। तबसे सेठ हीराचन्द ने ही उसे पाला-पोषा और शिक्षा-दीक्षा दी। 'पन्नाबाई' के जन्म के साथ ही साथ सेठजी तथा उनकी पत्नी ने निश्चय कर लिया कि उनकी कन्या के लिए योग्य वर यही रहेगा। मानिकचन्द फारसी और सिपहगीरी में अत्यन्त निपुण हो गया था। पन्नाबाई के साथ इसकी प्रेम-लीला खूब चलती थी, दोनों को गाने-बजाने का चाव था। मानिकचन्द पन्नाबाई को संगीत की शिक्षा देता था और यह निश्चित हो गया था कि दोनों का गठबंधन हो जावेगा। केवल मुसलमानी अमलदारी में बड़े-बड़े राजों, महाराजों, अमीरों, उमराओं, रईसों, दरबारियों, अहलकारों आदि को अपने लड़के या लड़की की शादी के लिए बादशाह की इजाजत लेनी पड़ती थी, नहीं तो कठोर दण्ड का भागी बनना पड़ता था। रूपसिंह नामक दुष्ट व्यक्ति से इन दोनों का प्रेमालाप नहीं देखा गया और उसने भयंकर विघ्न डालने की चेष्टा की। उसने सेठ को बताया कि मानिकचन्द का चरित्र भ्रष्ट हो चुका है। वह जौहरा नामक वेश्या का गुलाम है और आपकी प्यारी बेटी तथा दौलत को बर्बाद कर देगा। रूपसिंह के इस कथन के पीछे एक चाल थी। वह एक धनी तथा वृद्ध राय जगमल से पन्नाबाई का विवाह कराना चाहता था, जिसने सेठ हीराचन्द से पच्चीस हजार के हीरे-जवाहरात खरीद लिये थे। रूपसिंह को भी बहुत दलाली मिलने की उम्मीद थी। सेठ जगमल की स्त्री मर गयी थी। उसकी भद्दी सूरत थी, पर मुर्शिदाबाद के मशहूर दौलतमन्द सेठ रायमल का वह एकलौता बेटा था और उम्र ज्यादा थी। सेठ हीराचन्द ने नेक और स्वाभिमानी मानिकचन्द को अपने घर से निकाल दिया, जिससे पन्नाबाई का दिल टूट गया। वह बड़ी दुखी हुई, जैसे मीन पानी से बिछुड़ कर होती है। उसकी माँ चुन्नीबाई बेटी के हृदय की वेदना को भली-भाँति समझती थी। उसने पन्ना को अपूर्व धैर्य प्रदान किया और ऐसे

संकट के अवसर पर बुद्धिमानी से काम लिया। चुन्नीबाई पन्ना को अपने साथ लेकर अपने बाप जवाहरमल जौहरी के यहाँ चली गयी। उसने निश्चित कर लिया था कि वहाँ जाकर वह प्रिय मानिकचन्द की खोज करेगी और उसे ढुँढ़वाकर अपनी बेटी का ब्याह कर देगी। उसके बाद पन्ना का पिता सेठ होराचन्द हाथ मलकर पश्चात्ताप करता रह जावेगा। वह अपने साथ जवाहरात की पेटी और एक हजार अशर्फियाँ भी लेता गयी थी। चुन्नीबाई के भाई लाडलीप्रसाद ने तो स्पष्ट ही बतला दिया कि यहाँ पर पन्ना का मानिक के साथ विवाह होगा। मानिकचन्द भी यहाँ से निकलकर भटकते-भटकते अपने मित्र निहालचन्द के यहाँ पहुँचा। निहालचन्द उसका शुभचिन्तक तथा उदार मित्र था, जिसने पूरा विश्वास दिलाया कि वह मानिकचन्द का विवाह पन्नाबाई से अवश्य करा देगा। इस नय दोस्त का मारा महल अजीब प्रकार के तिलस्मी कारनामों से भरा हुआ था। उसने बताया कि मानिकचन्द और पन्नाबाई के इश्क की शोहरत तो दिल्ली-आगरा तक फैली हुई है। जगमल के साथ पन्ना की शादी कभी नहीं हो सकती है। मित्र निहालचन्द के यहाँ अद्भुत 'चित्रशाला' थी, जिसके दरवाजे अद्भुत कला के प्रतीक थे। इसमें अनेक प्रकार के बड़े बड़े सुन्दर चित्र लगे हुए थे। किसी में पर्वत का दृश्य थी, कहीं समुद्र का दृश्य था, जहाज तैरता हुआ दिखाया जा रहा था, झरने, जंगल, शिकारगाह, बरसात, तराई इत्यादि के अनुपम दृश्य थे। तिलस्मी चाबी के प्रयोग से दरवाजा खुलता और बन्द होता था। मानिकचन्द को करीब चार घण्टे उस तस्वीरगाह को देखने में लग लगे। रात के समय वास्तविक आनन्द उसे प्राप्त होता है। उस कमरे में राग रागिनियों की तो कहीं कहीं पर 'कोका' के और कहीं पर 'नायिका भेद' की नायिकाओं के, यहाँ तक की चीन, रोम, ईरान, तुर्किस्तान, यूनान और कोहकाफ की परियों की, कहीं पर राजपूताने, मध्यभारत, पश्चिमोत्तर, अवध, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, पंजाब, काश्मीर, मन्दराज और गुजरात की सुन्दर नारियों के चित्र थे। वह शृंगारिक वासनाओं से पूर्ण चित्रों की शाला थी, जहाँ पहुँचकर साधारण जीव उलझन में पड़ जाता था। मानिकचन्द का इस चित्रशाला से मन नहीं भरा, उसे तो अपने हृदय की देवी पन्ना का विरह सताने लगा। वह अपना दिल गाकर बहलाता था तथा निहालचन्द के आग्रह पर जो गजलें उसने गायी हैं, उनमें उसके दिल की आग प्रकट हो जाती है। यही दशा पन्नाबाई की थी, जो मानिक के विरह में बुरी तरह से तड़फ रही थी, पर सच्चे प्रेम की सदैव जीत होती है। पन्नाबाई और मानिक के सच्चे प्रेम ने अन्त में बिछुड़न के बाद दोनों का अपूर्व सम्मिलन कराया। विरह की आग संयोग की सुखद घड़ियों में परिणत हो गयी। लेखक ने निहालचन्द के जीवन चरित्र के बारे में भी वर्णन किया है, पर वह केवल मानिक के मित्र के रूप में ही है। यह मुख्य रूप से 'पन्नाबाई' की जीवन-गाथा है, जिसमें रूप और सौन्दर्य में 'सोना और सुगंध' दोनों का अपूर्व मिश्रण पाया जाता है। इस उपन्यास में अकबर के राज्यकाल में कला कौशल का जो अपूर्व विकास हुआ है उसका भी

यथोचित वर्णन है। मानिकचन्द और पन्नाबाई दोनों ही काव्य तथा संगीत के प्रेमी और उपासक हैं। अकबर के दरबार में 'नवरत्न' और वहाँ के ठाट-बाट का वर्णन मिलता है। अकबर के समय में 'मीना बाजार' की प्रथा के प्रचलन ने देश की ऐयाशी की भावना को बल दिया है। हिन्दू सेठ, साहूकार, राजे-महाराजे भोग-विलास, में डूबे रहते थे तथा ऐयाशी में ही अपना जीवन-यापन करते थे। लेखक के कथन से स्पष्ट ज्ञात होता है : "बादशाह जाहिर में जितना धर्मात्मा और 'वेदान्ती' बनता है, अन्दर ही अन्दर उतना ही 'ऐयाश' और 'नफ्स-परस्त' है। इसने मीना-बाजार के नाम से एक मेला महल के अन्दर करना शुरू किया है, जो साल में एक बेर नौरोज के दिनों में भी रोज होता है, वह इसकी बड़ी भारी बदमाशी का अच्छा-खासा नमूना है।"[1]

यह भी चरित्र-प्रधान उपन्यास है, जिसमें घटनाओं का उत्थान-पतन चरित्र के साथ ही होता है। 'पन्नाबाई' उपन्यास की नायिका है, जिसके चारों ओर समस्त घटनाओं का विकास होता रहता है। उपन्यास के मध्य में प्रतीत होता है कि इसका अन्त दुखान्त होगा, नायिका का नायक मानिकचन्द से मिलना कठिन जान पड़ता है, पर अन्त सुखान्त हो जाता है। लेखक संस्कृत के गद्य-काव्यों की परिपाटी के अनुसार अपने उपन्यासों का सुखान्त रूप से ही देखना ठीक समझता है। मध्य में परिस्थितियाँ जटिल हो जाती हैं और जीवन की विषमताएं तथा भाग्य-चक्र के परिभ्रमण के साथ मानव पिसता रहता है। प्रेम का मूल्यांकन और परीक्षण तो सदैव दुःख की कसौटी पर ही हुआ है, यही कारण है कि लेखक ने प्रेमी और प्रेमिका दोनों को एक-दूसरे के विरह में तड़पाया और तड़पाया है एवं उनके हृदय की वेदना देख कर उर्दू तथा फारसी के "लैला मजनू" और "शीरां फरहाद" की कथाओं का स्मरण हो उठता है। एक क्षण के लिए भी वे एक-दूसरे से पृथक् नहीं रह पाते हैं, पर मानव विधाता की लीलाओं के आगे सदा ही नतमस्तक रहा है। गोस्वामीजी ने 'पन्नाबाई' की आधिकारिक कथावस्तु के साथ निहालचन्द की प्रासंगिक उप-कथावस्तु का भी सृजन किया है, जिसके द्वारा सम्राट् अकबर के राजत्व-काल की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक और विलासपूर्ण पारिवारिक परिस्थितियों के चित्र देखने को प्राप्त होते हैं। प्रासंगिक कथानक के द्वारा मूल कथा-वस्तु को वृहद् रूप भी प्राप्त होता है, फिर भी गोस्वामीजी के उपन्यासों में नीरसता नहीं आने पायी है। पाठकों की कौतूहलवृत्ति सदैव जागरूक रहती है।

"मल्लिका देवी" व "वंग सरोजिनी" भी गोस्वामीजी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसे दो भागों में रचा गया है और जो सन् १६०५ में हितचिन्तक प्रेस, बनारस से गोस्वामीजी के द्वारा ही प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के 'उपोद्घात' में ही

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सोना और सुगंध" अथवा "पन्नाबाई", पृ० १५५।

गोस्वामीजी ने निवेदन किया है कि "इसमें बंग देश की उस समय की घटना का वर्णन किया गया है, जब दिल्ली के तख्त पर योग्य गयासुद्दीन बलबन बादशाह विराजमान था और बंगाल की बागडोर एक महा अत्याचारी तुगरलखाँ जैसे निर्दयी नवाब के हाथ में थी। लेखक ने कहा है : "गुलाम खानदान के इन दस बादशाहों में *गयासुद्दीन बलवन बहुत ही भला और योग्य बादशाह हुआ। उसी के समय की एक घटना का अवलम्ब लेकर यह उपन्यास लिखा गया है। आशा है कि इसके पढ़ने से पाठक* उस पुराने जमाने के आचार, व्यवहार, राजनैतिक और सामाजिक तत्व तथा देश दशा के परिचय को भली भाँति पा सकेंगे।"[1] इस उपन्यास में सन् १२७६ की भयकर घटना का उल्लेख है, जब बंगाल में भयंकर विप्लव हुआ था। उस समय दिल्ली के तख्त पर गयासुद्दीन बलबन था और बंगाल के नवाब की गद्दी पर तुगरलखाँ था, जो *अत्यन्त दुष्ट तथा दुराचारी था। इसका दूसरा नाम मगसुद्दीन था। उस समय भागलपुर* में एक प्रबल राजवंश राज्य करता था, जिसमें वर्तमान महाराज नरेन्द्रसिंह थे। उनका सुदृढ़ किला गंगा के किनारे बना हुआ था। विन्ध्य की पर्वत श्रेणी पूर्व में भागलपुर जिले तक है। वहाँ से बीस कोस दूर 'मोती महल' नामक किला था, जो दिल्ली के बादशाह के अधिकार में था। वहाँ से साठ मील दूर राजमहल नामक बस्ती है, जहाँ नवाब तुगरलखाँ विलासी जीवन बिताता था। उसकी सेना ने वहीं छावनी डाल रखी थी। बादशाह ने *गुप्त रीति से महाराजा नरेन्द्रसिंह को मिलने के लिए बुलाया। उसी समय* मृग का पीछा करते करते राजा मदरगिरि पर्वत के अरण्य में दूर तक चले गये। उनके साथ मन्त्री विनोदसिंह भी थे। दोनों ने मोतीमहल किले में रात बितानी चाही, पर नवाब के अनुचर उन्हें वहाँ से दूर उठा कर ले गये, जो पर्वत और भागलपुर के बीच में झाड़ों से घिरा हुआ एक-टीला था। जहाँ महाराजा नरेन्द्रसिंह सरला और मल्लिका के अतिथि थे, *वहीं पर मन्त्री विनोदसिंह की मुठभेड़ हुई थी। तुगरलखाँ के अत्याचारों से भयभीत होकर बंगाल के राजाओं ने इसके विरुद्ध दिल्लीश्वर को उत्तेजित किया* था। दिल्ली के बादशाह ने दो बार उसे जीतने को सेना भेजी, पर छलपूर्वक दोनों बार तुगरलखाँ जीत गया। अबाल, वृद्ध, वनिताएँ सब दुखी होकर हाहाकार करने लगीं। अन्त में स्वयं गयासुद्दीन बलबन ने कई हजार सेना-दल के साथ तुगरलखाँ को नष्ट करने के लिए बंगाल पर चढ़ाई की। नवाब तुगरलखाँ बहुत दिनों से 'मल्लिका' को *प्राप्त करना चाहता था और इन दोनों अनाथ स्त्रियों के साथ नाना प्रकार के दाँव पेंच* चल रहा था। मल्लिका हृदय हारिणी ने जैसे ही नरेन्द्रसिंह की वीरोपम छवि देखी, वह उन पर मुग्ध हो गयी। प्रथम साक्षात्कार में ही दोनों एक-दूसरे को अपना हृदय दे बैठे। महाराज नरेन्द्रसिंह के बालसखा विनोदसिंह सच्चे सहयोगी और सलाहकार थे। नरेन्द्रसिंह तुगरल नीचतापूर्ण कार्यों को भलीभाँति समझ गये थे। विनोदसिंह ने

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी - "मल्लिका देवी" उपोद्घात से।

थी सुशीला नामक लड़की, जो मल्लिका की मौसेरी बहन थी और यवनों की कैद में थी, उसका उद्धार किया। इन दोनों के वीरतापूर्ण कार्यों को सफल बनाने में अपरिचित जन हमेशा सहायता पहुँचाते थे। लेखक ने यवनों का अत्याचार, उनके भय से सुन्दर रूपवती नारियों का अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए क्रन्दन करना, धर्म बचाने की चेष्टा करना तथा इन दोनों राजकुमारों के द्वारा क्षत्रिय कन्याओं के उद्धार, उन सुन्दरियों का इन पर मुग्ध हो जाना, दुर्जन और सज्जन मित्रों की सहायता से कार्य का होना आदि उपन्यास के कथानक के विकास में सहायक होते हैं। जिस प्रकार नरेन्द्रसिंह और विनोदसिंह साथ रहते थे, उसी प्रकार से मल्लिका, सुशीला और सरला भी साथ ही रह कर एक-दूसरे का सुख-दुःख हलका करती थीं। मल्लिका की माता कमला भागलपुर के महाराजा महेन्द्रसिंह के प्रधानमन्त्री वीरेन्द्रसिंह की पत्नी थी और वीरेन्द्रसिंह के छोटे भाई धीरेन्द्रसिंह का पुत्र विनोदसिंह भी कमला ने पाला-पोसा था। उसी प्रकार सुशीला भी अनाथ बाला थी, जिसकी माँ उसे छोटा छोड़ कर परलोक सिधारी थी। जब कमला ने देखा कि भागलपुर के महाराजा महेन्द्रसिंह के पुत्र नरेन्द्रसिंह ने माँगी की माला और अंगूठी मल्लिका को प्रेम-पुष्प के रूप में दी है तो वह बड़ी प्रसन्न हुई। उधर सुशीला विनोदसिंह पर मुग्ध थी। दोनों विरह में आँसू बहाया करती थीं। मल्लिका देवी इस उपन्यास की प्रधान नायिका है, जिसके नाम पर ही उपन्यास का नामकरण हुआ है। सरलादेवी कमला की दूर के नाते की बहिन थी। उसकी लड़की का भी नाम 'सरला' ही रखा गया। महाराज नरेन्द्रसिंह के यहाँ वीरसिंह नामक एक विख्यात सेनानायक थे, जिनके गुणों और वीरता पर वह मोहित थी। उसको पता चल गया कि नरेन्द्रसिंह और मल्लिका प्रेम बाण से विद्ध हैं। वीरसिंह सरला से प्रेम करने लगे थे, पर उनके नवाब से मिल जाने से क्षत्रिय राजकुमार क्रोधित हो गये। पर जैसे ही नरेन्द्रसिंह के प्रयत्न से नवाब के दुख के दिन आये, सरला और वीरेन्द्रसिंह के हृदय की प्रसन्नता बढ़ गयी। सरला, सुशीला, मल्लिका तीनों उस दिन की प्रतीक्षा करने लगीं, जब नवाब का नाश हो तथा ये प्रेमी दम्पति एक-दूसरे के साथ सुखी जीवन व्यतीत करें। इनके आग्रह से ही बादशाह ने निश्चय किया था कि नवाब का सिर काट डालना चाहिए।

नरेन्द्रसिंह की माता राजलक्ष्मी देवी और मल्लिका की माता कमलादेवी में अपूर्व स्नेह था, अतः नरेन्द्र भी कमलादेवी का अत्यधिक आदर करते थे। नरेन्द्र और मल्लिका के प्रेम की दृढ़ता ने समस्त विपत्तियों पर विजय दिला दी। नवाब तुगरलखाँ के राज्य-काल की काली घटनाओं का यथातथ्य वर्णन प्राप्त होता है। वह अत्याचारी और उदण्ड मनुष्य था। लेखक ने मुंगेर दुर्ग का एक दृश्य भी अंकित किया है, जहाँ मल्लिका, सुशीला और सरला पकड़ कर कैद कर दी गयी हैं, यद्यपि ब्राह्मण के द्वारा उनके भोजन का प्रबन्ध था, फिर भी उन्होंने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। जब पाँच दिन हो गये तब नवाब मगसुद्दीन या तुगरलखाँ, जो देखने में अत्यन्त कुरूप था, इन

हिन्दू रमणियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पहुँचा। मल्लिका और सुशीला ने मुँह फेर लिया, पर सरला साहस कर उठ खड़ी हुई और उसने वीरतापूर्वक नवाब का सामना किया और बेवकूफ बनाकर उसे बाहर निकाल दिया। नरेन्द्रसिंह अपने साथियों विनोदसिंह तथा वीरसिंह सहित वहाँ जा पहुँचे और इन तीनों को छुटकारा दिलाया। मोतीमहल के किले में नरेन्द्रसिंह ने तीनों को सुरक्षित कर दिया। "मल्लिकादेवी" उपन्यास में 'नरेन्द्र-मल्लिकादेवी' की मुख्य कथा के साथ ही साथ 'सुशीला और विनोद', 'सरला तथा वीरसिंह' की कथाएँ भी निरन्तर चलती हैं। प्रणय की लीला को अनुपम ढंग से चित्रित किया गया है। सरला का चित्र लेखक ने वीरांगना के समान उतारा है। उसने नरेन्द्रसिंह की सहायता करने के लिए भैरवी नामक भिखारिन का भी भेष धारण किया। समर-क्षेत्र और उसके बाहर नरेन्द्र ने डटकर अपने साथियों सहित तुगरलखाँ का मुकाबला किया और विजय प्राप्त कर वृद्ध महाराज यदुनाथसिंह, बादशाह गयासुद्दीन बलबन, कमलादेवी, सरलादेवी, मल्लिका और सुशीला से महेन्द्रसिंह और नरेन्द्रसिंह मिले। नवाब तुगरलखाँ के अत्याचारी से बंगाल के कारागृह भर गये थे।

लेखक ने बताया है कि एक ओर तुगरलखाँ की बेटी शीरी और फरहाद रंगमहल में केलि-क्रीडाओं में मग्न थे, तो दूसरी ओर तुगरलखाँ को बुरी तरह मार डाला गया और उसका शव सैनिक समारोह के साथ मुंगेर दुर्ग के बाहर नवाबों कब्रिस्तान में समाधिस्थ किया गया। शीरी को अत्यन्त शोक हुआ, पर शाहजादे नसीरुद्दीन मुहम्मद तथा फरहाद ने उसे बहुत सान्त्वना दी तथा राजा महेन्द्रसिंह का विवाह भी खूब धूम-धाम के साथ हुआ। धीरे-धीरे सारी जनता नवाब तुगरलखाँ को भूल गये। महाराज महेन्द्रसिंह की पत्नी राजलक्ष्मी देवी से मल्लिका की माता कमलादेवी का अत्यन्त प्रेम था। जैसे ही उन्हें पता चला कि दुराचारी तुगलक (तुगरल) और रघुनाथ सिंह ने उसके पति को मरवाया था, तब उन्हें बड़ी लज्जा आयी और उन्होंने महाराज नरेन्द्रसिंह से क्षमा माँगी तथा राजा महेन्द्रसिंह तथा राजलक्ष्मी देवी के पास मल्लिका और सुशीला के विवाह का प्रस्ताव रख दिया और बादशाह गयासुद्दीन से सम्मति लेकर यह शुभ कर्म पूरा हो गया। लेखक ने बताया है कि "वैदिक और पौराणिक काल के 'कोर्टशिप' के अनुसार नरेन्द्र और मल्लिका तथा विनोद और सुशीला का परस्पर मिलाकर प्रेम सम्भाषण करा चुके हैं, किन्तु जबसे इन चारों प्रणयियों ने यह सुना कि अब विवाह शीघ्र होने वाला है, एक विलक्षण लज्जा तथा संकोच ने इन चारों को ऐसा अधीन कर लिया था कि वे मन ही मन बहुत कुछ इच्छा रखने पर भी परस्पर मिलने में सकुचित होते हैं।"[1]

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "मल्लिकादेवी", दूसरा भाग, पृ० १०२।

बादशाह गयासुद्दीन अपने दल-बल सहित महाराजा महेन्द्रसिंह और नरेन्द्रसिंह के साथ भागलपुर दुर्ग में आ विराजे और मुंगेर दुर्ग से मल्लिका, सुशीला और कमलादेवी ने विवाह की तैयारियाँ कीं। विवाह का आयोजन बड़ी धूम धाम से हुआ और दूल्हे पर अशर्फियाँ लुटाई गयीं। आतिशबाजी, नाच-रंग और महामहोत्सव मनाया गया। नरेन्द्र का मल्लिका तथा उनके मित्र विनोदसिंह का सुशीला से आनन्दपूर्वक विवाह हो गया। नवाब तुगरल की बेटी शीरी ने एक बहुमूल्य मोती की माला नरेन्द्र और विनोद को तथा एक एक हीरे का हार मल्लिका और सुशीला को भेंट में दिया। मल्लिकादेवी के विवाहित जीवन का आनन्द भी लेखक ने सुन्दरता से वर्णन किया है। नरेन्द्र और मल्लिका अपने अनोखे प्रयत्नों से एक-दूसरे को प्रसन्न करते रहते थे। शीरी, सुशीला और सरला भी उनकी सहायता किया करती थी। मल्लिका ने प्रसन्नता से मालती का विवाह भी नरेन्द्रसिंह से करा दिया। लेखक ने 'सहपत्नी' का भी उत्तम आदर्श उपन्यास में रखा है। बादशाह की उपस्थिति में यह दूसरा विवाह भी धूम-धाम से हुआ। मालती ने नरेन्द्रसिंह की कई बार प्राण रक्षा की थी तथा तुगरलखाँ के विरुद्ध उसका सहायता पहुँचाई थी। वह बगाल और विहार के समस्त किलों के मार्गों तथा सुरंगों का हाल जानती थी और उसके उपकारों से नरेन्द्रसिंह विवश हो गये थे। मालती के हृदय के प्रेम के जोश ने उसकी इच्छा पूरी की। उपन्यास के अन्त में लेखक ने मालती के धैर्य, साहस, बुद्धि, विवेक और कर्त्तव्यनिष्ठा की प्रशंसा की है। नरेन्द्रसिंह ने उसका नाम 'वग सरोजिनी' रखा और सरला ने मालती का नाम 'नरेन्द्र मोहिनी' रखा। शीरी, मालती और मल्लिका का स्नेह आपस में दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया और शाहजादे तथा महाराज नरेन्द्रसिंह में भी वैसी ही मित्रता बढ़ती गयी। मालती, मल्लिका, शीरी तथा सुशीला ने पुत्रोत्सव किया और सब आनन्दपूर्वक जीवनयापन करने लगे। कथावस्तु सुखान्त है। मल्लिकादेवी और नरेन्द्रसिंह का जीवन-वृत्त उपन्यास में आधिकारिक कथावस्तु के रूप में अवतरित हुआ है। नरेन्द्रसिंह प्रमुख चरित्र-नायक है तथा मल्लिकादेवी नायिका है, पर साथ ही मालती पात्र की अवतारणा करके लेखक ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को चित्रित किया है। यहाँ पुरुष वर्ग की श्रेष्ठता तथा कृपा पर नारी का जीवन अवलम्बित रहा है, इसलिए अपने पुरुष का द्वितीय विवाह वही नारी करा देती है, जो उसकी धर्मपत्नी है। पुरुष की उद्दाम वासनाएँ, उसकी भोग की लालसा तथा नारी का अपूर्व त्याग और पति में निष्ठा तथा भावना व्यक्त करना गोस्वामीजी का प्रमुख लक्ष्य रहा है, फिर भी उनके पुरुष-पात्र अपनी पत्नी के आदेशों का यन्त्रवत् पालन करते हुए दिखाई देते हैं, इसलिए 'सहपत्नी-प्रथा' भी उपन्यास की पृष्ठ-भूमि में लेखक ने अंकित की है। 'मल्लिकादेवी' की कथावस्तु के साथ ही साथ शीरी, सरला एवं सुशीला की प्रासंगिक कथावस्तु धारावाहिक रूप से प्रवाहित हो रही है। प्रमुख कथावस्तु के विकास में इस प्रकार की सहायक कथाएँ सहायक हैं। आदि से अन्त तक उपन्यास पूर्ण रोचक है। इसकी घट-

नाओं मे पाठको का मन रमा रहता है । 'चरित्र-प्रधान' उपन्यास होकर भी घटनाओं ने सारे वृत्त को इस प्रकार घेर रखा है कि कथा-चक्र सुचारु रूप से चलता रहता है ।

गोस्वामीजी हिन्दी साहित्य के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार माने जाने चाहिए, जिन्होंने उपन्यास के क्षेत्र मे नूतन परम्परा तथा विचारधारा को जन्म दिया है । किसी भी ऐतिहासिक उपन्यासकार के समक्ष कर्त्तव्य का बोझ बढ जाता है क्योंकि उसे एक ओर अपने विचारों की रक्षा करनी पड़ती है, अपनी परम्पराओं को स्थान देना पड़ता है, दूसरी ओर, ऐतिहासिक कथावस्तु के अवतरणों की भी रक्षा करनी पड़ती है । इतिहास को काट-छाँट उसकी विचारधारा पर ही अवलम्बित रहती है, इसलिए किशोरीलाल ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास-सम्बन्धी विचारों को "तारा"* की भूमिका मे पहले ही प्रकट कर दिया और समीक्षा के लिए मार्ग खोल दिया । इस क्षेत्र में जो परम्परा गोस्वामीजी ने बनायी, उस पथ पर चलने वाले आधुनिक युग मे वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल आदि लेखक आज भी ऐतिहासिक रचनाओं को जन्म देने में निरन्तर लगे हुए हैं ।

(ब) गोस्वामीजी की सामाजिक, पारिवारिक एवं जासूसी उपन्यास-धारा

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। परिवार समाज की एक इकाई है, अतः सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत ही पारिवारिक उपन्यासों को मान लेना उचित जान पड़ता है। सामाजिक उपन्यासों में समाज, परिवार और मानव-जीवन के भिन्न-भिन्न अवयवों पर लेखक के द्वारा यथेष्ट प्रकाश डाला जाता है। प्रत्येक मनुष्य के भले बुरे कार्यों का प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है और सामाजिक व्यवस्था मनुष्य की जीवन-चर्या निर्धारित करती है। मानव रूढ़िप्रिय प्राणी है। धरोहर के रूप में प्रदत्त परम्पराओं का अनुशीलन वह नतमस्तक होकर जीवन भर करता है क्योंकि उसके हृदय में उन मान्यताओं के लिए अपूर्व श्रद्धा है। सामाजिक प्रश्नों को लेकर जो उपन्यास रचे जाते हैं, वे सवदेशीय तथा सर्वकालीन होते हैं। सृष्टि के आदि और अन्त के साथ ही साथ ये समस्याएं उत्पन्न होती रहेंगी और इनका समाधान मानव को खोजना होगा। पूर्व-प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों का दृष्टिकोण भारतीय समाज तथा सांस्कृतिक भावनाओं से पूरित रहा है। हिन्दी के लेखकों ने अपनी मान्यताओं की पृष्ठ-भूमि में उपन्यासों में सामाजिक चित्र उतारे हैं एवं घर और बाह्य प्रश्नों के उत्तर अपनी रचनाओं में दिये हैं।

सामाजिक उपन्यासों की रचना में गोस्वामीजी ने भावी पीढ़ी के लिए मार्ग-दर्शन का कार्य किया है। समाज तथा उसकी परम्पराओं का यथार्थ वर्णन इनके उप-न्यासों में प्राप्त होता है। किसी भी लेखक की प्रतिभा उस समय प्रकट होती है, जब वह देश तथा समकालीन अभिरुचि को सन्तुष्ट कर सके। गोस्वामीजी के उपन्यासों ने पाठकों की भीड़ सी एकत्रित कर दी। उन्होंने सजीव चित्रों को साकार बनाकर समाज के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। सामाजिक, पारिवारिक और धार्मिक समस्याओं की गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में विशद् व्याख्या की है। प्रत्येक उप-न्यास का नामकरण किसी न किसी 'नारी' से सम्बन्धित है और उसकी कथावस्तु का मूल सूत्र भी नारी के द्वारा संचालित है, चाहे वह 'तरुण तपस्विनी' हो अथवा 'त्रिवेणी' हो। सामाजिक उपन्यासों का कोई पृथक् विभाग नहीं है वरन् कथावस्तु

का मूल लक्ष्य समाज में प्रचलित घटनाओं का मनोरंजक वर्णन करना है। किसी भी मानव तथा परिवार के अच्छे-बुरे कार्यों का प्रभाव समाज के उत्थान तथा पतन में सहायक अथवा बाधक होता है। मानव जीवन के मूलभूत तत्वों को लेकर जो रचनाएँ रची जाती हैं, वे शाश्वत होती हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में मानव का आचरण, उसकी प्रमुख आवश्यकताओं के आधार पर सचालित होता है। उसकी कुछ समस्याएँ सृष्टि की उत्पत्ति क साथ ही उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे भूख पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए सदा प्रखर रूप में विद्यमान रहती है रहने के लिए घर और उसके साथ ही जीवन साथी के रूप में यौन-समस्या भी मानव के समस्त कार्यों को अपने द्वारा सचालित करती है। अब हम किशोरीलालजी के सामाजिक उपन्यासों की कथावस्तु की व्याख्या करेंगे।

"प्रणयिनी परिणय" गोस्वामीजी का सबसे पहला सामाजिक उपन्यास है, जिसकी रचना के सम्बन्ध में स्वय गोस्वामीजी ने कहा है 'यह उपन्यास सन् १८८७ मे रचा गया था, जब हमारी युवावस्था थी और सन् १८९० में यह भारत जीवन प्रस में छपा। कुछ ठिकाना है कि कितने दिनो के बाद इसके द्वितीय संस्करण की बारी आयी। जब यह उपन्यास लिखा गया था, उस समय हिन्दी म यह तीसरा उपन्यास माना गया था अर्थात् बाबू गदाधरसिंह की कादम्बरी' प्रथम लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' द्वितीय और हमारा यह 'प्रणयिनी परिणय' उपन्यास तृतीय था।"[१]

इसकी कथावस्तु एक प्रेमी की अपनी प्रेमिका क लिए प्रणय भरी कथा है। पम्पापुरी म सर्वगुण-सम्पन्न प्रजावत्सल नामक राजा राज्य करता था। वह अपनी प्रजा की भलाई के लिए भिन्न भिन्न देशों म विचरण किया करता था और प्रजा का मनावृत्तियों व उनक कायकलापो की जानकारी प्राप्त किया करता था। एक दिन रात्रि के समय राजा कोतवाल का वेश बनाकर घूम रहा था कि मारशास्त्री नामक प्रेमी पुरुष अपनी प्रियतमा से चोरी से मिलने जा रहा था, अत कमन्द लगाकर उसके मकान पर चढ़ने की चेष्टा कर रहा था, पर राजा ने उसे पकड़ लिया और कारागृह ले जाने की धमकी दी। उससे पहल मारशास्त्री ने अपने मित्र परदुखभजन मिश्र से मिलने की इच्छा प्रकट की। जब दोना मित्र एक दूसरे से मिल तो वे कातर होकर रो पड़े। परदुखभजन ने राजा को विश्वास दिलाया कि अभी मारशास्त्री को छोड़ दीजिए, जब आप चाहेंगे, मैं उन्हें आपके पास स्वय लेकर उपस्थित हो जाऊँगा। राजा ने परदुखभजन द्वारा जिम्मेदारी लेने पर मारशास्त्री को छोड़ दिया, पर प्रणय का मार्ग बड़ा टेढ़ा है जो एक बार इस पर चला बस वह सुडरता ही जाता है। मारशास्त्री तो अपनी प्रेमिका के रूपमाधुर्य में ऐसे व्याकुल हो रहे थे कि दूसरे दिन फिर कमद लेकर उससे मिलने के लिए दौड़ पड़े। पर दुखभजन ने उनके हृदय की कातरता

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रणयिनी परिणय" क द्वितीय सस्करण की भूमिका से उद्धृत।

देखो और चुप रहे। शृंगार की महिमा अपूर्व है।" मारशास्त्री कमंद लगाकर अपनी प्यारी के गले से जा लिपटे। वह प्रणयिनी भी अपने प्यारे की व्याकुल अवस्था देख कर दुःखी हुई तो मारशास्त्री अपनी प्रणयिनी को समझा-बुझाकर वापस मित्र के यहाँ लौट आये। कुछ दिन बाद परदुखभंजन मिश्र को सरकारी अदालत में बुलाया गया और अभी तक मारशास्त्री सोये ही पड़े थे। दोनों मित्र राजा के सम्मुख लाकर खड़े कर दिये गये, मारशास्त्री को सूली की आज्ञा मिली। जब यह समाचार प्रणयिनी के पास पहुँचा तो वह भी प्रेम में उन्मत्त हो काला कपड़ा पहन कर सूली के स्थान पर पहुँच गयी। भाग्यवश वह मन्त्री की ही कन्या थी। राजा ने मन्त्री को समझा दिया कि प्रेमी मारशास्त्री भी ब्राह्मण पुत्र है, दोनों का विवाह हो जाना चाहिए और इस प्रकार दोनों को प्रणय-सूत्र में बाँध दिया गया। अब दोनों प्रेमियों के हृदय से आनन्द का पारावार उमड़ने लगा और सच्चे प्रणय का फल सुखद हुआ। मारशास्त्री की मनो-कामना पूर्ण हुई। वे अपनी प्रणयिनी के साथ सुखी जीवन व्यतीत करने लगे।

यह उपन्यास सुखान्त है तथा 'चरित्र-प्रधान' रचना की श्रेणी देना उचित जान पड़ता है। हिन्दी साहित्य के समस्त सामाजिक उपन्यास-लेखक भारतीय रूढ़िवादी विचारधाराओं और मान्यताओं से प्रभावित हैं। समाज की प्रचलित प्रथाओं ने इन उपन्यास लेखकों को बुरी तरह से जकड़ रखा है, इसलिए धार्मिक मान्यताएं, मानव की दुर्बलताएं और सुख-दुःख के अनुभवों से ये उपन्यास घिरे हुए हैं। पर सामाजिक उप-न्यासों ने समाज के उत्थान तथा जागृति में बड़ा लाभ पहुँचाया है, समाज के यथार्थ चित्र अंकित करके जन-साधारण का ध्यान उसकी बुराइयों की ओर किया है।

गोस्वामी किशोरीलाल ने सबसे अधिक संख्या में सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। तथ्य एकत्रित करने पर "तरुण तपस्विनी" सबसे पहले सामाजिक उपन्यास की मान्यताओं में आता है, जिसका प्रकाशन सन् १६०५ में हितचिन्तक प्रेस, काशी से हुआ। यह कहना कठिन है कि यह प्रथम संस्करण था अथवा द्वितीय—'नागरी प्रचारिणी सभा' में भी संदिग्ध है, पर सन् १६१८ में सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से इसी उपन्यास का द्वितीय संस्करण उनके पुत्र छबीलेलाल गोस्वामी ने प्रकाशित किया। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने इसका प्रथम संस्करण का प्रकाशन-काल सन् १६०६ में माना है।

इस उपन्यास की कथावस्तु में जयपुर नगर की चित्रकारी की प्रशंसा है। वहाँ का मोतीडूंगरी नामक किला, वहाँ के आस-पास का प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ की ऊँची दुकानें, जाली-झरोखे, चौपड़ के खानों के समान सड़कें तथा वहाँ का कलात्मक सौन्दर्य विदेशों को भी मात करता था। वहाँ पर एक चितेरा जाति पुराने समय से रहती थी। एक चित्रकार विभिन्न चित्रों को बाजार में बेचने जा रहा था, जिसका नाम घनश्याम है। उसकी भेंट एक षोडशवर्षीय कुमारी चपला से होती है, जिसके हृदय में एक-दूसरे के प्रति अपार प्रेम है। इस पिपासा ने चपला से भूख-प्यास सब छीन ली। वह स्वयं भी घर-गृहस्थी के काम के अतिरिक्त कसीदे काढ़ती, वस्त्र सीती और

चित्र बनाती थी। जैसे ही घनश्याम उससे बिछुड़ता है, चपला की दशा मृतप्राय हो जाती है। चपला के माता-पिता जीवित हैं, पर घनश्याम निराश्रित है। दोनों वंशों में सदा से अपार स्नेह तथा मित्रता रही है। इन दोनों के शैशव में ही यह निश्चित हो चुका था कि इनका परस्पर विवाह कर दिया जावेगा। वयस्क होने पर भी दोनों का प्रेम-पल्लव विकसित होता रहा। दोनों एक दूसरे का चित्र बनाकर प्रेमालाप करते रहते, गुप्त मिलन की तैयारी करते रहते थे। लेखक ने विश्वास दिलाया है कि यह प्रेम वर्तमान 'कोर्टशिप' नहीं है, वरन् इसमें पवित्रता तथा हृदय की गम्भीरता है। यही स्वर्गीय सुख है। चपला की प्रिय सखी चमेली तथा उसका पति गुलाबराय दोनों ही घनश्याम और चपला के प्रेम में सहायक थे। वे एक-दूसरे को आश्वासन देते थे। चपला के मनोरंजन के लिए चमेली सदैव तैयार रहती थी। चपला की माता का नाम निर्मला था, जो कोमल थी, पर उसका पिता क्रूरसिंह दुष्ट तथा लालची था, जिसे घनश्याम का चपला से मिलना-जुलना प्रिय नहीं लगता था। वह चपला का विवाह पचास वर्ष के वृद्ध कालीप्रसाद से करना चाहता था, जो धनवान था और खानदानी भी गिना जाता था। इस समाचार से चपला की दशा पागल के समान हो गयी और घनश्याम का भी बुरा हाल था। इसके साथ ही साथ उसके पड़ोस में रामदेई नामक एक विधवा रहती थी, जिसकी बेटी सौदामिनी महा रूपवती थी और जो हृदय से घनश्याम पर मुग्ध थी। पर घनश्याम तो चपला का चित्र अपने मन-मन्दिर में उतार चुका था अब सौदामिनी की ओर देखना तक उसके लिए पाप था। सौदामिनी के शील स्वभाव तथा गुणों ने घनश्याम की धात्री माँ अन्नपूर्णा को भी मन्त्र-मुग्ध कर रखा था। जब उसे इस ओर से निराशा मिली तो वह भवन पर छोड़ कर प्राण देने के लिए जंगल की ओर चली गयी। जाते समय एक पत्र द्वारा अपनी मनोव्यथा घनश्याम से प्रकट कर गयी। जैसे ही गुलाबराय को यह संवाद मिला, वह भी बहुत दुखी हुआ। दूसरी ओर, चपला ने भी निश्चय कर लिया कि प्राण रहते वह घनश्याम के अतिरिक्त किसी को भी वरण नहीं करेगी। धीरे-धीरे चपला ने रुग्ण-शैया पकड़ ली और सबको उसके जीवन की आशा भी शेष नहीं रही। उसका अचेत अवस्था में घनश्याम मिलन आया। चपला ने अपना हाथ उसे दे दिया और एक ही श्वास में उसके प्राण निकल गये। घनश्याम भी पागल होकर उस दुखद स्थल से भाग कर चल दिया, उसके पीछे गुलाबराय दौड़ा, पर जयपुर में पहाड़ों से घिरे जंगल में, जहाँ श्मशान भूमि थी, आँधी पानी के कारण लोग चपला की मृतक देह को बिना जलाये ही भाग खड़े हुए। जब स्थिति सुधरी तो लाश वहाँ न थी, पर सबने धैर्य धारण कर लिया कि लाश कोई शेर उठा ले गया है। चमेली तथा गुलाबराय का चरित्र दो निःस्वार्थी मित्रों की कहानी है, जो चपला और घनश्याम के लिए अपने सुखों का परित्याग कर देते हैं। अन्त में लेखक ने एक कुटीर का दृश्य दिखाया है, जहाँ चपला पर्ण-शैया पर पड़ी है। वह अब जीवित है। जड़ी-बूटी के रस से उसने पुनर्जीवन प्राप्त किया। एक महात्माजी ने उसका जीवन बचाया था। यहीं पर चपला शान्ति-कुटीर में

बैठी चित्र बनाया करती थी। इसी के दस-बारह कोस की दूरी पर मोतीडूंगरी नाम की एक पहाडी के झरने के निकट चपला की भेंट घनश्याम से हो गयी, जो तरुण योगी बना हुआ था। दोनों ने अपने-अपने स्मरण तथा घटनाएं एक-दूसरे को बतायीं। विरही प्रेमियों का संयोग समय महा अल्प होता है। उसके बाद थोडा शान्त होने पर चपला ने घनश्याम से प्रस्ताव किया कि वह सौदामिनी से विवाह कर ले, जो उसके प्रेम में मर रही है। सौदामिनी और चपला में सहपत्नी द्वेष तथा सौतिया डाह की तुलना में अपार प्रेम और श्रद्धा देखकर घनश्याम चकित हो गया। जिन महात्माजी ने चपला को स्वस्थ किया था, उन्होंने ही सौदामिनी से कहा था कि तेरा विवाह घनश्याम से होगा और तुझे पहाडी के नीचे से धन का गड़ा हुआ खजाना मिलेगा। इक्कीस दिन बाद महात्माजी ने प्राण त्याग दिये और उसी समाधि-स्थल पर सौदामिनी को धन का अक्षय भण्डार प्राप्त हुआ। मोतीडूंगरी पहाडी के पास चपला, घनश्याम और सौदामिनी की भेंट हुई। घनश्याम ने दोनों के साथ विवाह कर लिया। चपला और दामिनी (सौदामिनी) सगी बहिन से बढ़कर प्रेम से रहने लगी। यह देखकर निर्मला, मोहनदेई, चमेली तथा अब तो भूरीसिंह को भी इस सुखान्त प्रसंग से आनन्द प्राप्त हुआ। उपन्यास की कथावस्तु का अन्त सत्यनारायण की कथा तथा भगवान् जगदीश्वर के प्रसाद से हुआ है।

इस उपन्यास में चपला, घनश्याम और सौदामिनी का जीवन-वृत्त आधिकारिक कथावस्तु कहलायेगा तथा चमेली और गुलाबराय की कथावस्तु प्रासंगिक है, जो प्रमुख कथानक को सफल बनाने के लिए घटित होती है।

चमेली, चपला तथा सौदामिनी ने कुछ समय बाद पुत्र-रत्न प्रसव किया तथा जयपुर-नरेश महाराज बहादुर ने घनश्याम और गुलाबराय को अपनी चित्रशाला में सदैव के लिए चित्रकार बना लिया, जिससे दोनों परिवारों में सुख के दिन आ गये।

गोस्वामीजी का "त्रिवेणी" नामक उपन्यास सन् १६०७ में काशी से प्रकाशित हुआ। लेखक ने प्रकाशन के सारे अधिकार अपने पास रखे। इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि यह "उपन्यास सन् १८८८ में 'प्रणयिनी परिणय' उपन्यास लिखने के बाद लिखा गया और सन् १८६० के 'बिहार बन्धु' नामक पत्र में, जो बाँकीपुर (पटना) से निकलता है, एक वर्ष में आद्यान्त छापा गया।"[1]

स्वयं लेखक ने बताया है कि इस उपन्यास की पाठकों द्वारा बहुत प्रशंसा हुई। इसकी कथावस्तु 'प्रयागराज' के पवित्र धाम के चारों ओर केन्द्रित है। संगम पर त्रिवेणी का पुण्य से भरा हुआ स्नान, चारों ओर पतितपावनी गंगा के स्नान की छटा, क्योंकि बारह वर्ष के बाद कुम्भ का पर्व आया है, इस कारण यात्रियों की विशाल भीड़ स्नान के लिए उत्सुक है। शीत के कारण सब यात्रियों के द्वारा दाँत का कटाकट

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "त्रिवेणी" वा "सौभाग्य श्रेणी" की भूमिका से।

होना, पर उस लोक में पुण्य लूटने की इच्छा से डुबकी लगाते हुए देखे गये। उसी पावन गंगा के किनारे एक दुखी युवक का चिन्तामग्न बैठना, जिसकी पत्नी नाव में उसके साथ काशी आ रही थी और बीच धार में नौका के डूब जाने के कारण वह अपने प्रियतम से सदा के लिए बिछुड गयी थी। तीन वर्ष से वह नवयुवक अपनी पत्नी की खोज रहा है। वह आज कुम्भ के मेले पर प्रयागराज भी इसी उद्देश्य से आया है। उत्सुकता से पूर्ण वह चारों ओर देख रहा है। जगदीश्वर की प्रबल इच्छा के आगे मानव नत मस्तक है, विधाता की रेखाएं कौन मेंट सकता है। सयोग और वियोग परमात्मा का अमिट विधान है। इस चिन्तातुर युवक की आँखों से त्रिवेणी के समान अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी। सध्या का समय आ गया और दूर दूर मन्दिरो में पूजा-आरती होने लगी। कही राग गौरी, तो कहीं झाँझ और शख का सगीत था। इसी समय एक मधुर सगीत की बहार ने युवक का ध्यान अपनी ओर खींचा। उस युवक को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह स्वर लहरी तो उसकी प्रियतमा की है। परमात्मा की यह लीला उसकी समझ मे नहीं आयी। इस युवक का नाम मनोहरदास है, जो अपने बड मुनीम हरजीवनदास का जमींदारी का कार्य सौंप कर स्वय अपनी सुशीला पत्नी के साथ जल मार्ग के द्वारा गगा स्नान करने आ गये थे। पटना से आकर बक्सर के पास इनकी नाव टकरा कर डूब गयी, ये गाजीपुर अचेतावस्था मे आ पहुँचे, पर इनकी पत्नी इनसे बिछुड गयी, जिसकी चिन्ता मे ये अन्न-जल सब भुला बैठे। विरह मे पागलो जैसा प्रलाप करना, प्रेमी मनोहरदास का नित्य का नियम हो गया था। वह अपने तीनों जन्म के पाप और पुण्य की व्याख्या करने लगा कि न जाने कौन से पाप उस या इस जन्म मे किये, जिससे यह वियोग की ज्वाला भुगतनी पड रही है। वही पर भगवान की कृपा से एक सन्यासी और उसकी पुत्री त्रिवेणी के दर्शन मनोहरदास को हुए। यह सन्यासी प्रेमदास था, जो मनोहरदास का श्वसुर था। त्रिवेणी उसकी सुशीला पत्नी थी, जो नाव दुर्घटना के बाद भी जीवित बच गयी थी। पवित्र सगम के स्थल पर 'त्रिवेणी' के निकट त्रिवेणी का भाग्य जगा और दोनों बिछुड हुए पति पत्नी का मिलन हुआ। प्रेमदास ने बताया कि यवनों के अत्याचार से छूट कर गगा स्नान कर रहा था कि त्रिवेणी गगा के किनारे मृतप्राय, मिली और गगा की कृपा से यह जीवित रह सकी। इस उपन्यास का अन्त भी सुखान्त है। लेखक का जीवन व परमात्मा की गतिविधियो मे अडिग विश्वास है। ईश्वरीय चमत्कार के आगे मानव आश्चर्य में भर कर देखता रहता है। मनोहरदास अपनी पत्नी त्रिवेणी के साथ पुन. गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट हुए और उन्हें यथासमय पुत्र लाभ हुआ। प्रमुख कथावस्तु का सम्बन्ध मनोहरदास और उसकी पत्नी सुशीला से है, जो धर्मनिष्ठ प्राणी है।

"पुनर्जन्म" वा "सौतिया डाह" का प्रकाशन काशी से सन् १९०७ में हुआ इस उपन्यास की भूमिका गोस्वामीजी ने नहीं दी है, केवल इसके पढ़ने से ज्ञात होता है।

कि "उपन्यास" (मासिक) की यह एक कड़ी है, जिसकी रचना और प्रकाशन स्वयं गोस्वामीजी के द्वारा होता था। इसका कथानक सज्जनसिंह नायक के वार्त्तालाप से प्रारम्भ होता है। ये अयोध्या के नामी जमींदार थे। माता-पिता के न रहने से घर के कर्त्ता-धर्त्ता यही थे। इनकी बड़ी कोठी फैजाबाद में थी, फिर भी मनोरंजन के लिए अयोध्या में आकर रहा करते थे। उनके साथ उनकी एक अभिन्न साथी सुन्दरी भी थी। उनकी बहूरानी, सुशीला भी थी जो गौना होकर आ गयी थी। सुन्दरी के हृदय में तनिक भी द्वेष न होकर प्रेम का अबाध स्रोत उमड़ रहा था। दोनों समवयस्का थीं। सुन्दरी शान्त तथा मधुरभाषिणी थी, पर सुशीला अभिमानिनी और कुटिल स्वभाव की नारी थी। सुन्दरी में 'सहपत्नी-द्वेष' तनिक भी नहीं था, पर सुशीला का सुन्दरी पर निरन्तर कोप-बाणों की वर्षा करना ही उसके स्वभाव का परिचय देता था। सुन्दरी सुशीला और सज्जनसिंह की लगातार टहल रखती, भोजन बनाकर कराती, पर जब वे सुन्दरी से बातें करते तो सुशीला के हृदय में 'सौतिया डाह' उत्पन्न होता। सुन्दरी शुद्ध हृदय से पूर्ववत् सज्जनसिंह के साथ बातचीत किया करती थी, पर जब उसने सुशीला की उग्रता देखी तो सुन्दरी ने बातचीत करना बन्द कर दिया। एक दिन सज्जनसिंह ने पूछा तो सुशीला अपने नगर जाने को तैयार हो गयी। सुशीला के हृदय में अपने पति के लिए द्वेष की भावना उत्पन्न हुई, पर जब सज्जनसिंह ने बतलाया कि सुन्दरी का विवाह निश्चित हो गया है, फिर भी सुशीला ने अपने पति पर चारित्रिक दोष लगाया। तब उन्हें बुरा लगा और उन्होंने उसे घर में ही बंद करा दिया। उधर सुन्दरी की बुरी दशा थी, वह अत्यन्त दुखी थी कि उसके कारण सज्जनसिंह और सुशीला दुख पा रहे हैं। सुन्दरी विवाह नहीं करना चाहती थी, उसने तपस्विनी जैसी वेश-भूषा बना ली थी। वह लताकुंज से निकल कर पुष्करिणी के किनारे बैठ कर विरह-गीत गाने लगी। उसके हृदय में सज्जनसिंह के लिए अगाध प्रेम था, पर सामाजिक नियमों के कारण उसका विवाह उन जैसे वैभवशाली जमींदार के साथ नहीं हो सकता था। उसने अपने मन से उन्हें वरण कर लिया था, अतः 'पुनर्विवाह' वह नहीं कर सकती थी। वह शुद्ध सात्त्विक प्रेम था। वह दासी बन कर उनकी सेवा-सुश्रूषा में मगन था, पर सुशीला को उसी से द्वेष की भावना उत्पन्न हुई। उसने सज्जनसिंह के गले में वरमाला गुप्त रूप से डाल दी और 'पुनर्जन्म' के मिलन की आशा से उनसे दूर रहने लगी। पर जब सज्जनसिंह को सारे रहस्य का पता चला तो उनका हृदय भी सुन्दरी के पवित्र प्रेम से प्रभावित हुआ तथा सज्जनसिंह की व्याकुलता तथा शुद्ध स्नेह का सुशीला को पता चला तो वह बहुत दुखी हुई कि उसके कारण दोनों ही, सुन्दरी तथा उसके पति सज्जनसिंह, दुखी हैं। तब उसने भी निश्चय किया कि वह सुन्दरी के साथ बहिन जैसा प्रेम करेगी और उसका विवाह अपने पति से स्वयं करा देगी। "सौतिया डाह" की जलन उसने स्वीकार करके स्वयं विवाह कराने के लिए वह आगे बढ़ी, पर जैसे ही वह सुन्दरी को खोजने निकली, वह पुष्करिणी के जल

में उतरा रही थी। उसने डूब कर आत्महत्या करने की चेष्टा की, जिससे सज्जनसिंह सुखी हो सकें। पर सुशीला अब महान् हो गयी थी। सज्जनसिंह ने पानी में कूद कर सुन्दरी को निकाला और डाक्टरों की उपचर्या से उसे ठीक कराया। सुशीला ने 'सापत्न्य द्वेष का भाव' भुला दिया और बहिन के समान उसकी सेवा की। यह सुन्दरी का पुनर्जन्म था। सुशीला ने शुभ मुहूर्त में सुन्दरी का विवाह सज्जनसिंह से करा दिया और फिर दोनों प्रेमपूर्वक रहने लगीं। दोनों सौतिनों में सगी बहिनों से बढ़ कर प्रेम हो गया। सुशीला को सुन्दरी बड़ी बहिन मानने लगी तथा वह भी उसे छोटी बहिन मान कर अपने विशाल हृदय का स्नेह लुटाने लगी। सुशीला के हृदय की विशालता तथा त्याग ने सज्जनसिंह तथा सुन्दरी दोनों के जीवन को नष्ट होने से बचा लिया। हिन्दू परिवारों में नारी में यदि त्याग, शुद्ध स्नेह तथा उदारता आ जावे तो अनेक घर शान्ति तथा सुख से पनप सकते हैं। यह गोस्वामीजी का उद्देश्य-प्रधान सुखान्त सामाजिक उपन्यास है, जिसमें चरित्रों को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

"माधवी माधव" या "मदन मोहिनी" सन् १९०९ में सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित हुआ, जिसकी प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में उपलब्ध है और उसका मूल्य एक रुपया रखा गया है। अन्य सब उपन्यासों की तुलना में यह बहुत लम्बा उपन्यास है, जिसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में २१९ पृष्ठ और दूसरे भाग में २२४ पृष्ठ हैं। कुल मिलाकर ४४३ पृष्ठ हैं। गोस्वामीजी ने "माधवी माधव" उपन्यास की रचना कर क्षमता और प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका यह सफल सामाजिक वृहद् उपन्यास है, जिसके द्वारा उस समय की सच्ची सामाजिक स्थिति का यथार्थ परिचय मिलता है। समाज में घटने वाली घटनाएँ, पारिवारिक अनाचार तथा उनको गुप्त रखने की चेष्टाएँ और उसके साथ ही साथ एक-दो धार्मिक तथा पुण्यात्मा जनों की अवतारणा है जिससे पापियों को दण्ड मिल सके और वे अपने जीवन काल में ही प्रायश्चित कर सकें। प्रायश्चित का विधान गोस्वामीजी ने रखा है, यही हिंदू संस्कृति तथा धर्म का चिरकालीन रूप है। लेखक ने स्वयं ही कहा है कि एक सत्यतापूर्ण सामाजिक घटना ने इस उपन्यास को जन्म दिया है, केवल पात्र तथा स्थानों के नामों में अन्तर है। इसकी कथावस्तु के मुख्य सूत्रधार माधवप्रसाद शर्मा हैं, जो स्वयं योग्य, सत्यवादी तथा धर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। बचपन में अनाथ होकर भी दूसरों के आश्रय में रह कर इन्होंने ऐन्ट्रेंस तक शिक्षा प्राप्त की और पास करके पन्द्रह रुपये की शिक्षक की आजीविका ग्रहण कर ली। पिता की मृत्यु के बाद वह कानपुर आये वहाँ स्टेशन पर लाला रामप्रसाद नामक एक व्यवसायी सज्जन से उनका परिचय हुआ, जो अपने साथ माधवप्रसाद को भी दिल्ली ले आये। वहाँ पर उनके भतीजे मदनमोहन से उसकी घनिष्ठता बढ़ गयी। लाला साहब का बहुत बड़ा परिवार था, बड़ी हवेली थी और बहुत बड़ी जमींदारी थी व अनेक नौकर-चाकर थे। उन्होंने माधवप्रसाद को अपने घर में पुत्रतुल्य रखा। उनके घर में दीवान हरप्रसाद आया करता था, जो लाला रामप्रसाद का

कार्य सँभालता था। जमींदारी का बोझ उस पर था, पर वह बड़ा चालाक तथा धूर्त था। लाला रामप्रसाद के बड़े भाई की पत्नी जमनादेई थी, जो विधवा होने के बाद दीवान हरप्रसाद के पंजे में आ जाती है। लालाजी की पत्नी साक्षात् लक्ष्मी है। उनकी अपनी एक विधवा बहिन गंगादेई भी यहीं रहती थी। अनेक चरित्रों का समावेश करके भी लेखक ने उपन्यास को मार्मिक तथा सरस बनाया है। माधवप्रसाद और मदनमोहन दोनों बड़े छोटे भाई के समान प्रेम से रहने लगे। मदनमोहन बी०ए० में पढ़ता था और सुशील तथा विनम्र था। दोनों एक साथ ही एक कमरे में रहते थे। माधवप्रसाद ने लाला रामप्रसाद के घर में दुर्घटना घटते देखी कि जमनादेई दीवानजी के छल में आकर उनसे व्यभिचार करती है और उन्हें मुहमाँगी धन दौलत देती है। शराब का दौर चलता रहता है और एक बार जैसे ही दस हजार के नोट दिये गये जबकि दीवान रात को अपने घर नशे में चूर जा रहा था तो नोट उसकी जेब से गिर गये और वे माधवप्रसाद को मिले। उसने अपने स्वामी के धन को लाकर सँभाल कर पेटी में रख लिया। उसी घर में सरस्वती नामक दासी था, जो पहले तो माधवप्रसाद पर मुग्ध हो गयी थी, पर उसकी चारित्रिक दृढ़ता ने उसे 'त्रिया जाल' से बचा दिया और वह उसे मौसी कहने लगा। अपने आश्रयदाता के घर में उसने आग लगाना उचित नहीं समझा, पर जमनादेई के काले कारनामों से वह अपने स्वामी को परिचित कराने के लिए नाना प्रकार के उपाय खोजने लगा। ललिया नामक घर की दासी जमनादेई तथा दीवानजी के बीच में कुटनी का काम करती था। माधवप्रसाद को महान् दुख था कि एक कुलवधू का पतन यहाँ तक हो सकता है, जो अपने इस पति के साथ यथेष्ठ विहार कर सके तथा लाला साहेब को इन दुश्चरित्रों का तनिक भी ज्ञान नहीं है। बड़े घरों की कालिमाएँ उसने ध्यान से देखीं। दीवान की मित्रता मुरारी नामक एक दुष्ट से थी, जिसका काम गुन्डागीरी था। उसने बेचारे मदनमोहन को कॉलिज से घर लौटते समय ही एक दिन गायब कर दिया। लाला रामप्रसाद की अपनी कोई सन्तान नहीं थी और वे मदनमोहन (भतीजे) से अत्यधिक प्रेम करते थे। माधवप्रसाद दीवानजी की सारी चालाकी समझ गया, घर में पूर्ण कुहराम मच गया था। सरस्वती को माधवप्रसाद ने सीधे पुण्य-पथ पर लगा दिया था, अतः वह उसकी प्रत्येक कार्य में सहायता करने लगी थी। जमनादेई दीवानजी के द्वारा गर्भवती हो गयी। दो-चार माह हो गये, अब वह घबराने लगी। एक ओर उसे मदनमोहन के खो जाने का दुख था, वह समझ गयी थी कि यह दीवान की ही हरकत है, दूसरी ओर, विधवा होने के नाते यदि कुकर्म के द्वारा वह सन्तान प्रसव करेगी तो घर और समाज से तो बहिष्कृत होगी ही, पर दोनों लोक भी बिगड़ेंगे। अब उसने दीवान से जहर लाने के लिए कहा। उसे लोक-लज्जा तथा अपने पाप का फल, ये दोनों बातें बुरी तरह से सताने लगीं। दीवान ने उसे काशी जाकर गर्भपात करने के लिए कहा। "एक पाप के ढाँकने के लिए दूसरा पाप करना ही पड़ता है।" पर

भ्रूण-हत्या के डर से जमनादेई कांपने लगी। उसका रोम-रोम कांपने लगा। माधवप्रसाद ने उचित अवसर देख कर एक गुप्त पत्र के द्वारा सारा सत्य समाचार लाला माधवप्रसाद के पास लिख कर भेज दिया। दीवान ने तो तरकाब भी सोच ली कि माधवप्रसाद को कुकर्मी ठहरा देना चाहिये, पर जमनादेई भयभीत हो गयी। उसको आत्मा उसे धिक्कारने लगी कि एक हिन्दू अनाथ ब्राह्मण कुमार की इस पक में फंसाकर और भी दुर्गति होगी। इस दुरवस्था को देख कर सरस्वती, जो उसी घर में रहती थी, बुरी तरह कांपने लगी और माधवप्रसाद का आभार मानने लगी, जिसने गुरू बनकर उस काम पीड़ित महिला को सन्मार्ग बतलाया था। जब लाला साहेब को जमनादेई के गर्भ धारण का समाचार मिला तो उनके पैरों से धरती खिसक गयी एक ओर मदनमोहन की खोज की चिन्ता, दूसरी ओर, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा कुल का मर्यादा का पतन, वे चिन्तामग्न हो गए। उन्हें लगा कि अब उनकी जीवन नैया डूबना ही चाहती है। उन्होंने स्वयं जमनादेई के कमरे से दीवान को निकलते देखा। उन्होंने माधवप्रसाद को ही इस दुःख के समय अपना सहायक समझा। जो कुछ होना होता है वह होकर रहता है। उन्होंने सोच लिया कि अंग्रेजों का राज्य है, जिसमें स्त्रियों ने स्वाधीनता अपनायी है। अतः जो भी पापाचार करना चाहेंगी, वे करेंगी। अतः स्त्रियों को उचित शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे उनका मन धर्म में लगे। उनकी समझ में आगया कि दीवान की ही काली करतूत से बेचारा मदनमोहन घोर संकट में पड़ गया है। उन्होंने क्रोध में भर कर पहले तो दीवान को अपने घर और नौकरी से निकाला और माधवप्रसाद से कहा कि वह जमनादेई और गंगादेई को लेकर काशी जाय तथा जमनादेई के गर्भपात की शीघ्र व्यवस्था करे और उसके बाद इस पाप के बदले जो भी धर्म पुण्य करना हो, उसका प्रबन्ध करे। एक आदमी के पाप से सारा घर डूब जाता है, यही हुआ। जमनादेई के पाप ने सारे परिवार की सुख-शान्ति नष्ट कर दी। बेचारा माधवप्रसाद तो लालाजी के दुख से पूर्ण दुखी था। रात को १२ बजे की गाड़ी से वे काशी पहुँचे। वहाँ पर एक किराये का मकान ले लिया, जहाँ वह अपना भोजन अपने हाथों से ही बनाता था क्योंकि वह ब्राह्मण कुमार था। लालाजी तो उन्हें पहुँचा कर देहली चल गये, पर काशी में उनके साथ पढ़ने वाले एक डाक्टर मित्र थे, जिन्होंने इस कार्य का भार पुलिस से छिपा कर अपने कंधे पर लिया। अब जमनादेई अपने पापों से बड़ी दुखी थी। अब उसका पापी मन उसे कचोट रहा था और वह अपना मुख किसी को दिखाना नहीं चाहती थी। झलिया नामक कुटनी दासी भी साथ आई थी, पर डाक्टर साहेब बड़े चतुर और लगनशील व्यक्ति थे। उन्होंने माधवप्रसाद को आश्वासन दिया कि सारा काम चुपचाप हो जावेगा। उन्होंने शिवराम तिवारी नामक नौकर को रखवाली के लिए दिया, जो उनका विश्वास पात्र सेवक था और साथ में दवा की एक शीशी भी दी। डाक्टर साहेब का नाम लक्ष्मीनारायण था और चालीस साल की उनकी उम्र थी, पर उनके घर और उनमें अंग्रेजी सभ्यता अधिक दिखाई देती है। बड़ी बहू को दवा बुआ के हाथों दिलवाई गयी,

जिसके कारण सफलतापूर्वक बिना किसी कष्ट के गर्भपात हो गया और उसी दिन पापिनी झलिया भी, जो इस कार्य में सहायिका थी, सीढ़ियों पर से उतरते समय गिर कर पैर फिसल जाने से मर गयी। पापी को फल जैसा का तैसा मिल गया। माधवप्रसाद को अपने ही हाथों से मृत बालक को गंगा में बहाना पड़ा। उसका मन बहुत ही उद्विग्न हो उठा। डॉक्टर साहेब ने अपनी मित्रता रामप्रसाद के हित में पूरी तरह से निबाही और ऐसे दुष्कार्य को सरलता से कर दिया और पुलिस तथा थानदार को भी इस काण्ड की कानोंकान खबर नहीं होने दी। अपने पापों से जमनादेई दिन रात दुखी रहती और अपने पाप सब प्रकार का प्रायश्चित करने को तैयार रहती। बेईमान दीवान ने बनारस की पुलिस को इस पाप-काण्ड का खबर कर दी था, जिससे लालाजी का सम्मान सदा के लिए नष्ट हो जावे, पर डाक्टर साहेब की बुद्धिमानी से जमनादेई के स्थान पर एक संग्रहणी रोग से पीड़ित नारी को दिखा कर उन्होंने पुलिस से छुटकारा पाया। इसके विपरीत दीवान को अपने पापों का फल भोगना पड़ा। स्वयं के मकान के गिर जाने से वह वहीं पर दब कर मर गया और उसकी लाश को उठाने वाला भी कोई नहीं मिला। जो मनुष्य जीवन भर पाप करता है, अन्त समय में उसकी यही दशा होती है। अब माधवप्रसाद को केवल मदनमोहन को खोजना बाकी रह गया। काशी की रामलीला संसार में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। अब माधवप्रसाद ने काशी के भिन्न-भिन्न धार्मिक स्थानों का अवलोकन करना प्रारम्भ कर दिया और सन्ध्या समय रामनगर की रामलीला नित्य नियम से देखता। अभी तक उसे भोजन भी हाथ से बनाना पड़ता, पर अब डाक्टर साहेब के यहाँ नियम से बनाने लगा। मदनमोहन की खोज करते-करते एक दिन दुष्ट मुरारी तिवारी की लाश भी गंगा में बहती हुई मिली। कुछ दिन बाद मदनमोहन का भी पता लग गया। अब रामप्रसाद भी अपने शेष परिवार के साथ काशी ही आ गये और सबसे मिलकर अपूर्व प्रसन्न हुए। भगवान की हृदय से विनती की, जिसने पापों से मुक्ति दिलाई। मदनमोहन के मिलने पर सब देवताओं की पूजा की गयी, मन्दिरों में उचित दक्षिणा चढ़ाई गयी, दान-पुण्य किया गया। रामप्रसाद के आने पर उनकी पतिव्रता भौजाई जमुनादेई और भी पानी पानी हो गयी और प्रतिदिन रामनगर की रामलीला देखने जाने लगी। लेखक ने इसके आगे की कथावस्तु में आठवें परिच्छेद को "अंकुर", नवम को "पल्लव", दशम को "शाखा", ग्यारहवें को "पुष्प", बारहवें को "सुरभि", तेरहवें को "पराग", एवं चौदहवें को "फूल" का नाम दिया है। यहाँ से चरित्र-नायक माधवप्रसाद के हृदय में डॉक्टर साहेब की सुकन्या माधवी के प्रति प्रेम के अंकुर उत्पन्न होते हैं। उसका अनुपम देवोपम सौन्दर्य, उसके कंचन नेत्र, सुडौल शरीर और मधुर सम्भाषण ने माधवप्रसाद को मोहित कर लिया। भोजन के समय और उसके उपरान्त प्रथम दर्शन में ही दोनों एक-दूसरे को अपना मन दे बैठे। माधवप्रसाद की दशा पागल प्रेमी के समान हो उठी, जिसका आभास डॉक्टर साहेब को यथासमय

मिल गया। यह अंकुर ही पूर्वानुराग बन गया, जिसमे प्रेमी प्रेमिका के दर्शन क लिए तडफता है। माधवप्रसाद ऐसा काम प्रेरित हुआ कि वह रामप्रसाद तथा मदनमोहन दोनों के प्रति अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करने में उद्विग्न सा हो जाता। उसे अपने चारो ओर माधवी की सुंदर छवि दिखलाई पडती। सबको इस बात का आभास मिल गया कि माधवप्रसाद का विवाह डाक्टर साहेब की कन्या से होगा। इतना ही नहीं जब डाक्टर साहेब लखनऊ गये तो माधवप्रसाद उनके घर चौबीस घण्टे रहने लगे और इसके साथ ही साथ दोनो म प्रेम की धारा विकसित होने लगी। रसोई के बाद माधवप्रसाद और माधवी मे आपस म प्रेम चर्चाएं तथा तर्क वितर्क होने लगा। धर्मनिष्ठा माधवी अत्यन्त प्रेम स उसे भोजन कराने लगी। माधवप्रसाद धीरे धीरे माधवी के समस्त गुणो को परखने लग। भारतीय नारी के योग्य सुंदर सुसस्कृत पुस्तकें भी उसे माधवी के पास मिली। इस समय उसे माधवी क बिना एक क्षण भी चैन नहीं पडता था। गोस्वामीजी ने माधवप्रसाद का चित्र 'अनुकूल' नायक के समान तथा माधवी को रूपरेखा 'स्वकीया' नायिका क समान चित्रित किया है जो शीघ्रता से 'काम कदम्ब' के फूल की प्रतीक्षा करने लगे। रामप्रसाद ने भ्रूण हत्या के पाप को दूर करने के लिए बहुत बड यज्ञ का आयोजन किया। मनुस्मृति" के आधार पर आपत्ति काल का मोचन यज्ञ के द्वारा होना चाहिए क्योंकि 'मास भक्षण, मद्यपान और मैथुन प्राणियों की प्रवृत्ति हा है।" समस्त वेद तथा उपनिषदो के मन्थन के पश्चात् सबने मिल कर यही निश्चय किया कि पवित्र हृदय तथा द्रव्य साध्य यज्ञ का शीघ्र काशी में ही आयोजन होना चाहिए यहां तक कि लेखक ने निम्बकाचार्य कृत 'दश श्लोकी" को पढ़कर सबकी शकाओं का समाधान किया। तीन दिन तक यज्ञ, सौ गौओं का दान, एक हजार ब्राह्मणो को भोजन और दक्षिणा वितरण हुआ। सप्ताह-यज्ञ हो गया। इसी समय मदनमोहन का विवाह 'मोहिनी' के साथ तय हो गया। इससे पहले जमुनादेई ने आत्म-दाह से पीडित होकर अपने प्राण त्याग दिये, जो अपने पापो के दुख से भीतर ही भीतर गली जा रही थी। लेखक ने इसी उपन्यास म काम-शास्त्र के दस अगों का वर्णन किया है। माघ क माह म माधव का माधवी के साथ तथा मदनमोहन का मोहिनी के साथ विवाह होना निश्चित हो गया और 'काम' की अन्तिम तीन दशाओ मधु आस्वादन तथा परितृप्ति का समय भी आ गया। माधवी जैसी गुणवती सुशीला माधवप्रसाद की धर्मपत्नी हो गयी। रामप्रसाद की पत्नी लक्ष्मीदेई ने 'मन्मथमोहन' नामक पुत्र को जन्म दिया। यज्ञ के उपरान्त वृद्धावस्था म लालाजी के सोये हुए भाग्य जग गये। घर मे हरिकीर्तन, गान, नाटक, सभा, उत्सव, ज्योनार आदि सब कार्य होने लगे। मदनमोहन का भी धूम धडी में विवाह हो गया और उसके बाद माधवप्रसाद की बहिन दुर्गा भी ठाकर के साथ ब्याही गयी। रामप्रसाद ने जी खोल कर धन को पानी की तरह बहाया। गाहस्थ्य सुख ही इस भूतल पर स्वर्गीय सुख है। यदि गृहिणी सती, सुशीला, विनम्र और मन क अनुकूल [illegible]ता गृहस्थ जीवन धन्य हो जाता है।

"माधवा-माधव" चरित्र प्रधान उपन्यास है, जो आत्मचरित्र प्रधान शैली के आधार पर लिखा गया है। इसमें माधवप्रसाद तथा माधवीदेवी की आधिकारिक कथावस्तु है तथा मदनमोहन और मोहिनीदेई तथा लाला रामप्रसाद, जमुनादेई और डॉक्टर लक्ष्मीनारायण की कथाएँ प्रासंगिक रूप से चलती रहती हैं, जो प्रमुख कथानक के विकास में पूर्णरूपेण सहायक हैं। उपन्यास सुखान्त है तथा लेखक ने इसमें हिन्दू गृहस्थ परिवार की परम्पराओं का जीता-जागता चित्र उतारा है। धार्मिक मान्यताओं के बीच पात्रों के चरित्र का उत्थान और पतन अंकित हुआ है।

"प्रेममयी" नामक सामाजिक उपन्यास सन् १९१४ में गोस्वामीजी ने सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित कराया। इसका मूल सूत्र यद्यपि बंगला उपन्यास साहित्य से उपलब्ध था, फिर भी गोस्वामीजी ने अपनी सुसंस्कृत भाषा में इस उपन्यास के द्वारा हिन्दी जगत को प्रेमपूर्ण कथा प्रदान की है। गोस्वामीजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि बंगला में 'वह उपन्यास वियोगान्त है, पर हमारी रुचि वियोगान्त पर नहीं है, इसलिए हमने अनुवाद में वियोगान्त को सुयोगान्त बना डाला।"[1]

यद्यपि लेखक ने इसे अनुवाद की श्रेणी में रखा है, पर वह तो हिन्दी की मौलिक कृति के रूप में सम्मानित हुई है। इसकी कथावस्तु सुन्दर है। इसके दृश्य बंगाल के निकट सन्तोषपुर नामक गाँव के लिए गये हैं, जहाँ पर 'ताल तालाब", जिसमें अपार जल लहरें मारता था, में अमला और शान्तीकुँवर नामक दो रूपवती नारियाँ जल भरने गयी थीं। शान्तीकुँवर विरह-व्याकुल नारी है, जिसका प्रियतम परदेश गया हुआ है। अमला सुधार (सुधाराम) भट्टाचार्य की लड़की है, जिसका विवाह विप्रदास वंद्योपाध्याय के पुत्र विजय के साथ निश्चित हो गया था, पर सुधाराम की निर्धन अवस्था के कारण यह शुभ कार्य सम्पन्न नहीं हो सका, यद्यपि दोनों एक-दूसरे का अटूट प्रेम करते थे। जब विजय ने देखा कि उसका पिता किसी दूसरी स्त्री से उसका विवाह करने जा रहा है तो उसने वहाँ से भाग जाने का निश्चय कर लिया। दूसरी ओर, शान्तीकुँवर के पति भूतनाथ बहुत दिनों बाद ससुराल आये हैं, पर उनकी बुरी आदतों ने शान्ती को प्रथम दिन ही जीवन में अत्यन्त निराश कर दिया। तम्बाकू, अफीम, गाँजा, चरस-पान करने के कारण उनका चेहरा भयानक बन गया था। उनके सात गठ-विवाह हो चुके थे। वे कुलीन थे। बाल पक गये थे, पर ससुराल में कभी-कभी पहुँच जाने से सहज में ही रुपया-पैसा मनो-पत्ते के लिए उन्हें मिल जाता था। दूसरी ओर, शान्तीकुँवर अपने प्रेम में अन्धानुभक्ति करती थी। उसकी अपने पति के प्रति अपार श्रद्धा थी। दूसरी ओर, अमला के विवाह की भी तैयारी होने लगी थी। वह घबरा रही थी कि न जाने किससे उसका विवाह कर दिया जावे। जैसे ही भाँवरों का दिन आया, विजय पागलों के समान चिल्लाता-चिल्लाता आ पहुँचा

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेममयी," निवेदन से।

'प्रेममयी, प्रेममयी' और दोनों अमला तथा विजय, जो एक-दूसरे से बिगड़ कर मरणासन्न हो गये थे, अब संयोग-अवस्था को प्राप्त होकर फिर से स्वस्थ तथा सुखी हुए। दैव प्रसन्न हुआ तो दूसरी ओर भुवनाथ तथा शान्तीकुँवर भी संयोग का सुख लूटने लगे। विजय तथा अमला का हार्दिक प्रेम देख कर उन्हें अपूर्व सीख मिली और जीते-जी फिर उन्होंने एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ा। यह भी चरित्र-प्रधान सुखान्त उपन्यास है।

लेखक ने संयोगान्त उपन्यास की सार्थकता के लिए कहा है "जो सुखी हैं, संयोगी हैं, प्रेमी हैं, रसिक हैं और पराये सुख संयोगादि को देख प्रसन्न होने वाले हैं वे सहृदय रसिक हमारे साथ आवें और देखें कि अमला, विजय और शान्तीकुँवर का क्या परिणाम हुआ।"[1]

"लावण्यमयी" की प्रथम प्रति प्राप्त हुई है, जिसे गोस्वामीजी ने सन् १८६१ में भारत जीवन प्रेस द्वारा काशी में प्रकाशित कराया। उस समय वे आर्य पुस्तकालय, आगरा के सम्पादक थे। लेखक ने मुख पृष्ठ पर ही संकेत कर दिया है कि यह बंग भाषा के आश्रय से 'आर्य-भाषा' में ग्रहण की गया। उपन्यास की नायिका 'लावण्यमयी' है उसके प्रेम का प्रसून इसमें विकसित हुआ है। इसका समर्थन लेखक ने उपन्यास की भूमिका में कर दिया है "कौतुकपूर्ण, ज्ञानपूर्ण, आमोदपूर्ण, सामाजिक और लौकिकपूर्ण, साहित्यमय भावों से पूर्ण तथा अनेक विविध विषय-विभूषित उपन्यास ही है।"[2]

यह अनूदित उपन्यास केवल नाम के लिए है, पर वास्तव में लेखक की मौलिक प्रतिभा प्रकट हुई है। हरिपुर एक ग्राम है, जहाँ रमेशबाबू प्रधान धनिक थे। उनके घर में बालक का अभाव था। इससे उनकी पत्नी सरला भी बहुत दुखी रहती थी। अनेक प्रयत्नों से सरला ने एक पुत्र को जन्म दिया, पर एक वैष्णवी के कहने पर वह पुत्र तो वैष्णवी को दे दिया तथा अपने घर में उसकी पुत्री लावण्यमयी लाकर रख छोड़ी और सरला स्वयं अन्तर्धान हो गयी। इस घटना से रमेशबाबू बहुत चिन्तित रहते थे। पत्नी के बिना उनका सारा घर सूना हो गया था, पर लावण्यमयी धीरे धीरे विकसित हो रही थी। वह चन्द्रकिरण के समान प्रकाश की किरण फैला रही थी। वहाँ वैष्णवी अपने बालक सुधाकर को लेकर आई और रमेशबाबू के उद्यान में लावण्यमयी से परिचित करा गया। धीरे-धीरे दोनों वयस्क हुए और बचपन का स्नेह यौवन के प्रेम में परिणत हो गया। रमेशबाबू ने विवाह नहीं किया और उनके जीवन का सारा आनन्द लावण्यमयी पर केन्द्रित हो गया था। स्वप्न में कभी कभी सरला भी उन्हें दिखाई पड़ती थी। जब सुधाकर और लावण्यमयी में प्रेम का बीज प्रस्फुटित हो गया, तब एक दिन सरला अपने पति के घर वापस लौट आई और उसके विगत वर्षों की सारी कथा रमेश

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेममयी", पृ० २८।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "लावण्यमयी" की भूमिका।

बाबू को सुनाई कि वास्तव में सुधाकर उनका पुत्र है और लावण्यमयी इस नगर के राजा और जमींदार शशिशेखर की पुत्री है। वैष्णवी उनकी पत्नी है। उसके संकेत पर ही सारा कथानक घटित हुआ है। तब वे बड़े प्रसन्न हुए और धूमधाम से सुधाकर का विवाह लावण्यमयी के साथ हो गया। दोनों सदा के लिए प्रेम-सूत्र में बाँध दिये गये। दंगे-फसाद में शशिशेखर की सारी जमींदारी नष्ट हो गयी थी, पर धीरे-धीरे सरकार ने उनकी सारी जमीन-जायदाद उन्हें लौटा दी और लावण्यमयी का घर सुख तथा सम्पन्नता का आगार हो गया। इस उपन्यास की कथावस्तु में अद्भुत रहस्य मिलता है। 'अज्ञात-कुल-शीला वैष्णवी' इसकी मूल सूत्रधार है, जो सरला का मार्ग-दर्शन करती है तथा रमेशबाबू के बालक को बचाकर लावण्यमयी से उसका विवाह कराती है। रमेशबाबू भी पत्नीनिष्ठ तथा उच्च कोटि के त्यागी गृहस्थ हैं, जो सरला के चले जाने पर भी अपना दूसरा विवाह नहीं करते हैं और लावण्यमयी का पालन करके अपने आपको सुखी मान लेते हैं तथा वर्षों से बिछुड़ी हुई पत्नी को सहज में ही निष्ठा के कारण अंगीकार कर लेते हैं। कथानक सरल, पवित्र तथा प्रेमपूर्ण है, जिसका अन्त नायक और नायिका के सुखी जीवन से होता है।

"सुखशर्वरी" उपन्यास भी बंग भाषा के आश्रय से विशुद्ध आर्य भाषा में गोस्वामीजी ने सम्वत् १९४६ में लिखा और भारत जीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित कराया। दूसरी बार सन् १९१६ में यह सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से इनके योग्य पुत्र छबीलेलाल गोस्वामी के द्वारा छपकर प्रकाशित हुआ। प्रथम और द्वितीय संस्करण की भूमिका से उपन्यास का लक्ष्य किशोरीलाल ने स्वयं प्रकट कर दिया है। चरित्र-प्रधान होते हुए भी यह उपन्यास घटना-प्रधान दिखाई देता है। "सुखशर्वरी" उपन्यास की कथावस्तु की नायिका एक अनाथिनी बालिका है, जो अपने छोटे भाई सुरेन्द्र तथा पिता के साथ आनन्दपुर और हरिपुर के बीच जब श्मशान मार्ग से जा रही थी तो मार्ग में ही उसके पिता का अचानक देहान्त हो जाता है और वह मन-मसोस कर अपने तथा अपने छोटे भाई के लिए आश्रय खोजने लगती है। इस बालिका के पास उसके पिता हरिहर शर्मा के नाम एक पत्र था, जो उनके घनिष्ठ मित्र थे तथा सम्पन्न जमींदार थे। मार्ग में ही अनाथिनी की भेंट अकस्मात् हरिहर शर्मा से हो जाती है, जिन्होंने उस कन्या को देखकर ही निश्चय कर लिया कि अपने पुत्र भूपेन्द्र के साथ उसका शुभ विवाह कर देंगे। एक दिन एक फकीर सुरेन्द्र को चुरा ले गया। अब अनाथिनी अपने भाई से बिछुड़ कर और भी दुखी हुई, पर हरिहर शर्मा के प्रयत्न से वह सकुशल मिल गया। उनकी बेटी सरला से अनाथिनी की गहरी मित्रता हो गयी और उसके प्रयत्नों से सरला को अपना प्रेमी प्राप्त हो जाता है तथा दोनों का आनन्दपूर्वक विवाह हो जाता है। हरिहर शर्मा का पुत्र भूपेन्द्र भी एक कापालिक के चक्कर में आ गया था और पेड़ से बाँध दिया गया था, तब अनाथिनी ने परिश्रम करके अपने प्रेमी को भी बंधनमुक्त कराया और उसका भी विवाह भूपेन्द्र के साथ हो गया। मनसाराम कापालिक को तीन वर्ष का कठिन कारावास का दण्ड मिला। सरला तथा अनाथिनी

दोनों ही अत्यन्त रूपवती थीं और उनके साहसपूर्ण तथा चातुरी से भरे हुए कार्यों के कारण हरिहरबाबू ने उनका नाम 'गृहलक्ष्मी' रखा और वह सबके लिए 'सुखदाशंरी' बन गयी। यह भी सुखान्त रचना है।

"इंदुमती" वा "वनविहगनी" को लेखक ने उपन्यास की श्रेणी मे रखा है, यद्यपि समीक्षा-जगत मे इसे द्वितीय मौलिक श्रेष्ठ कहानी के रूप में देखा गया है। "सुखशर्वरी" के अन्तिम पृष्ठ पर लेखक ने "इंदुमती" का विज्ञापन छापा है, उसम लिखा है : "यह उपन्यास अब तीसरी बार छपा है। यह ऐतिहासिक उपन्यास तो है छोटा, पर काम इसका बहुत बडा है। इसकी आश्चर्यजनक घटनाएँ तथा अद्भुत वृतान्त पढ़ कर उपन्यास के प्रेमी पाठक बहुत ही प्रसन्न होंगे। इसमें पन्द्रहवीं शताब्दी को एक बडी ही सुन्दर और रोचक कहानी का वर्णन है।"[1]

गोस्वामीजी क सभी उपन्यासो का आकार कुछ छोटा है तथा कुछ बडा, अतः यदि "प्रेममयी" उपन्यास है तो "इंदुमती" भी उपन्यास है और उसके लिखने वाल लेखक ने स्वयं ही स्वीकार भी किया है, फिर भी साहित्य-जगत मे "इंदुमती" मौलिक कहानी का स्थान पा चुकी है। इसकी कथावस्तु अत्यन्त रोचक है। 'इंदुमती' अपने बूढे पिता के साथ विन्ध्याचल के घने जगल में रहती थी। उसका ससार वहीं तक था और प्राकृतिक हरियाली म ही उसका पोषण हुआ, पर अचानक एक दिन एक युवक उसने नदी के तीर पर सोते देखा। इंदुमती का वहाँ पहुँचना और उसके देवोपम सौन्दर्य पर उस युवक का मुग्ध हो जाना, अतिथि के समान उसके यहाँ उस युवक का ठहरना, पर उसके पिता का क्रुद्ध हो जाना यद्यपि उसके हाथ मे "गीता" जैसी धार्मिक पुस्तक थी। वह युवक जंगल में पेड काटता था और यह युवती भी इतनी मोहित हुई कि उसक लिए वन से बीन-बीन कर मीठे फल ले जाती थी। बाद मे पता चला कि वह युवक अजयगढ का राजा चन्द्रशेखर है, जिसके पिता राजशेखर को इब्राहीम लोदी ने दिल्ली मे बुला कर विश्वासघात करके मार डाला था, तबसे चन्द्रशेखर इब्राहीम लोदी से बदला लेने के लिए व्याकुल था। वृद्ध बडा प्रसन्न हुआ और उसने उस युवक को इंदुमती का वर मान लिया और उसने हिमालय की गोद में जाकर तपस्या करने का निश्चय कर लिया। वृद्ध भी देवगढ का शासक था, पर मुसलमानों के अत्याचार के कारण उनके द्वारा हिन्दू घरो की नारियों को मुस्लिम महलो मे बुला लेना, इत्यादि अनाचारो से पीडित होकर वृद्ध ने भी अपनी पुत्री के साथ जगल मे रहना निश्चित कर लिया था। अब इंदुमती का चन्द्रशेखर का साथ विवाह करके वृद्ध ने धैर्य की साँस ली और स्वय वैराग्य लेकर तपस्यारत हो गया।

यह उपन्यास उत्तम कोटि का पात्र-प्रधान है। इसकी कथावस्तु के द्वारा भारतीय सामाजिक जीवन की दयनीय स्थिति का ज्ञान होता है और इंदुमती तथा चन्द्रशेखर के सच्चे प्रेम की विजय होती है। लेखक ने आदर्श और निष्ठापूर्ण आख्यान

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुखशर्वरी" के अन्तिम पृष्ठ के विज्ञापन से उद्धृत (सन् १६१६)।

की रचना इस उपन्यास में की है। उपन्यास के अन्दर भी लेखक किसी कहानी की ही सृष्टि करता है।

"चन्द्रावली" वा "कुलटा कौतूहल" प्रथम बार सन् १९०४ में ज्ञानवापी प्रेस, काशी में प्रकाशित हुआ। सन् १९१६ में इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित हो चुका था। लेखक ने स्वयं इसे उत्तम, रोचक और शिक्षाप्रद कहा है। छोटा होने पर भी यह जासूसी उपन्यास बड़े-बड़े जासूसी उपन्यासों का मुकाबिला करता है।"[1] सामाजिक रचना होते हुए भी इसमें जासूसी घटनाएँ अवतरित होती हैं। इसकी कथावस्तु में यदुनाथ मुकर्जी नामक एक जासूसी दरोगा का वर्णन है, जो कलकत्ते से बनारस आया। यहाँ पर सर्वसाधारण में यह प्रचलित हो गया था कि "बनारस की दालमण्डी वाली मशहूर रंडी चन्द्रावली मारी गयी।" यह अत्यन्त भीषण कार्य था, जो यदुनाथ को सौंपा गया। तीन महीने हो जाने पर भी बनारस की पुलिस खूनी का पता नहीं लगा सकी थी। इधर उनके बचपन के मित्र चन्द्रिकाप्रसाद ने भी उन्हें बनारस बुलाया था, अतः वे फौरन आ पहुँचे। चन्द्रिकाप्रसाद के द्वारा सारी कथा सुनाना, बाबू घनश्यामदास की लड़की ललिता से उनका विवाह और दूसरी लड़की चम्पा का एक निर्धन से विवाह तथा फिर अपनी सारी सम्पत्ति को उसे दे देना, पर चम्पा अल्प काल में ही विधवा हो गयी, पर घनश्यामदास ने उसे बुरा-भला कह कर अपने घर से निकाल दिया। उसके बाद वह अपनी बड़ी बहिन ललिता तथा चन्द्रिकाप्रसाद बहनोई के घर लौट कर आ गयी, पर घनश्यामदास ने अपनी बड़ी कोठी बनाकर चम्पा को दान में दे दी और कुछ दिनों बाद उनका देहावसान हो गया। तब चम्पा अकेली रह गयी और चन्द्रिकाप्रसाद के पुत्र 'कृष्णप्रसाद' से बड़ा स्नेह रखने लगी और उसे अपना 'दत्तक पुत्र' मानने को तैयार हो गयी और एक दिन सोच-विचार कर उसने कृष्णप्रसाद को गोद ले ही लिया। इसी समय ललिता गर्भवती हो गयी और सातवें महीने वह और उसका जन्मा बालक दोनों ही काल-कवलित हो गये, पर उसकी बीमारी से ही चम्पा वहीं पर रहने लगी और चन्द्रिकाप्रसाद के ही साथ कुकर्म करने लगी थी। घनश्यामदास ने भी एक हिन्दुस्थानी वेश्या अपने घर अपनी पत्नी के मरने के बाद रख ली थी, जो चम्पा से डेढ़ वर्ष छोटी थी, पर सूरत-शक्ल में दोनों ही एक सी दिखाई पड़ती थीं। उस वेश्या का नाम 'चुन्नी' तथा उसकी लड़की का नाम 'चन्द्रावली' था, पर चन्द्रावली और चम्पा दोनों एक ही समान दिखाई देती थीं, पर चम्पा के विधवा होने पर वे संसार से विरक्त हो गये और 'चुन्नी' को भी निकाल दिया, पर उनकी मृत्यु के बाद भी समवयस्का 'चम्पा' और 'चन्द्रावली' का अपूर्व मेल-जोल था। चन्द्रिकाप्रसाद को यह कार्य पसन्द नहीं था। एक बार शहर के नामी बदमाश ऐंठासिंह के जाल में चन्द्रावली आ गयी। उसने चम्पा की धन-सम्पत्ति का हाल भी सुना और उसके पिता के दान-पत्र की नकल भी दफ्तर से ले ली। उधर 'चन्द्रावली' की मौत का समा-

1. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुखशर्वरी" के अन्तिम पृष्ठ के "चन्द्रावली" के विज्ञापन से उद्धृत।

चार फैला कि वह असाध्य बीमारी से पीड़ित होकर मर गयी है। दूसरी ओर ऐंठासिंह चम्पा रानी को धन के लालच से अपने चंगुल में करने लगा, पर वास्तव में उसने 'चम्पा' को मार डाला था और 'चन्द्रावली' के साथ ऐशो आराम कर रहा था। दोनों की सूरतें एकसी थीं, पर जाहिर तौर पर चन्द्रावली नामक वेश्या की मृत्यु का समाचार फैलाया। वास्तव में यह सब झूठ था, अतः जासूस यदुनाथ मुकर्जी ने चम्पा बनी हुई चन्द्रावली तथा दुष्ट ऐंठासिंह को फाँसी पर लटकवाया। चन्द्रिकाप्रसाद ने अपनी सारी विपत्ति की कथा सुनाई, जिसको सुनकर मुकर्जी साहेब ने चम्पा की सारी सम्पत्ति बालक कृष्णप्रसाद का दिलवाई। दुष्टों को दुष्टता का फल मिला और यदुनाथ मुकर्जी ने खूनी दुर्घटना की छान बीन अत्यन्त सफलता से की। इस उपन्यास में जासूसी व सनसनीपूर्ण घटनाओं को बल मिला है। लेखक ने हिन्दू समाज की कुरीतियों का वर्णन भी यथातथ्य किया है। यह भी चरित्र प्रधान एवं सनसनी उत्पन्न करने वाला उपन्यास है।

"चन्द्रिका" वा "जड़ाऊ चम्पाकली" भी छोटा सा उपन्यास है, पर इसमें भी बड़ी दिलचस्प घटनाओं का लेखक ने वर्णन किया है। इसकी रोचक कथावस्तु यह है कि दिल्ली के प्रसिद्ध रईस बाबू द्वारकादास की भतीजी चन्द्रिका दुष्टों के हाथ में फँस जाती है और फिर उस नामी जासूस यदुनाथ मुखर्जी खोज कर निकालता है। चन्द्रिका स्वर्गीय बद्रीदास की लड़की थी। जब वे मरे तो अपनी सारी सम्पत्ति का वसीयतनामा अपनी लड़की के नाम करके उसे अपने भाई द्वारिकादास के संरक्षण में रख दिया था और इसका विवाह शशिशेखर के पुत्र चन्द्रशेखर के साथ पक्का हो गया था। बद्रीदास की यही 'विल' (Will) बेचारी चन्द्रिका का काल बन गयी क्योंकि द्वारकादास की दूसरी स्त्री दुष्टा 'माया' ने अपने भाई मथुरादास के साथ चन्द्रिका का विवाह करना चाहा था, पर वह इस पर राजी नहीं हुई। तब मथुरादास ने अपनी बहिन माया के परामर्श पर दिल्ली के कई गुण्डों की मदद से चन्द्रिका को बंद कर लिया और उसके खून हो जाने का समाचार फैला दिया। अपने अफसर मार्टिन साहेब के कहने से जासूस यदुनाथ मुखर्जी ने चन्द्रिका को खोज निकाला और अपने मित्र मानिकचन्द्र की सहायता से गूढ़ रहस्य का भी पता लगाया। जब माया को चन्द्रिका के प्रकट होने का समाचार मिला तो उसे अपने आपसे अत्यन्त ग्लानि हुई और फाँसी लगाकर उसी दिन उसने अपने प्राण त्याग दिये। दुष्टा को अपनी दुष्टता का फल मिला और चन्द्रिका चन्द्रशेखर से विवाह करके अपना सुखी जीवन व्यतीत करने लगी। लेखक ने चन्द्रिका की 'विल' का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त चतुराई से रचा गया है, जिसके द्वारा गोस्वामीजी की कानूनपटुता तथा व्यावहारिकता और यथार्थ जीवन की कटुताओं का आभास मिलता है। इस उपन्यास की प्रतियाँ भी बहुत बिकीं तथा तीसरी बार सन् १६१४ में यह सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित हुआ। गोस्वामीजी के अद्भुत मौलिक विचार तथा सामाजिक अनहोनी

घटनाएँ और उनका निराकरण—पापियों को पाप का कुफल भोगना और पुण्यात्माओं का सुखी होना ही उनके समस्त उपन्यास साहित्य की थीम (Theme) रहती है। जीवन भर पाप तथा दुराचार करके पापी अपनी अन्तर्ज्वाला में जलते हुए पाये जाते हैं, पर पुण्यात्मा दुःख पाकर भी अपना सन्तोषी तथा सुखी जीवन व्यतीत करते हुए दिखाई देते हैं। उपन्यास में 'विल' का सन्निवेश करके गोस्वामीजी ने अपने उत्तराधिकार-सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया है।

"गुलबहार" या "आदर्श भ्रातृस्नेह" भी गोस्वामीजी का सामाजिक उपन्यास है। यह दूसरी बार सन् १९१५ में उनके पुत्र छबीललाल द्वारा वृन्दावन से प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में लेखक ने जिस ऐतिहासिक घटना का वर्णन किया है, उसका सम्बन्ध मुगल-विरोध से है। प्लासी का युद्ध (सन् १७५७) के बाद अभागे सिराजुद्दौला का पतन प्रारम्भ होता है। बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का भाग्य भी उलट गया था। मीरजाफर बंगाल का नवाब बना और उसके बाद उसके दामाद मीरकासिम ने नवाबी की बागडोर सँभाली। उसकी प्यारी बेगम मैना मृत्यु शैया पर अन्तिम श्वासें ले रही थी और मृत्यु से पहले उसने अपने दोनों बच्चे अपने पति मीरकासिम के हवाले किए। जब वे बच्चे बड़े हुए तो उसने अपने लड़के का नाम 'बहार' और लड़की का नाम 'गुल' रखा। वह दोनों को मर्दाने वेष में रखता था। दोनों बालक एक समान सुन्दर दिखाई देते थे। एक बार वह मुर्शिदाबाद से मुंगेर सेना में भर्ती होने के लिए आया पर 'गुल बहार' को भुला देना उसके लिए बड़ा कठिन था। बंगाल में क्लाइव था, पर मीरकासिम ने उसका अपमान भुला दिया था, अतः अंग्रेजों ने क्रोधित होकर मुंगेर को चारों ओर से घेर लिया। मीरकासिम ने क्लाइव की सेना का सामना किया। उसके सेनापति की नमक-हरामी के कारण अंग्रेजों ने किले के उत्तरी फाटक पर अपना अधिकार कर लिया। वह गुल तथा बहार को लेकर गंगा के किनारे भाग निकला। बालक बहार पितृ भक्त था। वह अपनी बहिन गुल तथा धाय के साथ नाव पर बैठकर गंगा के उस पार पहुँचा और गाँव में छिपने का प्रयत्न करने लगा। अपने पिता के दुख में गुल तथा बहार दोनों दुखी थे। रात की अँधियारी में दोनों भाई-बहिन भोजन लेकर अपने पिता के पास पहुँचते थे। गुल गजलें गाकर अपने दुखी मन को धीरज देती थी। बहार जब अपने पिता से मिलकर लौट रहा था तो अंग्रेजों की गोली से उसके प्राण चले गये। जब क्लाइव को इस बालक की मृत्यु का पता चला तब वह बहुत दुखी हुआ। उसने बहार की कब्र पर शोक के फूल बरसाये। अपने प्यारे भाई को खोकर गुल का दिल सदा के लिए टूट गया। वह श्मशान में घूम घूम कर रात के समय कौन पर गजलें गाने लगी और वह भी अपने भाई की कब्र पर मरी हुई सी पाई गयी। क्लाइव को इतना दुःख हुआ कि वह कलकत्ते चला गया। घायल गुल को मरणासन्न दशा में वह धाय अपने घर उठा लायी तथा उसे चेतन अवस्था में ले आयी,

पर अब गुल ने अपने मुख से अन्न जल नहीं लगाया। वह अपने आपे में न रह कर अब गजलें गाती रहती है। प्रतिदिन वह अपने भाई बहार की कब्र के पास आ कर सो रहती है और एकदिन उसने उसी शोकोच्छ्वास मे अपने प्राण त्याग दिये। फिर दूसरे दिन वह लाश भी "गुल और बहार" की कब्र के पास मरी हुई पायी गयी और फिर कभी भी मीरकासिम की सूरत भी किसी ने नहीं देखी। इस कौतुक को देखकर क्लाइव भी बहुत दुखी हुआ और भारत छोड़कर विलायत चला गया और जन-साधारण 'गुल बहार' की कब्र का पूजा करने लगा। पवित्र मातृ प्रेम का उदाहरण इस उपन्यास म है। बहिन की भाई क प्रति निष्ठा और लगन उपन्यास को मार्मिक बना देती है।

'कुसुमकुमारी" या 'स्वर्गीय कुसुम" गोस्वामीजी का सबसे सुन्दर तथा प्रेम का प्रतीक उपन्यास है। मानवीय प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप इस उपन्यास में परिलक्षित होता है। भौतिक जगत में इसकी प्राप्ति लेखक ने इस रचना मे कराई है सन् १८८६ मे गोस्वामीजी की कल्पना अधिक उद्दीप्त हुई। इसम अनेक घटनाएँ आयोजित की गयी हैं। यह भी चरित्र-प्रधान उपन्यास है। 'कुसुमकुमारी' क जीवन के साथ ही सारी परिस्थितियों का चक्र चलता रहता है। 'कुसुमकुमारी' आगरा के राजा कर्णसिंह की कन्या है। तीन वर्ष की उम्र ही म बेचारी अपने माता पिता के द्वारा देवदासी बना दी जाती है और जिस मन्दिर मे उसे दान किया जाता है, वहाँ का पंडा उसे ले जाकर एक वेश्या के हाथों बेच देता है। भाग्यवश एक बार कार्तिक पूर्णिमा के मेले में उसकी नाव टूट जाती है और वह गंगा में बह जाती है तथा एक सुन्दर युवक बसन्तकुमार के द्वारा उसके प्राणों की रक्षा की जाती है। वह अपने जन्म स्थान आगरा म आकर समाज से छिप कर अपना जीवन-यापन करती है। उसकी छोटी बहिन गुलाब का बसन्त से विवाह होता है और वह देवदासी प्रथा को सदा के लिए समाज से हटवाने की प्रतिज्ञा करती है। एक दिन ऐसा होता है कि अपनी बहिन गुलाब की व्यंग्यपूर्ण उक्तियों के कारण कुसुमकुमारी आत्म हत्या करने के लिए विवश हो जाती है। पर वह गुलाब के प्रयत्नों स बच भी जाती है और अपनी बहिन गुलाब से मिलकर अपार आनन्द मे भर जाती है। इस समय गुलाब और कुसुम दोनों एक-दूसरे से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। इस उपन्यास में हिन्दू समाज के अत्याचारों तथा कुरीतियों का लेखक ने विशद वर्णन किया है। यद्यपि कुसुमकुमारी पूर्ण पवित्र तथा निर्दोष थी, फिर भी समाज के समक्ष वह अपना मुँह नहीं दिखा सकती थी। वेश्या के घर में रहकर जीवन-यापन करना ही उसके जीवन का कलंक बन गया था। जिस बसन्त को वह सच्चे हृदय से प्रेम करती थी, सामाजिक मर्यादाओं के कारण अपनी ही सहमति से उसका विवाह अपनी बहिन गुलाब से स्वयं कराती है। समाज की परम्पराओं के सामने विद्रोह करने की शक्ति न तो कुसुमकुमारी में है और न बसन्त म। दोनों ही भाग्यवादी हैं और भाग्य-

पक्ष के समस्त अपने हृदय की घुटन में दुखी हैं। सम्पूर्ण कथानक में लौकिक शुद्ध प्रेम की दुहाई है। आदर्श प्रेमिका कुसुमकुमारी का जीवन मनोव्यथा, त्याग, तपस्या, संयम एवं दुःख से पूर्ण है। इस उपन्यास में एक ओर सामाजिक कुरीतियाँ हैं तथा दूसरी ओर, ऐयारी के करिश्मे भी दिखाई देते हैं। इसके द्वारा गोस्वामीजी की सुन्दर कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है। सामाजिक कुरीतियों का यथार्थवादी चित्रण इस उपन्यास में प्राप्त होता है। पात्रों के नाम की सुन्दरता ने लेखक का परिचय हृदय की भावुकता तथा प्रकृति-प्रेम से दिया है। वे भावुक प्रेमी पात्रों के जीवन का अन्त दुखमय नहीं करना चाहते हैं। *"स्वर्गीय कुसुम"* वा *"कुसुमकुमारी"* के "एक प्रश्न" शीर्षक के पचासवें परिच्छेद में लेखक ने वियोगान्त प्रेमियों की यह समझाने की चेष्टा की है 'कुसुम मर गयी पागल वसन्त (उसका प्रेमी) भी मर गया। गुलाब ने भी अपनी जान देकर अपने पाप अर्थात् सपत्नी-वध और पति-हत्या का प्रायश्चित कर डाला। (पर) हा खेद! भला हम आप से यह पूछते हैं कि कुसुम *या वसन्त ने धर्म, कर्म, समाज, लोक परलोक, देश, विदेश या किसी वियोगान्त प्रेमी* विशेष का क्या बिगाड़ा है कि ये दोनों यों ही संसार से निकाल बाहर किये जायँ और जिन धर्म-विनाशक नर-राक्षसों से धर्म, कर्म, संसार, समाज देश, विदेश और व्यक्ति विशेष का सत्यानाश हो रहा है, वे दुराचारी लोग मूँछों पर ताव फेरते हुए मार्कण्डेय बनकर दीर्घजीवी हों? हा, धिक्!!"[1]

गोस्वामीजी ने पात्रों को प्रेम की यातना में खूब तड़पाया है और 'कुसुमकुमारी' का सच्चा प्रेम आख्यान निखर उठा है। कर्म-फल की प्रेरणा से वशीभूत होकर अन्य समकालीन उपन्यासों की अपेक्षा इनके उपन्यासों की कथावस्तु में विस्तार आ जाता है। 'चरित्र-प्रधान' उपन्यास प्रायः गोस्वामीजी ने सभी रचे हैं, जहाँ मुख्य पात्र के चारों ओर घटनाएँ घटित होती रहती हैं। जीवन और समाज में घटने वाली घटनाएँ यथावत् प्रस्तुत करने में गोस्वामीजी सफल हैं। प्रचलित सामाजिक व्यवस्था पर भी इनके उपन्यासों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। "चपला" सचित्र सामाजिक प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसको गोस्वामीजी ने चार भागों में प्रकाशित किया है। यह अत्यन्त रोचक उपन्यास है। इसमें उच्च वासनापूर्ण तथा चटकीले दृश्य उपस्थित हुए हैं। यह उनका चरित्र-प्रधान वृहद् मौलिक उपन्यास है। कई रंगों में छपा हुआ 'चपला' का सुन्दर चित्र भी पुस्तक में जुड़ा हुआ है। 'काशी' महानगरी कथावस्तु का प्रमुख केन्द्र है, साथ ही साथ लखनऊ, गाजीपुर आदि स्थानों में भी प्रासंगिक घटनाएँ घटी हैं, पर वास्तव में बनारस का ही यह रहस्य है। स्वयं गोस्वामीजी ने सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रथम सन् १६०६ में इस उपन्यास के चारों भाग प्रकाशित किये। "चपला" के चौथे भाग में 'निवेदन' के रूप में लेखक ने कहा है: "यह

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी: "कुसुमकुमारी", "एक प्रश्न", पचासवाँ परिच्छेद।

उपन्यास किसी देश, जाति, धर्म, समाज या व्यक्ति विशेष के ऊपर अकारण आक्षेप करने की इच्छा से नहीं लिखा गया है, वरन् एक दीन हीन परिवार की शोचनीय स्थिति के साथ वर्तमान, शिथिल, उच्छृंखल और बन्धु-विहीन समाज का चित्र इस इच्छा से यथावत् चित्रित किया गया है कि हमारे आर्य भ्राता लोग इस विशृंखल समाज को सुशृंखलाबद्ध करने के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयत्न करने मे तत्पर हों।"[1]

इस उपन्यास की नायिका चपला है, जिसके नाम पर उपन्यास का नामकरण हुआ है। यह भी चरित्र प्रधान उपन्यास है पर चपला के बड़े भाई की मृत्यु से कथा प्रारम्भ होती है।

बाबू शंकरप्रसाद और उनकी पत्नी के मरने पर उनके परिवार की बहुत दीन हीन अवस्था हो गयी। उनके पुत्र शिवप्रसाद को मृत्यु के दूसरे ही दिन जेल जाना पड़ा तथा उनके छोटे भाई हरप्रसाद को बड़ी दयनीय दशा का सामना करना पड़ा। घर में एक पैसा भी नहीं था, पर उनके मित्र हरिनाथ के द्वारा उन्हें इस कष्ट के समय में सच्ची सहायता प्राप्त हुई। शिवप्रसाद की दोनों बहिनें सौदामिनी और कादम्बिनी अपने बड़े भाई के बिछुड़ने पर बहुत दुखी हुई, पर धैर्य के साथ उन्होंने एक छोटा सा घर किराये पर ले लिया और मालती, सौदामिनी, कामिनी, चपला सब बुनने और कसीदे काढ़ने का काम करने लगीं एवं बाबू हरिनाथ उनको अधिक मूल्य देकर खरीदने लगे। फिर कुछ दिनों पश्चात् विलायत चले गये।

हरप्रसाद ने अपने माता पिता का श्राद्ध किया, पर अभी तक कामिनी और चपला का विवाह नहीं हो पाया था। कामिनी का तो समाज राक्षसी लड़की समझता था। चपला का हल्दी-तेल चढ़ चुका था। उसी समय घनश्याम (चपला का प्रेमी) मारा गया था। हरिनाथ, जो इन लोगों की धन से गुप्त रूप से सहायता करता था, उसकी और कामिनी के प्रेम-सम्बन्ध की बात कोई भी नहीं जानता था, यहाँ तक कि कामिनी के भाई हरप्रसाद तथा शिवप्रसाद को भी ये बातें नहीं मालूम थीं। सौदामिनी और मालती दोनों को इस रहस्य का पता चल गया था, क्योंकि हरिनाथ विलायत जाने से पहले एक "कैश बाक्स" कामिनी को दस हजार रुपये से भर कर दे गये थे, जो उनके संकट के समय काम आये। दो महीने तक अभागे हरप्रसाद की गृहस्थी जैसे तैसे चलती रही, पर तीसरे महीने से तो कामिनी और चपला के द्वारा बने मोजे तथा कसीदे का सामान कोई नहीं खरीदता था। घर में उनकी दोनो जैसी अनाथ अवस्था हो गयी। हरप्रसाद ने हरिनाथ के दिये सारे रुपये बैंक में जमा कर दिये, पर एक और विपत्ति आ गयी। दोनों छोटे भाई महादेवप्रसाद तथा विश्वनाथ भी काम सीखने के लिए जापान

१. किशोरीलाल गोस्वामी - "चपला", चतुर्थ भाग का "निवेदन", सन् १६१६ का संस्करण।

चले गये और फिर हरप्रसाद भी घर छोड़ कर चले गये और इस प्रकार घर की सब स्त्रियाँ केवल परमात्मा के ही भरोसे रह गयीं। घर में सब युवती स्त्रियाँ दुखी होकर जीवन-यापन कर रही थीं। इनके श्वसुर शंकरप्रसाद के भाई बटुकप्रसाद ने भी धन से उनकी बहुत सहायता करनी चाही, पर उन्होंने नहीं ली। बटुकप्रसाद सीधे आदमी नहीं थे, नारियों को बहकाना, धर्म-भ्रष्ट करना उनके बाँये हाथ का खेल था। रुपया देना और नारी को जाल में फँसाना व जानते थे। एक दिन वह हरप्रसाद की पत्नी सौदामिनी को बहका कर ले गया और उसका चरित्र भ्रष्ट करना चाहा, पर वह वीरांगना भाग निकली। घर में पुरुषों के न रहने पर, असहाय समझ कर समाज का प्रत्येक पुरुष इन्हें पतित करने के लिए तरह तरह के लालच देता था। समाज में युवती नारी को एकाकी जीवन व्यतीत करना भी पाप हो गया था। एक दिन सौदामिनी, चपला, मालती, कादम्बिनी अपनी सेविका बुधिया की माँ के गाँव गाजीपुर चलने के लिए तैयार हो गयीं क्योंकि वे चाहती थीं कि वहाँ ईमानदारी से काम करके जीविकोपार्जन करेंगी, पर रात को ही दस-बारह डाकू आये और चपला के मुँह में कपड़ा ठूँस कर उसे उठा ले गये। अब ये अन्य नारियाँ बहुत दुखी हो गयीं और वे सब वह शहर छोड़कर चल दीं और गाजीपुर पहुँच गयीं। सौदामिनी और कादम्बिनी नौकरी करने लगीं, पर चपला क लापता हो जाने से मालती बीमार हो गयी। कादम्बिनी अँग्रेजी पढ़ी-लिखी थी और कसीदे का काम भी जानती थी। जितना काम करती थी, उसके बदले म उतना ही मूल्य लेती थी। धन के लिए इन्होंने लालच नहीं किया और इन नारियों ने अपना सतीत्व कभी नहीं बेचा। इन स्त्रियों ने भी अपना नाम दूसरों म बदल लिया था। जिस राय साहब व्रजकिशोर के यहाँ कादम्बिनी काम करती थीं, उसकी विनम्रता पर वे उससे विवाह-सम्बन्ध बनाने को राजी हो गये, पर बन्धन यही था कि जब तक उसके भाइयों का पता न लग जावे, विवाह स्थगित रहे। मालती का भाई भैरोंप्रसाद भी बड़ा चिन्तित था। विलायत से हरिनाथ भी आ गये और श्रीनाथ तथा कमलकिशोर नामक दो दुष्टों से उन्होंने कामिनी के सतीत्व की रक्षा की। सौदामिनी तथा मालती दोनों स्वस्थ हो गयी थीं। कामिनी ने हरिनाथ को सारी विपत्तियों का वर्णन सुनाया। बाबू व्रजकिशोर बरेली जेल से छूटने पर शिवप्रसाद से मिले, जो अत्यन्त रोगी हो गये थे और उनके भाई हरप्रसाद, विश्वनाथप्रसाद तथा महादेवप्रसाद आदि किसी भाई का पता ठिकाना भी उनके पास नहीं था। अपनी बहिनों तथा भावज का भी चिह्न नहीं मिल रहा था। उनके चाचा बटुकप्रसाद ने इन बेचारी अनाथ नारियों को और भी दुखी किया। उन्हें बराबर यही दुख हो रहा था कि भगवान जगदीश्वर की पूजा और उपासना करने के बाद भी इसी तरह के पारिवारिक कष्ट उन्हें झेलने पड़ रहे हैं, पर उनका दृढ़ विश्वास था कि पाप की नाव एक दिन अवश्य डूबेगी। फिर राजा व्रजकिशोर शिवप्रसाद को अपने साथ गाजीपुर ले आये, पर मालती के भाई भैरोंप्रसाद को सन्देह हो गया था कि चपला के प्रियतम भोला

तथा घनश्याम का खूनी ब्रजकिशोर है, पर इस बात का शिवप्रसाद ने विश्वास नहीं किया। वे तो राजा ब्रजकिशोर की भलाइयों के भार से दबे हुए थे ग्रौर हरिनाथ बाबू ने ग्राकर उन्हें निरपराध सिद्ध कर दिया। अब कादम्बिनी को सच्ची प्रसन्नता हुई। हरिनाथ के भाई श्रीनाथ ग्रौर उसके मित्र कमलकिशोर की सारी चालाकी सबको समझ में ग्रा गयी। रामनाथ, श्रीनाथ सब चरित्र से पतित थे, वेश्यागमन, शराब के दौर तो मामूली बातें थीं। छुप-छुप कर व्यभिचार करने म उन्हें तनिक भी परमात्मा तथा समाज का भय नहीं लगता था। ब्रजकिशोर ने धीरे-धीरे यह भी पता लगा लिया था कि चपला ग्रौर घनश्याम को कहाँ कैद कर रखा है? चपला बनारस की एक गली के मकान मे पलग पर बेसुध पड़ी हुई पायी गयी। उधर शिवप्रसाद को उनके घर की नारियों के साथ हरिनाथ ने ग्राराम मे रख दिया ग्रौर शुभ मुहूर्त मे कामिनी के साथ उनका विवाह हो गया। पर शिवप्रसाद ने पहले चपला के लिए चिन्ता व्यक्त की, तब हरिनाथ ने विश्वास दिलाया कि चपला ग्रौर उसका वर घनश्यामदास दोनों साथ ही प्रकट होंगे। लखनऊ मे डाकुग्रों के घर मे चपला ग्रत्यन्त दुखी थी। वह एक जासूसी कमरे मे रख दी गयी थी, जहाँ उसे ग्रनेक प्रकार की भूल भुलैयो के दर्शन हुए। सारी सुविधाएँ थीं, पर मनुष्य की तनिक भी ग्राहट नहीं मिलती थी। यह तिलस्मी मकान था। वहीं पर एक दिन चपला की भेंट एक कैदी से हुई जो घनश्याम था। वहाँ पर चपला ने उसकी बेड़ियाँ काट दीं ग्रौर उसे बन्धन-मुक्त कर दिया। तब घनश्याम ने सारी कथा सुनाई कि सब जगत को यह विदित है कि वह मारा गया है। उसके हाथ की एक कलाई कटी हुई मिली, जिसमें विवाह का कंगन बँधा हुग्रा था। भोला ग्रहीर की बेटी पत्ती के घर भैरोंप्रसाद ग्राया जाया करता था। वह भी उसी दिन मरा हुग्रा पाया गया था, पर ग्रब सारा रहस्य समझ में ग्रा गया। चपला डाकुग्रों के सामने तो घनश्याम के हाथो मे बेड़ियाँ लगा देती, पर बाद में वह स्वच्छन्द कर दिया जाता ग्रौर रगरेलियाँ करता। चपला बहुत बुद्धिमान तथा वीरागना जासूस नारी थी, उसने ग्रस्त्रागार, स्नानागार, मकान के दरवाजों एव तहखानों ग्रादि सबका भली-भाँति पता लगा लिया था। वह दिन को सोती थी ग्रौर रात को जागती थी। उसे इस मकान का रत्ती-रत्ती भर भेद मालूम हो गया था। उसने शिवप्रसाद के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें ग्रपने कैद होने की बात लिख दी। पत्ती, भैरोंप्रसाद, मदनमोहन की स्त्री सबकी कथा भी उसने लिख दी थी। इस पत्र को पाकर शिवप्रसाद, ब्रजकिशोर, मदनमोहन, भैरोंप्रसाद सब मेल ट्रेन से लखनऊ जा पहुँचे। लेखक ने "चपला" उपन्यास के चौथे भाग में शिवप्रसाद को हरप्रसाद, विश्वनाथ ग्रौर महादेवप्रसाद सब भाइयों से मिला दिया है। चपला के पास भी भैरोंप्रसाद, शिवप्रसाद ग्रादि सब जा पहुँचे ग्रौर वहाँ पर घनश्यामदास को देख कर सबको ग्रपार ग्रानन्द हुग्रा। साथ में उन्होंने पुलिस की सहायता से चपला को बन्धन से छुटकारा दिलवाया। वास्तव में चपला को कमलकिशोर ने कैद कराया था, जो ब्रजकिशोर के बड़े भाई,

गोरखपुर के राजा राधिका किशोर का बड़ा पुत्र था। ब्रजकिशोर अपने बड़े भाई के कार्यों से बड़े दुखी हुए, जिसने अबला नारियों को अपार कष्ट दिये थे। अब कमलकिशोर को अपनी जालसाजी के लिए कड़ा दण्ड मिला और वह अपने ग्यारह साथियों के साथ कैद कर दिया गया। उसने चपला का सर्वनाश करने में कोई भी कमी नहीं रख छोड़ी थी। उपन्यास के अन्त में कामिनी का विवाह हरिनाथ के साथ हुआ। चपला का विवाह घनश्यामदास के साथ धूमधाम से हुआ, जो उपन्यास की नायिका है और जसके कारण ही हरप्रसाद के उजड़े हुए घर में अपूर्व आनन्द का समुद्र तरंगें मार रहा है। कादम्बिनी का विवाह राजा ब्रजकिशोर के साथ हुआ। यह सुखान्त उपन्यास है। तीनों युगल दम्पत्ति अपने हास-विलास में मगन हो गये। हरप्रसाद ने अपने तीनों भाइयों—शिवप्रसाद, विश्वनाथप्रसाद और महादेवप्रसाद का भी लगे हाथ विवाह कर डाला। बाबू हरप्रसाद की सच्ची शुभचिन्तिका बुधिया थी, जिसने विपत्ति में भी उनका साथ दिया। चपला को रानी और उसके पति को राजा की उपाधि भारत सरकार की ओर से प्राप्त हुई। लखनऊ के डिप्टी-कमिश्नर अत्यन्त प्रसन्न हुए और चपला को माजमगढ़ के इलाके की भू-सम्पत्ति भी प्राप्त हुई। इस प्रकार शिवप्रसाद बाबू के परिवार के सब प्राणी सुखी हो गये। सम्पूर्ण उपन्यास में प्रमुख आधिकारिक कथावस्तु तो 'चपला' की है, पर प्रासंगिक कथानक के रूप में कादम्बिनी, चमेली, कामिनी, सौदामिनी, मालती, भैरोप्रसाद, कमलकिशोर आदि की जीवन-सम्बन्धी घटनाएँ चलती हैं। कथावस्तु का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए लेखक के लिए आवश्यक है कि वह अन्य अनेक पात्रों की सृष्टि करे, जो मुख्य नायक और नायिकाओं के जीवन के साथ ही घटना-चक्रों में पड़े हुए हैं और नायक तथा नायिका के जीवन-क्रम बदलने के साथ ही वे सब सुखी हो जाते हैं। चपला और घनश्यामदास के जीवन के साथ-साथ सारा उपन्यास-चक्र घूम रहा है। पापियों को अपने कारनामों के कारण दण्ड मिला और समस्त पुण्यात्मा बन्धु-जन सुखी हुए। बाबू हरिनाथ को अपार धन से भरा हुआ खजाना प्राप्त हुआ, जिसका संकेत तो एक ज्योतिषी से मिला था, पर उसका पता 'चपला' की कुशाग्र बुद्धि तथा तिलस्मी करामात से लगा। जिस प्रकार लखनऊ वाली कमलकिशोर की तिलस्मी कोठी का पता चपला ने लगाया था और वहाँ की पुलिस तथा डिप्टी कमिश्नर को भी आश्चर्य में डाल दिया था, उसी प्रकार पूरे परिवार को संकटों से छुड़ाने में उपन्यास की नायिका चपला का पूरा हाथ रहा है। 'चपला' का चित्र प्रवीण, चतुर और वीरांगना प्रेमिका के समान अंकित हुआ है, जो अपने प्रियतम का उद्धार करती है।

"हीराबाई" को यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास कहा गया है, जैसा लेखक ने मुख-पृष्ठ पर इसे ऐतिहासिक कहा है, पर वास्तव में यह सामाजिक उपन्यास है, जैसा काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में वर्गीकरण किया गया है। प्रथम बार यह काशी से सन् १९०४ में प्रकाशित हुआ था; दूसरी बार सन् १९१४ में वृन्दावन से छपा। लेखक ने इसकी कथावस्तु के लिए इतिहास से भूमिका ग्रहण की है, जिसमें

अलाउद्दीन खिलजी की कठोरता तथा सौन्दर्यप्रियता का वर्णन है। जब अलाउद्दीन का चाचा जलालुद्दीन खिलजी जीवित था, उसी समय वह दक्षिण का सूबेदार बन बैठा था। दक्षिण में काठियावाड़ के राजा विशालदेव ने उसे रसद देने के लिए मना कर दिया, पर किसी गुलाम द्वारा सूचना देने पर कि उसकी रानी कमलादेई अत्यन्त सुन्दर है, बादशाह अलाउद्दीन ने अपनी इच्छा कमलादेवी को प्राप्त करने के लिए प्रकट की। जब राजा विशालदेव ने यह समाचार सुना तो वह घबराने लगा। क्षत्रिय होकर अपना आत्म सम्मान तथा धर्म लुटता देखकर वह कमलादेवी के सामने रोने लगा पर कमलादेई अनेक प्रकार से राजा को समझाने लगी और वे स्वयं अपने प्राणों को तजने के लिए तैयार हो गये। विशालदेव के रनिवास में कुहराम मच गया। उस समय हीराबाई ने, जो राजा की दासी थी कहा कि वह कमला बनकर बादशाह के पास जावेगी और इस रहस्य का कभी प्रकट नहीं होने देगी कि कमलादेवी कहाँ है। राजा विशालदेव इस कथन से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। हीरादेई महान् दुख से पीड़ित बुद्धिमान नारी थी, जिसका पुराना नाम दिलाराम था। उसकी लड़की का नाम गौहर था, जो एक बार अपनी आत्म हत्या कर रही थी तो उस समय राजा विशालदेव ने दोनों को कष्टों से बचाया था और अपने महल में लाकर शरण दी थी। अब गौहर का नाम लालन था। वह कमलादेवी की बेटी देवलदेवी के साथ नित्य प्रति-दिन खेला करती थी। देवलदेवी का विवाह देवगढ़ के राजा रामदेव के पुत्र कुमार लक्ष्मनदेव के साथ हुआ था। हीराबाई कमलादेई बनकर दिल्ली के अलाउद्दीन के पास गयी। जैसे ही अलाउद्दीन दिल्ली पहुँचा, उसने हीराबाई से विवाह कर लिया और अपनी प्रधान बेगम बना लिया। उसके उपरान्त उसने लालन को भी देवलदेई के नाम से सम्बोधित कर महलों में बुला लिया और उसका विवाह अलाउद्दीन के बेटे खिज्रखाँ के साथ कर दिया। जब अलाउद्दीन मृत्यु-शैया पर पड़ा था, तब एक दिन अकेले में उचित अवसर देख हीराबाई ने उसको अत्यन्त लाञ्छित किया और कहा कि "वहमाई का बोरका" अपने चहरे पर डाल ले और अपने जीवन का सारा भेद खोल दिया कि वह वीर क्षत्राणी कमलादेवी नहीं है, बल्कि हीराबाई है, जो दुष्ट व्यभिचारी अलाउद्दीन को सीख देने के लिए कमलादेई बन कर महलों में आयी है। इसके बाद बादशाह मर गया और सारा जगत इस रहस्य को समझ गया। हीराबाई और उसकी बेटी लालन ने कटार मार कर अपने प्राण त्याग दिये। इस समाचार को सुनकर कमलादेई और देवलदेई को महान् दुख हुआ। उन्होंने उनकी स्मृति में हीरा-झील का निर्माण किया, जिसे देखकर काठियावाड़ में आज भी हीराबाई की स्वामि-भक्ति तथा उदारता की स्मृति जन-साधारण को हो जाता है। यह उपन्यास भी चरित्र-प्रधान है, जिसमें आदि से अन्त तक हीराबाई का उच्च कोटि का चरित्र वर्णित है। नारी का अपूर्व स्वार्थ-रहित त्याग तथा प्राण त्यागने का साहस इस उपन्यास में सफलता से चित्रित हुआ है।

"अँगूठी का नगीना" गोस्वामीजी का प्रसिद्ध वृहद् सामाजिक उपन्यास है, जो सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से दूसरी बार सन् १६१५ मे छपा था। उपन्यास के मुख-पृष्ठ पर ही लेखक ने इसे "पवित्र एवं सत्य घटना मूलक गार्हस्थ्य उपन्यास" कहा है। इसके प्राक्कथन में लेखक ने उपन्यास रचन का अपना उद्देश्य बतलाया है : "हमारी प्यारी उपन्यास' नाम की मार्मिक पुस्तक सन् १६०१ में निकली थी। यह कहते हुए हमे हर्ष होता है कि उपन्यास के प्रेमियों ने इसे बड़े ही आदर से अपनाया और इसके प्रचार में सहायता दी। उसी (सन् १६०१) की बात है जब लीलावती' उपन्यास समाप्त हो चुका था और 'कुसुमकुमारी' और 'राजकुमारी' उपन्यास उक्त मासिक पुस्तक म छपने लगे थे। हमारे अनुग्राहक ग्राहकों में से एक सज्जन हमारे यहाँ (काशी म) पधारे और हमारे अतिथि हुए फिर दो तीन ही दिन क सत्संग म उक्त सज्जन ने हमारे और हमने उनके हृदय क वास्तविक परिचय को भलीभाँति पा लिया। फिर तो हम और वे परस्पर मैत्री पाश में बद्ध हो गये और उन्होंने हमारे आगे अपने घराने की एक सच्ची और अच्छी वंश की पुरानी कहानी सुनाई और उस कहानी के आधार पर एक छोटा सा उपन्यास लिख देने का आग्रह किया। अपने उक्त सज्जन मित्र के ऐसे आग्रह को देखकर हमने उस कहानी का कन्स्टैन्ट्स तीन सीट फुलस्केप में लिख लिया और उसी 'नोट' के आधार पर इस उपन्यास की रचना करनी प्रारम्भ की।"

" प्रारम्भ म ही जब हमने इस उपन्यास का नाम 'अँगूठी का नगीना' रखा तो वे (मित्र) अत्यन्त प्रसन्न हुए और यो कहने लगे कि "बस इसीलिए तो मैं इतनी दूर से आपके पास आया ही था।"[1]

आगे लेखक ने संकेत किया है : "इस उपन्यास की कहानी बिलकुल सच्ची है और इसमे पात्रो के नाम भी सही सही हैं, केवल 'ज़िले' और 'गाँव' के नाम कल्पित हैं। इस कहानी का समय सवत् मव् १८६४ विक्रम है।"[2]

इस उपन्यास क मुख पृष्ठ पर एक सुन्दर रूपवती नारी का चित्र है, जिसे लेखक ने कलकत्ते मे छपवा कर मँगवाया था, जिसस प्राचीन उपन्यासों की सजधज का ज्ञान होता है। इस उपन्यास का कथानक आनन्दपुर जिलान्तर्गत मंगलपुर नामक ग्राम से प्रारम्भ होता है। वहाँ गरीब ब्राह्मणों की बस्ती है, जहाँ पर लक्ष्मी की माँ का घर था और जो विधवा थी। उस गाँव के प्रधान जमींदार राजा कन्दर्पमोहन का इकलौता लड़का मदनमोहन वर्षा में एक बार भीग कर इन माँ-बेटी की झोपड़ी में पहुँच गया। बुढ़िया तथा उसकी बेटी लक्ष्मी ने अत्यन्त आवभगत की और इसी समय से मदनमोहन की दृष्टि सुन्दरी लक्ष्मी पर पड़ी। दोनों अनाथ और दुखी थी, जिनकी सारी धन सम्पत्ति रामसरन पाडे नामक साहूकार ने दबा रखी थी और खेती-बारी के

१. गोस्वामी किशोरीलाल : "अँगूठी का नगीना", प्राक्कथन से।
२. गोस्वामी किशोरीलाल : "अँगूठी का नगीना", पृ० ४।

बदले में प्रति माह थोड़ा सा अनाज दे दिया करता था। मदनमोहन ने दोनों की ऐसी असहाय अवस्था देखी तो उसका हृदय दयार्द्र हो गया और वह पूरी तरह सहायता करने को तैयार हो गया। लक्खी भी इस भोले-भाले जमींदार पुत्र पर मोहित हो गयी तथा उसकी उदारता ने इस नारी के हृदय मे घर कर लिया। लेखक ने प्रेमी-पात्रों के हृदय की दशा का वर्णन किया है, यहाँ तक कि स्वप्नावस्था में भी जागरूक अवस्था के चित्र भी उतारे हैं।

उधर मदनमोहन अपने घर पहुँच कर भी अपनी प्रियतमा लक्खी के वियोग मे दुखी रहने लगा और स्वप्न मे भी वहीं प्रेम से भरे विचार प्रकट करने लगा। उसने बाजार से सारा सामान मँगवा कर लक्खी की माँ के घर पर भेजा। दोनो माँ बेटी इस उदार जमींदार पुत्र की दया के भार से दब चलीं। इस बुढ़िया का नाम कालिन्दी था। अब तो मदमोहन का नित्य ही वहाँ आना जाना प्रारम्भ हो गया। लक्खी (लक्ष्मी) का मन भी मदनमोहन म लग गया। जब कन्दर्पमोहन ने सुना कि विधवा कालिन्दी ने उनकी मालगुजारी तक नहीं दी है तो उन्हे बड़ा बुरा लगा, पर मदनमोहन ने उसी समय रामसरन पाडे के अन्याय को पिता के सामने सारी पोल खोल दी और स्वयं कालिन्दी के हिस्स के लगान के अट्ठाइस रुपये चुकाने म रुपये देकर मदद की। माँ-बेटी दोनों महाधार्मिक थीं तथा दिन-रात पूजा-पाठ और नियम से अपना जीवन व्यतीत करती थीं। इस कगाली की विपत्ति मे भी व घबराई नहीं और सन्तोष के साथ अपना जीवन बिता रही थीं। मदनमोहन को पाकर उनकी डूबती नाव को सहारा मिल गया। लक्ष्मी और मदनमोहन को प्रेममार्ग पर चलने के लिए कालिन्दी ने उचित अवसर प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया। मदनमोहन की प्रथम पत्नी काल-कवलित हो चुकी थी, अतः वह महान् दुखी था। लक्ष्मी का देवोपम सौन्दर्य पाकर उसे फिर से जीवन म उत्साह मिला। रामसरन पाडे ने अपनी दुष्टता का परिचय दिया और अकस्मात् मदनमोहन के पिता कन्दर्पमोहन को कालिन्दी के घर पहुँचा दिया, जबकि मदनमोहन और लक्खी का प्रेमालाप चल रहा था। उसक पिता ने देखा कि मदन बेहोश है और लक्खी के सिर से भी खून बह रहा था। उसके बाद वे मदन-मोहन को अपने घर ले आये। उसकी माता योगमाया बहुत बुद्धिमान नारी थी और उसकी बेटी मालती भी अपने भाई की मनोदशा समझती थी। कालिन्दी और लक्खी को भी योगमाया ने अपनी बड़ी कोठी मे बुलाकर रख लिया, पर वे दोनो एक रात को चुपचाप घर से निकल कर चली गयी। मदनमोहन के हृदय को इस घटना से अत्यन्त दुख पहुँचा, पर उस समय उनका वैद्य का इलाज चल रहा था। मदनमोहन ने रोग की शैया पकड़ ली और अचेत अवस्था में भी 'लक्खी' के नाम का प्रलाप करने लगा। पापों का प्रायश्चित रामसरन पाडे को भी करना पड़ा। सध्या होते-होते वे दोनों पति तथा पत्नी चल बसे और एक ही चिता पर फूँके गये। मालती के पति गुलाबचन्द भी अब आ गये थे और इक्कीस दिन के मोतीझले के बाद मदनमोहन

की दशा सुधरी हुई दिखाई दी। उसका घनिष्ठ मित्र जवाहरलाल भी उसकी सारी मनोदशा समझता था और निरन्तर उसके मन को समझता था। इसी समय राय रामप्रकाश मिश्र भी पधारे, जिनकी कन्या 'सरस्वती' का विवाह मदनमोहन से हुआ था, पर वह थोड़े ही दिन तक पति-सुख भोग कर सती लोक को सिधार दी। उन्होंने सारी स्थिति समझ कर 'लक्खी' को गोद ले लिया। उनके कोई पुत्र भी नहीं था और अपनी सारी धन-सम्पत्ति उसके नाम कर दी जिससे उसकी जो सन्तान होगी, उससे राय रामप्रकाश मिश्र का वंश चलता रहेगा। यह समाचार उन्होंने राजा कन्दर्पमोहन से कह सुनाया। उसके उपरान्त मदनमोहन के मामा रसिकमोहन, माँ योगमाया तथा ज्योतिषी सबसे इस कन्या के बारे में पूछा गया और सबने बतलाया कि मदनमोहन के लिए यह विवाह मंगलकारी तथा शुभ फलदायक होगा। कन्दर्पमोहन सारे रहस्य को अभी तक समझ नहीं पाये थे कि यह 'लक्खी' उसी कालिन्दी विधवा की बेटी है, पर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी और सारी कोठी में प्रसन्नता की लहर छा गयी। मदनमोहन को भी इस सारे भेद का पता नहीं था कि राय रामप्रकाश की बेटी 'लक्ष्मी' कालिन्दी की बेटी 'लक्खी' ही है, जिसे वह हृदय से चाहते थे। राजा कन्दर्पमोहन काशी गये और अपने बेटे के विवाह के लिए गहने-कपड़े बनवाये और बड़ी धूमधाम से विवाह हो गया। उसके उपरान्त मदनमोहन ने अपनी प्रियतमा को पहिचान लिया और बहुत दिनों के बिछुड़े फिर से मिलकर संयोग का सुख उठाने लगे। लक्ष्मी को अपना पुराना परिचय देने के लिए मदनमोहन को वही स्मृति-चिन्ह बताना पड़ा, जो उसने उस विधवा कालिन्दी के घर में दिया था। लक्खी अथवा लक्ष्मी के प्रेम, भाग्य, शील और त्याग, संकोच तथा विनम्र स्वभाव की सभी प्रशंसा करने लगे। लक्ष्मी के तर्क-वितर्क ने मदनमोहन को पूर्णरूप से अपने वश में कर लिया और वह सदा के लिए 'लक्ष्मी' का दास बन गया। लक्खी अपूर्व गायिका थी, जिसके संगीत ने मदनमोहन को प्रभावित किया था जो वह सदा मुग्ध होकर सुना करता था। लक्ष्मी उसकी प्रेरणा थी व जीवन-शक्ति थी। आज उसने उस स्मृति-चिन्ह का रहस्य खोला, जो मदनमोहन विधवा कालिन्दी की कुटिया में गिरा आये थे और विवाह के उपरान्त जब लक्ष्मी को वे परित्याग करने को तैयार हो गये थे, तब इसी स्मृति-चिन्ह ने दोनों का संयोग कराया। यह 'अँगूठी का नगीना' था, जबकि 'लक्खी' के घर कन्दर्पमोहन आ पहुँचे और उनकी डाँट-डपट से मदनमोहन और लक्खी दोनों ही बेसुध हो गये थे। उस समय मदनमोहन के हाथ में एक अँगूठी थी, जिस पर इमली के बीज के बराबर 'मानिक' जड़ा हुआ था। वह अँगूठी से निकल कर दूर जा गिरा था। उसी 'नगीने' को लक्खी ने उठा कर भली-भाँति अपने आँचल के छोर में बाँध लिया था। उसी 'नगीने' ने दोनों प्रेमियों का परस्पर-मिलन करा दिया था। उस नगीने पर 'मदनमोहन' लिखा था, नहीं तो राय रामप्रकाश की बेटी लक्ष्मी को वे कोई दूसरा ही समझ लेते। इस नगीने के आधार पर ही वे अपनी प्यारी लक्खी को

पहचान गये और जो भर कर उसे प्रेम किया तथा अपनाया। इसके बाद लेखक ने जवाहरलाल, मदनमोहन, मालती और लक्ष्मी का हास-परिहास चित्रित किया है। लक्ष्मी अपनी सास योगमाया के साथ घर के सब काम-काज में हाथ बँटाने लगी और साथ ही साथ सारे परिवार में कलात्मक वातावरण उत्पन्न कर दिया। लक्ष्मी भाषा और संस्कृत की भी पण्डित थी और साथ ही पाक-शास्त्र, गृह शास्त्र इत्यादि में निपुण थी। उचित अवसर देखकर राय रामप्रकाश की बड़ी लम्बी 'विल' (वसीयत-नामा) मामा रसिकमोहन ने कन्दर्पमोहन को पढ़कर सुनायी, जिसमें उनकी दत्तक बेटी लक्ष्मी तथा मदनमोहन के लिए सम्पत्ति का उचित बँटवारा था। राय साहेब ने भी कन्दर्पमोहन का पंचों के मध्य लक्ष्मी के पिता पण्डित कृष्णगोविन्द की विपत्तियों का सारा समाचार सुनाया। उनकी विद्वत्ता, धर्मनिष्ठा तथा पाण्डित्य का परिचय दिया। वे कुलीन ब्राह्मण थे और कभी 'वेद विक्रय' नहीं करते थे। वे निर्लोभी और सात्विक प्रवृत्तियों के ब्राह्मण थे। यही कारण था कि वे सदा निर्धन रहे। वे देवतुल्य थे और बीस-पच्चीस बीघे खेत से उनकी आजीविका चलती थी, जिसके साथ भी रामसरन पांडे ने बेईमानी की। कालिन्दी और लक्ष्मी को उनके मरने के बाद इस राक्षस ने बहुत सताया। दोनों बेचारी साध्वी तथा पुण्यात्मा थीं और अपना जीवन-यापन कष्टपूर्वक कर रही थीं। उसी समय मदनमोहन से उनका परिचय हुआ। कृष्णगोविन्द शर्मा राय रामप्रकाश के घनिष्ठ मित्र थे। कन्दर्पमोहन उसी मगनपुर गाँव के राजा थे। वहीं पर कालिन्दी दुखी जीवन व्यतीत कर रही थी। राजा कन्दर्पमोहन परमात्मा की लीला समझ गये कि जो विधाता के लेख हैं, उन्हें कौन मिटा सकता है। सबने अपार सन्तोष के साथ पूरी कथा का मर्म समझा और मदनमोहन के भाग्य को सराहा कि ऐसी कुलीन कन्या लक्ष्मीदेवी से उनका परिणय अपने आप ही गया, सब संयोग की बात है। जवाहरलाल का विवाह भी मदनमोहन की माँ योगमाया के प्रयत्न से हो गया और लक्ष्मी ने अपने कुछ आभूषण भी उनकी पत्नी श्यामा को उपहार में दिये। उसके बाद मालती और लक्ष्मी के आनन्द-विनोद तथा ठिठोली का लेखक ने विस्तृत वर्णन किया है, जिसके साथ ही उपन्यास का अन्त हुआ है। यह संयोगान्त तथा सुखान्त उपन्यास है।

यह उपन्यास वस्तु-प्रधान है। "अँगूठी का नगीना" से ही कथानक प्रारम्भ होता है और यही उपन्यास की धुरी है, जिस पर सारा कथा-चक्र घूमता है। यदि 'मानिक का नगीना' मदनमोहन को नहीं प्राप्त होता तो यह उपन्यास दुखान्त हो जाता क्योंकि नायक मदनमोहन नायिका लक्ष्मी का परित्याग कर ही चुका था, पर 'नगीने' की झलक ने इस दुर्घटना को होने से बचाया और दोनों प्रेमी प्रेमिका जीवन भर सुख से रहने के लिए तत्पर हो गये। कथावस्तु प्रमुख रूप से महत्व पाती है, जिसने प्रमुख चरित्र के जीवन में आमूल परिवर्तन ला दिया है और उपन्यास का

अन्त संयोग तथा हास-विलास में होता है। इस उपन्यास में 'लक्खो तथा माणिकचन्द' की कथा आधिकारिक है और 'मालती तथा गुलाबचन्द, रामचरन पांडे, चन्द्रमोहन, मोगनामा' सबकी प्रासंगिक कथावस्तु है, जो प्रमुख कथानक को सफल बनाने तथा विकसित करने में सहायक हुई है।

"इन्दिरा" उपन्यास को लेखक ने बंगला से अनूदित किया है। यह उपन्यास बंगभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय श्रीयुत बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा मूल रूप से लिखा गया है। इसकी कथावस्तु अत्यन्त ही दिलचस्प तथा अनूठी है, इसलिए गोस्वामीजी ने इसे ग्रहण करके अपनी मौलिक विचारधारा तथा अनूठी कल्पना के योग से इसको हिन्दी साहित्य में जन्म दिया है।

'इन्दिरा' उपन्यास की प्रमुख नायिका है, जो ससुराल जा रही है। मार्ग में लुटेरे तथा डाकुओं के द्वारा वह लूट ली जाती है और जंगलों में भटकती-भटकती वह दुखी होकर एक दिन एक वकील साहेब के यहाँ पहुँचती है तथा वहाँ पर रसोई बनाने का काम करती है। धीरे-धीरे वकील साहेब की पत्नी से उसकी मित्रता स्थापित हो जाती है और उनके घर में सदा हास परिहास का वातावरण छाया रहता है। अन्त में ढूंढते-ढूंढते इन्दिरा का पति उसी वकील के यहाँ आ पहुँचता है और वहाँ ठहरता है, जहाँ पर वह रसोई बनाने का काम करती थी। फिर इन्दिरा का अपने पति के पास 'पर नारी' के रूप में जाना और इन्दिरा को उसका पति 'पर-स्त्री' समझ कर ग्रहण करता है और उसे एक दिन वहाँ से (वकील साहब के यहाँ से) ले भागता है। अन्त में संयोग से वह सारा रहस्य समझ जाता है और अपनी पत्नी इन्दिरा को पहचान लेता है। तबसे इन्दिरा का गार्हस्थ्य जीवन सुखी हो जाता है। वह अपने पति के साथ सुखपूर्वक गार्हस्थ्य धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगती है। यह उपन्यास भी सुखान्त है तथा नायिका के नाम पर ही इसका भी नामकरण हुआ है। इसमें भी अनेक अनुपम तथा मनोरंजक घटनाएँ घटित हुई हैं। हिन्दी के पाठकों ने इस उपन्यास का भी अपूर्व स्वागत किया है।

इन्दिरा चरित्र प्रधान उपन्यास है, जिसमें आदि से अन्त तक आधिकारिक कथा-वस्तु के रूप में 'नायिका' का चित्र चित्रित होता है।

"राजसिंह" भी लेखक ने बंगला भाषा से हिन्दी में अनूदित किया है। इसके मूल लेखक सुप्रसिद्ध स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी हैं। यह ऐतिहासिक उपन्यास है। किशोरीलाल गोस्वामी की साहित्य-पटुता तथा भाषा-लालित्य ने इस अनूदित उपन्यास में भी मौलिक तत्व प्रदान कर दिये हैं। यह उपन्यास बंकिम बाबू के समस्त उपन्यासों में शिरोभूषण माना गया है। इस प्रकार इसकी रचना करके किशोरीलाल ने हिन्दी साहित्य को एक नवीन, अनुपम तथा मौलिक रचना भेंट की है। इसकी कथावस्तु में राजकुमारी चंचल में अनोखा लड़कपन है, साथ ही धर्म में दृढ़ता है। उदयपुर के महाराणा राजसिंह का उसके प्रति अद्भुत वात्सल्य स्नेह है तथा मानिकलाल की

दुष्टता, धूर्तता, चालाकी और स्वामिभक्ति पाई जाती है। साथ ही औरंगजेब के हुक्म में दाखिल करने के लिए चंचल को ले जाने के प्रयत्न पर राजपूत कन्या जोधपुरी बेगम का अपना जातीय जोश तथा औरंगजेब बादशाह के काले-कारनामे, उसका हिन्दू क्षत्रिय राजाओं के साथ भीषण युद्ध आदि इस उपन्यास में दिखाया गया है। जेबुन्नसा जैसी मुगल राज्य कन्याओं की कुत्सित चरित्र-लीलाएँ तथा क्षत्रिय-राज्य-कन्याओं के द्वारा अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए प्राणों पर खेल जाना, मुसलमान बादशाहों को खूब छकाना और अपने चरित्र की रक्षा करना इत्यादि का इस उपन्यास में विस्तृत वर्णन है। पाठकों के हृदय में कभी वीरता की भावना, कभी देश का क्षत्रिय-कुल-गौरव, वीरता के चित्र, कभी मुसलमानों की दुष्टता और कभी क्रोध की भावना उत्पन्न होती है। हिन्दू जाति के हृदय में आर्य गौरव लहराने लगता है। औरंगजेब के युग की ऐतिहासिक विशेषताएँ काले पदों पर लिखी हुई मिलती हैं। स्वयं गोस्वामीजी ने दावा किया है कि "राजसिंह" के हिन्दी में लिखे जाने तक ग्रन्थ कोई ऐसा उच्च कोटि का उपन्यास हिन्दी में नहीं प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास चरित्र-प्रधान है तथा राजसिंह का क्षत्रियोचित गौरव सफलता से चित्रित हुआ है। गोस्वामीजी के "राजसिंह" का हिन्दी जगत में अपार स्वागत हुआ और छपते ही उसकी हजारों प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गयीं।

"राजसिंह" उपन्यास खंगविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना से सन् १९०८ में प्रकाशित हुआ और वहीं से सन् १९१० में "इन्दिरा" नामक उपन्यास भी प्रकाशित हुआ। उस समय किशोरीलाल "आरा नागरी प्रचारिणी सभा" में साहित्य सृजन का कार्य कर रहे थे तथा इन दोनों उपन्यासों की रचना तथा प्रकाशन का श्रेय बिहार को ही है।

"लीलावती" उपन्यास का भी अभी-अभी फिर से पता चला है, जिसका पुनः प्रकाशन होने जा रहा है। गोस्वामीजी का यह भी चरित्र-प्रधान सामाजिक उपन्यास है, जिसकी प्रमुख नायिका 'लीलावती' है, जो एक बहादुर प्रेमिका है। "लीलावती" पाठकों के लिए एक आदर्श तथा पढ़ने योग्य उपन्यास है, जिसमें हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के चित्र अंकित हुए हैं। लेखक अपने प्रयास में पूर्ण सफल हुआ है। लेखक के द्वारा नारी-पात्रों में अद्भुत सतीत्व-रक्षा की भावना प्रदर्शित हुई है, जो नाना प्रकार के अद्भुत कार्यों से अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करके हिन्दू जाति के गौरव की प्रतिष्ठा चिरन्तन बनाती हैं। हिन्दी जगत में गोस्वामीजी के चार जासूसी, तिलस्मी एवं ऐयारी प्रकार के उपन्यास उपलब्ध होते हैं। "जिन्दे की लाश" उपन्यास दूसरी बार सन् १९१४ में सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से प्रकाशित हुआ। इसका प्रथम संस्करण सन् १९०६ में निकला, जिसकी प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में अभी भी उपलब्ध है।

देवकीनन्दन खत्री ने जासूसी, तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों के क्षेत्र में अपनी ख्याति फैला रखी थी। उसी क्षेत्र में उनके सहयोगी गोस्वामी किशोरीलाल ने जन-साधारण को अपनी सर्वांगीण प्रतिभा का परिचय दिया। किशोरीलाल ने उपन्यास-क्षेत्र को बहुमुखी जीवन-धाराएँ प्रदान की थीं। कभी इतिहास के पृष्ठों को खोलकर

जन-जीवन का चित्र अंकित किया, कभी समाज के रहस्यों को सरल तथा मनमोहनी भाषा में प्रकट किया और कभी जासूसी तथा तिलस्मी कारनामों से भी अपने पाठकों की रुचि को सन्तुष्ट किया है। गोस्वामी ने युग की अभिरुचि तथा माँग का समन्वय था और उसका पालन अपने उपन्यासों में सफलता से किया।

"ज़िन्दे की लाश" इसी प्रकार का जासूसी उपन्यास है, जिसमें गुप्त तथा जासूसी कारनामे हैं। "पेरिस रहस्य" और "लन्दन रहस्य" जैसी पुस्तकों का प्रकाशन इस समय तक हो गया था। उनका प्रभाव भी गोस्वामीजी पर पड़ा है और इस कड़ी में उन्होंने अपना योगदान दिया है। इस उपन्यास की कथावस्तु में मिस्टर केली पुलपुर के मजिस्ट्रेट हैं। उनके सामने एक घटना की सूचना आयी है कि जिन्दा औरत को कब्र में दफना दिया गया है और स्पष्ट कर दिया गया है कि दियानत हुसैन की लड़की दिलाराम को मिट्टी दे दी गयी है। डिटेक्टिव पुलिस दरोगा विश्वनाथ भी हाजिर है। एक गुमनाम चिट्ठी अंग्रेजी में मिलता है कि दियानत हुसैन के छोटे भाई लश्करहि-निसार हुसैन ने अपनी भतीजी दिलाराम को कोई ज़हरीली दवा सुंघा कर जाहिर कर दिया कि वह मर गयी तथा उसको "पीरशाही" नामक कब्रिस्तान में दफना दिया है। मिस्टर केली से आदेश लेकर विश्वनाथ बाबू इस काम की खोज में लग गये थे। दिलाराम अपने बाप की प्यारी तथा खूबसूरत बेटी थी। फ़ारसी एवं अँग्रेज़ी की तालीम भी उसने पाई थी, जिसका प्यार जमालुद्दीन वकील से हो गया था और जो उसके पिता दियानत हुसैन के समय से ही उसके घर पर आया-जाया करता था। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह अपने चाचा निसार हुसैन के घर पर रहने लगी। वहाँ पर दिलाराम से कोई मिल नहीं सकता था और उसकी सारी पूँजी उसके चाचा ने हड़प ली थी। दिलाराम के पिता दियानत हुसैन ने एक 'विल' (Will) में अपनी बेटी को दस हजार रुपये के नोट दिये थे और यही 'विल' उसकी खून का कारण हुई। लेखक ने विस्तारपूर्वक इस 'विल' का उपन्यास में वर्णन किया है, जिसमें राज्य की कुल वार्षिक आय दो लाख मानी गयी है। जब चाचा निसार हुसैन ने उसके लिए ज़हर का प्रबन्ध किया तो जमालुद्दीन की कृपा से वह दिलाराम को नहीं दिया जा सका। दरोगा विश्वनाथ ने जमालुद्दीन की सहायता से दिलाराम को कब्र से निकाल कर बचाया और मिस्टर केली तथा उनकी पत्नी लूइसी इस समाचार से बड़े प्रसन्न हुए। दिलाराम ने होश में आने पर जैसे ही जमालुद्दीन को अपने पास देखा, वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसे अपने प्रेमी का संयोग सुख मिला और चाचा निसार हुसैन तथा उसकी बीवी नज़ीरन फाँसी लगाकर मर गये। उसके बाद दिलाराम की शादी बड़ी धूम-धाम से जमालुद्दीन के साथ कर दी गयी। दरोगा विश्वनाथ को सरकार और दिलाराम की ओर से काफी इनाम मिला क्योंकि उसने 'ज़िन्दे की लाश' का रहस्य खोला और दिलाराम को सारे सुख प्राप्त हुए। 'दिलाराम' के जीवन का सुखमय संयोग हुआ तथा उपन्यास भी सफल सुखान्त के रूप में प्रकट हुआ है।

"कटे मुँह की दो-दो बातें" गोस्वामीजी का, दूसरा तिलस्मी उपन्यास है, जिसकी कथावस्तु सीसमहल के तिलस्म के चारों ओर घूमती है। प्रथम यह सन् १९०५ में बालमुकुन्द वर्मा के द्वारा काशी से प्रकाशित हुआ। उसके बाद इसकी दूसरी प्रति सन् १९०४ में सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से, निकली, जिसका प्रकाशन छबीलेलाल गोस्वामी ने किया। इसकी कथावस्तु का केन्द्र शहर भोपाल है, जहाँ एक ओर ढालू पहाड़ी है, जो एक मील लम्बी और डेढ़ मील चौड़ी है। उसके निकट से दो राहगीर मियाँ दियानत हुसैन और सरदार अबुलफ़ज़ल चले जा रहे थे। इस कहानी का समय सन् १८३५ का है, जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य पूर्णरूप से स्थापित हो चुका था। चारों ओर से ठगी, लूट, सुरंगें तथा पहाड़ों की गुफाओं में से अनेक प्रकार की घटनाओं की खबरें आया करती थीं। कप्तान रेनाल्ड्स के पास सूचना पहुँची कि सरदार अबुलफ़ज़ल की खोज की जा रही है, पर उसका पता नहीं चल पा रहा है। तालाब के किनारे पहाड़ियों से घिरा हुआ एक तिलस्मी सीसमहल है, जहाँ हसीना नूरजहाँ इत्यादि अपनी सहेली सखियों के साथ रंगरेलियाँ मना रही थी। नूरजहाँ की सहेली हसीना बड़ी चतुर है। उसने चुपचाप पनारू मियाँ नामक एक बुड्ढे को अपने वश में करके इस महल का पूरा-पूरा पता लगा लिया और वहाँ से अँगूठियाँ तथा कटारियाँ ले आयी, जिसकी कानोंकान खबर उस पनारू तक को नहीं होने दी। नूरजहाँ हसीना की चतुराई से अत्यन्त प्रभावित थी। दूसरी ओर, कप्तान रेनाल्ड्स के कैम्प में दरबार लगा हुआ है, जहाँ पर भोपाल के रईस, सरदार, वजीर आजम सब बैठे हैं कि सरदार अबुलफ़ज़ल का पता जल्दी लगाया जावे। जब दियानत हुसैन तथा सरदार अबुल-फ़ज़ल ने इन आठ सुन्दरियों का गाने बजाने का कार्यक्रम सुना तो वह पागल हो उठा और जिस सुन्दरी के चित्र से मुग्ध होकर अबुलफ़ज़ल भाग आये थे, वही उन्हें स्वप्न में चिराग हाथ में लिये हुई आती प्रतीत हुई। वे उस सुन्दरी की खोज करते करते उस 'अमुरद पहाड़ी' के निकट पहुँचे, जहाँ पर से 'कटे मूड़ की दो दो बातें' सुनाई दे रही थीं।

> "अजी साहबो, जरा सुनिये तो सही—इस कटे मूड़ की दो दो बातें
> चढ़ा मन्सूर सूली पर, पुकारा इश्क बाजों का,
> ये उसके बाम का जीना है, आए जिसका जी चाहे,
> आईये, तशरीफ़ लाईये।"

इस आवाज से दियानत हुसैन और अबुलफ़ज़ल दोनों ही डर गये। उन्होंने देखा कि उसी कंदरा के ठीक ऊपर, जिसमें उनका डेरा पड़ा हुआ था, पहाड़ की चोटी पर एक लोहे, लकड़ी, पत्थर या न जाने किस चीज का खम्भा, जो लगभग बीस हाथ का ऊँचा और चार बालिश्त के घेरे की मोटाई का था, खड़ा किया गया था और उस पर एक कटा हुआ सिर रखा था, जिसके मुँह से वही आवाज बार-बार आ रही थी, जैसा ऊपर लिख दिया गया है। फिर भी अबुलफ़ज़ल अपनी प्रेमिका का

पता लगाने के लिए चल पड़ा। आधी रात के लगभग वे सो गये और कटे सिर के मुँह से आवाज निकलना बन्द हो गया, पर दिलायत हुसैन तलवार लेकर कंदरा के द्वार पर पहरा देने लगे और उसी चिराग वाली सुन्दरी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। इसी प्रकार दिन हो गया और फिर 'कटे मुंह की दो दो बातें' सुनाई देने लगीं। वे दोनों मित्र समझ गये कि आवाज वास्तव में पहाड़ी के अन्दर से आ रही है। दूसरी बार हसीना और नूरजहाँ अपनी सहेलियों के साथ तालाब की ओर टहलने आयीं, तब हसीना ने पनाह को बतलाया और उसने सारा रहस्य हसीना को बतलाया कि सआदत-यार के इन्तकाल के बाद उसका गुलाम दिलेरखाँ और उसकी वेश्या से एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम दिलावरखाँ था। दिलावरखाँ ने इस पहाड़ी में अकेला रहना पसन्द नहीं किया और दस-बारह डाकुओं को अपने साथ रखा। वह एक हसीन औरत लूट लाया, जिससे बहादुरखाँ उत्पन्न हुआ और उसका बेटा कतलूखाँ, जो अभी पनाह का सरदार है, नूरजहाँ को अपनी वेश्या बनाना चाहता था। पनाह ने बतलाया कि रेनाल्ड्स नाम का अंग्रेज चन्द लोगों के साथ रियासत के मालिक सरदार अबुलफजल-खाँ का मेहमान है, जिससे डाकुओं के धन-दौलत छीन कर ले जा सके और कतलूखाँ को गिरफ्तार करा सके। नूरजहाँ पर मोहित होकर अबुलफजल भी इसी जुमर्रद पहाड़ी के आस पास घूम रहा है। उसी ने कटे सिर का रहस्य बताया कि वास्तव में वह एक लोहे का पोला खम्भा है, जिस पर एक नकली सिर रखा हुआ है। उसके अन्दर मुंह डाल कर जो कुछ कहा जावे, वही बात उसमें से निकल जाती है।

रेनाल्ड्स भी सारे तिलस्म का पता लगाने के लिए व्याकुल है। उस जमुर्रद पहाड़ी का घेरा लगभग आठ कोस तक था। उसमें कई अच्छे कमरे, अस्तबल, बाग, तालाब, नहर इत्यादि बने हुए थे। यहीं एक अस्त्रागार भी था। तालाब, नहरें, बाग, महल, सजी हुई बारहदरी सब पहाड़ी के आन्तरिक भाग में थे। एक दिन रात के बारह बजे हसीना को भेजकर नूरजहाँ ने कतलू खाँ को बुलवाया। वह उससे बाबाजान कहती थी और उसने जब अबुलफजल के बुरे इरादे की शिकायत की तो कतलूखाँ ने विश्वास दिलाया कि वह उसका सिर काट लावेगा और नूरजहाँ को अपनी बीबी बनावेगा क्योंकि वह वास्तव में उसकी बेटी नहीं थी। नूरजहाँ जासूसी में पक्की तीरदाज एवं पटु थी। उसने चार प्याले शराब पिलाकर कतलूखाँ को उसकी बुरी नियत के कारण कैद कर लिया। उधर पनाह को हसीना ने कैद कर लिया। उसके बाद दोनों संगमरमर की बारहदरी में पहुँचीं। फिर स्याह पत्थर का उठना, सुरंग का निकल आना, जमीन के अन्दर 'तिलस्मी शीशमहल' का प्रकट होना, एक कल से बारह कोठरियों का खुल जाना, उसके बाद नूरजहाँ, हसीना, उसकी छहों सहेलियाँ, अबुलफजल दिलायत हुसैन तथा अन्य दसों अंग्रेजी जासूसों के साथ घोड़े पर बैठ कर चोर-दरवाजे से भोपाल पहुँचना और नूरजहाँ का अबुलफजल से विवाह कर लेना, हसीना का दिलायत हुसैन के साथ मुहब्बत और इस प्रसन्नता से भोपाल में रेनाल्ड्स साहब के

कैम्प पहुँचे। उसके बाद शीशमहल का सत्यानाश, सैकड़ों लोगों के दागने से पनाह और कतलूखाँ वहीं पर पिस कर जल गये। बेगम साहिबा भोपाली नूरजहाँ और हसीना को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। नूरजहाँ तथा हसीना भी वैवाहिक जीवन आराम से बिताने लगी। बेगम साहिबा भोपाली ने शेरगढ़ी को सदैव के लिए मियाँ अबुलफजल को इनाम में दे दिया। हसीना ने जो अँगूठियाँ या कटारियाँ पाई थीं, उनके प्रभाव से उसे जादू-टोना, जहर किसी भी चीज का असर नहीं होता था और सब सुखी हो गये। यह उपन्यास सुखान्त है। तिलस्मी होते हुए भी लेखक ने चरित्रों को महत्ता प्रदान की है। प्रवीण अभिरुचि को आकर्षित करने के लिए इस प्रकार के ऐयारी से पूर्ण कौतूहलवर्द्धक चित्र लेखक ने उतारे हैं।

"जिन्दे की लाश" और "कटे मूड़ की दो दो बातें" दोनों ही वस्तु-प्रधान उपन्यास हैं। उपन्यासों का नामकरण भी घटनाओं के आधार पर हुआ है। एक जासूसी उपन्यास है और दूसरा तिलस्मी। "जिन्दे की लाश" में जासूसी कारनामे लेखक ने खूबी के साथ दिखलाये हैं और "कटे मूड़ की दो दो बातें" उपन्यास में तिलस्मी लीलाएँ हैं। दोनों उपन्यास आदि से अन्त तक मनोरंजक हैं। उपन्यास का क्षेत्रफल बहुत अधिक विस्तृत नहीं है, जिससे पाठकों का मन ऊब जावे। घटनाओं के आयोजन में तारतम्य पाया जाता है और अन्त में सुखमय जीवन की उपलब्धि है।

"याकूती" या "यमज सहोदरा" तीसरा तिलस्मी उपन्यास है, जिसके अन्तर्गत लेखक ने आत्म-चरित्र-प्रधान शैली को अपनाया है। इसकी रचना प्रथम बार सन् १९०६ में हुई थी, जिसका प्रकाशन हितचिन्तक प्रेस, काशी से हुआ था। कथावस्तु का नायक जगदीशचन्द्र मिश्र है, जो मुर्शिदाबाद के धनवान जमींदार का एकमात्र पुत्र है। विवाह के उपरान्त ही उसकी प्रथम पत्नी का देहावसान हो गया था। उसने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षा के बाद वह जमींदारी के काम को सँभाला करता था। उसका निहालसिंह नामक एक सिक्ख मित्र था। ये दोनों पहाड़ों की प्राकृतिक छटा की सैर किया करते थे। 'प्राकृतिक प्रसंग' के साथ 'प्रेम प्रसंग' की भी चर्चा किया करते थे। यहाँ तक कि 'नायिका-भेद' भी कभी-कभी वार्त्तालाप का विषय बन जाया करता था। निहालसिंह बड़ा शूरवीर था जो महाराजा पटियाला के साथ वालंटियर बन कर अफरीदियों के साथ लड़ने गया था। एक दिन दोनों ने एक अफरीदी युवती का करुण क्रन्दन सुना, जिन्हें गोरखा सिपाहियों ने पकड़ रखा था। इन दोनों ने उसे बंधन मुक्त किया, पर युवती डरी हुई थी। उसने इन्हें सतर्क किया कि वे यहाँ से चले जावें क्योंकि उसका पिता बड़ा दुष्ट था जो इन्हें मार सकता था। उस सुन्दरी ने अपना रहस्य इन दोनों को बतलाया। उसका नाम हमीदा था। वह पठान कुमारी नारीरत्न थी, जो दुर्गम पर्वतीय मार्ग से अकेली अपने घर जाने को तैयार थी, लेकिन निहालसिंह ने उसको स्वयं पहुँचा देना उचित समझा। निहालसिंह ने बतलाया कि यही प्रेम है। वे दोनों उसको उसकी गुफा तक पहुँचा आये। उसने रात भर दोनों

को वहीं रख लिया और प्रातःकाल जब वे जाने लगे तो हमीदाबानू ने अपने गले से उतार कर एक 'याकूती तख्ती', जिस पर फारसी का एक शेर खुदा हुआ था, निहालसिंह के गले में डाल दी और उसे उसकी बहादुरी का इनाम कह कर भेंट स्वरूप दे दी। उसने कहा कि अफरीदी कौम सदैव एहसान मानने वाली होती है। जो भलाई करता है, उसको जीवन भर याद रखती है। हमीदा की भेंट इसने स्वीकार कर ली। हमीदा देखने में गर्विता और तेजस्विनी प्रतीत होती थी, परन्तु हास्यमुखी, कोमलप्राणा और सरल बालिका के रूप में प्रकट हुई। वह थक कर वहीं पर सो गया था, पर हमीदा के अनुचर अब्दुल ने इसे वहीं कैद कर दिया। यह गुफा अँधेरी और पथरीली थी। इसके वालिद के सिपाहियों ने सोचा कि उसने (मैंने) ही 'याकूती तख्ती' चुराई है। उन्होंने खूब धमकाया, डराया पर निहालसिंह तो शूरवीर, परोपकारी और भावुक जीव था, उसने चोरी स्वीकार कर ली, पर हमीदा द्वारा दिये गये उपहार की चर्चा सबसे नहीं की। चाहे फांसी हो जावे, पर अपनी दृढ़ता का परिचय उसने विपत्ति में भी दिया। हमीदा के पिता ने उसे दरबार में उपस्थित होने के लिए कहा। जब हमीदा को पता चला तो वह बहुत दुखी हुई। हमीदा ने उस काल-कोठरी में भी उसे भोजन कराया। वह समझ गयी कि यह सारा छल नीच अब्दुल का है, जिसके सामने उसने याकूती तख्ती दी थी। वह सुरक्षा और कल्याण के लिए दी गयी थी, पर उसके कारण उपन्यास का नायक दुखों और विपत्तियों में पड़ गया। हमीदा का प्रेम हिलोरें मारने लगा। उसने अपने अफरीदी पिता से इसको बचाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। हमीदा का पिता सरदार मेहरखाँ लगभग पचास वर्ष का था। उसने भरे दरबार में निहालसिंह को उपस्थित किया तथा अब्दुल को बुलाकर सारा रहस्य पूछा कि यह तख्ती किस प्रकार चुराई गयी है। भरे दरबार में हमीदा पहुँची और उसने सब बयान किया कि इस बहादुर नौजवान ने उसकी जान बचाई है और उसने भेंट में 'याकूती तख्ती' उसे प्रदान की है। हमीदा ने दूसरी बार युवक के हृदय में अफरीदी पठान कुमारी के लिए सम्मान का भाव भर दिया। मेहरखाँ को अपनी बेटी के कथन पर बड़ा क्रोध आया और उसने युवक से इस्लाम कबूल करने के लिए कहा। तीन दिन का समय इसे सोचने के लिए मिला कि या तो वह मुसलमान बनना स्वीकार करे अथवा मौत का तख्ता हाजिर है। जब इसने इस्लाम धर्म अस्वीकार कर दिया तो तीन बन्दूकें दागी गयी, पर वह घायल होकर गिर गया। हमीदा की बहिन कुसीदा ने उसकी सेवा की और इसको स्वस्थ किया। कुसीदा ने भी युवक की पूरी-पूरी देख-भाल की थी। हमीदा भी उसे जी-जान से चाहने लगी थी तथा गुप्त गुफा से उसे निकाल कर विशाल घाटी के पार किया और उस उसके अपने नगर में पहुँचाया। उसी ने उसको (निहालसिंह को) फांसी से बचाया। कुसीदा की बातों से जयदीपचन्द का हृदय भी प्रभावित हुआ और अन्त में हमीदा का निहालसिंह के साथ तथा कुसीदा के साथ जयदीपचन्द का विवाह हो गया। हमीदा ने निहालसिंह का सिक्ख धर्म ग्रहण किया

और कुसीदा ने जगदीशचन्द्र का माहा मत । दोनों अफरीदी सुन्दरियों को वे अपने-अपने देश ले गये और सुखी जीवन व्यतीत करने लगे । दोनों ने पुत्र प्रसव किये । निहालसिंह की ही करामात थी कि "बड़ी कठिनाई से हमीदा और कुसीदा के हृदय में मुहम्मदी धर्म की जड़ उखाड़ फेंकी थी और उन दोनों के हृदय में यह पौधा रोप दिया था कि स्त्रियों का स्वतन्त्र धर्म कोई नहीं है । बस उन्हें वह धर्म मानना चाहिए जिस धर्म में उनका पति दीक्षित हो।"[1] दुखी जगदीशचन्द्र मिश्र का भी घर बस गया। लेखक ने बतलाया है कि धर्म की व्याख्या पुरुषों के साथ है, नारी का अपना कोई धर्म नहीं होता है और पुरुष किसी भी धर्म की नारी से विवाह कर ले तो उसका धर्म नष्ट नहीं होता है। यह शास्त्रीय कथन है और प्रमाणित है। उस विधर्मी पत्नी से भी जो सन्तान होगी, वह पिता के धर्म की कहलावेगी । यह भी घटना-प्रधान उपन्यास है तथा इसको भी सुखान्त की श्रेणी में रखना उचित जान पड़ता है ।

लेखक ने बंगाली लेखक दीनेन्द्रकुमार राय का आभार माना है, जिन्होंने "हमीदा" उपन्यास वियोगान्त लिखा था। किशोरीलाल ने इसे संयोगान्त बनाया है और यह भी कहा है 'यह उपन्यास बंगला के 'हमीदा' का अनुवाद नहीं है वरन् इसे हमने अपने ढंग पर पूरी स्वाधीनता से लिखा है।'[2] अनूदित उपन्यासों में भी लेखक सूत्र कहीं से भी लेता है, पर अपनी मौलिक प्रतिभा से उसे सम्पन्न तथा प्रभावशाली बना देता है।

गोस्वामी किशोरीलाल ने 'गुप्त गोदना" नामक तिलस्मी उपन्यास भी रचा है। इनके सहयोगी देवकीनन्दन खत्री ने भी इसी नाम से एक उपन्यास लिखा था, पर गोस्वामीजी ने 'गुप्त गोदना" को चार भागों में रचा। इसका प्रकाशन बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने लहरी प्रेस, काशी से सन् १९२३ में किया। इसकी कथावस्तु का मुख्य केन्द्र आगरा और दिल्ली है। वहाँ की 'अनूठी और दिलचस्प कहानियाँ" इसमें वर्णित हैं, जैसे दिल्ली का प्रसिद्ध चावड़ी बाजार, बूढ़ी माँ, नौजवान युवती, सितारा और उसका भाई अख्तर, सितारा को एक पोटली देना, जिसमें पाँच सौ अम्बरी मोहरों का रखा होना। यह अख्तर शाहजादा दाराशिकोह का प्यारा गुलाम है और अपने मालिक की अनुमति से दिल्ली में जासूसी करने आया है क्योंकि दारा-शिकोह ने अपनी बहिन जहानआरा से अख्तर को दिल्ली भेजने के लिए कहा था। पूरा परिवार आपस में मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बूढ़ी माँ की दो सन्तानें थीं। एक अख्तर, जो सितारा से दो साल बड़ा था और सितारा, जो बहुत मालदार थी। सितारा शाहजादी रोशनआरा की प्यारी सहेली थी, जैसी दुनिया नामक बाँदी जहानआरा बेगम की प्यारी थी। अख्तर से भी बुढ़िया को समय-समय पर माल

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "याकूती तख्ती ", पृ० ७६ परिशिष्ट।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "याकूती तख्ती", पृ० ८०, कृतज्ञता स्वीकार।

मिलता रहता था। शाहजादी रोशनआरा बादशाह शाहजहाँ की बहुत चालाक बेटी थी, जिसने जहानआरा बेगम और दाराशिकोह जैसे चतुर व्यक्तियों को भी चक्कर में डाल रखा था और औरंगजेब को अपनी चतुराई से दिल्ली की सल्तनत पर ला बिठाया था। रोशनआरा का महल अनोखे ढंग से सजा हुआ था। चारों ओर विलासिता के सामान थे। रोशनआरा कभी-कभी डोली भेजकर सितारा को भी अपने पास बुला भेजती थी। अपने ही प्रिय गुलाम अख्तर को मरवाने के लिए दाराशिकोह का प्रयत्न, और जहानआरा बेगम की रोशनआरा से दुश्मनी, बादशाह शाहजहाँ के शाही महलसरा में अनेक खूनी हत्याएँ, सितारा का अपने भाई को विश्वास दिलाना कि वह रोशनआरा से कह कर अख्तर को अभयदान दिलावेगी, इत्यादि प्रसंग सफलता से आये हैं। अख्तर रोशनआरा के महल में चोरों के समान जाने लगा तथा अनेक रहस्यपूर्ण घटनाओं का पता लगाने लगा। रोशनआरा का निकटतम सम्बन्ध जोधपुर के सेठ दौलतचन्द जौहरी से था, जिसके पास कीमती मालाएँ और आभूषण वह गिरवी रखा करती थी। इस बार जडाऊ चौक गिरवी रखकर रोशन-आरा ने दस लाख रुपया सेठ दौलतचन्द से प्राप्त किये थे। सेठ दौलतचन्द चालीस वर्ष के सुन्दर युवक थे, जिसे देखकर शाहजादी रोशनआरा आश्चर्यचकित हो गयी। सितारा भी रोशनआरा बेगम के पास पहुँची। सेठ सूरजमल को बुलवाया गया, जो रोशनआरा का कृपापात्र था। उसने एक मानिक की सुमिरनी लेकर सूरजमल को दिखाई, जो सेठ दौलतमन्द को दिखलाई गयी थी। वह बादशाही जौहरी होने वाला था। रोशनआरा की आँखों में तो दौलतचन्द ही चढ गया था, अतः अब वह सूरजमल की चिन्ता नहीं करती थी। मुसलमानी युग में ये बादशाह शाहजादियाँ नाना प्रकार की ऐयारियाँ और जासूसी करती थीं। एक ओर रोशनआरा की कार्यवाहियाँ चल रही थीं, तो दूसरी ओर जहानआरा और दाराशिकोह ने अपने जासूस नियुक्त कर दिये थे। "रोशनआरा ने भी अजीब-अजीब तरह की जासूसियाँ कायम कर रखी थीं। यह भी एक जासूसी ही का ढोंग था कि शाहजादी ने अपनी दस्मोवानी बाँदियों, सहेलियों और मामूली लौंडियों तक को अपने कारगुजार अहलकारों के पीछे लगा रखा था, जिसमें उन अहलकारों की सभी चालें मालूम होती रहें और वे वक्त पर बदनीयत होकर धोखा न दे सकें।"[1]

उधर सितारा अजीब बेचैन थी, जिसने शाहजादी के पंजे वाला रूमाल अपने प्यारे भाई अख्तर को दे दिया था, जो शाही महल में घूमने के लिए औरत बन कर आ गया था। उसी दिन रोशनआरा ने महल के गुलामों की तलाशी लेना प्रारम्भ किया। खूनी दरवाजे पर एक गठरी मिली, जिनमें तीन मरे हुए आदमियों के सिर बँधे हुए थे। शहर कोतवाल, सेठ सूरजमल और बख्शी दियानत हुसैन तीनों किसी दुष्ट के द्वारा जान से मार डाले गये थे और उनके सिर लटका दिये गये थे। रोशनआरा

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "गुप्त गोदना," भाग ३, पृ० ७१।

ईसे घटना से घबरा गयीं। वह समझ गयी कि जनाने महल में "दुष्टों का आवागमन" प्रारम्भ हो गया है। मख्तर महल में तातारी औरत का भेद धारण करके घूम रहा था। सेठ सूरजमल के घर आधी रात को वह 'गौहर' बनकर पहुँचा। इन तीनों को जान से मारने का काम खूबी के साथ मख्तर ने किया। सितारा ने जब इस दुर्घटना को सुना तो वह समझ तो गयी कि यह सब उसके भाई ने किया है, पर उसे अपने ऊपर ही पश्चात्ताप होने लगा कि यह मख्तर तो सच्चे मन से अभी तक दाराशिकोह का प्यारा गुलाम है और रोशनआरा के दोस्तों के भरवाने के प्रयत्न में है। दाराशिकोह की मदद के लिए रोशनआरा का सारा भेद लेने के लिए वह अपनी बूढ़ी माँ और प्यारी बहिन सितारा के पास आया है, जिससे वह जहानआरा और दाराशिकोह की मदद कर सके, इसीलिए वह दिल्ली अपनी माँ के यहाँ आया था और शाही महल में हलचल मचा कर उसी दिन आगरा लौट जाने की तैयारी करने लगा। मख्तर की ऐयारी से सब चकित हो गये। कुन्दन पान वाली ने भी उसकी बहुत सहायता की। इस लूट और मार-पीट में मख्तर को धन भी बहुत मिला। मख्तर वास्तव में जहानआरा तथा दाराशिकोह का मित्र था।

"गुप्त गोदना" उपन्यास में जासूसी एवं ऐयारी से पूर्ण घटनाओं का वर्णन है, जिसका सम्बन्ध मुगलशाही घराने से है। 'कटे मूड की दो दो बातें' और "याकूती तख्ती" उपन्यासों के समान ही जन-साधारण के मन में कौतूहल वृति जगाने के लिए गोस्वामी ने यह उपन्यास रचा। उन्होंने युगीन प्रवृत्तियों को भलीभाँति समझा था, इसीलिए उनके उपन्यासों की कथावस्तु में विविधता है, जो धर्म, इतिहास, भग्नावशेष, जासूसी तथा ऐयारीपूर्ण घटनाएँ और सामाजिक जीवन के विभिन्न प्रसंगों से लिये गये हैं।

गोस्वामी किशोरीलाल ने "वृन्दावन" पुस्तक अत्यन्त मनोहारी भाषा में रची, जिसमें समस्त वृन्दावन और उसकी प्राकृतिक शोभा का वर्णन है। इस रचना में बताया गया है कि परम सिद्ध महात्मा स्वामी हरिदासजी के आश्रम में तानसेन के साथ बादशाह अकबर का भी आगमन होता था, जो तानसेन की एक-एक तान पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देना चाहता था। सम्राट् अकबर ने तानसेन को अपने दरबार के नवरत्नों में से एक 'रत्न' बनाकर सम्मानित किया। स्वामी हरिदास भी वृन्दावन में ही रहते थे। आजकल उनकी गद्दी "बाबा मोहिनीदास की टट्टी" के नाम से प्रसिद्ध है और वहाँ पर एक तस्वीर है, जिसकी प्रतिदिन पूजा होती है। "उस तस्वीर में सिद्ध महात्मा स्वामी हरिदासजी बालू की जमीन में पद्मासन पर विराजे हुए हैं और उनके सामने शाहंशाह अकबर और उनसे जरा पीछे हट कर बगल में बीन लिये हुए मियाँ तानसेन बैठे हैं। बस उस आश्रम में कोई देवी-देवता की मूर्ति नहीं है।"[1]

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "वृन्दावन" रचना से उद्धृत।

"वैष्णव-सर्वस्व" भी गोस्वामीजी की रचना है, जिसमें उनकी धर्मपरायणता का सच्चा चित्र प्राप्त होता है।

गोस्वामीजी की रचनाएँ खोजने पर ही उपलब्ध होती हैं और उनमें विविधता तथा अनुपम रस और मनोरंजन भरा हुआ प्राप्त होता है। किसी भी प्राचीन साहित्यकार की महान् प्रतिभा का पता धीरे-धीरे ही लगता है। "मिलन" नामक एक और सुखान्त कहानी का पता चला है, जिसके रचयिता गोस्वामी किशोरीलाल हैं और जो "वीणा" अप्रैल सन् १९३४ के सम्मेलनांक में प्रकाशित हुई है। गोस्वामीजी के सुपुत्र छबीलेलाल ने इस कहानी के साथ टिप्पणी में कहा है कि किशोरीलाल "मिलन"[1] को अपनी सर्वश्रेष्ठ कहानी मानते थे। इसके प्रमुख पात्र दो हैं। घनश्याम नायक है और सौदामिनी नायिका है। नायक और नायिका की भेंट रेलगाड़ी में होती है। दोनों के हृदय में प्रेम के बीज की उत्पत्ति होती है और इस प्रेम की परिणति विवाह में होती है। यह कहानी भी सुखान्त है। गोस्वामीजी को जीवन में आशावाद प्रिय लक्ष्य रहा है। जीवन के साथ संघर्ष और उसका सुखद परिणाम उन्हें रुचिकर है। गोस्वामीजी की धर्मनिष्ठा और हिन्दू-संस्कृति से प्रेम उनकी रचनाओं में स्पष्ट झलकता है। वे उस शाश्वत दीपक की लौ के समान ज्योतिर्मान हुए हैं, जिसने भावी युगीन साहित्यकारों का पथ प्रदर्शन किया है।

---

१. छबीलेलाल गोस्वामी : "वीणा", सम्मेलनांक, इन्दौर से प्रकाशित सन् १९३४ का 'अप्रैल का अंक'।

अष्टम अध्याय

गोस्वामीजी के उपन्यासों की शिल्प-विधि

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामीजी को हिन्दी का प्रथम साहित्यिक उपन्यासकार माना है। उन्होंने एक ओर साहित्यिक समाज की बहिर्मुखी वृत्तियों को सुरक्षित रखा है तथा दूसरी ओर, अपने उपन्यासों में अन्तर्मुखी वृत्तियों का सफल एवं विशद चित्रण किया है। अपने उपन्यासों में मानव-मन की सहज प्रवृत्तियों और प्रेम-तत्व का निरूपण उन्होंने किया है। "उनके उपन्यास हिन्दी के प्रथम अन्तर्मुखी उपन्यास कहे जा सकते हैं। चरित्र-चित्रण में भी उन्हें यथेष्ठ सफलता मिली है। वस्तुतः उपन्यास-लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी का वही स्थान है, जो नाटककारों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी में है।"[1]

डा० वार्ष्णेय का यह कथन पूर्णतया सत्य प्रमाणित हो चुका है कि गोस्वामीजी उपन्यास के क्षेत्र में मौलिक सृष्टा थे, उनकी अद्भुत सूझ थी। उपन्यास की परम्परा संस्कृत गद्य काव्य "कादम्बरी", "वासवदत्ता", "दशकुमार चरित" आदि से जोड़ते थे।"[2]

उन्होंने स्वयं ही अपने विचारों को स्पष्ट कर दिया है : "प्रेम और प्रेमतत्व को सभी चाहते हैं, पर इसका उपाय बहुत कम लोग जानते होंगे। प्रेमिक प्रेम पाने के लिए व्याकुल तो होते हैं, सभी अपने लिए दूसरे को पागल करना चाहते हैं, पर अभी तक इसका उपाय बहुतों ने नहीं जाना है। इसका अभाव केवल 'उपन्यास' ही दूर करता है। इसीलिये प्राचीनतम कवियों ने और साम्प्रतिक यूरोपीय कवियों ने उपन्यास की सृष्टि की। जो बात झूठ-सच से नहीं होती, तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र से नहीं बनती वह प्रेम के विज्ञान 'उपन्यास' से सिद्ध होती है। इसके पढ़ने से मनुष्य के हृदय के ऊपर बड़ा असर होता है और सब बात बनती है।"[3]

प्रेमचन्द से पूर्व काल में हिन्दी उपन्यासों की पिछली परम्परा को आगे बढ़ाने में गोस्वामी किशोरीलाल का बहुत हाथ रहा है। इनके उपन्यासों की कथावस्तु

१. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० ६५-६६।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रणयिनी परिणय" का उपोद्घात।
३. किशोरीलाल गोस्वामी "सुखशर्वरी" के निदर्शन से उद्धृत।

मूलरूप में दो भागों में विभक्त थी—प्रथम, 'सामाजिक आदर्शवाद' और द्वितीय, 'उन्मुक्त कल्पना-प्रधान' उपन्यास।

'सामाजिक आदर्शवाद' की विचारधारा के अन्तर्गत गोस्वामीजी के उपन्यासों में सामाजिक बुराइयों है। उनका यथार्थ चित्रण हुआ है। उनमें व्यभिचार तथा चारित्रिक पतन है। मुसलमानों के द्वारा अत्याचार और अनाचार के चित्र हैं और हिन्दू रमणियों के द्वारा अपने चरित्र की रक्षा है। साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति के द्वारा हिन्दू धर्म, संस्कृति और चरित्र की रक्षा का सफल विशद वर्णन गोस्वामीजी ने किया है। सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर उपन्यासकार ने कथावस्तु को चित्रित किया है। भारतेन्दु युग से पूर्व उपन्यासों की कोई परम्परा थी नहीं थी, न उनका कोई रूप था और न उनके शिल्प के सम्बन्ध में किसी प्रकार की धारणा बन पाई थी। गोस्वामीजी ने साहित्यिक समाज की बहिर्मुखी प्रवृत्तियों की सुरक्षा करते हुए अपने कथानकों में मानव-मन की अन्तःप्रवृत्तियों का युग के अनुकूल *चित्रण किया है। मानव को सहज और स्वाभाविक प्रवृत्ति 'प्रेम तत्व' है और* प्रत्येक उपन्यास की मूल विचारधारा (Theme) किशोरीलाल ने यही रक्खा की है, इसलिए प्रेम एवं रोमांसधारा के प्रमुख प्रवर्तक गोस्वामी किशोरीलाल को ही माना जाना चाहिए।[1]

"उन्मुक्त कल्पना-प्रधान" विचारधारा के आधार पर किशोरीलाल के उपन्यासों का वृत्त फैलता जाता है। आधिकारिक कथावस्तु के साथ-साथ प्रासंगिक कथावस्तु भी क्रमपूर्वक चलती रहती है। लेखक को निरन्तर ध्यान रहता है, कल्पना की उड़ान से कथानक के विकास में बाधा उपस्थित न हो जावे, अतः अनेक पात्रों की सृष्टि भी कथानक की पूर्ति करने के लिए कर्ता के रूप में की जाती है। गोस्वामीजी से पहले जिन उपन्यासों का निर्माण हुआ है, वे अधिकतर कपोल-कल्पित और घटना-वैचित्र्य-मूलक रहे हैं, जिनमें एक ओर परियों, देवों और प्रेतों की कल्पना है, दूसरी ओर, इसी प्रकार की चमत्कारपूर्ण कथावस्तु की अवतारणा के लिए भाँति-भाँति के हथकण्डे भी उन लेखकों ने काम में लिये हैं। संस्कृत के प्राचीन उपन्यासों में भी गद्य काव्य का आलंकारिक रूप मिला है, पर मानव-जीवन के घात-प्रतिघातों के आधार पर शृंखलाबद्ध कथावस्तु का हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में सर्वदा अभाव ही रहा है। गोस्वामी किशोरीलाल हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार हैं, जिन्होंने पहली बार सम्पूर्ण प्रेम-कथा को उपन्यास के अन्दर आलोकित किया है, जिसके द्वारा मानव-जीवन की विभिन्न प्रेमानुभूतियाँ क्रम से चित्रित हो सकी हैं। गोस्वामीजी के उपन्यासों में कथावस्तु प्रधान है। प्रेमी अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार की कठिनाइयाँ झेलता है और प्राणों का दाँव लगाकर भी उसे प्राप्त करता है। प्रेम का प्रसार और सच्ची गहराई गोस्वामीजी की कथाओं में प्राप्त हुई है। उनके उपन्यासों की कथावस्तु मानव के मन को मोह लेती है। अधिकांश उपन्यासों

के नाम इन्होंने 'नायिका' के नामों के आधार पर रखे हैं तथा बहुत कम स्थानों पर नायक के नाम पर उपन्यास का नामकरण हुआ है। 'दुखान्त' उपन्यासों की रचना में किशोरीलाल को विश्वास नहीं था। वे स्वयं आशावादी व्यक्ति थे और जीवन में आने वाले दुखों को भाग्यमूलक मानते थे। विधि का विधान और मनुष्य की नि सहाय अवस्था—दोनों ही स्थितियाँ उन्हें स्वीकृत थीं, पर फिर भी उनकी धारणा थी कि जीवन का अन्त सुखद होता है। भगवान जो करता है, वह जन-कल्याण के लिए करता है, अत दुखान्त उपन्यासों को भी इन्होंने सुखान्त कर डाला है। "इन्दिरा" और "राजसिंह" यद्यपि बंगला भाषा मे दुखान्त उपन्यास थे और गोस्वामीजी ने उनको कथा का मूल सूत्र बगला से ग्रहण किया है, पर फिर भी उन्होंने हिन्दी में कथावस्तु का अन्त सुखपूर्ण किया है। प्रेमी और प्रेमिका बहुत दिनों तक बिछुड़कर अन्त में एक-दूसरे के साथ मिलकर सयोग-अवस्था का सुख लूटते हैं। गोस्वामीजी को जीवन की धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अवस्थाओं पर अटूट विश्वास था। वे सब कार्य मानव द्वारा सम्भाव्य मानते थे। इन्होंने सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक—यथार्थ चित्र अपने उपन्यासों मे उपस्थित किये हैं पर कथा की समाप्ति किसी न किसी आदर्श को लेकर ही हुई है। धर्मनिष्ठ पात्र अपने पुण्यों का फल इस भौतिक जीवन में ही प्राप्त करते हैं और उस जीवन की सुखमयी कल्पना लेकर ससार से विदा होते हैं। इहलोक और परलोक दोनों से उनका सम्बन्ध जुड़ा हुआ दिखाई देता है। जो पापी हैं, वे इस जीवन में ही अपने पापों का फल भोगते हैं और उनको नाना प्रकार के दैहिक, दैविक और भौतिक दुख तथा यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं और उस जन्म में भी दुखों का भय बना रहता है। उनके मरने पर उनके लिए कहीं भी समाज में प्रशसनीय शब्द नहीं कहे जाते हैं। किशोरीलाल कट्टर सनातनधर्मी वैष्णव थे, अतः उन्होंने कर्मफल की ओर अपने उपन्यासों में विशेष दृष्टि रखी है तथा उसी के अनुसार घटनाओं की आयोजना होती है, फिर भी पवित्र तथा परोपकारी पात्र सुखपूर्वक अपना सम्पूर्ण जीवन-यापन करते हैं और अपने परिवार, पति (पत्नी) तथा सन्तान के साथ सुखी जीवन व्यतीत करते हैं। उनके सामाजिक एव पारिवारिक उपन्यास तो सुखान्त हैं, पर गोस्वामीजी के ऐतिहासिक उपन्यास अवश्य दुखान्त हैं, उसका मूल कारण ऐतिहासिक आधार है। "स्वर्गीय कुसुम" वा "कुसुम कुमारी" के "एक प्रश्न" शीर्षक पचासवें परिच्छेद में गोस्वामीजी ने वियोगान्त उपन्यास में भी प्रेमियों को इस लोक नहीं, तो उस लोक की मिलन-कामना से सन्तोष दिलाया है। दोनों प्रेमियों को यह समझ लेने का आग्रह किया है कि "कुसुम मर गयी, पागल बसन्त (उसका प्रेमी) भी मर गया और उन दोनों के मरने पर (बसन्त की पत्नी) गुलाब ने भी अपनी जान देकर अपने पाप अर्थात् सपत्नी वध और पति-हत्या का प्रायश्चित कर डाला। (पर) हा खेद! भला हम आप से यह पूछते हैं कि कुसुम या बसन्त ने धर्म, कर्म, समाज, लोक, परलोक, देश, विदेश या किसी वियोगान्त प्रेमी

विशेष का क्या बिगाड़ा है कि ये दोनों यों संसार से निकाल बाहर किये जायें और जिन धर्म विनाशक नरराक्षसों से धर्म, कर्म, संसार, समाज, देश, विदेश और व्यक्ति विशेष का सत्यानाश हो रहा है, वे दुराचारी लोग मूँछों पर ताव फेरते हुए मार्कण्डेय बन कर दीर्घजीवी हों ? हा, धिक् !!"

कर्मफल की व्याख्या के प्रति लेखक का घोर दुराग्रह है। भारतीय विचारधारा में कर्मवाद की महत्ता आदिकाल से पुष्ट की गयी है। उनके उपन्यासों में कथावस्तु का विकास तथा उत्थान-पतन इसी दृष्टि से किया जाता है। लेखक ने भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रसंगों की अवतारणा कथावस्तु के विकास के लिए की है। यद्यपि समीक्षकों ने लेखक पर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन और अतिरंजना का आरोप लगाया है। इतना सब होने पर भी यह गोस्वामीजी की कुशल लेखनी का प्रताप है कि भारतेन्दुयुगीन समाज, धर्म और सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न यथार्थ चित्र ज्यों के त्यों उनके उपन्यासों में सफलता से अंकित हो सके हैं।

गोस्वामीजी ने कुल मिलाकर सब श्रेणी के पैंसठ उपन्यास लिखे हैं, जिनमें दो-तीन अनुवाद भी हैं। यद्यपि मूल कथा का केवल मात्र आधार लिया गया है और सारा रंग तो गोस्वामीजी की कुशल लेखनी का ही प्रताप है। हिन्दी साहित्य की प्रथम मौलिक कहानी मानी जाने वाली "इन्दुमती" भी इन उपन्यासों में सम्मिलित है। लेखक ने तो इसे भी 'उपन्यास' की श्रेणी में ही रखा है। इस प्रकार से उनकी लेखनी से लघु और विशद दोनों प्रकार की रचनाओं की सृष्टि हुई है।

उपन्यास-साहित्य के इतिहास में यदि तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों के लिए देवकीनन्दन खत्री का नाम प्रशंसा से लिया जा सकता है तो सामाजिक, पारिवारिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में गोस्वामी किशोरीलाल का नाम वन्दनीय है। लोक-रुचि और लोक-रंजन के उद्देश्य से प्रेरित होकर ही उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रेम, वासना, मनोरंजन तथा विलासिता के यथार्थ चित्र उतारे हैं। मुगलकालीन बादशाहत, उस युग की रईसी, लखनऊ के नवाबों की शानोशौकत तथा ऐशोआराम की पूर्ण छाप गोस्वामीजी के उपन्यासों पर पड़ी है, इसलिए उनमें कौतूहल और मनोरंजन प्रमुख रूप से प्रवाहित होता रहा है। यद्यपि उनके समस्त उपन्यासों में कल्पना का सूत्र प्रधान है, फिर भी वे सामाजिक और ऐतिहासिक श्रेणियों में बाँट दिये जाते हैं। जिस युग में इतिहास की ओर तनिक भी जन रुचि नहीं थी, उस समय गोस्वामीजी ने कल्पना के माध्यम से ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा पाठकों में इतिहास की ओर भी अभिरुचि उत्पन्न की एवं एक नयी दिशा उपन्यासकारों को दिखाई है। रहस्यपूर्ण कारनामों और कौतूहलवर्द्धक घटनाओं की अवतारणा करते समय लेखक बार-बार पाठकों को संकेत करता रहता है कि अब "क्या पढ़ने वाला" है। गोस्वामीजी के उपन्यास मध्यवर्ती हैं, जिनमें परवर्ती उपन्यासों के बीज उपलब्ध हैं, इसलिए गोस्वामीजी भारतेन्दुयुगीन और प्रेमचन्दकालीन उपन्यास साहित्य के

साथ एक कड़ी के रूप में सम्माननीय हैं। प्रेम के भिन्न भिन्न प्रपंचों और हथकण्डों ने इनके उपन्यासों को अभिरुचि के अनुकूल आकर्षक बना दिया है। जिस प्रकार उनका "राजकुमारी" सचित्र सामाजिक उपन्यास है, उसी प्रकार "चपला" भी रहस्यपूर्ण पारिवारिक रचना है। जब कभी 'विल' (Will) का वर्णन या डायरी और प्रेम पत्रों की नकल करने गोस्वामीजी बैठ जाते हैं तब उनकी तीखी अन्तर्दृष्टि का पता चलता है कि वे केवल कल्पना ही नहीं, व्यावहारिक भौतिक जीवन तथा उसकी समस्याओं व पूर्ति का भी पूरा ज्ञान रख कर लेखनी उठाते हैं। इतना ही नहीं, ज्योतिष, पंचांग, संस्कार, सगुन और रूढ़ियों पर भी उनका पूरा विश्वास था। नाच की नीचता, कुटनी की कूटनीतिज्ञता और भले की भलाई पर उन्हें विश्वास था। ज्योतिष की व्याख्या बतलाने के लिए अपने वृहद् "चपला" उपन्यास में चपला की खोज, हरिनाथ के कार्यों का पता उन्होंने बड़ी चतुराई से बतलाया है। उत्तराधिकार नियम, दहेज की प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, बाल विवाह के दुष्परिणाम, सती पत्नी पापों का प्रायश्चित, कर्मकाण्ड, अनुष्ठानों का आयोजन, देवदासी प्रथा के दुष्परिणाम, संयुक्त परिवार प्रथा, सामाजिक उत्तरदायित्व, शिक्षा-अशिक्षा, बड़े घराने तथा धर्मनिष्ठ परिवारों में गुप्त पाप लीलाएँ उनका समाधान और प्रायश्चित का मार्ग भी गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में बतलाया है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में उस युग की स्मृति है, जब हिन्दी का उपन्यास रहस्य व कौतूहलपूर्ण बातों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनकी रचनाओं में अपार शक्ति है, जो आदि से अन्त तक पाठक का मन लगाये रखते हैं। यदि नूतन रचना कौशल तथा उपन्यास के समस्त अवयवों का निरूपण प्राचीन युग में किसी उपन्यासकार ने किया है तो उनमें गोस्वामीजी का सर्वोच्च स्थान है। डा० श्रीकृष्णलाल ने गोस्वामीजी के उपन्यासों के सम्बन्ध में लिखा है:

"किशोरीलाल गोस्वामी, जिन्होंने पहले पहल हिन्दी उपन्यासों में नाटकीय कला के विविध गुणों का सफल आरोपण किया, खत्रीजी के 'चन्द्रकान्ता' से भी पहले 'कुसुम कुमारी' की रचना सन् १८८९ में कर चुके थे, यद्यपि इसका प्रकाशन सन् १९०१ के पहले न हो सका। इस ग्रन्थ की प्रेरणा उन्हें रीति-कवियों से मिली, जिन्होंने अपने मुक्तक काव्यों के लिए नायिकाभेद एक ऐसा विषय चुना, जिसका सम्बन्ध मूलरूप से नाटकों से ही था। किशोरीलाल गोस्वामी स्वयं उसी परम्परा के कवि थे। उन्होंने नायिका भेद तथा अन्य रीति साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था, इसलिए जब वे उपन्यास लिखने बैठे तब उन्हें केवल एक सुसंगत प्रेम-कहानी की कल्पना करनी पड़ी और उसमें उन्होंने प्राचीन कवियों की परम्परानुसार प्रेम-सम्बन्धी विविध प्रसंगों को यथावसर अनेक अध्यायों में गद्यात्मक भाषा में जड़ दिया। उनके 'तारा', 'अँगूठी का नगीना' तथा अन्य उपन्यास 'हर्ष' और 'राजशेखर' के संस्कृत प्रेम नाटकों का स्मरण

दिलाते हैं। परम्परागत प्रेम, अभिसार, मान, परिहास इत्यादि इसमें भरे पड़े हैं।"[1]

जनार्दन झा 'द्विज' ने गोस्वामीजी के उपन्यासों की आलोचना करते हुए कहा है : "उनकी रचना में साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव नहीं है, किन्तु वह सौन्दर्य कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक चटकीला और कुप्रभावोत्पादक हो गया है। उनके रस-सचार की प्रणाली कुछ मसालेदार भावों और दृश्यों को भी अपने साथ रखती हुई सी दीख पड़ती है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने मौलिकता के नाते हिन्दी के इस क्षेत्र में बड़ी मुस्तैदी से काम किया और उनमें उपन्यासकार होने की सच्ची क्षमता थी। यह दूसरी बात है कि उस क्षमता को वे बहुत अच्छे ढंग व बहुत अच्छी रुचि के साथ काम में न ला सके।"[2]

गोस्वामीजी के उपन्यासों की कथावस्तु उस रूढ़िवादी युग के जन जीवन से ही ग्रहण की गयी है, जिसका आधार हमारा पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन है। पाठक के ध्यान को उपन्यास की कथावस्तु में निरन्तर लगाये रखने के लिए लेखक वक्ता के समान बार-बार स्मरण कराता है, विषय-वस्तु को समझाता है, इसलिए कहीं-कहीं पुनरावृत्ति भी हो जाती है। वह स्वयं बार-बार व्याख्या करके कथानक की ओर जन मात्र का फिर से ध्यान आकर्षित कर लेता है। उन्होंने घटना-वैचित्र्य के द्वारा कथानक को रोचक बनाया है और अपने उपन्यासों में तारतम्यता लाने का उन्होंने पूरा प्रयास किया है, जिससे कथा-प्रवाह सम गति से चलता रहे। आधिकारिक कथावस्तु के साथ ही साथ प्रासंगिक कथाएँ भी चलती रहती हैं और समस्त उपन्यासों का अन्त सुख में परिणत होता है। प्रत्येक प्रेमी-पात्र अपनी प्रेमिका से मिलकर सुख-लाभ करता हुआ दिखाई पड़ता है। भाग्य, संयोग और दैवी विधान का आश्रय भी लेखक ने चरम सीमा को सफल करने के लिए लिया है। आदि से अन्त तक लेखक को अपने प्रत्येक पात्र का पूरा ध्यान रहता है कि वह कहाँ है, क्या कर रहा है, उसका भावी परिणाम क्या होगा, वह पात्र दुष्ट है अथवा परोपकारी। लेखक पाठकों को भी यदा-कदा उस पात्र को सामने लाकर, उसके कार्यों का स्मरण दिला देता है कि वह गतिशील है। उपन्यासकार कथानक की प्रवाहशीलता के साथ ही साथ पात्रों के कार्य कलापों की ओर भी अपना ध्यान रखता है। समीक्षकों की दृष्टि से उपन्यासों के जो भेद किये गये हैं, उसी क्रम से गोस्वामीजी की रचनाओं के कथानक सहज में ही विकसित हो जाते हैं।

उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक और पारिवारिक तथा तिलस्मी और जासूसी उपन्यास लिखे हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में विशेष रूप से "तारा" का अमरसिंह, "कनक कुसुम" की मस्तानी, "सोना सुगंध और पन्नाबाई" का माणिकचन्द, "रजिया बेगम" की रजिया और याकूब, 'लखनऊ की कब्र' की आस्मानी और

---

१. श्रीकृष्णलाल : "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास," पृ० २९८।
२. जनार्दन झा 'द्विज' : "प्रेमचन्द की उपन्यास कला," पृ० ८।

"मल्लिकादेवी" में नरेन्द्रसिंह का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दरता से सफल अंकित हुआ है। इन पात्रों के साथ पाठकों के हृदय की पूरी सहृदयता जाग उठती है और लेखक ने भी इनके चरित्र में कोई न कोई विशेषता उत्पन्न की है, जिससे उपन्यास-पठन के समय आदि से अन्त तक इनकी ओर लेखक तथा पाठकों का ध्यान केन्द्रित रहता है। पात्रों के कथोपकथन तथा उनकी व्यवहारपटुता ने उपन्यासों में नाटकीयता ला दी है।

गोस्वामीजी के उपन्यासों में प्रायः एक ही तरह के पात्र मिलते हैं, जो अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। डॉ० शर्मा ने गोस्वामीजी के उपन्यासों के चरित्रों के विषय में कहा है : "चित्रणों में व्यापार-शृंखलाओं की ही प्रधानता देखने में आती है, पात्रों की नहीं। अधिकतर अभिनयात्मक ढंग अपनाया गया है।"[1]

किशोरीलाल प्रथम साहित्यकोटि के उपन्यासकार हुए हैं, जिन्होंने उपन्यासों में सबसे पहले चरित्र-चित्रण की ओर ध्यान दिया है। उन्होंने विदेशी शासकों के दोषों, मुगलकालीन बादशाहों की ऐयाशी और भारतीय सभ्य तथा साधुजनों के गुणों का आधार लेकर अपने पात्रों का चरित्र उतारा है। चरित्र-चित्रण की भी अनेक प्रणालियाँ होती हैं। प्रथम, लेखक कथा कहने की शैली ग्रहण करके पात्रों के जीवन के विषय में तथा उनके कार्य-कलापों का वर्णन स्वयं करता चलता है, दूसरे, घटनाओं के घात-प्रतिघात में किसी भी चरित्र का विकास अपने आप हो प्रकट होता है और तीसरे, पत्र-व्यवहार तथा स्वगत-कथन के द्वारा चरित्र-चित्रण किया जाता है। बस केवल ध्यान देने की बात यह है कि पात्रों का चरित्र-चित्रण सहज और स्वाभाविक पैमाने पर किया जाना चाहिए। उनमें मानवीय सबलताओं और निर्बलताओं का यथावत् समावेश हो। दुःख के समय वे दुखी और सुख के समय वे सुखी एवं प्रसन्न दिखाई दें। हार में निराश, विजय में उल्लास, मौत में दुख आदि मानवीय गुण हैं, अनाथों की रक्षा, अबला नारी जाति की कुसमय में रक्षा और विधवाओं, गायों और साधुओं की सहायता, धर्मनिष्ठा, ये सब मानवीय जीवन के चरम सूत्र हैं। इन मूल-भूत सिद्धान्तों का विकास ही प्रत्येक रचना में अपेक्षित रहता है। दानवता और देवत्व दोनों ही असाधारण गुण हैं। देवत्व वांछनीय है, पर दुर्लभ है और दानवता त्याज्य है क्योंकि समाज के लिए घातक है। फिर भी समाज के घेरे में दानव भी सुलभ है और देव भी उपलब्ध होते हैं; इसलिए लेखक ने "कर्म-फल और प्रायश्चित के विधान" पर जोर दिया है। दुष्टों को अपनी करनी का फल भोगना ही पड़ता है और पुण्यात्मा कष्ट सह कर भी अन्त में सुखी होते हैं। प्रभावोत्पादक सजीवता और कर्मण्यता पात्रों का प्रमुख गुण है। प्रायः सभी उपन्यासों में प्रेम-व्यापार तथा

---

१. गोविन्दप्रसाद शर्मा : "हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन," पृ० ६०।

लीलाओं का चित्रण है, जो पात्रों के जीवन का मुख्य केन्द्र है। उनके कुछ पात्र अपने धार्मिक आदर्श और रीति-नीति का अनुसरण करते दिखाई देते हैं, फिर भी वे संसार से पलायनवाद नहीं अपनाते। जीवन के दुखों तथा सुख-प्राप्ति के प्रयत्नों में वे निरन्तर लगे रहते हैं। गृहस्थ धर्म की मर्यादाओं का उन्हें पूरा ज्ञान है और उसमें गोस्वामीजी के पात्रों का अटल विश्वास है। सामाजिक रूढ़ियों और मान्यताओं के आगे वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ तथा आनन्द का त्याग करने के लिए सदैव तैयार हैं। संयुक्त परिवार की सीमाओं में वे अपने परिवार का सुख तथा उनके प्रति कर्त्तव्यों की पूर्ति में निरन्तर लगे रहते हैं। गोस्वामीजी ने चरित्र-चित्रण का माध्यम कथोपकथन के द्वारा बनाया है और कहीं-कहीं पर लेखक के स्वगत-कथन के द्वारा भी प्राप्त होता है। पात्रों की स्वभावगत विशेषताओं का भी परिचय मिलता है। गोस्वामीजी ने भारतीय नारियों की परम्परागत तथा शास्त्रसम्मत मर्यादाओं का भी भलाभाँति पालन किया है। नारी-पात्रों का चरित्र-चित्रण भी भारतीय संस्कृति की तुला के आधार पर हुआ है। उनके बाद जो अन्य लेखक हुए, उन्होंने भी भारतीय परम्पराओं का चित्रण उनके अनुसार ही किया है। नारी-चरित्र का निर्बलताएँ, उनकी विवशता तथा उप-भोग की भावना और प्रेमल स्वभाव इन रचनाओं में अवतरित हुआ है।

गोस्वामीजी के सभी उपन्यासों में परस्पर वार्त्तालाप द्वारा पात्रों का चरित्र-चित्रण हुआ है। इनके कथोपकथन में गति की तीव्रता है। उनमें चटकीलापन और चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ हैं, जिसके कारण उपन्यासों में अभिनयात्मकता आ गयी है। पात्रों के अपने कथोपकथन के द्वारा काव्य-शास्त्रों की सूक्तियाँ, रस-मीमांसा, नायिका-भेद, मान-मनौवल, फारसी के शेर और गज़लें, लोकोक्तियाँ तथा ब्रजभाषा और संस्कृत के अनेक पद तथा श्लोक अवतरित हुए हैं। लेखक का काव्य-प्रेम और भावुक कवि हृदय उनके उपन्यासों में भी स्पष्ट प्रकट होता है। कथोपकथन के अतिरिक्त लेखक स्वयं भी यत्र-तत्र पात्रों का परिचय अपनी ओर से देता चलता है और इसलिए पाठकों को सम्बोधित भी करता है और पात्रों के कार्य-कलापों तथा चरित्रों के विषय में आश्वासन भी देता चलता है व पात्रों की दुष्टता तथा सचाई से अवगति करने वालों को परिचित कराता है। उर्दू और फारसी के शेरों द्वारा लेखक का अन्य भाषाओं का ज्ञान तथा पाण्डित्य दिखाई देता है। इनके कथोपकथन स्पष्ट, सुबोध, सुगम्य हैं तथा आकर्षक हैं। व्यंग्य और वक्रोक्ति-प्रधान चटपटे कथोपकथन तो पाठकों के मन को अत्यन्त प्रभावित करके उनका मनोरंजन करते हैं।

गोस्वामीजी की संस्कृतनिष्ठ भाषा का एक कथोपकथन उदाहरण के लिए यहाँ दिया जा रहा है—

"सैनिक—फिर वही बात! विशेष तुम्हें चाहते हैं, यह ठीक है किन्तु क्या न्यून प्रेम भी कहीं अन्यत्र है।

सरला—अच्छा न सही, जाने दो। मैंने भी तुम्हारे अनुसन्धान मे त्रुटि नहीं की थी पर आज मेरा भाग्य सुप्रसन्न हुआ। अस्तु, अब तुम कहाँ रहते हो।"[1]

उर्दू निष्ठ भाषा का यहाँ एक दूसरा उदाहरण दिया जा रहा है—

"सलावत—ऐसा! खैर थी! तुम भी राजपूतिन ही हो न। फिर तुम एक गैर शख्स के रूबरू क्या निकल आई?

रंभा—वह राजकुमारी है और मैं उनकी सहेली, बल्कि लौंडी हूँ। तिस पर भी, बेबसी से मजबूर होकर मुझे आपके रूबरू आना पड़ा है।

सलावत—खैर! तो तुम्हीं सही, तुम क्या कुछ कम हसीन और तरहदार हो।"[2]

पूर्व-प्रेमचन्द युग के हिन्दी उपन्यासों की संख्या किसी प्रकार से भी कम नहीं कहा जा सकती है। यद्यपि उनका नामकरण पात्रों के नाम पर हुआ है, पर वास्तव में वे सब घटना प्रधान उपन्यास ही थे। इन उपन्यास साहित्य ने जनता की अभिरुचि को अपार सन्तोष पहुँचाया और मनोरंजन किया है। इसी दृष्टि से पात्रों की अवतारणा की गयी है। "लखनऊ की कब्र" में प्रमुख पात्र नसीरुद्दीन है जिसके शाही महलसरा में लगभग तीन सौ सुन्दर नारियाँ हैं जो सारे शाही महलों को गुंजार रखती हैं। हुस्नआरा, दुलारी, मलिका जमानी, दिलाराम मुबकिया, मुलतिया, आम्मानी इत्यादि प्रमुख नारी पात्रों की गोस्वामीजी ने अवतारणा की है, जो पुरुषों को अपनी करामातों से सदा हैरत मे डाले रहती हैं। नसीरुद्दीन का दिल और दिमाग इन सुन्दरियों की ही चिन्ता म उद्विग्न रहता है। नसीरुद्दौला, सादिक अली, लियाकत-अलीखाँ सब पात्र उसक सहयोगी है, जो उसक कार्यों में उसकी सहायता पहुँचाते रहते हैं। इस उपन्यास की भूमिका में लेखक ने बतलाया है कि सन् १७७५ म लखनऊ का नवाब आसफुद्दौला हुआ और उसन अवध का अपेक्षा लखनऊ म सारी रौनक फैलाई। उसने हजारों बड़े बड़े मकान गोमती नदी के किनारे बनवा दिये। जब वह मरा तो अपने बनवाये हुए इमामबाड़ में गाड़ा गया। उसी की वंश परम्परा म नसीरुद्दीन हैदर सन् १८२७ मे शाही तख्त पर बैठा, जो विषयी तथा भोग विलासी था और वह अपनी ऐयाशी क कारण बहुत बदनाम हो गया था। अंग्रेज इतिहासकारों ने उसकी उसकी अनेक बुराइयाँ प्रकाशित की हैं। यह ऐतिहासिक पात्र है, जिसके यथार्थ चरित्र पर लेखक ने यथातथ्य प्रकाश डाला है।

'हमारा यह उपन्यास सन् १८२७ क अप्रैल महीने से प्रारम्भ होता है, जिस समय लखनऊ क तख्त पर अत्यन्त विषयी नवाब नसीरुद्दीन हैदर था। यह उपन्यास

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी: "मल्लिकादेवी" (बंग सरोजिनी), सन् १९१७, पृ० १११।

२. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", सन् १९०२ का संस्करण, पृ० २६।

हमने "बादशाह के गुप्त चरित्र" नामक अंग्रेजी पुस्तक की कथा के आधार पर लिखा है। वह पुस्तक एक अंग्रेज की लिखी हुई है जो नसीरुद्दीन हैदर के दरबार में रहता था और जिसने अपनी डायरी में उस समय नसीरुद्दीन हैदर के चरित्र का अच्छा-खासा खाका खेंचा है।"[1]

गोस्वामीजी के पात्र भारतेन्दुयुगीन समाज और परम्पराओं के प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके पात्रों को भी हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं— प्रथम, देवतुल्य पात्र, जिनके जीवन का उद्देश्य सदैव भलाई तथा परोपकार है। वे दूसरों के लिए ही जीवित रहते हैं तथा कष्ट और विपत्तियों के समय दुष्टों से पुण्यात्माओं की रक्षा करते हैं। अबला नारी जाति के लिए इनके हृदय में अथाह दया का सागर है, जिनको आततायियों के हाथ से ये देव-पात्र रक्षा करते हैं। अपने पुरुषार्थ का परिचय देकर, उनके स्नेह-सूत्र में पड़कर ये प्रणय-बन्धन में बँध जाते हैं, जिससे जीवन भर अपने सम्बन्ध का निर्वाह कर सकें।

गोस्वामीजी के मानव-पात्र दूसरी श्रेणी में आते हैं, जिनमें मानवीय निर्बलताएं हैं। उनकी अपनी आवश्यकताएं हैं, उनकी पूर्ति के लिए वे जीवन भर संघर्ष में रहते हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद नीति के द्वारा वे अपना भौतिक जीवन सफल बनाने की चेष्टा निरन्तर करते रहते हैं। यदि कोई पाप उनके द्वारा हो जाता है तो वे हिन्दू धर्म और शास्त्रों के अनुसार हवन, यज्ञ, पूजा, ब्रह्मभोज, तीर्थ-यात्रा, उपवास, रामलीला दर्शन, रामायण और गीतापाठ के द्वारा अपने पापों का प्रायश्चित कर डालते हैं और हिन्दू समाज के समक्ष अपूर्व आदर्श उपस्थित करते हैं।

तीसरी श्रेणी के वे तामसिक पात्र हैं, जो दानव कहलाते हैं और जिनमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सब ओर दानवता नहीं हुई पायी जाती है। मनुष्य होते हुए भी जिनमें राक्षसी प्रवृत्तियां हैं, धूर्तता है, दुष्टता है तथा पराया धन छीन लेना, परायी नारियों का अपहरण करना, उनके साथ बलात्कार की चेष्टा, लूट-मार और छल-कपट तथा प्रवंचना उनकी नस-नस में व्याप्त है। गोस्वामीजी ने इस प्रकार के पात्रों की भी अवतारणा की है पर पापी को अपने पाप का फल इसी लोक में भुगतना पड़ता है। चाहे वह नर-पात्र हो अथवा नारी-पात्र, अपने पापों के कारण उनकी आत्मा उन्हें प्रताड़ित करती रहती है। वे अपने दुष्कार्यों के कारण सदैव पानी-पानी हुए रहते हैं। इस लोक में भी वे सुखी नहीं हो पाते। उनको परिवार, समाज एवं सब कुटुम्ब-कबीले की भर्त्सना सुननी पड़ती है और वे सदैव प्रायश्चित करने को तैयार रहते हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्होंने जो गुप्त कार्य किया है, वह पाप है। वे पूजा एवं धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा उसको दूर करने का प्रयास करते हैं, फिर भी निरन्तर मन ही मन प्रायश्चित की अग्नि जलती रहती है और वे घुल-घुल कर इस देह को त्याग देते हैं। कोई-कोई पानी छत से गिर कर मरता है, कोई सीढ़ियों से

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "लखनऊ की कब्र", उपोद्घात, पृ० ५।

लुढ़क जाता है और किसी किसी की हत्या कोई अज्ञात शत्रु गडासे से कर डालता है। लेखक ने अपने ऐतिहासिक, सामाजिक और जासूसी सब प्रकार के उपन्यासों में तीनों प्रकार के पात्रों की अवतारणा की है। गोस्वामीजी ही हिन्दी के पहले उपन्यासकार थे, जिन्होंने मानव-जीवन की गुत्थियाँ समझने और सुलझाने की अपने उपन्यासों में चेष्टा की है। युगीन मानवीय प्रवृत्तियों के उतार-चढ़ाव की यथार्थ अभिव्यक्ति युगद्रष्टा गोस्वामीजी की रचनाओं में हुई है।

जहाँ तक पात्रों के चरित्र-चित्रण का प्रश्न है, उसके लिए लेखक ने स्वगत-कथन तथा कथोपकथन प्रणाली अपनायी है। साधारणतः चरित्र-चित्रण तीन प्रकार से ही किया जाता है—(१) या तो पात्र स्वयं अपने कथन से अपना चरित्र और अपनी जीवन-चर्या बतलाता चलता है जिसमें अपनी प्रवृत्तियों पर भी परिस्थितियों के साथ ही साथ वह प्रकाश डालता चलता है, (२) किसी भी पात्र के विषय में उपन्यास में आये हुए अन्य व्यक्तियों के विचारोद्‌गार द्वारा क्योंकि प्रत्येक पात्र एक सामाजिक प्राणी है। समाज के उत्थान और पतन के साथ ही उसके कार्यों की उन्नति तथा अवनति आँकी जाती है। उसके कार्य कलाप समाज की धुरी पर ही निरन्तर चलते रहते हैं। अतः उसके विषय में समाज की विचारधारा एवं जनमत का भी उतना ही महत्व है, जितना उसके अपने जीवन की प्रक्रियाओं का। प्रत्येक पात्र के मूल्यांकन की कसौटी समाज और उसके सहयोगी मित्र हैं। यदि वह उस पर खरा उतरा तो वह खरा है। यदि वहीं उसको अपयश मिला तो वह घी में भी मक्खी के समान निकाल कर बाहर फेंक दिया जावेगा। यही कारण है कि समाज की रचना के साथ ही साथ मानव की सीमाएं निर्धारित हो गयीं और समाज में प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य नाना प्रकार के कार्य करता है तथा यातनाएं सहता है। अतः गोस्वामीजी ने भी प्रत्येक पात्र को, चाहे वह नर हो अथवा नारी, सामाजिक शृंखलाओं और मर्यादाओं से बाँध दिया है। इसी प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए और उसके बाद भी उसे बनाये रखने के लिए प्रत्येक पात्र नाना प्रकार की कठिन परीक्षाएं देते हैं। लेखक भी अपनी ओर से सदैव प्रयत्नशील है कि उपन्यास का नायक अथवा नायिका सर्वगुण-सम्पन्न, योग्य तथा वीर और समाज की दृष्टि में प्रशंसनीय पात्र हो। जिसे समाज ने फेंक दिया, लेखक ने भी उन पात्रों के लिए दासता का स्थान निश्चित कर दिया है तथा उनके सहयोगी निम्न श्रेणी के व्यक्ति हैं। (३) या इनकी अभिव्यक्ति परिस्थितियों के उत्थान और पतन के साथ होती है। परिस्थितियों के चक्र में ही प्रत्येक पात्र का सच्चा चरित्र चित्रण होता है। उदाहरण के लिए, यदि घमासान युद्ध हो रहा है और मुसलमानों की सेना ने किसी हिन्दू राजपूत राजा पर आक्रमण किया है और उस समय भी वह नरेश अपने ऐशोआराम में डूबा रहे तो इस प्रकार के पात्र को स्वयं गोस्वामीजी ने कायर और हिन्दू जाति का कलंक

कहा है। यदि कोई पात्र शूरवीरता से युद्ध करके रण-भूमि में अपने प्राण त्यागता है तो स्वयं लेखक उस पात्र की प्रशंसा करता है। उसे शूरवीर और हिन्दू जाति का सूर्य कहकर सम्मानित किया है। इसी प्रकार यदि किसी नारी-पात्र ने अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि दी है तो उसके प्राणों की रक्षा के लिए गोस्वामीजी ने वहीं पर उसका प्रेमी उससे मिला दिया है। यही कारण है कि गोस्वामीजी के समस्त उपन्यास 'सुखान्त' हैं। उन्होंने जिन उपन्यासों का अनुवाद किया है, उन्हें भी 'वियोगान्त' से 'संयोगान्त' कर डाला है। उनका विश्वास है कि दयालु तथा धर्मनिष्ठ पात्र सर्वदा सुखी रहेगा और दुख पाकर भी अन्त में सुखी होगा। गोस्वामीजी ने राजा-महाराजाओं, नवाबों, भूमिपतियों, जमींदारों, आदि के चरित्रों की अवतारणा की है और उनके साथ ही साथ निम्न वर्ग में, दास दासी, मजदूर, अछूत इत्यादि को भी यथोचित अपने उपन्यासों में की है। 'नायक' को प्रमुख तथा सूत्रधार-पात्र के रूप में गोस्वामीजी ने ग्रहण किया है। नायिका का स्थान गौण है। उसका क्षेत्र प्रेम से पूरित है, जो नायक को शूरवीरता तथा साहसपूर्ण कार्य करने की सदैव प्रेरणा देता है। नायक और नायिका सौन्दर्य-प्रेमी भी हैं, जो प्रथम दर्शन में ही एक-दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं। गोस्वामीजी ने जिस हिन्दू समाज की रचना की है, उसमें पुरुष पात्र ही समाज के प्रमुख कर्णधार हैं तथा नारी तो पूरक शक्ति के रूप में विद्यमान रहती है। "पुरुष पुरुष है और नारी नारी रहेगी" इसी उद्देश्य से लेखक पूर्ण प्रभावित है। पुरुष-पात्र रक्षक, भक्षक, बलिष्ठ साहसी लोलुप तथा भोग-विलासी हैं एवं नारी-पात्र अबला असहाय और पुरुषों के भोग विलास की पूर्ति के साधन हैं। यहीं-कहीं पर वे पुरुषों द्वारा बहकाये जाने पर अपने जीवन-पथ से भी भटक जाती हैं और तत्पश्चात् उनकी आत्मा उन्हें प्रताड़ित करती है।

गोस्वामीजी ने विरोधी पात्रों की सृष्टि करके चरित्र-चित्रण प्रणाली को अपनाया है। यदि एक पात्र काला और दानव जैसा है तो दूसरा पात्र उसी उपन्यास में गौर वर्ण, सुन्दर, सुशील तथा परोपकारी और देवताओं के समान गुण वाला है। "पुनर्जन्म या सौतिया डाह" उपन्यास में लेखक ने बताया है: "जिस प्रकार इन दोनों के बदन व विकास में बड़ा अन्तर था, उसी भांति स्वभाव में भी था। सुन्दरी शान्त, मधुरभाषिणी और स्नेहमयी थी, पर इसके विरुद्ध सुशीला अभिमानिनी, मुखरा और कुटिल स्वभावा थी, क्या ही अच्छा होता यदि सुन्दरी का नाम सुशीला और सुशीला का नाम सुन्दरी होता, परन्तु विधि-विडम्बनावश ऐसा न हुआ, अस्तु।"[1]

सुन्दरी और सुशीला का स्वभाव एक-दूसरे के प्रति प्रेमल तथा स्नेहपूर्ण है। सुशीला सुन्दरी तथा अपने पति सज्जनसिंह से उस समय तक ईर्ष्या करती है,

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "पुनर्जन्म या सौतिया डाह," पृ० ६।

जब तक उन दोनों का गुप्त एवं अवैध प्रेम-व्यापार चलता है, लेकिन जैसे ही सुन्दरी का हाथ सुशीला सज्जनसिंह को पकड़ा देती है उसकी सारी ईर्ष्या समाप्त हो जाती है। उसका सौतिया डाह मिट जाता है और वह इतनी उदारचित्त नारी हो जाती है, जो सज्जनसिंह तथा सुन्दरी के प्रेम-व्यापारों में अपनी ओर से भी पूर्ण सहायता पहुँचाती है। गोस्वामी किशोरीलाल ने 'सुशीला' जैसी नारी-पात्र की सृष्टि करके समाज में एक अभूतपूर्व आदर्श उदाहरण रखा है। सुशीला के मुख से लेखक ने धर्मशास्त्र की व्याख्या कराई है : "यही कि 'धर्मशास्त्र' में स्त्री के लिए केवल एक ही विवाह की व्याख्या है, पर पुरुष असंख्य विवाह कर सकते हैं। अतएव जब मैंने यह बात जानी कि तुम दोनों निष्कलंक हो तब फिर क्या उच्च था कि मैं तुम्हारे सुख में व्यर्थ काँटे बोती। सुनो तो प्यारे, क्या बहिन बहिन और सहेली सहेली एक साथ नहीं रहतीं और क्या आज तक दो सौतिनें कभी आपस में मिल-जुल कर नहीं रही हैं।"[1] सुशीला की उदारता, स्नेहशीलता और त्याग ने सुन्दरी के हृदय को जन्म-जन्मान्तर के लिए उसके प्रति अगाध श्रद्धा में बाँध दिया। उसके पति सज्जनसिंह को भी इस सुनन्त पर ऐसी देवोपम नारी की उपस्थिति का आभास तक नहीं था। सुन्दरी का विवाह सज्जनसिंह से पहले ही हो जाता, पर वह एक भिखारिन की लड़की थी। प्रचलित समाज और उसकी मान्यताओं का भी गोस्वामी ने अपने उपन्यास में सजीव चित्र उतारा है। लेकिन पहले सुशीला से, उसके बाद सुशीला की स्नेहशीलता तथा प्रयत्नों से सुन्दरी का सज्जनसिंह के साथ विवाह हुआ है और सुशीला के चरित्र की महानता ने 'सापत्न्य ज्वाला' के स्थान पर 'सहोदरा भगिनी' जैसा प्रेम स्थापित हो गया। इस प्रकार के पात्रों से ही समाज में गुप्त व्यभिचार की रोक-थाम होती है और पुरुष जैसा उच्छृंखल पात्र एक के अतिरिक्त अनेक नारियों से भी प्रकट रूप में सम्बन्ध बना कर रख सकता है। सज्जनसिंह का कथन सुशीला का चरित्र-चित्रण कर देता है : "प्यारी सुशीला, तुम्हारा हृदय इतना गम्भीर उदार और प्रशस्त है, इसका परिचय मैंने पहले नहीं पाया था, नहीं तो इतना बखेड़ा कभी न होता और यह झगड़ा शीघ्र ही तय हो जाता।"[2]

इस उपन्यास की कथावस्तु अस्वाभाविक जान पड़ती है, परन्तु भारतीय नारी सदा से उदार, प्रशस्त हृदयवान् और समवेदनाशील रही है, अतः लेखक का प्रयास सफल है कि 'सौतिया डाह' की भावना आनी ही नहीं चाहिए। यदि नारियों में यह ईर्ष्या की आग उदित हो गयी तो घर में कलह का साम्राज्य हो जाता है। पति-पत्नी आपस में कलह करके भावी सन्तान को दुखी करते हैं। सुशीला के प्रेमल व्यवहार ने 'सज्जनसिंह' को सुखी किया और उसकी पतिनिष्ठा और सेवा-भावना ने 'सुन्दरी'

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "पुनर्जन्म या सौतिया डाह", पृ० ३१।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "पुनर्जन्म या सौतिया डाह", पृ० २६।

का पुनर्जन्म' कर दिया, जो उन्हें पाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा बैठी थी। लेखक ने उपन्यास का अन्त सुखान्त में परिणत कर दिया है। "त्रिवेणी" उपन्यास भी धार्मिक, सामाजिक और सुखान्त है। इसमें प्रयागराज में अवतरित 'त्रिवेणी' की अलौकिक महिमा का गान है। इस उपन्यास में लेखक की रसिकता और हिन्दू-संस्कृति में अपार निष्ठा तथा कवि-हृदय का आभास प्राप्त होता है। इसके प्रमुख तीन पात्र हैं— मनोहरदास, उनकी पत्नी त्रिवेणी व हरजीवनदास (मनोहरदास का मुनीम)। काशी जाते जाते 'व्याघ्रसर' में मनोहरदास की नौका डूबना तथा त्रिवेणी का वहाँ पर डूब जाना और बहुत दूर आकर प्रयाग में किनारे लगना, वहाँ आकर प्राणों का बचना एवं मनोहरदास के हृदय की वेदना का गोस्वामीजी ने सजीव और मर्मस्पर्शी चित्र उतारा है। अपनी पत्नी से बिछुड़ने का सारा दोष वे स्वयं को ही देते हैं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उनका 'त्रिवेणी' प्रयागराज में आना, कुम्भ के पर्व के अवसर पर अपनी पत्नी को ढूँढना, परमात्मा में आस्था रख कर अपने हृदय की वेदना को प्रकट करना, मनोहरदास का कथन लेखक की ईश्वर में आस्था प्रकट करता है—"इस संसार में प्रकृत नास्तिक कोई भी नहीं है, यदि एक भी सच्चा नास्तिक पृथ्वी में रहता है तो अब तक संसार का बहुत अनिष्ट हुआ होता। पाप और अविचार का भयंकर स्रोत बहा होता, व्यभिचार की पराकाष्ठा हुई होती और "रवि-शशि द्वारा जेहि प्राचीन" ऐसे विश्वेश्वर की महिमा एक ही बार में लुप्त हो गयी होती और ऐसा होने से यह संसार नरक की अपेक्षा भी भीषणतम विभीषकामयी मूर्ति धारण करके प्राणियों को भक्षण कर गया होता, किन्तु बड़े भाग्य की बात है कि न आज तक यथार्थ नास्तिक हुआ, न होगा और न है, नहीं तो बहुत कुछ अनिष्ट की सम्भावना थी। जैसे राजा के दण्ड के भय से लोग कुकर्म से डरते हैं, नास्तिकों के जमाने में संसार की वैसी ही दुर्दशा होती, जैसी पूर्ण अराजकभाव देश में हुआ करती है, किन्तु हम लोगों के त्राता, अपराध क्षमा करने, पाप के दण्ड देने वाले, सुख के निदान, जीवन के लक्ष्य, व्याधि की औषधि, आशा के आलोक, भक्ति, मुक्ति के कल्पतरु ईश्वर ही हैं, एकमात्र ईश्वर ही हैं।"[1]

मनोहरदास का अपने दुर्भाग्य पर करुण क्रन्दन लेखक की लेखनी की प्रतिभा है। पति के हृदय में अपनी पत्नी के प्रति अपूर्व निष्ठा तथा लगन का उदाहरण लेखक ने दिया है, जिसका तनिक भी संकेत आधुनिक उपन्यासों में नहीं मिलता है। उनका यह कथन है कि "निःसंदेह गृहिणी से घर है, तब इसका जब पता न पाया, तब क्या प्रयोजन था कि पुनः माया में फँसूं ? किन्तु मेरे इस हठ को भगवान ने अब दूर कर दिया और मुझे पुनः गृही होना पड़ा।"[2]

'त्रिवेणी' का भाग्य त्रिवेणी के तीर पर जागा। पतिपरायणा सती-साध्वी

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "त्रिवेणी", पृ० ३०।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "त्रिवेणी", पृ० ३१।

त्रिवेणी अपने बिछुड़े हुए पति को पाकर जगदीश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद देती है। मनोहरदास फिर से अपनी पत्नी के साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। इस प्रकार उपन्यास की समाप्ति सुखद मिलन में होती है। मनोहरदास का चरित्र-चित्रण लेखक की सजीव लेखनी से सफल अंकित हुआ है।

"प्रणयिनी परिणय" की नायिका स्वयं 'प्रणयिनी' है और इसका नायक 'मारशास्त्री' है। मारशास्त्री के हृदय में प्रेम की अगाध सरिता अबाधगति से लहराती रहती है। "एक प्राण दो देह" वाली उक्ति चरितार्थ होती है। मारशास्त्री के इस लम्बे कथन ने प्रेम में व्याकुल उनके हृदय की दशा का परिचय दे दिया है— "क्या कहूँ मित्र, तुमसे क्या कुछ छिपा है? जिसके लिए संसार के सब सुख मैंने तृणवत् छोड़ दिये हैं, आज उसी से मिलने के लिए ज्योंही मैं कमन्द डाल कर प्रासादारूढ़ होना चाहता था, त्योंही यह जीवित यमदूत आकर उपस्थित हुआ। हा! इस प्रेमाम्बुधि में निमग्न होकर किसी अन्य स्वर्गीय सुख का अनुभव नहीं होता, अरे इस वाटिका के प्रस्फुटित पुष्पों की सुगन्धि त्रैलोक्य का सुगन्धित करके व्याप रही है। इस मार्ग में किसी कंटक का नाम तक नहीं है। प्रियवर! इसके प्रेमियों का पथ संसार से निराला है और इसके आनन्द का अनुभव बिना प्राणपण किये कौन कर सकता है। क्या ऐसे निर्भय मार्ग गामियों को वलद समूह पराभव कर सकते हैं? क्या सच्चा प्रेमी भी कभी प्रीतिपाश बद्ध होकर बाघ से डरता है? क्या उसके लिए प्रीतिपीयूष देवाकुल से कम है? अहह! आज उसी के पूर्ण आवेश और उद्वेग का उद्गार है कि कुछ भी भय और कष्ट विदित नहीं होता। यह बात सब कोई स्वीकार कर सकते हैं कि संसार में कोई भी अमर तथा सदा एक भाव में कभी नहीं रह सकता, परन्तु प्रायः प्रेमामृतसेवी अत्यल्प जीवित और आनन्दित ही रहते हैं। सत्य है, संसार एक ओर और प्रीतिपात्र एक ओर है। अहा! वह प्रेममाधुरी मूर्ति नयनों के आगे नृत्य कर रही है।"[१]

इस उपन्यास का अन्त भी सुखान्त है। 'प्रणयिनी' नामक मन्त्री कन्या का 'परिणय' मारशास्त्री के साथ होता है। प्रेम-मार्ग सदैव विजयी होता है। सच्चे प्रेमियों का सदा मंगल होता है। "स्वर्गीय कुसुम अथवा "कुसुम कुमारी" उपन्यास में प्रेम का अलौकिक दिव्यस्वरूप वर्णित है। शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है कि 'स्वर्गीय कुसुम या 'कुसुमकुमारी' (१८८९) में गोस्वामीजी की कल्पना अधिक उद्दीप्त हुई है। इसमें घटनाएँ भी अधिक हैं और उनका वर्णन भी अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक है।"[२] कुसुमकुमारी तीन वर्ष की उम्र में ही देवदासी बन जाती है। वही इस आदर्श उपन्यास की नायिका है। बसन्तकुमार नायक है, गुलाब बसन्तकुमार की पत्नी उपनायिका है।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रणयिनी परिणय", पृ० ९-१०।
२. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ७८-७९।

कुसुम बसन्त को हृदय से प्रेम करती थी और वसन्त उसकी बहिन गुलाब से विवाहित है। कुसुम में संघर्ष करने की शक्ति तथा साहस नहीं है, पर वह आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित की गयी है, जिसका जीवन त्याग और तपस्या से परिपूर्ण है। कुसुम के मर जाने पर बसंत और गुलाब भी अपने प्राण दुखी होकर त्याग देते हैं। विजयशंकर मल्ल का कहना है : "गोस्वामीजी यथार्थ सामाजिक स्थितियों का अंकन करते हुए कथा की परिणति बराबर आदर्श में दिखलाते हैं, इसलिए उन्हें यह सहन नहीं है कि सच्चरित्र और धर्मनिष्ठ पात्र के जीवन का अन्त दुखमय हो। 'स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी' के "एक प्रश्न" शीर्षक पचासवें परिच्छेद में लेखक ने वियोगान्त प्रेमियों से यह समझ लेने का आग्रह किया है कि "कुसुम मर गई, पागल वसंत (उसका प्रेमी) भी मर गया और उन दोनों के मरने पर (वसन्त की पत्नी) गुलाब ने भी अपनी जान देकर अर्थात् सपत्नी-वध और पति हत्या का प्रायश्चित्त कर डाला।"[1]

गोस्वामीजी ने कट्टर सनातनधर्मी होने के कारण कर्म फल को महत्ता प्रदान की है। उनके उपन्यासों के द्वारा उनके हिन्दू संस्कारों का ज्ञान भलीभाँति हो जाता है। उनका स्वाभिमान और स्वच्छन्द स्वभाव तथा उच्च स्तर की रसिकता उनकी रचनाओं में सजीव होकर प्रतिबिम्बित हो रही है। उपन्यासों के शिल्प की दृष्टि से उन्होंने प्रत्येक अवयव का विकास करने की चेष्टा की है। "तरुण तपस्विनी" उपन्यास के मुख्य पात्र चपला और सौदामिनी हैं। इस उपन्यास का नायक 'घनश्याम' है। पूरे उपन्यास में रस प्लावित हो रहा है। चपला और घनश्याम के हृदय में शुद्ध प्रेम की लहरें उमगें ल रही हैं। चपला के रूप-वर्णन के लिए गोस्वामीजी ने संस्कृत की तत्सम पदावली का भी यथास्थल प्रयोग किया है। इस उपन्यास में नाटकीयता तथा कविता के द्वारा भी चरित्र-चित्रण हुआ है। चपला के हृदय की दशा इस पद्यांश में प्रगट होती है—

> "को बिसारि छाये कहाँ, पिय घनश्याम सुजान,
> जीवन मदमाती कहौ, जहर करे को पान॥
> ऐ घनश्याम ! स्नेह जल, चित छितिहू में आय,
> बरसौ, सरसौ भावसौ, हरियालौ लहराय॥
> तुम अपनो मन पेखिकै, मोमन देखो क्यों न,
> आस लगाई चिताम सौं, अब सरसौं रस त्यो न॥
> पीतम तेरे विरह में, सूनो जगत लखाय,
> क्यों निहारि मुरि मोहि अब, मन सौं दियो भुलाय॥
> नभ में रवि, जल में कमल, कुसुम माँहि रस पुंज,
> हृदय-हर्म्य में क्यों पिया, रहो न क्यों मधु गुंज॥"[2]

---

१. विजयशंकर मल्ल : "आलोचना", उपन्यास अंक, अक्टूबर, १९५४
लेख : 'उदय काल—प्रेमचन्द के आगमन तक', पृ० ७४।

२. किशोरीलाल गोस्वामी : "तरुण तपस्विनी", पृ० २१।

सौदामिनी भी घनश्याम को हृदय से चाहने लगी थी पर उसने अपने प्रेम का प्रकट करके चपला तथा घनश्याम के प्रेम में कभी बाधा उपस्थित नहीं की। भारतीय संस्कृति के अनुसार लेखक ने सौदामिनी के चरित्र में चार चाँद लगा दिये हैं :

"प्यारे नीरस घनश्याम, अब मैं तुमसे, घर से, माता से और सारे संसार से बिदा होती हूँ। क्योंकि मेरी माँ मेरे पुनर्विवाह की तैयारी कर रही है। हाय क्या ? मुझ जैसी कुलांगनाओं का बार-बार विवाह होता है। मेरा तो विवाह चाहे लोक दृष्टि से न हो—धर्मत तुम्हारे साथ हो गया है और धर्मेन तुम्हीं मेरे पति हो, इसलिए हे पति देवता, तुम जो मुझ से व्यर्थ रूठ रहे हो सो तुम्हारे ही मनाने के लिए मैं सब कुछ छोड़ कर वन को जाती हूँ।"[1]

इस उपन्यास का अन्त सुखान्त है। घनश्याम का विवाह पहले सौदामिनी से और फिर चपला से हो जाता है। इस उपन्यास में भी 'सौतिया डाह" की भावना पल्लवित नहीं होने पायी है। पर एक प्रियतम की दो प्रेमिकाएँ हैं, जो आपस में मिल कर प्रेम से रह कर अपने प्रियतम के प्रेम में अपना जीवन अर्पण कर देती हैं। लेखक ने नारी की पतिनिष्ठा स्थान-स्थान पर बतलाई है और पति का पत्नी के प्रेम में विश्वास व्यक्त किया है। प्रेमी और प्रेमिका को एक दूसरे को प्राप्त करने में जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, पर दवी इच्छा प्रबल रहती है। चपला भी मरते मरते घनश्याम के हाथों से बचा ली जाती है और सौदामिनी के प्राणों की रक्षा भी वही करता है, अतः पति संरक्षक होता है। उसके आश्रय में नारी सुखी है और लेखक का अपना उद्देश्य पूरा हो जाता है, जब सौदामिनी और चपला पुत्र-रत्न का प्रसव करती हैं तथा जयपुर के महाराजा बहादुर घनश्याम को अपनी राजकीय चित्रशाला का चित्रकार बना लेते हैं। सारा परिवार आनन्दपूर्ण जीवन यापन करता है। विधाता की लकीरें अमिट प्रमाणित हो जाती हैं।

'इन्दुमती" गोस्वामीजी ने इसे उपन्यास माना है, जबकि समीक्षकों ने इस रचना को हिन्दी की मौलिक कहानियों में द्वितीय स्थान दिया है। हमने भी लेखक का ही दृष्टिकोण मान लिया है कि यह लघु आकार का उपन्यास है, जो सन् १६०६ में हितचिन्तक प्रेस, काशी से प्रकाशित हुआ। इसकी प्रधान नायिका इन्दुमती और नायक चन्द्रशेखर है। इन्दुमती अपने पिता के साथ विन्ध्यावन के घने जंगल में निवास करती है तथा उसने अपने पिता के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष को जीवन में नहीं देखा है। नायक भी ज्योंही इन्दुमती को देखता है तो उसे 'देव-कन्या' या 'वनदेवी' मान कर आश्चर्य में भर जाता है।

इस उपन्यास में लेखक ने व्याख्यान-पद्धति को अपनाया है। इन्दुमती का पिता चटाई पर बैठा है। सामने दस-बारह आदमी बैठे हैं और पिता व्याख्यान दे

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तरुण तपस्विनी", पृ० ६३।

रहा है : "भाइयो, देखो, स्त्री के लिए इससे बढ़कर और कौन बात सुख देने वाली है। मैंने जो पहले चन्द्रशेखर को देखकर इतना क्रोध प्रकट किया था, उसका आशय केवल यही था कि यदि दोनों में सच्ची प्रीति का अंकुर जमेगा तो दोनों का ब्याह कर दूंगा और जो ऐसा न हुआ तो युवक आप डर के मारे भाग जायगा, परन्तु यहाँ तो परमेश्वर को इन्दुमती का भाग्य खोलना था और ऐसा ही हुआ भी।"[1]

"अहा! जो इन्दुमती इतने दिनों तक 'वनविहगिनी' थी, वह आज अन्तःपुर के पिंजरे में बन्द होने के लिए चली। सच है, परमेश्वर की महिमा का कौन पार पा सकता है।"[2]

लेखक ने इस उपन्यास को भी सुखान्त बनाया है। दैवयोग की बात है कि चन्द्रशेखर में उन सब गुणों की प्राप्ति हो गयी जिनको इन्दुमती का पिता खोज रहा था। कहा भी गया है कि विधि की रेखाएँ अमिट हैं। संयोग ने हो दोनों को स्नेह के अटूट बन्धन में बाँधकर गृहस्थाश्रम के सुखी पथ पर चलने के लिए प्रेरित कर दिया है।

"सुखशर्वरी" भी सामाजिक उपन्यास है। इसके पात्रों में अनाथिनी का ही नाम आगे जाकर 'गृहलक्ष्मी' हो जाता है। वही उपन्यास की प्रमुख पात्र है जिसके परिश्रम और त्याग से पूरे परिवार में 'सुखशर्वरी' का आगमन होता है। उसके अतिरिक्त सरला और सुवदना दो अन्य स्त्री-पात्रों की लेखक ने अवतारणा की है। सुवदना, सरला और अनाथिनी तीनों एक से एक बढ़कर रूपवती हैं। लेखक उनका सौन्दर्य-वर्णन करना उपन्यास में ठीक नहीं समझता क्योंकि उसे भय है कि कहीं 'रूपगर्विता नायिकाएँ रुष्ट न हो जाएँ'।

'अनाथिनी' के साथ हरिहरबाबू के पुत्र सुरेन्द्र का, 'सरला' के साथ 'उदासीन' तथा 'सुवदना' से प्रेमदास का परिणय होता है। 'अनाथिनी' और 'सरला' का कथोपकथन नारीसुलभ कथोपकथन का सुन्दर उदाहरण है—

"अनाथिनी—अपनी चाह की वस्तु नहीं पाने से इस कोमल सुकुमार वय में वे उदासीन हुए हैं।

सरला—वे किसे चाहते हैं?

अनाथिनी—किसे चाहते हैं—अरे एक सामान्य उदासीन की बात पूछ कर तुम क्या करोगी?

सरला—वाह भाई—क्यों न पूछूँ? वे हम लोगों के परम उपकारी हैं, यदि उनका तिल भर भी प्रत्युपकार मैं कर सकूँ तो अपने को धन्य समझूँगी।

अनाथिनी—तुम उनका विशेष उपकार कर सकती हो, परन्तु...... ...

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "इन्दुमती", पृ० ११।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "इन्दुमती", पृ० १५।

सरला—परन्तु क्या ? अनाथिनी ? बताओ, मैं कैसा और कौन सा उनका उपकार कर सकती हूँ ?

अनाथिनी—तुम अवश्य करोगी ?

सरला—करूँगी, प्राण जो देना पड़े तो वह भी—

अनाथिनी—स्वीकार करती हो न ? केवल प्राण नहीं देना पड़ेगा, मन और प्राण दोनों देने पड़ेंगे

सरला—यह क्या ? अनाथिनी !

अनाथिनी—तो प्रतिज्ञा क्या की—अब उनकी अभिलाषा पूर्ण करो ?"[1]

इसी कथोपकथन के बाद अनाथिनी मन्दिर के बाहर आती है और 'उदासीन' को साथ लाकर सरला के सामने खड़ा कर देती है। गोस्वामीजी के कथोपकथन उपन्यासों की कथावस्तु का विकास करने अत्यन्त सहायक हैं। उपन्यासों का प्राण पात्रों की वार्त्ता है, जिसके द्वारा पाठकों की जिज्ञासा की पूर्ति होती है। 'सुखशर्वरी" उपन्यास के कथोपकथनों में स्वाभाविकता और जीवन की सहज गति का सुन्दर आभास मिलता है। लेखक ने अपना तीक्ष्ण दृष्टि से बालिका और वृद्ध के हृदय में पैठ कर कथोपकथन कराया है—

बालिका—बाबा, इस समय चित्त कुछ अच्छा है न ?

वृद्ध—बेटी, मालूम पड़ता है कि एक बार ही अच्छा हो जायगा ? ओ बड़ा कष्ट है। दुष्टों के हाथ से बच कर अब काल के गाल में गिरा चाहता हूँ।

बालिका—बाबा, ऐसी बातें न बोलो। सभी ज्वर से परित्राण पाते हैं। तुम अभी रास्ता चले हो, इसी से ज्यादा कष्ट मालूम होता होगा।

वृद्ध—ठीक है। किन्तु बड़ी यातना है। यह यातना मृत्यु यातना सी बोध होती है। विचार था कि मित्र के घर जाकर तुम लोगों को सुखपूर्वक रख देंगे, हाय, सो नहीं हुआ चाहता।

बालिका—हा—ये बातें क्यों कहते हो। मन में कुचिन्ता का आन्दोलन मत करो। बाबा हाथ से पेट मुहरावें।'[2]

कथोपकथन की भाषा मार्मिक और सहज मुहावरों से पूर्ण है। उपन्यास की भाषा उसके शिल्प में पूर्णता ला देती है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में हृदय के तारों को झंकृत कर देने की अपार शक्ति है। 'चपला" उपन्यास ने तो हिन्दी जगत में एक तहलका सा मचा दिया था। इसकी भूमिका में लेखक ने अपना उद्देश्य तो प्रकट ही कर दिया है, "एक दीन हीन परिवार की शोचनीय स्थिति के साथ वर्तमान शिथिल, उच्छृंखल और बन्धुविहीन समाज चित्र इस इच्छा से यथावत् चित्रित किया

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुखशर्वरी', पृ० ४८।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुखशर्वरी", पृ० २।

गया है कि हमारे आर्य भ्राता लोग इसे विशृंखलाबद्ध करने के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा, प्रयत्न करने में तत्पर हों।"[1]

इस उपन्यास में प्रमुख तीन पुरुष-पात्र हैं—घनश्यामदास, हरिनाथ और राजा ब्रजकिशोर तथा तीन स्त्री पात्र हैं—चपला, कामिनी और कादम्बिनी। इसका नायक घनश्यामदास और चपला नायिका है। समस्त उपन्यास में पुरुष पात्रों की उच्छृंखलता तथा नारी-पात्रों की भिन्न कलाएँ लेखक ने प्रकट की हैं। चपला और उसके प्रियतम के कार्य-कलापों के आधार पर कथा रूप बदलता है। घनश्याम और चपला का बातचीत का उदाहरण स्पष्ट संकेत प्रदान करता है कि विवाह से पहले भी 'नव्य समाज' के पात्रों में कितनी चंचलता है, जिसका यथार्थ चित्रण गोस्वामीजी की लेखनी में हुआ है।

"घनश्याम ने हँस कर कहा—प्यारी, हमारी और तुम्हारी कैद में जमीन आसमान का फर्क है। कहाँ हम खूनी आसामी की तरह बेड़ी-हथकड़ी में जकड़े जाकर सामत भाग रहे हैं और कहाँ तुम रानियों की तरह यों मौज उड़ा रही हो।

चपला ने मुस्करा कर कहा—जी हाँ। ठीक है। आप को रश्क होना ही चाहिए। भला हजरत, मैं उस शख्स के साथ जिसने कि मुझे यहाँ पर लाकर इस आराम के साथ रखा है, शादी करने वाला हूँ कि नहीं ?"

घनश्याम ने कहा—बचपन लड़कपन से हमारा तुम्हारा साथ रहा, पर इस निठुराई के साथ तो तुम हमसे कभी बातें नहीं करती थी ? पर आज क्या है जो यों तुम हमारे कलेजे पर जहरीली छुरी चला रही हो ?

चपला ने इस बात का कुछ भी जवाब न देकर दूसरी बात छेड़ दी और कहा —"भला, यह तो बतलाओ कि जो तुम्हें यहाँ पर कैद कर लाया है, या जो तुम से सादे स्टाम्प पर दस्तखत कराना चाहता है, उसे तुम पहिचानते भी हो ?

घनश्याम—नहीं, मुतलक नहीं, क्या तुमने उस शख्स को पहिचाना ?

चपला—नहीं, मैं भी उसे नहीं चीन्ह सकी, अच्छा अब हम तुम दोनों मिल कर उस शख्स को दुनिया मिलावें और यह जानें कि वह शख्स एक है या दो, जो मुझसे और तुमसे सादे स्टाम्प पर दस्तखत कराया चाहता है।"[2]

गोस्वामीजी के उपन्यासों के मूल में कोई न कोई स्त्री या प्रणयिनी है। उनकी समस्त नायिकाएँ सुन्दर, चालाक तथा चतुर हैं। चपला भी चतुर है, यहाँ तक कि जासूसी के कामों में भी पटु है। उनके उपन्यासों में पात्रों के चरित्र-चित्रण में शृंगारिक उद्दाम भावनाओं का आधिक्य प्राप्त होता है। "चपला" रहस्यपूर्ण उपन्यास है, जिसके चारों भागों में मनुष्य का मन लगा रहता है तथा जो "तत्कालीन नव्य समाज" का चित्र है। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामीजी के उपन्यासों के दूसरे

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "चपला" के निवेदन से उद्धृत।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : 'चपला", चौथा भाग, पृ० ४५।

पक्ष की समीक्षा करते हुए कहा : "यह दूसरी बात है कि उनके बहुत से उपन्यासों का प्रभाव नवयुवकों पर बुरा पड सकता है, उनमें उच्च कामनाएं व्यक्त करने वाले दृश्यों की अपेक्षा निम्न कोटि की वासनाएं प्रकाशित करने वाले दृश्य अधिक भी हैं और चटकीले भी। इस बात की शिकायत "चपला" के सम्बन्ध म अधिक हुई।"[1]

'चपला" उपन्यास की रचना क समय ही लेखक ने अपने विचार प्रकट कर दिये हैं। युगीन उच्छृ खल प्रवृत्तियों की नग्न तथा यथार्थ झाँकी इस उपन्यास ने प्रस्तुत की है तथा उसी आधार पर पात्रों का चरित्र-चित्रण हुआ है। गोस्वामीजी प्राचीन परिपाटी के शृ गारी कवि और लेखक थे, अत पात्रों की शैतानियां और चुहलबाजियां उन्हें रुचिकर लगती थीं। नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं का उन्हें पूर्ण अनुभव था। उनकी अध्ययन-शक्ति गहरी थी। चमेली और मदनमोहन के वार्त्तालाप से नारी तथा पुरुष क वासनामय प्रेम की सूचना मिलती है—

"मदनमोहन—जरा ललिता के घर हो आवें।

चमेली—क्या, आज नहीं गये थे ?

मदन—गये थे सुबह पर इस वक्त भी जाने को जी चाहता है।

चमेली—(जलकर) मुझे इतने चोचले अच्छे नहीं लगते, इतना कह कर उसने मदनमोहन का हाथ पकड कर अपने बगल मे बैठा लिया और बच्चे को उनकी गोद में बैठा कर कहा—अब इस अंधेरी रात के वक्त कहीं जाने का काम नहीं है।

मदन—तुम्हें बार-बार हमने समझाया है कि तुम गैरों की माँ-बहिनों से डाह करना छोड दो पर तुम मानती नहीं। क्या तुम्हें इस बात की मुतलक समझ नहीं है कि सिवा हमारे इस समय उन बेचारियों का कोई मददगार नहीं है।

चमेली—तो तुम से और उन लोगों से वास्ता ?

मदन—(चिढ़कर) और तुमसे हम से वास्ता ?

चमेली—(जल के खाक होकर) मुझ से तुम्हारा क्या वास्ता ? फिर ऐसा ही है तो मुझे तलाक दे दो और ललिता से ब्याह कर लो।

मदन—छि तुम्हारे दिल मे इतनी मार पेंच भरी हुई है ?"[2]

इस उपन्यास के अवाछित प्रसगों को न देखा जावे और यदि "चपला" उपन्यास में वर्णित विशेष परिस्थितियाँ, देश और काल का अध्ययन किया जावे तो गोस्वामीजी की विशाल भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक सूझबूझ का ज्ञान होता है। "चपला" में ही सैकडों फारसी और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग है। "चपला" और "माधवी माधव" उपन्यास दोनों ही एक धरातल के दो छोर हैं। गोस्वामीजी ने

१. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ५५२।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "चपला", भाग २, पृ० ५७।

"चपला" में जिस अनुशासनहीन समाज का चित्र उतारा है, "माधवी माधव" में उससे अधिक अनुशासनपूर्ण सामाजिक मर्यादाएं तथा परम्पराओं का पालन किया है।

"माधवी माधव" गोस्वामीजी का सफल सामाजिक उपन्यास है। ग्रात्म-चरित्र-प्रणाली द्वारा इस उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण हुआ है। उपन्यास का नायक 'माधवप्रसाद' है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण कथा कही गयी है। गोस्वामीजी का 'नायक' अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त है और उसकी भावी पत्नी 'माधवीदेवी', जो इस उपन्यास की 'नायिका' है, भी विदुषी तथा सुशिक्षित है। इस उपन्यास के नायक और नायिका धार्मिक तथा हिन्दू संस्कृतिनिष्ठ प्राणी हैं। वे अपनी सीमाओं से परिचित हैं। विवाह से पहले प्रणय का सूत्र प्रारम्भ हो जाता है, पर नायक और नायिका केवल सम्भाषण और शिष्टाचार के द्वारा अपनी मर्यादाओं से घिर कर एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करते हैं, जिनके साथ उनका जीवन दृढ़ता और पवित्रता की रज्जू से बँधा होता है, उनका परिचय लेखक ने अत्यन्त सुन्दरता से दिया है। यही भारतीय संस्कृति का गौरव है। माधवप्रसाद ने अपनी भावी पत्नी माधवीदेवी के चरित्र का अत्यन्त सूक्ष्मता से परीक्षण किया है। ला० रामप्रसाद अत्यन्त सज्जन, गृहस्थी के भार से दबे हुए तथा सामाजिक प्रतिष्ठाओं के पालन करने वाले व्यक्ति हैं, जिनके पास अपार धन-सम्पत्ति है। बड़ा संयुक्त परिवार है, जहाँ पूजा-अनुष्ठान समय समय पर होते रहते हैं। एक ओर खेती, लगान, महाजनी, किसान आदि की समस्याएं हैं, दूसरी ओर कानूनगो, मुख्त्यार इत्यादि के द्वारा धन की वसूली का प्रश्न है, जिन्हें घर से बाहर के कामों के कारण फुरसत ही नहीं मिलती है। दूसरी ओर, बड़े परिवार में सब प्रकार के जीव हैं—एक ओर दुष्टा और पापिनी उनकी साली 'जमुनादेई' उनके श्यामप्रसाद की विधवा नवयुवती पत्नी है। उनका पहली पत्नी से उत्पन्न पुत्र मदनमोहन है। रामप्रसाद की स्त्री का नाम 'लक्ष्मी' है जो वास्तव में लक्ष्मी है। रामप्रसाद की विधवा बहिन गंगादेई भी यहीं पर रहती थी और उनकी साली सरस्वती भी इसी परिवार में सम्मिलित थी। 'मदनमोहन' और उसकी पत्नी 'मोहिनीदेवी' विष्णु और लक्ष्मी के उदाहरण हैं। ला० रामप्रसाद घर और परिवार की मर्यादा तथा समाज के सामने प्रतिष्ठा बनाये रखने में निरन्तर लगे रहते हैं तथा उनके विपरीत घर के भीतर दुष्ट दीवान का निरन्तर आते रहना और 'जमुनादेई' को अपने चंगुल में कर लेना और उसे चरित्र-भ्रष्ट करना, यहाँ तक कि लेखक ने 'भ्रूण-हत्या' का दृश्य भी उपस्थित किया है, पर साथ ही साथ 'कर्म-फल' भी पापियों को भोगना पड़ता है। हिन्दू धर्म में सदा से कर्म-फल का विधान है, पुण्यात्मा सुखी होते हैं और पापी अपने पापों के भार से दुखी हो जाते हैं। इस उपन्यास के लम्बे-चौड़े घेरे में लेखक ने भौतिक जगत की सामाजिक यथार्थ समस्याओं का सजीव चित्रण किया है। कभी-कभी पाप जाने या अनजाने में कर लेना, उसकी त्रुटि के लिए धार्मिक अनुष्ठान, ब्रह्मभोज, राम कथा का श्रवण, कीर्तन, रामलीला का दर्शन इत्यादि समारोहों का आयोजन, इस प्रकार की सामाजिक परिपाटी ही भारतीय संस्कृति की

निर्माता रही है। उपन्यासों के वर्णवृत्तों ने कथा-शिल्प की दृष्टि से लेखक की प्रतिभा का परिचय दिया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण जीवन के क्रम-विकास के आधार पर यथार्थ हुआ है। कहीं सुख है, कहीं दुख है, कहीं हृदय की व्याकुलता है, कहीं वासना की भूल है, कहीं परम सन्तोष है, कहीं धर्म की ओर दृष्टि है, कहीं त्याग है और कहीं दीन दुखियों पर दया-भाव है। हिन्दू समाज सदा से मानव-कल्याण के आदर्शों को लेकर चला है। भारतीय प्रेम की मर्यादा आदर्शपूर्ण है। प्रेम म पावन भावों को ही सदा विशेष बल मिलता है। समाज मे इसी को सम्मान मिलता है। माधवप्रसाद क मुख स प्रथम दशन मे "माधवीदेवी" के चित्र की एक झांकी अनुपम है—

"उस बालिका की शीतलता, शिष्टता, योग्यता और सरलता को देखकर मैं अत्यन्त चकित, हर्षित, तुष्ट और पुलकित हुआ और उसको बतलाई हुई कुर्सी पर हाथ रखकर मैंने उससे पूछा—'डाक्टर साहेब की तुम कौन हो' ?

वह बालिका—जी, वे मेरे पिता हैं ?

मैंने यह सुनकर मन ही मन कहा—सुन्दरी, जिसके यहाँ तुमने जन्म लिया, वह कुल धन्य है। फिर मैंने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

बालिका ने यह सुन और स्वाभाविक लज्जा से सकुचित हो सिर झुकाये हुए कहा—जी, मुझे लोग 'माधवी' कहते हैं। इस 'माधवी' शब्द में कैसा जादू भरा था कि जिसके सुनते ही मानों मेरे सारे बदन में बिजली दौड़ गयी और रोमांच हो आया।"[1]

लेखक के द्वारा उपन्यास की नायिका का जो चित्र खींचा गया है, वह अतुलनीय है। 'जिन (रवि वर्मा) के चित्रों को मैं पहले बहुत ही सुन्दर निर्दोष समझता था, आज माधवी क सजीव चित्र के आगे वे सभी बिलकुल ही असुन्दर, भंगहीन, फीके और दोषपरिपूर्ण दिखलाई देने लगे। हहन्त, उस समय मुझे इस बात का बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि जगदीश्वर ने मुझे चित्रकार क्यों न बनाया ? वास्तव में यदि मैं अच्छा चित्रकार होता तो निश्चय था कि माधवी का सर्वांग सुन्दर और निर्दोष चित्र मैं लिख डालता। परन्तु जब यह ध्यान आया कि यदि इस (माधवी) के चंचल नेत्र लिखने के समय मेरा चित्त भी चंचल हो जाता, यदि "बन्नो" हो जाता और यदि मन्दस्मित हो उसकी छटा चित्रित करने के समय मेरा हृदय स्वयं विस्मित हो जाता तो फिर मैं क्योंकर अपनी इच्छा के अनुरूप उसका चित्र अंकित कर सकता था।"[2]

"नायक और नायिका के चरित्र के उत्थान के लिए लेखक ने "अंकुर, पल्लव, शाखा, पुष्प, सुरभि तथा पराग" शीर्षक देकर उपन्यास की कथावस्तु का विकास किया है। केवल सद्पात्रों का चरित्र-चित्रण ही नहीं, दुष्ट पात्रों की बात चीत में

१. किशोरीलाल गोस्वामी "माधवी माधव", भाग २, पृ० ७०।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "माधवी माधव", भाग २, पृ० ७३।

अनोखी मरोड पाई जाती है, जिसका अंकन लेखक ने जैसे का तैसा किया है। *जमनादेई और दीवान की बातचीत से उनकी मक्कारी, स्वार्थपरता, दुष्टता तथा* नीचता का ज्ञान होता है—

"*जमना ने फिर कहा—क्यों, क्या तुम मुझे जरा सा जहर न ला दोगे ?*"

दीवान ने उदासी से कहा—हो, प्यारी। तुम्हीं बतलाओ कि इसमें मेरा क्या कसूर है ? *अरे, अपने कर्मों का फल सभी को भोगना पड़ता है, पर गुप्त प्रेम का* फल (अर्थात् पुत्र-प्रसव) बड़ा भयानक होता है। अस्तु, अब जिसमें यह व्याधि चुपचाप *टल जाय वही उपाय करना चाहिए।*

जमना की आँखों से आँसू बह चले और लगती हुई आवाज से वह कहने *लगी—बस, अब तुम मुझे जरा सा जहर ला दो और मैं उसे खाकर सो रहूँ, क्योंकि* अब सिवा इसके और कोई दूसरा उपाय ऐसा नहीं है जिससे मेरी आबरू बच सके।

दीवान—घबराओ न्हीं, अधीर मत होओ और जरा धीरज धरो।

जमना—धीरज, छि, छि, अब धीरज कहाँ, *बस अब मैं अपनी जान देकर अपने मुखड़े को लाली रखूँगी और इस पाप से छुटकारा पाऊँगी. देखो—दीवान जी,* तुम्हारे पीछे मेरा सर्वस्व गया, इज्जत गयी, आबरू गयी, रुपये गये, पैसे गये, धर्म गया, कर्म गया, लोक गया, परलोक गया, अब अन्त में जान भी जाती है। खैर, इसकी मुझे कुछ भी पर्वा नहीं क्योंकि वह घड़ी ही बड़ी खोटी थी, जिस घड़ी तुम पर मेरी *पाप-दृष्टि पड़ी थी और पाप के परिणाम को न सोचकर मैं तुम्हारे प्रेम में फँसी थी।*"[1]

दुष्ट दीवान को भी अत्यन्त हृदय-विदारक मृत्यु होती है कि कोई उसके नाम पर रोने वाला भी नहीं मिलता है। सारे समाज में उसकी बदनामी होती है तथा जमनादेई भी अपने पापों के फलस्वरूप कुढ़-कुढ़ कर, हृदय में घुट-घुट कर अपने प्राणों को त्याग देती है, शर्म में दबकर मर जाती है। गोस्वामीजी का हृदय पापियों को सदा लांछित करता है और उनको दुखों में ही तड़फा-तड़फा कर मारने के लिए विवश कर देता है।

"राजकुमारी" उपन्यास भी एक ओर सामाजिक है, दूसरी ओर उसमें भी प्रेम लीलाएँ तथा अनोखे ढंग की ऐयारियों का वर्णन लेखक ने किया है। इसमें भी 'भाग्य' की अपूर्व महिमा दिखाई गयी है। लेखक का उद्देश्य है कि भाग्य के फेर में पड़कर भला मनुष्य भी बुरे कार्य करने लगता है। कभी-कभी भले होने के बाद भी अनेक प्रकार के दुख उठाने पड़ते हैं। राजा हीराचन्द, मानिक, दीवान रामलोचन, ब्रह्मचारी रामानन्द अपने-अपने ढंग के पुरुष पात्र हैं, जिनमें धूर्तता, नमकहरामी और एक-दूसरे के प्रति छल-कपट का भाव है तथा राजकुमारी और सुकुमारी *आदि नारी पात्र हैं जिनके द्वारा विचित्र स्वर्गीय प्रेम और गुप्त रहस्य की अद्भुत* लीलाओं का भेद खुलता है।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "माधवी माधव", भाग १, पृ० ६५-६६।

"माधवी माधव" के समान स्तर का "राजकुमारी" भी गोस्वामीजी का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इसमें 'भाग्य का चक्र' प्रबल है और सारे पात्र भाग्य चक्र में आकर ही चलते हैं ऊँचे उठते हैं और अपने कर्मों के अनुसार पतन के गर्त में दब जाते हैं। 'राजकुमारी' का सुन्दर रंगीन चित्र भी लेखक ने इस पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर छापा है, जो समस्त उपन्यास में घटित होने वाली घटनाओं का केन्द्र-बिन्दु है।

गोस्वामीजी ने वृहद् और लघु दोनों आकार के उपन्यासों की रचना की है। "लावण्यमयी" उनका लघु आकार का उपन्यास है, जिसके नायक 'सुधाकर' और नायिका 'लावण्यमयी' है। जिस वैष्णवी की यह बेटी है, वह वास्तव में महारानी चन्द्रावली है, जिसने अपनी लाखों की सम्पत्ति अपनी बेटी को दे दी है। रमेशबाबू की स्त्री का नाम सरला था। वे हरिपुर ग्राम के प्रधान धनिक थे, उनके पास अनेक दास-दासी गए थे। गोशाला म सैकड़ों गौ, बैल, और भैसें थीं। वे पुत्र के अभाव में सदा दुखी रहते थे। अपनी पत्नी सहित उन्होंने दान, तीर्थ, जप, कथा श्रवण आदि किया और कुछ दिनों बाद उनकी स्त्री सरला ने 'सुधाकर' नामक पुत्र को प्रसव किया। प्रकट रूप में लावण्यमयी उनकी पुत्री रही, पर बाद में सारा भेद खुलता है और सुधाकर का विवाह लावण्यमयी क साथ हो जाता है। यह उपन्यास सुखान्त है। सरल, सहज कथोपकथन के आधार पर लेखक ने पात्रों का चरित्र चित्रण किया है। लेखक ने कथा की समाप्ति पूर्ण रूप से की है, जिससे पाठक के हृदय को पूर्ण तुष्टि मिल जाती है।

इस उपन्यास के 'आभाष' में लखक ने अपने इस उपन्यास क लक्ष्य को प्रकट किया है—'अभी तक हिन्दी क रसिकों क पूर्ण अभाव के कारण उपन्यास का भी अत्यन्ताभाव है। यदि रसिकों की दृष्टि इधर आकर्षित होगी तो उपन्यास का प्रचार क्यों न होगा ? अस्तु, आज हम हिन्दी के प्रेमियों के सम्मुख इस 'लावण्यमयी' नामक उपन्यास को लेके सम्मुख हुए हैं। यदि रसिक गण इससे कुछ भी आमोद लाभ करेंगे तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।"[1]

गोस्वामीजी की अनुपम लेखन-प्रतिभा ने 'लीलावती" नामक सामाजिक उपन्यास को भी जन्म दिया है। इसमें भी एक ओर आकर्षण से पूर्ण मनोरंजक घटनाएं हैं तथा दूसरी ओर 'कर्मवाद' की प्रतिष्ठा है। अच्छे कार्यों का अच्छा फल तथा बुरे कार्यों का बुरा फल होता है—यही इस उपन्यास का अन्त है। यह लगभग २५० पृष्ठ का वृहद् उपन्यास है, जिसका प्रकाशन श्री सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से हुआ था। अब दुबारा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी के द्वारा इसका प्रकाशन हो रहा है। इस उपन्यास की शैली अत्यन्त मार्मिक तथा पाठकों के हृदय को स्पर्श करने वाली है। स्वयं लेखक ने इसे पाठकों के लिए उपयोगी उपन्यास बतलाया है। रचना-कौशल की कसौटी पर यह सफल प्रमाणित हुआ है।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "लावण्यमयी" के 'आभाष' से।

"चन्द्रावली वा कुलटा कौतूहल" भी सामाजिक उपन्यास है, पर स्थान-स्थान पर इसमें कौतूहल बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। इसकी प्रमुख नायिका 'चन्द्रावली' है। इसके प्रमुख नारी-पात्र चन्द्रावली, चम्पा और जुन्नी हैं। सामाजिक होते हुए भी यह उपन्यास पूर्णतया जासूसी बन गया है। चन्द्रावली का सारा माल सरकार ने ले लिया है। बाबू चन्द्रिकाप्रसाद पुरुष-पात्र है, जो अपने जासूसी मित्र यदुनाथ की सहायता से 'चम्पा' और 'चन्द्रावली' की वास्तविकता का पता लगाते हैं क्योंकि दोनों स्त्रियों की मुखाकृतियाँ एक समान मिलती थीं।

"चन्द्रिका" भी इसी प्रकार का उपन्यास है जिसकी नायिका स्वयं 'चन्द्रिका' है तथा जिसकी हत्या की खबर ने पुलिस और जासूस कार्यालय में हलचल मचा दी है। उसके पिता बद्रीदास ने अपनी बेटी चन्द्रिका के लिए अपनी 'विल' लिख दी थी जिसमें अपार सम्पत्ति का योग था। कौतूहल-वृद्धि तथा गुप्त भेदों का पता लगाने की विधि लेखक ने अपूर्व मनोरंजक ढग से इन उपन्यासों में बतलायी है। लेखक स्वयं ही अपने कथन द्वारा पाठकों की जिज्ञासा की तुष्टि करता चलता है। लेखक ने "चन्द्रावली और चन्द्रिका" में हत्या की खोज के लिए 'जासूस' की अवतारणा की है, पर उसे उतना चालाक नहीं बनाया है, जितना बनाना चाहिए, इसलिए उसके जासूसी कार्यों से पूरा कौतूहल उत्पन्न नहीं होने पाता है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में हृदय को दहलाने वाले दृश्य उपस्थित नहीं होने पाते, पर साथ ही साथ 'हास-परिहास' का भी पात्रों के कथोपकथन द्वारा आयोजन हो जाता है, जिससे उनकी रचनाओं में मन को रमा देने की अपार शक्ति वर्तमान रहती है—

"मैं नीचे उतरने के लिए सीढ़ी की ओर बढ़ा ही था कि होटल के प्रधान स्वत्वाधिकारी सेठ मानिकचन्द मुझसे मिलने आ गये। परस्पर हाथ मिलाने, 'जय श्रीकृष्ण' करने और कुशल प्रश्न के अनन्तर उन्होंने कहा—

क्षमा कीजियेगा, मैंने आप के आने का हाल अभी सुना।

मैंने कहा—वाह, इस बात की क्षमा नहीं है, क्योंकि मैं आपके यहाँ आऊँ और आप इतनी देर के बाद दर्शन दें, भला ऐसे स्थान में कभी क्षमा की आशा की जा सकती है। मेरे परिहास को सुनकर सेठ मानिकचन्द हँसने लगे।"[१]

'कथोपकथन' में बातचीत की वक्रता तथा व्यावहारपटुता पाई जाती है। "अँगूठी का नगीना" गोस्वामीजी का सुन्दर तथा सरल उपन्यास है। गोस्वामीजी ने इसे 'गार्हस्थ्य उपन्यास' की श्रेणी में रखा है। यह सचित्र उपन्यास है। इसके प्रमुख पात्र 'लक्खी' अथवा (लक्ष्मीदेई) और मदनमोहन हैं। लक्खी नायिका है और मदनमोहन नायक है। उनकी बहिन मालती है तथा उसका पति गुलाबचन्द है। मदनमोहन के पिता का नाम कन्दर्पमोहन है और माता का नाम योगमाया है।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "चन्द्रिका", पृ० ३।

जवाहरलाल उसका मित्र है। मदनमोहन प्रमुख पात्र है, जिसके चारों ओर कथा-चक्र घूमता है।

इस उपन्यास के द्वारा भारतीय रूढ़ियाँ और उनके द्वारा मनुष्य का जीवन निर्मित होना स्पष्ट प्रकट होता है। 'मदनमोहन और लक्ष्मी की माँ' की बातचीत से समाज की व्यवस्था तथा उसमें दीन-दुखियों के जीवन का चित्र उपलब्ध होता है। लक्ष्मी की माँ का नाम 'कालिन्दी' है।

"मदनमोहन—अच्छा तो घर-गृहस्थी क्यों कर चलती है ?

लक्ष्मी की माँ—बेटा, मेरी गृहस्थी अचल हो रही है। यह क्या चलेगी? दस-बीस बीघे खेत हैं, सो भी रामसरन पांडे दबाये बैठा है। जो कुछ यह हाथ उठाकर दे देता है, उसी से दिनरात में किसी तरह दो दाने अन्न पेट में डाल लेती हूँ और अब यह भी न रहा तो कोरा उपास और क्या ?

मदनमोहन—रामसरन बड़ा बेईमान है। अच्छा मैं देखूँगा। बाबूजी से कह सुनकर कोई उपाय हो सकेगा तो अवश्य करूँगा।

बुढ़िया ने मानों आकाश का चाँद हाथों पाया। वह गदगद हो मदनमोहन के पीठ पर हाथ फेरती हुई बोली—बेटा तुम्हीं लोगों की सरन में पड़ी हूँ, क्योंकि मुझसे अनाथिन कौन है ? जो कुछ हो सके तो इसका उपाय जरूर करना।

मदनमोहन—हाँ-हाँ, आप इसकी फिकर न करें—क्यों मैया आपकी लड़की का ब्याह हो गया है ?

इतना सुनते ही लक्ष्मी ने एक बेर तिरछी चितवन से मदनमोहन की ओर देखा, फिर वह अपनी साड़ी सँवार और थोड़ा घूँघट काढ़ कर सिमट गयी।

बुढ़िया ने कहा—नहीं बेटा, अभागिन की लड़की ठहरी, कैसे ब्याह हो, मेरी प्यारी लक्ष्मी पन्द्रह बरस की हो चुकी पर अभी तक कहीं कोई बात पक्की नहीं हुई।

मदनमोहन—(आश्चर्य से) ऐं, ऐसी सुन्दर और सुघड़ लड़की का ब्याह अभी तक नहीं हुआ ?"[1]

उपन्यास के कथोपकथन का ढंग सरल है तथा कथा का स्वभावतः विवाद इसके द्वारा प्रकट होता है। इस उपन्यास में मार्मिक, सहज और पात्रों के अनुकूल ही कथोपकथन अवतरित हुआ है।

कथा-शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है, जैसा रचना के नाम से ही प्रकट होता है। जो स्थान "नगीने की अँगूठी" का है, वही स्थान उनके अन्य उपन्यासों में इसका है। एक सामाजिक, पारिवारिक तथा दीन-हीन परिवार के जीवन की कथा इसमें वर्णित है। लेखक ने विरोधी परिस्थितियों के द्वारा कथावस्तु को सफल चित्रित किया है, जिससे उपन्यास की प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "अँगूठी का नगीना," पृ० ७।

है। आदि से अन्त तक कथा धारावाहिक रूप से मर्म को स्पर्श करती है। कथा के प्रारम्भ के बाद घटनाओं के घात-प्रतिघात के साथ उपन्यास में भी 'चरम सीमा' परिलक्षित होती है जबकि चारों ओर घोर निराशा तथा कलह का वातावरण बन जाता है तथा उसके साथ ही पाठकों के हृदय में अपूर्व जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि 'अब क्या होगा', कभी बेचारी 'लवंगी' के दुखों पर समवेदना होती है कभी 'मदनमोहन' के भाग्य पर तरस आता है, पर काल-चक्र चलता रहता है और दुख के बाद सुख तथा सुख के बाद का दु:ख का आवागमन ही मानव-जीवन को सर्वांगीण बनाने में अधिक सहायक होते हैं। भौतिक जगत के प्राणी का यही जीवन-दर्शन है। वह दुखों को अपने पापों का परिणाम सोचता है और सुखों को देखकर पूर्व जन्म के पुण्यों की कल्पना करने लगता है। इसी माया-जाल में वह सदैव बँधा रहता है। "कन्दर्पमोहन" का चरित्र अनोखे अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य द्वन्द्व से पूर्ण है। एक ओर उनके पास पिता का हृदय है कि वे अपने बेटे 'मदनमोहन' को दुखी नहीं देख सकते हैं, दूसरी ओर वे धनवान जमींदार हैं, जिनका केवल एक पुत्र है और उसके विवाह के लिए उनके हृदय में नाना प्रकार की महान् इच्छाएं हैं, जो अपने बेटे के विवाह में वे पूरी करेंगे।

कन्दर्पमोहन प्रारम्भ में क्रूर पात्र के रूप में प्रकट होता है—"इन दोनों कम्बख्त माँ-बेटियों को बाँधकर कोठी पर ले जाओ और उस कालकोठरी में कैद करो, जिसमें बदमाश रियाया बन्द करके रक्खी जाती है। रात भर इन दोनों को यों ही बन्द रक्खो, सवेरे इन दोनों का मूड़ मुड़वा, मुँह काला करवा, गधे पर चढ़वा और ढोल पिटवाकर देश निकाला दे दिया जायगा, जिससे औरों को डर हो और ऐसे खोटे काम करने की किसी को हिम्मत न हो। देखो तो, इस कम्बख्त बुढ़िया की बदमाशी कि इसने मेरे ही घर को चौपट करने की ठानी।"[1]

अन्त में, जब सारा रहस्य खुलता है, तब वे ही कहते हैं—"इतना सुन और लज्जा से सिर झुका कर राजा कन्दर्पमोहन ने कहा—सच है, उस (लवंगी की माँ) का ऐसा सोचना ठीक ही था क्योंकि दुष्ट रामसरन के दम-झाँसे में आकर मैंने उन माँ-बेटियों का जैसा प्यार अपमान किया था, उससे उस बिचारी को यह साहस ही कब हो सकता था कि वह अपनी लड़की के ब्याह की बात मेरे आगे चलाने का इरादा करती।"[2]

जीवन के विभिन्न पहलुओं की ओर गोस्वामीजी का ध्यान गया है। गम्भीर स्थलों के अतिरिक्त ननद और भाभी का हँसी-विनोद का सुन्दर प्रसंग भी लेखक ने प्रस्तुत किया है—

"लवंगी मालती का हाथ पकड़ कर उसे अपने कमरे में ले गयी और गद्दी पर उसे बैठा और प्रणाम करके बोली—बीबीजी, पालागन!!

१ किशोरीलाल गोस्वामी : "अँगूठी का नगीना", पृ० ४७।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : अँगूठी का नगीना", पृ० १७८।

यह सुन और नाक-भौं सिकोड़कर मालती ने कहा—चलो हटो, मुझे न छेड़ो, मैं तुमसे नहीं बोलती।

लवङ्गी—(मालती का पैर धर कर) क्यों। मुझ से क्या अपराध हुआ ?

मालती—(अपना पैर खींचकर) बस चुप भी रहो, इतना उपद्रव मचा चुकी और फिर भी बिचारी यों कहती है कि मुझ से क्या अपराध हुआ ? भला इस ढिठाई का भी कुछ ठिकाना है ?

लवङ्गी—(मालती की ठोढ़ी पकड़ कर) अच्छा, जरा यह रूठना तो कोई, देखे।

मालती—बस, कहे देती हूँ कि मुझे जादे न छेड़ना।

लवङ्गी—(मुस्कराकर) क्यों—न क्यों छेड़ूँ। और ऐसे होली के दिनों में।

मालती—बस, बहुत चोचले न बघारो और चुप हो जाओ।

लवङ्गी—आखिर कुछ बात भी तो हो ?

मालती—रात की बात क्या भूल गयी ?

लवङ्गी—कौन सी बात ? दुलत्तियाँ झाड़ने की या हाथ फटकारने की ?

मालती—(चिढ़ चिढ़ाकर) देखो भाभी। मैं कहे देती हूँ कि जो तुम मुझे इतना तंग करोगी तो मैं अपना सिर पीट डालूँगी।

मालती पतुरिया और गुलाब निरा भड़ुवा।"[1]

लेखक के हृदय की रसिकता असीम हो उठी है। उन्होंने पति पत्नी के पवित्र प्रेम की कल्पना भी इस उपन्यास में चरितार्थ की है, जो इस लोक में दुर्लभ है, पर इसी के कारण भारत भूमि अमरों की धरा कहलाने में सफल हुई है।

"मदनमोहन—प्यारी, अब तुम जीते जी कभी भी मेरे हृदय से अलग नहीं हो सकती। मैं नारायण से बार-बार यही विनती करता हूँ कि जिस दिन मेरा मन तुम से उचट जावे, उसी दिन यह तन भी छूट जाय।

इतना सुनकर त्योरी बदल कर लवङ्गी ने कहा—बस चुप भी रहिये और ऐसी खोटी बात मेरे सामने मुँह से न निकालिये। प्राणपति, मैं तो आपके चरणों की जूती हूँ जब चाहे इसे दूर उठा फेंकिये।"[2]

"राजसिंह" और "इन्दिरा" दोनों ही गोस्वामीजी के बंगला से हिन्दी में अनूदित उपन्यास हैं। "राजसिंह" में राजसिंह और चंचलकुमारी का चरित्र चित्रण हुआ है। राजकुमारी चंचल का लड़कपन और धर्म में दृढ़ता इस रचना में स्पष्ट लक्षित होती है और उदयपुर के क्षत्रिय कुल-भूषण भारत गौरव महाराणा राजसिंह का वीरतशाली चरित्र अत्यन्त मनोहारी ढंग से वर्णित है। इस पुस्तक के द्वारा राजपूतों का जातीय जोश तथा मुगलकालीन विलासितापूर्ण आदि अनेक कल्पित प्रकार के चित्र मिलते हैं। हिन्दुओं का जातीय गौरव गोस्वामीजी की कल्पना

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "अँगूठी का नगीना", पृ० २१२-२१३।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "अँगूठी का नगीना", पृ० १२०।

को सदा आवृत्त किये हुए है। "राजसिंह" के समान "इन्दिरा" भी बंगला-साहित्य के उपन्यास-सम्राट् बंकिमचन्द्र की रचनाओं से गोस्वामीजी ने हिन्दी में अनुवाद किया है। यह उपन्यास अत्यन्त सुखद तथा मनोरंजक है। 'इन्दिरा' और उसके पति का सरस तथा मार्मिक चित्र इस उपन्यास में वर्णित है। 'इन्दिरा' नायिका है। उसे ससुराल जाते समय डाकू लूट लेते हैं। वह मार्ग भूल जाती है और एक वकील के घर पर रह कर 'रसोइया' का काम करती है। 'इन्दिरा' का त्याग और उसकी अपूर्व पतिनिष्ठा का लेखक ने अत्यन्त सुरुचिपूर्ण वर्णन किया है। 'इन्दिरा' में भारतीय नारी के सच्चे आदर्शों की प्रतिष्ठा हुई है। "इन्दिरा" सुखान्त उपन्यास है। नायिका को अपने पति से 'पर-स्त्री' के रूप में भेंट हो जाती है और वह भी उसे 'पर-नारी' समझ कर ले भागता है, पर अन्त में सारा भेद खुल जाता है और नायक तथा नायिका का सुखद मिलन होता है। इस उपन्यास में कथा-शिल्प उच्चकोटि का पाया गया है, जिससे अनूदित होकर भी इसकी प्रतिष्ठा मौलिक रचनाओं में हुई है।

गोस्वामीजी ने हिन्दी-साहित्य में प्रथम बार ऐतिहासिक उपन्यासों की रचने का बीड़ा उठाया था और मूल जन्मदाता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा हुई। केवल सामाजिक और पारिवारिक ही नहीं, ऐतिहासिक उपन्यासों को रचने के लिए भी उनकी लेखनी चल पड़ी थी। उन्होंने मुगलकालीन इतिहास तथा मुसलमानी शासन को ही अपने उपन्यासों का मूल आधार बनाया है।

डॉ० गोविन्दप्रसाद शर्मा ने कहा है : "भारतीय गौरव की स्थापना और विदेशी शासकों के स्वार्थमय रहस्यों का उद्‌घाटन करने के ध्येय से गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में इतिहास का आधारमात्र रखते हुए अपनी कल्पना के सहारे पात्रों और घटनाओं की रचना द्वारा अधिकतर प्रेम-कहानियों से भरी हुई कथाएँ प्रस्तुत की हैं। उनके कथानकों में घटनाओं की भरमार है। गोस्वामीजी के समय में तिलस्मी और ऐयारी की परम्परा अत्यन्त लोकप्रिय थी, इसलिए उसे किसी न किसी रूप में अपनी रचनाओं में उन्हें सम्मिलित रखने का लोभ वे संवरण नहीं कर सके। परिणामतः उनके प्रायः सभी उपन्यासों में कुछ प्रकरण या कुछ प्रसंग तिलस्मी महलों, सुरंगों आदि से भरे मिलते हैं। उनकी "लखनऊ की कब्र" तो प्रारम्भ से अन्त तक तिलस्मी व्यापारों से भरा हुआ है।"[1]

फिर भी (हिन्दी) साहित्य में नवीन युग एवं नूतन दिशा को प्रारम्भ करने वाले गोस्वामी किशोरीलाल ही थे। भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध साहित्यिक पं० प्रतापनारायण मिश्र जब "हिन्दुस्थान" के सम्पादन विभाग में थे, उस समय उनकी प्रेरणा से उस पत्र में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने वाला "हृदय हारिणी" शीर्षक का उपसंहार सहित "लवंगलता" नाम का गोस्वामीजी द्वारा रचित हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक

१. गोविन्दप्रसाद शर्मा : "थीसिस—हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन", पृ० ४१।

ऐतिहासिक उपन्यास है। इसी प्रकार उनकी रची हुई "इन्दुमती" सर्वप्रथम मौलिक हिन्दी की कहानी है, जिसे उन्होंने लघु उपन्यास माना है। गोस्वामीजी की रचनाओं में भारतीय संस्कृति, सामाजिक मान्यताओं और रीति-रिवाज तथा कर्मवाद का अधिक समर्थन प्राप्त होता है। "हृदय हारिणी" की नायिका कुसुमकुमारी तथा नायक नरेन्द्रसिंह कर्मनिष्ठ तथा शूरवीर पात्र हैं। नायक में ओज तथा शौर्य-गुणों की भरपूर मात्रा है और नायिका में प्रेम, त्याग निष्ठा तथा करुणा ओत-प्रोत है। लेखक के द्वारा कुसुम 'आदर्श रमणी' के स्थान पर प्रतिष्ठापित हुई है। इस कथोपकथन के द्वारा 'आदर्श रमणी' के गुणों का पाठकों का परिचय मिल जावेगा—

"वीरेन्द्र (नरेन्द्रसिंह)—प्यारी कुसुम ! जैसे सर्वस्व दान देकर बलि ने भगवान श्रीवामनजी को सदा के लिए अपना रिनियाँ बना लिया था, जैसे ही तुमने भी आज अपना सर्वस्व देकर मुझे सदैव के लिए अपना बिना दाम का ... ..."

इसके बाद नरेन्द्र जो शब्द कहना चाहते थे, कुसुम ने उनका मुँह बन्द करके उस शब्द का कहना रोक दिया।

वीरेन्द्रसिंह ने फिर कहा—प्यारी कुसुम ! सच्ची बात तो यह है कि अब तक मैं तुम्हें नाहक भूल भुलैयां में डाल कर छला रहा था, इसलिए कि तुम्हारे इस भाव को देख देख कर मुझे अपार आनन्द होता था, नहीं तो जिस दिन पहिले पहल माला *बेचती हुई बाजार में देखा था, उसी दिन मैंने अपना मन बिना कुछ* सोचे-विचारे ही तुम पर निछावर कर दिया था और क्यों कुसुम तुमने रंगपुर के महाराज से विवाह न करके मुझे सरीखे एक अदने सिपाही को क्यों पसन्द किया जो कि किसी भी भाँति कृष्णनगर की राजकन्या के योग्य वर नहीं हो सकता।

कुसुम ने प्रेम से गद्गद होकर कहा—"प्राणनाथ, भला, जिन बातों से मेरे कलेजे में ठेस लगती है, बारम्बार दोहरा तेहरा कर कहने से तुम्हें *कौन सा सुख* मिलता है ? तुम सच जानो, मैं धर्म को साक्षी देकर कहती हूँ कि तुम्हारी पत्नी बन तुम्हारे साथ बीयाबान जंगल में जाकर कुटी में रहना बहुत अच्छा समझती हूँ, पर किसी दूसरे की रानी होकर राजप्रासाद में नहीं रहना चाहती।

वीरेन्द्र ने कहा—"प्रियतमे, आज मुझ सा भाग्यवान पुरुष कदाचित् त्रैलोक्य में कोई भी न होगा।"

कुसुम—*नहीं, नहीं, यों नहीं,* बरन् यों कहना चाहिए कि आज मुझ सी बड़भागिन स्त्री विधाता की सृष्टि में दूसरी न होगी।"[1]

भारतीय दृष्टि से पात्रों के चरित्र-चित्रण की सर्वश्रेष्ठ प्रणाली कथोपकथन है। प्रथम साहित्यकोटि के ऐतिहासिक उपन्यासकार किशोरीलाल ने चरित्र-चित्रण की ओर अपने उपन्यासों में ध्यान दिया है। चरित्र-चित्रण की प्रमुख दो प्रणालियाँ

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : 'हृदय हारिणी,' पृ० ४८।

है—एक तो वह जिसमें कोई भी लेखक कथा कहने की पद्धति अपनाता है और स्वयं अपने-आप ही पात्रों और घटनाओं का वर्णन करते चलता है। दूसरी वह प्रणाली, जिसमें नायक या नायिका अपने सम्बन्ध में तथा होने वाली घटनाओं से पाठकों को परिचित कराते हैं। गोस्वामीजी ने दोनों प्रणालियों का अनुसरण किया है। कुछ उपन्यास आत्मचरित्र प्रणाली के आधार पर रचित हैं और अन्य में लेखक स्वयं ही घटनाओं के क्रम-विकास अथवा उपन्यास के चरित्रों से पाठकों को परिचय देता चलता है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में पात्रों की जीवन धारा निश्चित धारा के अनुसार प्रवाहित होती है। रीतिकालीन नायक-नायिकाओं के चित्रों को अंकित करते समय प्रेम-व्यापारों के वर्णन में अश्लीलता भी आ जाती है। कुछ पात्रों के जीवन के कार्य-व्यापार तो उलझे तथा रहस्यमय प्रतीत होते हैं, जैसे "लखनऊ की कब्र" के 'यूसुफ और आसमानी' तथा "सोना और सुगन्ध" के 'निहालचन्द', जिनका सारा जीवन तिलस्मी महलों की छानबीन करने तथा सुरंगों में ही व्यतीत होता है।

फिर भी कुछ पात्रों का चरित्र चित्रण तो गोस्वामीजी की लेखनी से सर्वसुन्दर हुआ है जैसे "तारा" का 'अमरसिंह', "हृदय हारिणी" की 'कुसुमकुमारी,' "कनक कुसुम" की 'मस्तानी,' "सोना और सुगन्ध" का 'मानिकचन्द,' 'रजिया बेगम' की 'रजिया' और 'याकूब', "लखनऊ का कब्र" की 'आसमानी' और "मल्लिकादेवी" में नरेन्द्रसिंह आदि पात्र उस उच्च कोटि के चरित्र हैं, जिनके जीवन के घात प्रतिघातों में पाठकों को अत्यन्त आकर्षण है, फिर भी उनके प्रायः सभी उपन्यासों में एक ही प्रकार के पात्र हैं। कुछ पात्र तो पुण्यात्मा तथा सत्यनिष्ठ हैं और परोपकार जिनके जीवन का लक्ष्य है और कुछ कामुक तथा भोगविलासी और अत्याचारी हैं। कुछ पात्र आदर्श तथा धर्म और नीति के पुजारी हैं। इसी प्रकार स्त्री-पात्रों में कुछ तो भारतीय संस्कृति और आदर्श की प्रतीक हैं, कुछ कामुक, चालाक तथा विलासिनी प्रवृत्ति की हैं। नायक के द्वारा नायिका को प्राप्त करने के लिए युद्ध इत्यादि साहसिक कार्यों को भी करके विजयी होकर अपने जीवन का प्रारम्भ करना होता है।

"लवंगलता" उपन्यास में लवंगलता ही नायिका है और मदनमोहन नायक है, पर इस उपन्यास को "हृदय हारिणी" का उपसंहार स्वयं लेखक ने बताया है। लवंगलता का चरित्र भी आदर्श नारी का जीवन है, जैसा लेखक ने स्वयं उसके पति मदनमोहन से कहला दिया है—

"मदनमोहन—यह सच है, किन्तु प्यारी! हृदयेश्वरी! संसार में विशेषकर गृहस्थाश्रम वे धन्य हैं जिनके घर तुम्हारी जैसी गृहलक्ष्मी निवास करती हैं। इसी से कहते हैं कि जहाँ तुम्हारे जैसी लक्ष्मी निवास करती हैं, वहाँ किसी प्रकार की दुर्गति (दरिद्रता) नहीं आ सकती और वहाँ पर नरक का भयानक स्वप्न भी अपना आधिपत्य नहीं जमा सकता।"[1]

---

[1] किशोरीलाल गोस्वामी : "लवंगलता," पृ० ८४।

'लखनऊ की कब्र" गोस्वामीजी का अत्यन्त लम्बा उपन्यास है, जिसमें अनेक पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए स्थान तथा समय उपलब्ध होता है। 'शाही महलसरा' में घटने वाली घटनाएँ और उसके चक्र में घूमने वाले पात्रों का लेखक ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से वर्णन किया है। इस उपन्यास के प्रमुख पुरुष-पात्र नसीरुद्दीन, सादिक और नसीरुद्दौला हैं तथा इस महलसरा में तीन सौ नवयुवतियाँ हैं, जिनमें प्रमुख आस्मानी, मलिका जमानी, दुलारी, दिलाराम तथा सुदकिया आदि नारी चरित्र हैं। तिलस्मी कार्यों के भीतर ही पात्रों का चरित्र चित्रण हुआ है। लखनऊ के मशहूर मुसब्बिर याकूब के बेटे युसुफ का चरित्र भी अनोखा रंग लाया है। बादशाह नसीरुद्दीन और दुलारी की बातचीत से शाही महलों की वासनापूर्ण हरकतों का आभास मिलता है—

'दुलारी ने उसके (नसीरुद्दीन) के गले में बाहें डालकर बड़े नाज-नखरे के साथ कहा—'प्यारे दोस्त ! जो मैंने इस बात का मुहद किया था कि बगैर शादी हुए, तुम्हारे कमरे में न आ सकूँगी लेकिन कल तुमने मेरे दिल पर ऐसा बुरा जादू कर दिया कि यह कम्बख्त किसी तरह तुम्हारी जुदाई गवारा न कर सकी और मुझे मजबूर होकर आखिर आना ही पड़ा।

यह सुनकर नसीरुद्दीन ने उसे प्यार से लपट कर उसके गालों को चूम लिया और कहा, अल्लाह, यह तुमने खूब किया, मैं भी बगैर तुम्हारे, मिसाल मछली के तड़प रहा था। मैंने हरचन्द चाहा कि आस्मानी आवे तो तुम्हारे पास भेजूँ लेकिन वह कम्बख्त आज आई ही नहीं।

दुलारी—वह शायद किसी जरूरी काम में फँस गयी होगी। इसी वजह से न आई होगी। बस इसीलिये मैं आज का आना उस पर जाहिर नहीं किया चाहती कि वह यह जान लेगी कि मैं अब आप ही आप आने लगी तो शायद दिल में कुछ दूसरा ख्याल करे।

नसीरुद्दीन—बेहतर, मैं आज तुम्हारे आने का हाल उस पर जाहिर न करूँगा लेकिन तुम अकेली महल के अन्दर क्यों कर आ सकी।'"[1]

पुरुष-पात्रों की कामुकता, विलासिता की पूर्ति के लिए नीच से नीच काम तथा तिलस्म और सुरंगों के द्वारा अनेक खूबसूरत औरतों को बुला लेना, उनसे भोग करना और उन्हें गुलाम बनाकर महलसरा में सदा के लिए रख लेना, यह तो उस युग की साधारण सी बात थी। इन युगीन प्रवृत्तियों के यथार्थ चित्र लेखक ने उतारे हैं। गोस्वामीजी ने अपने उपन्यास में लिखा है: "लखनऊ का शाहीमहल भी इस किस्म की खूबसूरत नाजनियों की गोया नुमायशगाह था। वहाँ पर एक से एक बढ़ कर खूबसूरत नाजनियाँ रहती थीं और अपने हुस्न की चालाकी के सबब बादशाह के दिल

१. किशोरीलाल गोस्वामी - "लखनऊ की कब्र," भाग ३, पृ० ६२-६३।

को अपनी मुट्ठी में लिये रहती थीं। जात-पाँत की तो बादशाहों को कुछ परवाह थी ही नहीं। बस जो खूबसूरत होती वे ही महलों में रख ली जातीं।"[1]

आस्मानी उर्फ सुलखिया उर्फ हुस्नबानू का ही चरित्र प्रमुख नारी-पात्रों में है, जो अपनी चतुराई के कारण बादशाह को सदा अपने वश में किये रहती थी। अनेक खूबसूरत बेगमों के होते हुए भी बादशाह की हरकतों पर उसका पूरा नियन्त्रण रहता था। *यह नाना कलाओं में पटु नारी बतायी गयी है।* लेखक ने ही स्पष्ट कर दिया है—

"प्यारे नाजरीन, अब तो आपने यह बात बखूबी समझ ली होगी कि यह आस्मानी हुस्नबानू है।"[2]

सुखिया और हुस्नबानू (आसमानी) की बातों से आस्मानी की कार्य कुशलता प्रकट होती है—

"एक रोज सुखिया ने कहा—हुस्नबानू! आखिर तू अपने दिलवर का काम कब पूरा करेगा?

मैंने कहा—वल्लाह, वह काम तो मैं कर चुकी।

वह बोली—अँय—यह क्या कहा कहा तून?

मैं बोली—क्या इसका मतलब तू न समझी?

वह—नहीं मैं तो कुछ भी न समझी।

मैं—यानी मेरा दिलवर उस खजाने गैब को देखा या उस पर कब्जा किया चाहता है न?

वह—हाँ, उसकी दिली मन्शा यही है।

मैं—खैर तो उसकी ख्वाहिश मैं पूरी कर दूँगी।

वह—क्यों कर?

मैं—इस तरह कि, जब वह मुझे अपनी बेगम बना लेगा तब मैं उसे सुरंग में ले जाकर उस 'खजाने गैब' को दिखला दूँगी।

वह—लेकिन वह नक्शा व किताब?

मैं—अब वे दोनों चीजें तो कयामत तक हाथ में नहीं आ सकतीं।"[3]

"तारा" गोस्वामीजी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसकी प्रधान नारी-पात्र महाराणा अमरसिंह की पुत्री 'तारा' है। शिवनारायण श्रीवास्तव ने इस उपन्यास की अनैतिहासिकता को सिद्ध करते हुए लिखा है: "इस उपन्यास में ऐतिहासिक पात्रों की पूरी दुर्दशा की गयी है। आगरे का राजमहल, जिसमें परम

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "लखनऊ की कब्र", भाग ४, पृ० २८।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "लखनऊ की कब्र", भाग ४, पृ० १०२।
३ किशोरीलाल गोस्वामी . "लखनऊ की कब्र", भाग ७, पृ० ६६।

प्रेमी विश्व विख्यात बूढ़ा शाहजहाँ निवास करता था, कुत्सित वासनाओं के रहस्यमय अखाड़े के रूप में चित्रित किया गया है। दारा के साथ उसके भाइयों ने ही पर्याप्त अत्याचार किया था, परन्तु उसके उज्ज्वल चरित्र पर गाढ़ी स्याही पोत कर जो दुर्दशा गोस्वामीजी ने की है, वह अधिक चिन्तनीय है। किले के कुत्सित वातावरण में शाहजादियों की उच्छृंखल दरकमिजाजी और उनकी दूतियों की ऐयारी का जैसा वासनामय चित्र "तारा" में अंकित किया गया है, उसे देख कर उस काल का साक्षी इतिहास भी शर्म से आँखें झुका लेगा। राजपूत गौरव की उज्ज्वलता दिखाने जाकर भी अपनी अनभिज्ञता के कारण गोस्वामीजी ने राजपूत आदर्श को कलंकित ही किया, अन्यथा वे मेवाड़ बालिका तारा के कामुक मुसलमान आशिकों को छकाने, धाखा देने और छिप कर उनको प्रेमोक्तियों में आनन्द लेने की उत्सुकता चित्रित न करते।"[1]

'तारा" की विपरीत समीक्षाएँ भी हिन्दी जगत में आई और हम देखने को मिली, परन्तु गोस्वामीजी स्वयं ही अपने ऐतिहासिक उपन्यास में अंकित दृष्टिकोण के बारे में 'तारा" की भूमिका में ही अपने विचार प्रकट कर चुके हैं "हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं को 'गौण' और अपनी कल्पना को 'मुख्य' रखा है और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर ही से नमस्कार भी कर दिया है, इसलिए हमारे उपन्यास के प्रेमी पाठक हमारे अभिप्राय को भली-भाँति समझलें कि यह उपन्यास है, इतिहास नहीं यहाँ कल्पना का राज्य है—यथेष्ठ लिखित इतिहास का नहीं और इसमें आर्यों के यथार्थ गौरव का गुण-कीर्तन है। इसलिए लोग इसे इतिहास न समझें और इसकी सम्पूर्ण घटना को इतिहासों में खोजने का उद्योग भी न करें।"[2]

हिन्दी-जगत में "तारा" के प्रकाशन से अपूर्व हलचल मच गयी। "तारा" उपन्यास ने गोस्वामीजी को अपूर्व ख्याति प्राप्त कराई है। इसमें दाराशिकोह, सलावतखाँ, नूरलहक, इनायतुल्ला और राजसिंह पुरुष-पात्र हैं तथा जहानआरा, तारा, रम्भा, गुलशन आदि स्त्री-पात्र हैं। 'तारा' नायिका है और 'राजसिंह' उपन्यास का नायक है। चरित्र चित्रण की ओर लेखक का पूरा ध्यान है। भाषा की दृष्टि से तो हिन्दू पात्र भी शुद्ध उर्दू भाषा का प्रयोग करने में पटु हैं। तारा और जहानआरा की बातचीत के द्वारा प्रकट हो जाता है कि लेखक एक तीर से दो लक्ष्य भेदना चाहता है—एक ओर तो संस्कृत की श्रेष्ठता फारसी भाषा पर स्थापित करना चाहता है, तो दूसरी ओर 'तारा और जहानआरा' की मित्रता का भी परिचय देता है :

जहानआरा—हाँ, यह तो बतलाओ कि अब फारसी का शौक जाता तो

---

1. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ८१।
2. किशोरीलाल गोस्वामी : 'तारा" की भूमिका से उद्धृत।

तारा—नहीं, नहीं, मगर साथ उसके मन मैं संस्कृत भी पढती हूँ, इसलिए कभी-कभी जब दिल चाहता है तो गुलिस्तां की सैर भी कर लेती हूँ।

जहानआरा—भई संस्कृत पढ़ने को तो मेरा भी दिल बहुत चाहता है मगर पढ़ावे कौन ? गो कि फारसी के हरूफ (वर्णमाला) पे गौर करने से यह बात साफ जाहिर होती है कि दुनिया मे इसके मुकाबिले मे दूसरी फतीह जबान हुई नहीं, मगर जैसे संस्कृत के फसाहत की भी बडी ही तारीफ सुनी है।

तारा—बेशक शाहजादी, मगर तुम संस्कृत पढ कर उसका रस चखने के काबिल हो जाओगी तो फारसी की फसाहत को शायद भूल जाओगी और तब तुम खुद इस बात को मानने लगोगी कि सारी दुनिया मे संस्कृत से बढकर मीठी जबान दूसरी हुई नहीं, हाँ संस्कृत के बाद अगर किसी भाषा में मीठापन है तो सिर्फ ब्रजभाषा और फारसी जबान मे।"[1]

'तारा" उपन्यास का कथा शिल्प भी पात्रों की चतुराई से भरा हुआ है। रभा और सलावतखाँ के मध्य हुआ कथोपकथन इस प्रकार के दांवपेचों को व्यक्त करने में सफल है। चाहे इसे कूटनीति कह लीजिए, पर उदार भाषा में यही तो मानव जीवन की व्यवहार-कुशलता है। युग विशेष तथा तात्कालिक परिस्थितियों ने हिन्दू नारियों को कितना चतुर और चालाक बना दिया है। मुसलमानी राज्य का विलासिता तथा कामुकतापूर्ण वातावरण और उन बादशाहों तथा उनके राजपुत्रों से हिन्दू नारियों को अपने सतीत्व की रक्षा करना उस युग में महान् विकट कार्य था जब महलों में न जाने कितनी सुन्दर असहाय नारियाँ अपना नारीत्व खोकर गुलामों के समान जीवन यापन कर रही थीं। "तारा" उपन्यास के द्वारा लेखक ने हिन्दू नारियों की कार्यपटुता और हिन्दू चतुराई तथा पुरुष-वर्ग को उलझा कर छलपूर्ण ढंग से मूर्ख प्रमाणित करना और इन सबके पीछे हिन्दू नारी का स्वाभिमान तथा उसके महान् चरित्र की श्रेष्ठता की स्थापना ही मूल उद्देश्य रहा है। जहाँ मुसलमान बादशाह का राज्य हो, जहाँ नारी का पिता स्वयं आश्रित हो, वहाँ उसकी सुन्दर बेटी के लिए तो अपने चरित्र की रक्षा के लिए प्राणों के उत्सर्ग की तैयारी भी आवश्यक है। 'तारा' और उसकी सखी 'रभा' दोनों ही चतुर और पटु नारियाँ हैं—

सलावत—कुछ भी नहीं, परसों एक पोशीदा जलसा होगा, उसी में तुम लोगों के उठा ले जाने का मामला तय हो जावेगा कि किस हरीस को और क्यों कर यहाँ से तुम लोगों को ले भागूँगा।

रभा—वह पोशीदा जलसा कौन सा है ? और कहाँ पर या कब होगा ? क्या औरतें भी उस जलसे में शरीक हो सकती हैं ?

सलावत—उसके बारे में मैं अभी कोई बात जाहिर नहीं कर सकता, क्योंकि इस बात की सख्त मनाही है कि यह भेद किसी पर जाहिर न किया जाय।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी "तारा", भाग १, पृ० ११-१२।

¹रमा—बस चलिये, हो चुका, क्या आपकी मुहब्बत का यही नतीजा है कि आप मुझ से या ताराबाई से भी अपने दिल का हाल न कहें ?

सलावत—तुम खफा न होवो, सुनो, हम लोगों की एक पोशीदा अंजुमन है। बस हम लोग जो कुछ किया चाहते हैं, अंजुमन के दोस्ता से राय लेकर करते हैं।

रमा—उस अंजुमन का मुखिया कौन है ? औरत या मर्द ?

सलावत—(विहँस कर) इस सवाल के क्या माने ? खैर, सुनो—उसमें जितने लोग हैं व सभी मुखिया हैं।

रमा—साहब ? आपसे बढ़कर अकलमन्द क्या दूसरा कोई दुनिया में है। आप मुझे निरी नासमझ बच्ची समझ कर बातों में फुसला रहे हैं, मगर यह आपको मालूम ही नहीं है कि मैं भी आप ही के गिरोह की हूँ।

सलावत—(आश्चर्य से) ऐसा ! अच्छा अगर तुम भी उस गिरोह की हो तो पहिले तुम्हीं बतलाओ कि उस अंजुमन का मीर मजलिस कौन है ?

रमा—एक शाहजादी।

सलावत—(ताज्जुब से) तुम इन्सान हो या कोई जिन ? तुम सी अजीब औरत तो मैंने आज तक देखी ही नहीं ? क्या वाकई तुम उस गिरोह में शामिल हो ?

रमा—क्या—शाहजादी साहिब का नाम भी बतलाऊँ या सुरंग के उस कमरे का भेद बतलाऊँ जहाँ पर परसों जलसा होने वाला है।

सलावत—रमा बाई बेशक तुम भी कोई न कोई नायाब इल्म रखती हो, खुदा जानता है, तुमसी होशियार और मैंने आज तक नहीं देखी।"¹

इन उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि तो अवश्य हो गयी है, पर फिर भी तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी कार्यों का उत्थान और पतन चलता रहता है। "तारा ने सन्दूक खोल कर एक जहरीली साँप की नयी अँगूठी आप पहिरी और दूसरी रमा को पहिरा दी। फिर एक विषगर्भ अँगूठी दोनों ने पहिरी जिसका गुण यह था कि मुँह में रखते देर नहीं कि प्राणपखेरू देहपिंजर छोड़कर बाहर। फिर एक एक छुरी दोनों ने अपनी चोली के अन्दर रखली और कई कटार, तलवार और तीर-कमान घर में खूँटियों पर लटका दीं और कई बन्दूकें भी गोली भर कर कमरे में एक ओर खड़ी कर दीं।"²

गोस्वामीजी ने प्रमाणित कर दिया कि "राजपूतों की लड़कियाँ मरने से नहीं डरतीं" और "आपद के समय हँस-हँस कर मरती हैं।" राजसिंह का चरित्र भी शूर-वीरता का उदाहरण है, जिसने हिन्दू नारियों का मुसलमान बादशाहों से उद्धार करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। अन्त में उदयपुर जाकर 'तारा' के साथ

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", भाग २, पृ० २८-२९।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", भाग ३, पृ० ६०।

'राजसिंह' का धूमधाम से विवाह हो जाता है। यह उपन्यास भी सुखान्त है और राजपूती शान ने 'राजसिंह की नारी' को 'यवन सेज' पर जाने से बचा लिया है। हिन्दू धर्म की यवनों के पास जाने से लेखक ने चतुराई से बचाया है, बल्कि शत्रुओं को बुरी तरह से छकाया है।

"मल्लिकादेवी वा बंगसरोजिनी" भी ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसके प्रमुख पुरुष पात्र हैं, महाराज नरेन्द्रसिंह, उनका मित्र विनोदसिंह, फरहाद और नवाब तुगरलखाँ तथा स्त्री पात्रों में मल्लिकादेवी, सरला और धीरो आदि प्रमुख हैं। मल्लिकादेवी उपन्यास की नायिका और नरेन्द्रसिंह नायक है। नरेन्द्रसिंह शूरवीर, धीर और दृढ़ प्रेमी थे, जिन्होंने मल्लिका का उद्धार करके उसे वरण किया और उस प्रेम को जीवन भर पोषित किया। दो सखियों की बात-चीत से लेखक की विनोद-प्रियता का ज्ञान होता है—

"सुशीला को आते देखकर मल्लिका ने अँगूठी और माला छिपाना चाहा, पर मनोरथ निष्फल हुआ क्योंकि उसने मल्लिका का हाथ पकड़ कर माला और अँगूठी छीन लिया और कहा—भला मल्लिका जीजी, भला यह बात। और मुझ से चोरी ? अच्छा समझ लूँगी।

मल्लिका—चोरी काहे की ? क्या तेरा मुझे डर पड़ा है सुशीला ?

सुशीला—नहीं, डर काहे का। तो फिर छिपाती क्यों थी ?

मल्लिका—क्यों छिपाऊं। और तुझ से, ऐं, तुम इतना चिढ़ती क्यों हो ?

मल्लिका ने सुशीला का हाथ थामकर उसे चूम लिया और उसके हाथ में एक अँगूठी देखकर हँसते-हँसते कहा—क्यों री, तू तो निरी गंगाजल बनी आती थी ? बता यह क्या है ?

सुशीला—क्या, क्या हुआ ?

मल्लिका—तेरा सिर और क्या ? बिचारी बड़ी भोली है। दूध पीती है, कुछ समझती ही नहीं, बता यह क्या है ?

सुशीला—है क्या, कुछ भी तो नहीं है।

मल्लिका—कुछ नहीं है, तो फिर विनोद भइया के हाथ की अँगूठी तेरी अँगुली में कहाँ से आई ?"[1]

उपन्यास में कथोपकथन के द्वारा चरित्र चित्रण हुआ है। दो सखियों की बात-चीत का सहज और स्वाभाविक विकास हुआ है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में लम्बे और लघु दोनों प्रकार के कथोपकथनों की आयोजना है। सजीव और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भाषा को भी मुहावरेदार और चटकीली बनाना लेखक के लिए आवश्यक हो जाता है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में सजीव तथा स्वाभाविक

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी : "मल्लिकादेवी", प्रथम भाग, पृ० १०४-१०५।

कथोपकथन प्रवतरित हुए हैं। एक ही उपन्यास म दोनो प्रकार के कथोपकथन की उपलब्धि हो जाती है। कथा शिल्प की दृष्टि से भी "मल्लिकादेवी" सुन्दर उपन्यास बन पडा है जहाँ आदि से अन्त तक पाठकों मे कथा के प्रति जिज्ञासा बनी रहती है और उनका मनोरंजन होता रहता है—

'फरहाद—हुजूर इन बातो की इस वक्त क्या जरूरत है ? मैं सच कहता हूँ कि हुजूर ने मुझ गमजदे पर जो कुछ मेहरबानियाँ की हैं उन्हें मैं ताजीस्त नहीं भूल सकता हूँ।

तुगरल—यह सच है और मैं तुम्हारी काबलियत से खूब आगाह हूँ। बस उसी का एवज देकर आज अपना फर्ज अदा करता हूँ, जिसमें मैं तुम्हारे उस कर्ज से छुटकारा पा जाऊँ, जो जमालपुर म तुम से मैंने पाया था।

फरहाद—अब हुजूर—यह आप क्या

तुगरल—(उसे रोक कर) लेकिन ठहरो और जल्दी न करो। सुनो मियाँ फरहाद। मुझ पर जो कुछ कयामत की वर्षा होने वाली है, उसका आसार मुझे बखूबी नजर आ रहा है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि अपनी अजीज दुख्तर (लड़की) शीरी को मैं तुम्हारे हवाल करूँ और चुपचाप यहाँ से निकल कर मक्के चला जाऊँ। अभी तक मेरे पास इतनी दौलत बाकी है कि जिससे तुम शीरी के साथ किसी गैर शहर मे जाकर अमीराना तौर से अपनी औकात बसरी करोगे और मुझे अब जर की कोई जरूरत बाकी नहीं रही। बस मैं फकीर होकर मक्के चला जाऊँगा और वहाँ यादे खुदा मशगूल होकर अपनी आकबत बनाऊँगा।'[1]

गोस्वामीजी ने लम्बे तथा लघु दोनो प्रकार के सभाषणो का आयोजन किया है। लम्बे कथोपकथनों के द्वारा भी कथावस्तु का परिचय मिलता है। पाठकों को ज्ञान हो जाता है कि भविष्य मे क्या घटने वाला है और पात्रों की भावी योजनाओ का भी परिचय मिलता है। सामाजिक जीवन के विभिन्न वर्गो का इनके उपन्यासों में चित्रण हुआ है। सच्चे मित्रो की मित्रता का सुन्दर विश्लेषण लेखक ने किया है। विपत्ति में, सुख मे', परदेश म सब स्थानों पर मित्र एक दूसरे की सहायता करते हैं। गोस्वामीजी ने "मायाविनी" पात्र के द्वारा पुरुष जाति की टीका की है—"वाह वाह, पुरुष जाति की तनिक स्वार्थपरता तो देखो। अपनी स्त्री के साथ मुझे सोई देख कर तो आपने तलवार खेंचली क्योंकि तब आप मुझे 'पुरुष' जानते थे और अब मुझे स्त्री जाना तो कैसे चट से हाथ पकड़ लिया। व्याह ही तो करेंगे। फिर जब यह सुना कि यह किसी की विवाहिता नारी है तो पर नारी के हाथ पकड़ने के दोष को कैसा धारे से "क्षमा" शब्द का उच्चारण करके दूर करने और सर्वथा निर्दोष बनने का स्वांग रचने लगे।'[2]

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी "मल्लिकादेवी", दूसरा भाग पृ० २१।
२ किशोरीलाल गोस्वामी : "मल्लिकादेवी", दूसरा भाग, पृ० ११३।

यह सर्वसाधारण पुरुष का चरित्र है, जो भौतिक जगत में विदेशीय और सर्वकालीन है, चाहे वह नरेन्द्रसिंह हो अथवा 'वीरेन्द्र वीर'। दूसरी ओर, विवाह के उपरान्त नारी का पति के चरणों में अपना पूर्ण समर्पण कर देना मानव-जीवन का दूसरा छोर है—"मल्लिका के विवाह को हुए आज ग्यारह दिन व्यतीत हो चुके हैं। इतने अवसर म वह कन्दर्पराज क साम्राज्य का भरपूर आनन्द ले चुकी है और नरेन्द्र जैसे प्राणोपम पति को पाकर अपने समान संसार में दूसरी नारी को परम सौभाग्यवती नहीं समझती है।"[1]

"रजिया बेगम" भी प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसके प्रमुख पात्र रजिया बेगम, गुलशन, जोहरा, याकूब, सौसन तथा मायूबखाँ हैं। उपन्यास की नायिका रजिया बेगम और नायक याकूबखाँ है। एक ओर सौसन का याकूब के प्रति प्रेम, जो रजिया की निकटतम सखी है और दूसरी ओर, रजिया के हृदय में याकूब क अटूट प्रेम को उपन्यास में चित्रित किया है। याकूब के सच्चे प्रेमी हृदय का चित्रण गोस्वामीजी की लेखनी से सुन्दर और सजीव बन पड़ा है। याकूब का कथन प्रशंसनीय है—"प्यारी सौसन, आज ये कैसी बातें तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ। अफसोस, तुमने मेरे इश्क को मुतलक न समझा। प्यारी क्या तुमने मुझे ऐसा कमीना समझ लिया है कि मैं तुम जैसी माशूका को छोड़कर दौलत या बादशाहत के लालच में पड़कर उस फाहिशा के साथ अपने दिल को बेचूँगा। हर्गिज नहीं, हर्गिज नहीं, दिलरुबा, चाहे याकूब के तन की बेगम धज्जियाँ उड़ा डालें, मगर प्यारी जब तक इसके कालिब में जान बाकी रहेगी, यह सिवा तुम्हारे और किसी गैर का हर्गिज न होगा।"[2]

"याकूब" यद्यपि पुरुष-पात्र और नायक के रूप में अवतरित हुआ है, पर उसका चरित्र उच्च कोटि का बन पड़ा है। लेखक ने उसके हृदय का अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य परिस्थितियों का सजीव चित्र अंकित किया है। गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में नाट्य-प्रणाली का अनुसरण भी चरित्र चित्रण के लिए किया है। पात्रों की भावनाओं और मनोविकारों की वे स्वयं व्याख्या करते हैं और अपने पात्रों को भी उचित अवसर देते हैं कि वे भी समय समय पर अपने विचारों को प्रकट कर सकें। उनके उपन्यासों में सहज में नाटकीयता का समावेश हो गया है। बेगम रजिया के हृदय की ऐयाशी का पता उसके कथन से चलता है कि वह प्रेम में भी अपनी बादशाहत को किस प्रकार से स्थायी रखना चाहती है। वह याकूब से कहती है—"बस, तुमको फकत इतना ही हुक्म दिया जाता है कि तुमको दरबार से 'अमीर-उल्-उमरा' के खिताब और खिल्लत के साथ 'दस हजारी मनसबदारी' का परवाना दिया जायगा और जागीर में दो लाख रुपये सालाना का ला-खिराज इलाका बख्शा जायगा। बस, फिर तुम्हारा यही काम होगा कि तुम 'दरोगा अस्तबल' के काम से रिहाई पाकर 'मुबारक-महल' नामी

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी "मल्लिकादेवी", दूसरा भाग, पृ० १०७।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "रजिया बेगम", पृ० १००।

आलीशान इमारत मे, जो शाही बाग के उस सिरे पर बनी हुई है, बड़ी शान-शौकत के साथ रहा करोगे और बराबर दरबार मे हाजिर रहकर, जब मैं घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी के लिए महल से निकलूँगी तो तुम मुझे मेरे घोड़े पर हाथ का सहारा देकर सवार करा दिया करोगे और अपने घोड़े पर सवार होकर बराबर मेरे साथ रहोगे।"[१]

इतना ही नहीं, 'रजिया और जोहरा' दोनो सखियो के वार्त्तालाप म जो नारियोचित सहज कथानक का विकास हुआ है, वह भी प्रशंसा के योग्य है—

"रजिया—क्या तू जवामर्द याकूब को इस काबिल नहीं समझती ?

जोहरा—(फड़क कर) अल्हम्द लिल्लाह। क्यो, नहीं, हुजूर, हजरत ने तो ऐसे ला मिसाल बहादुर और खूबरू शख्स को चुना है कि जिसका जोड़ शायद दुनियाँ के परदे पर मयस्सर न होगी।

रजिया—बेशक, अब मुझे निहायत खुशी हासिल हुई कि तूने भी याकूब को ही पसन्द किया।

जोहरा—जी हाँ हुजूर। आपकी खिदमत लायक शख्स याकूब स बढ़कर दूसरा मिलना माहाल है।

रजिया—तो क्या तू कोई ऐसा ढग निकाल सकती है कि जिसमे याकूब के साथ मेरी राह-रस्म पैदा हो और इस बात की खबर किसी चौथे के कानों तक न पहुँचे।"[२]

लेखक ने पात्र, समय तथा देश काल के अनुकूल ही कथोपकथन की सृष्टि की है। सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई" भी गोस्वामीजी का ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसकी प्रधान नायिका पन्नाबाई और नायक मानिकचन्द है। मानिकचन्द का मित्र निहालचन्द है और पन्नाबाई की माता का नाम सुन्नाबाई है। इस उपन्यास म लेखक का ध्यान खलनायक रूपसिंह की ओर भी रहता है तथा पन्नाबाई के पिता हीराचन्द का भी सुन्दर चरित्र चित्रण हुआ है। 'पन्नाबाई और मानिकचन्द' के प्रेम प्रवाह का लेखक ने वर्णन किया है—"पन्ना जब मानिकचन्द के कमरे म पहुँची तो उसने क्या देखा कि कमरे में एक मोमी शमादान चल रहा है और उसका प्यारा पलग पर पड़ा हुआ ठंडी-ठंडी साँसे भरता और आँखों से सावन भादो की सी नदियाँ बहा रहा है। उसकी यह हालत देखकर पन्ना से न रहा गया और वह दौड़कर उसके सीने से लिपट गयी और फूट फूट कर रोने लगी। मानिकचन्द ने भी अपनी प्राणप्यारी को भरजोर अपने कलेजे से चिपका लिया और रोने में अपनी प्यारी का पूरा-पूरा साथ दिया। यहाँ तक कि रोते-रोते दोनों की हिलकी बँध गयी और घण्टे डेढ़ घण्टे

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "रजिया बेगम", पृ० ६५।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "रजिया बेगम", पृ० ८०।

तक उन दोनों में से कोई भी चुप न हुआ।"[1] सहेलियों का ही नहीं वरन् माँ-बेटी के वार्तालाप का भी स्वाभाविक और सजीव चित्र लेखक ने उतारा है—

"थोड़ी देर में पन्ना होश में आई और अपनी माँ की तरफ डबडबाई हुई आँखों से देखकर रूंधे हुए गले से बोली—अम्मा ? चुन्नीबाई ने उसके चेहरे पर बड़ी मुहब्बत से हाथ फेर कर कहा—क्या है, मेरी प्यारी बेटी।

पन्नाबाई ने कहा—वह निर्दयी चला गया क्या ?

चुन्नी—तू घबरा मत और जरा सब्र कर, क्योंकि वह नादान जहाँ होगा, मैं उसे बहुत जल्दी बुलवा लूँगी।

पन्ना—अम्मा, तुम यकीन करो कि अब वह 'गैरतदार' यहाँ कभी न आवेगा।

चुन्नी—अरे, मैं जैसे हो सकेगा, बहुत जल्द बुलवा लूँगी तू जरा धीरज धर।

पन्ना—अम्मा, सचमुच वह बेचारा बिल्कुल बेक्सूर था और बाबूजी ने नाहक उससे इतना जुल्म किया।

चुन्नी—ठीक है। उसकी कुल बातें मैं सुन चुकी हूँ और मेरा दिल भी इस बात की गवाही देता है कि उसने जो कुछ तुम से कहा है, उसमें रत्ती झूठ या बनावट का लगाव नहीं है।"[2]

गोस्वामीजी की संगीतप्रियता उनके पात्रों में आकर फलीभूत और साकार हो जाती है। केवल शास्त्रीय संगीत ही नहीं, उर्दू तथा फारसी की उच्च कोटि की गजलें गोस्वामीजी के हृदयपटल पर उत्तमता से अंकित थीं—"मानिकचन्द ने बीन निहालचन्द को दे दी और तबला अपने आगे खींच लिया, गो निहालचन्द ने बीन लेने से बहुत कुछ इन्कार किया, पर मानिक ने उसकी एक न सुनी, लाचार निहालचन्द ने ऐमन की एक उम्दा गत बजाई और नीचे लिखी हुई गजल गानी शुरू की—

"आके सज्जाद, नशीं कैस हुआ मेरे बाद।
"न रही दश्त में खाली मेरी जाँ मेरे बाद॥"[3]

"हीराबाई" भी गोस्वामीजी का ऐतिहासिक लघु उपन्यास है, यद्यपि सामाजिक प्रसंगों की भी अवतारणा की गयी है, जिसकी नायिका हीराबाई स्वयं है। बादशाह अलाउद्दीन का कुशासन है, जहाँ रूपवती नारियों का सतीत्व कभी बच नहीं सकता था। स्वयं हीराबाई कमलादेवी और देवलदेवी की रक्षा के लिए किस प्रकार अपने प्राणों की बलि चढ़ा देती है, यही हीराबाई का प्रत्युपकार है क्योंकि कमलादेवी ने उसे विपत्ति में आश्रय दिया था।

हीराबाई का कथन उसके चरित्र का प्रतीक है—"नहीं महारानी, मैं अपने होशोहवास में हूँ, सुनो मैं खुद कमला बनकर अलाउद्दीन के पास जाऊँगी और तुम अपने प्यारे महाराज के ही पास रहोगी, लेकिन आज से तुम अच्छी तरह अपने तईं छिपाये

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई", पृ० ३३।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई", पृ० ४३-४४।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई," पृ० १२६।

रहना और इस राज को हर्गिज खुलने न देना, जिसमें इस भेद को कोई जानने न पावे वरना कयामत बर्पा होगी। इस राज के खुलने पर चाहे जान जाय, इसकी तो मुझे जरा भी पर्वा नहीं, मगर बदजात अलाउद्दीन काठियावाड़ की एक ईंट भी साबुत न छोड़ेगा। इस बात का जरूर ख्याल रखना।"[1]

"कनक कुसुम" भी दूसरा प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी प्रमुख नायिका 'कनक कुसुम' या 'मस्तानी' है, जो 'बाजीराव पेशवा' को किसी प्रकार से उसकी धूर्तता का प्रतिकार देती है। मस्तानी का चरित्र उसके मुख से प्रकट होता है—"आप अपनी बीमारी की हालत में जिन दो औरतों को अक्सर देखा करते थे, वाकई उन दोनों औरतों में से एक तो मैं थी और दूसरी मेरी लौंडी थी, पर जब आप धीरे धीरे होशहवास में आने लगे तो मैंने लौंडी को तो आपकी आँखों की ओट में किया और खुद उस्मान का जामा पहिन लिया। निजाम की गठरी को जो शख्स लाया और सुरंग में बराबर साथ रहा, वह दरहकीकत मेरी लौंडी जाफरानी ही थी।"[2]

मस्तानी' की सेवा-भावना तथा चारित्रिक पवित्रता का लेखक ने आकर्षक वर्णन किया है, जिसकी बुद्धिमानी से बाजीराव पेशवा सदा प्रभावित रहा। गोस्वामीजी के जासूसी उपन्यासों में तो पात्रों का चरित्र चित्रण और भी श्रेष्ठ हुआ है, यहाँ तक कि सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों में भी गुप्त रहस्यों को ज्ञात करने की जिज्ञासा और प्रयत्न निरन्तर चलता ही रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तो युगीन प्रवृत्ति है कि देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी जिस जासूसी तथा तिलस्मी क्षेत्र में निरन्तर रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे थे, गोस्वामीजी ने भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। "कटे मूड़ की दो दो बातें", उपन्यास में 'तिलस्मी शीशमहल' की आयोजना की गयी है, जिसमें 'नूरजहाँ और हमीमा' दो प्रमुख नारी-पात्र हैं तथा अबुलफजल, दियानत हुसैन और कतलूखाँ पुरुष-पात्र हैं। 'जिन्दे की लाश' उपन्यास में मिस्टर बेली का प्रमुख भाग है जिसकी गुप्त कार्यकुशलता के कारण सारे रहस्य का भण्डाफोड़ होता है। 'याकूती तख्ती' उपन्यास में हमीदा' और 'कुसीदा' दो प्रमुख नारी-पात्र हैं तथा निहालसिंह का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। यह उनका अनूदित उपन्यास है, पर गोस्वामीजी को अपने ढंग की स्वाधीनता सर्वत्र प्राप्त होती है, जैसा उन्होंने 'कृतज्ञता स्वीकार' में स्पष्ट प्रकट कर दिया है—"बंगाली लेखक बाबू दीनेन्द्रकुमार राय के 'हमीदा' नामक उपन्यास की छाया पर यह उपन्यास लिखा गया है। 'हमीदा' वियोगांत उपन्यास है पर हमने सयोगान्त बनाया है। हमारा यह उपन्यास 'हमीदा' का अनुवाद नहीं है वरन् इसे हमने अपने ढंग पर पूरी स्वाधीनता से लिखा है।"[3]

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : 'हीराबाई," पृ० १३।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : 'कनक कुसुम", पृ० ७४।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "याकूती तख्ती", भूमिका, 'कृतज्ञता स्वीकार,' सन् ११०६।

"हमीदा" का चरित्र लेखक की पटु लेखनी से सर्वोच्च बन पड़ा है—"उस समय मैंने अपने मन में सोचा कि यदि हमीदा केवल कोमल स्वभावा किम्वा केवल पुरुष स्वभावा होती तो उसके समान कोमलतामयी किम्वा पाषाणी नारी दूसरी न दिखलाई देती, किन्तु यह तो कठिनता, कोमलता, तेजस्विता, मधुरता, साहस और विनय आदि परस्पर विभिन्न प्रवृत्ति के गुण-समूहों की खान है और उन सभों पर उसका देवता-दुर्लभ सौन्दर्य तो बहुत ही अनूठा है। ऐसी अवस्था में उसके लिए किस उपमा की अवतारणा की जाय कि मुझ जैसे नीरस व्यक्ति के कठोर हृदय पर भी अपने अद्भुत प्रभाव को डाल कर मोह लिया।"[1]

लेखक ने अपना उद्देश्य भी यह कह कर सफल बना दिया— निहालसिंह ने बड़ी कठिनाई से हमीदा और कुसीदा के हृदय से महम्मदी धर्म की जड़ उखाड़ी थी और उन दोनों के हृदय में यह पौधा रोप दिया था कि 'स्त्रियों का स्वतन्त्र धर्म कोई नहीं है, वरन उन्हें वही धर्म मानना चाहिए, जिस धर्म में उनका पति दीक्षित हो, इसके अनुसार हमीदा ने सिक्ख धर्म का अवलम्बन किया और कुसीदा ने ब्राह्ममत का।"[2]

'नूरजहाँ और हसीना' के चरित्र ने 'कटे मूड़ की दो दो बातें" उपन्यास में प्राण भर दिये हैं। सारी जासूसी कार्यवाहियाँ इस उपन्यास में मनोरञ्जक हो जाती हैं—

"नूरजहाँ—प्यारी हसीना, पहले यह बतला कि अभी तू कहाँ गयी थी?

हसीना—मैं यह देखने गयी थी कि वह कम्बख्त, मुँजी यहाँ से अपना काला मुँह कर गया, या कहीं पर छिपा हुआ है।

नूरजहाँ—उस आवाज से, जो कि उस सुरंग के दरवाजे के खोलने या बन्द करने से होती है, जिधर से वह काफिर यहाँ आया जाया करता है, मैं समझ गयी कि वह बदकार यहाँ से चला गया।"[3]

एक ओर इन नारी पात्रों के जासूसी से पूर्ण कार्य और नाना प्रकार के चतुराई के दृश्य हैं, तो दूसरी ओर, दोनों का आपस का हँसी विनोद भी पाठकों के मन को बरबस आकर्षित कर लेता है—"सीटी की आवाज सुनते ही हसीना हँसती हुई कमरे के अन्दर आयी और नूरजहाँ से लिपट कर बोली—वाह, आपने अपने काम को बड़ी खूबी के साथ पूरा किया।

नूरजहाँ—जी हाँ, आखिर में शागिर्द भी तो आप ही की हूँ।

हसीना—ऐ है, आज बातों का सिलसिला इस तरह क्यों जारी किया जा रहा है?

नूरजहाँ—इसलिए कि अब से मैं आपसे उसी तरह का बर्ताव रखूँगी, जैसा आप मुझसे रखेंगी।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "याकूती तख्ती" पृ० १७-१८।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "याकूती तख्ती", परिशिष्ट।
३. किशोरीलाल गोस्वामी "कटे मूड़ की दो दो बातें", पृ० १२।

हसीना—वल्लाह, यह नाज तो देखो।

नरजहाँ—(उसका गाल चूम कर) नाज की एक ही कही आपने। अजी बीबी नाज अपने आशिक को दिखलाइयेगा।

हसीना—आज तो तुमने प्यारी बेतरह मुझ छकाया।"[1]

अँग्रेजी में प्रकाशित रेनाल्ड्स की एक कृति के हिन्दी अनुवाद "लन्दन रहस्य" को प्रारम्भ मे बड़ी लोकप्रियता मिली थी, जिसका गोस्वामीजी की रचनाओं पर प्रभाव देखने को मिलता है। "लन्दन रहस्य" के समान ही प्रेम-लीलाओं के चित्र भी इस उपन्यास मे अंकित किये गये हैं। संस्कृत और उर्दू साहित्य में भी चुन-चुन कर उक्तियाँ और प्रसग गोस्वामीजी ने ग्रहण करके अपने उपन्यासो मे समाविष्ट किये हैं। उर्दू-फारसी भाषायुक्त कथनों तथा कविताओं के आ जाने से ही गोस्वामीजी के उपन्यासों के कथोपकथन दुरूह जान पड़ते हैं, अन्यथा कथानक के विकास में उनके द्वारा अमूल्य सहायता मिलती है। "तिलस्मे होशरुबा" का प्रभाव भी उनकी रचनाओं पर दृष्टिगोचर होता है।

डॉ० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है: "इन कथा प्रधान उपन्यासों की सबसे प्रधान विशेषता थी प्रेम का चित्रण। अँग्रेजी राज्य के शान्तिमय वातावरण में जनता के मनोरंजन के लिए प्रेम से बढ़कर और कौन सा विषय हो सकता था। भारतवर्ष मे प्रेम साहित्य का एक मुख्य और चिरंतन विषय रहा है। हिन्दी म उपन्यासों का प्रारम्भ भी इसी प्रेम-चित्रण से होता है। कथा प्रधान उपन्यासों मे प्रेम की सबसे प्रधान विशेषता थी—उसका परम्परागत चित्रण। सभी उपन्यासों मे प्रेम की धारा अबाध गति से बहती है।"[2]

डॉ० गुलाबराय ने 'उपन्यास' की सीमाएँ पहले ही निश्चित कर दी हैं—"उपन्यास मे व्यक्ति की अधिक प्रधानता के कारण वह जीवनी के अधिक निकट आता है, किन्तु जीवनीकार इतिहासकार की भाँति सत्य से अधिक बँधा रहता है। उपन्यासकार सत्य का आदर करता हुआ भी अपने आदर्शों की पूर्ति तथा कथा को अधिक रोचक या प्रभावशाली बनाने के लिए कल्पना से काम ले सकता है। वह घटना के सत्य से नहीं बँधता, वरन् सगति और सम्भावना से नियन्त्रित रहता है। इसलिए उपन्यास जीवनी और काव्य के बीच की वस्तु है।"[3]

गोस्वामीजी के उपन्यासों की शिल्प-विधि की दृष्टि से यह कथन पूर्णतः सत्य है। उनकी भावुकता तथा अपार कल्पना-शक्ति ने हिन्दी उपन्यास साहित्य मे अपूर्व प्राण भर दिये हैं। उनके उपन्यासों मे हृदय की गहराई को स्पर्श करने की शक्ति है, कहीं-कहीं हास्य तथा कुतूहल का भी विधान है, तो कहीं जीवन के मार्मिक प्रसगों की सुन्दर व्याख्या हुई है।

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी: "बड़े मूड़ की दो-दो बातें", पृ० ४८।
२. डॉ० श्रीकृष्णलाल: "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास", पृ० ३०६।
३. डॉ० गुलाबराय: "काव्य के रूप", पृ० १६६।

नवम अध्याय

गोस्वामीजी के उपन्यासों की भाषा और शैली

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग उस चिरंतन जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान है, जो त्रिकालों तक अपनी अमिट प्रभा से जगमगाता रहेगा। इस युग के उपन्यासकारों ने हिन्दी भाषा और शैली का निर्माण करके 'साहित्य' पर अमिट अहसान किया है, जिनमें किशोरीलाल गोस्वामी प्रमुख अग्रणी हैं। प्रेमचन्द ने कहा था—"भाषा साधन है, साध्य नहीं। अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण-कार्य आरम्भ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो। वही भाषा, जिसमें आरम्भ में 'बागो बहार' और 'बैताल-पच्चीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्य सेवा थी, अब इस योग्य हो गयी है कि उसमें शास्त्र और विज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके और यह सम्मेलन इस सचाई की स्पष्ट स्वीकृति है।"[1]

साहित्य मानव-जीवन की अभिव्यक्ति है तो उसका माध्यम भाषा है। विचारों को प्रकट करने का साधन भाषा है, पर 'भाषा और शैली' किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की सदा परिचायक होती है। इसलिए कहा जाता है कि "शैली ही व्यक्तित्व है"। प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों में सब प्रकार की भाषा और शैली के दर्शन होते हैं। उस युग में साहित्य-रचना जन-साधारण की वस्तु नहीं थी बल्कि एक विशिष्ट वर्ग की रुचि की परिचायक थी और यह वर्ग सुशिक्षित, पण्डित तथा अनेक भाषाओं का विज्ञ होता था। युग की रसात्मक अनुभूति की तुष्टि के लिए भाषा और शैली की ओर हिन्दी के कलाकारों का ध्यान गया। पहली बार साहित्य के द्वारा रसास्वादन कराने का निश्चय किया गया।

आचार्य शुक्ल ने गोस्वामीजी के पाण्डित्य के लिए स्वयं लिखा है—"उपन्यासों का ढेर लगा देने वाले दूसरे मौलिक उपन्यासकार पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी

---

१. प्रेमचन्द : "निबन्ध संग्रह—कुछ विचार", पृ० १।
"प्रगतिशील लेखक संघ" के लखनऊ अधिवेशन में सभापति के आसन से दिया हुआ एक भाषण, सन् १९३६।

(जन्म सं० १६२२—मृत्यु सं० १९९६) है, जिनकी रचनाएं साहित्य कोटि में आती हैं।"[1]

अपने जीवन काल में ही पैंसठ छोटे-बड़े उपन्यास लिखकर प्रकाशित कर देना कोई साधारण कार्य नहीं था। इसके अतिरिक्त कहानी, जंगनामा, काव्य, कजरी, नाटक, इतिहास, निबन्ध आदि सब प्रकार का साहित्य गोस्वामीजी ने लिखा और सम्पादित किया। उन्होंने एक नूतन भाषा और शैली को जन्म दिया है। पश्चिम में गद्य को सदा नीरस समझा जाता रहा है, पर हमारे यहाँ भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के अन्तर्गत गद्य और पद्य दोनों को ही ग्रहण किया है। प्रेमचन्द से पूर्व का गद्य तुकबन्दियों तथा शब्दालकारों के चमत्कार से पूर्ण है। भारतेन्दु ने सरल, सहज और सुन्दर शैली को चुना। उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का वह रूप चुना जो सर्व-साधारण की समझ में आ जावे। उनके विचार से हिन्दी भाषा में उन संस्कृत शब्दों का प्रयोग हो सकता था, जो प्रचलित हैं तथा उर्दू और फारसी के वे शब्द भी आ सकते हैं, जिन्हें हिन्दी ने अपना लिया था। हिन्दी साहित्य के उत्थान और विकास में भारतेन्दु ने नेतृत्व ग्रहण किया और एक नयी भाषा-शैली को जन्म दिया है। अपनी पीढ़ी और आने वाले युग के साहित्यकारों को अपने भावों को प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने भाषा का माध्यम बताया है। बोल-चाल के हिन्दी के शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ, जिससे उस समय के साहित्य में सरलता, सजीवता, मनोरंजकता और स्वाभाविकता आयी।

गोस्वामी किशोरीलाल ने भी अपने अग्रजों की विचारधारा को समझ कर ग्रहण किया। उन्होंने सरस एवं चलती भाषा को अपनाया, जिसमें एक विशेष प्रकार की चुहलता थी। भाषा के ही द्वारा लेखक अपने भावों को पाठकों तक पहुँचाता है। गोस्वामीजी की भाषा एक ओर चटकीली तथा जनरुचि के अनुकूल बोल-चाल की है, दूसरी ओर उसमें लाकोक्तियाँ तथा सूक्तियों का भी प्रयोग है। लेखक स्वयं एक महान् रसिक व्यक्ति था। उनका सारा जीवन वैभव और विलास के वातावरण में व्यतीत हुआ, जिसकी प्रतिच्छाया उनकी रचनाओं पर स्पष्ट है। उनके पास एक ओर यदि संस्कृतबहुला समास शैली का प्रयोग करते हैं तो दूसरी ओर उसमें उर्दू और फारसी के मुहावरे और शब्द भी आये हैं।

आचार्य शुक्ल ने लिखा है :'एक और बात जरा खटकती है—वह है, उनका भाषा के साथ मजाक। कुछ दिन पीछे इन्हें उर्दू का शौक हुआ। उर्दू भी ऐसी-वैसी नहीं, उर्दू ए-मुअल्ला। इस शौक के कुछ आगे-पीछे उन्होंने राजा शिवप्रसाद का जीवन चरित्र लिखा जो 'सरस्वती' के आरम्भ के तीन अंकों में (भाग १—संख्या २, ३, ४) निकला। उर्दू जबान और शेरो-सुखन की बेढंगी नकल से, जो असल से कभी-कभी साफ अलग हो जाती है, उनके बहुत से उपन्यासों का साहित्यिक गौरव

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५१।

घट गया है। गलत या गलत मानी में लाये हुए शब्द भाषा को शिष्टता के दरजे से गिरा देते हैं। खैरियत यह हुई कि अपने सब उपन्यासों को आपने यह मँगनी का लिबास नहीं पहनाया। 'मल्लिकादेवी या बंग-सरोजनी' में संस्कृतप्राय: समाज-बहुला भाषा काम में लायी गयी है।"[1]

गोस्वामीजी की रचनाओं में फारसी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के रूप मिले हैं। उन्होंने भाषा को बोधगम्य और सरस बनाया, जो पाठकों की रुचि को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। किसी भी साहित्यकार के लिए पद्य में रस-सृष्टि करना सरल कार्य है, पर उपन्यास के विशाल पैमाने को ध्यान में रखकर रसास्वादन कराना कठिन कार्य है। यही ध्यान में रखकर गोस्वामीजी ने अपनी भाषा में ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं के शब्दों को उचित स्थान दिया है, जिनका रूप उनकी रचनाओं में व्यावहारिक हो गया है। मुहावरे, अलंकार तथा नादपूर्ण शब्दों का प्रयोग भी इसीलिए पाया जाता है। प्रत्येक रचना में पात्रों की सहज में व्यवहृत भाषा का प्रयोग होना चाहिए। पात्र ग्रामीण हैं तो उनकी बोल-चाल की भाषा में देहाती क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का समावेश होना चाहिए, यदि उसकी भाषा का रूप प्रचलित लोक-भाषा हो। यदि पात्र संस्कृत के पण्डित और आचार्य हैं तो उनके *व्यवहार की भाषा क्लिष्ट तथा तत्सम शब्दावली से पूर्ण संस्कृतबहुला होगी। शैली* भी सामासिक होगी। यदि कोई पात्र मुसलमान या अँग्रेज है तो उसकी बोलचाल की भाषा उर्दू या शुद्ध फारसी के शब्दों से पूर्ण होगी और अँग्रेज आधी अँग्रेजी की सहायता से विकृत हिन्दी का प्रयोग करेगा। टूटे-फूटे हिन्दी के शब्दों को बिगाड़-*बिगाड़ कर बोलेगा। स्त्री पात्रों की भाषा में मनोवेग की लचक, हठ और आग्रह* तथा कल्पनापूर्ण अभिरुचि की झलक होगी। वृद्ध तथा अनुभवपूर्ण पात्रों के कथोपकथनों से आत्म-विश्वास तथा मार्ग-दर्शन की योग्यता की प्रतिच्छाया प्राप्त होती है। यदि पात्रों के अनुकूल भाषा है तो उपन्यास में वर्णित प्रसंगों में स्वाभाविकता तथा *मार्मिकता सहज में आ जाती है। दुखद प्रसंग पर भाषा में प्रसार करुण रस की* छटा दिखाई देना चाहिए तथा विवाह आदि आनन्दपूर्ण अवसरों पर शब्द-शब्द में विनोद तथा चुटकियाँपूर्ण भाषा का प्रयोग विद्वान् लेखक की प्रतिभा का सूचक है। गोस्वामीजी की भाषा में ब्रजभाषा का अपूर्व मिठास है और अवधी की व्यावहारिकता *तथा सजीवता है, तो शैली की दृष्टि से भी हम उनके उपन्यास साहित्य में तीन प्रकार* की श्रेणियाँ पाते हैं : (१) इतिवृत्तात्मक; (२) विवेचनात्मक और (३) अलङ्कृत शैली।

इतिवृत्तात्मक वह शैली है जबकि लेखक का प्रमुख ध्यान आख्यान-वर्णन की ओर रहता है तथा कथानक को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए शैली का निर्माण करने-

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास", पृ० ५५२-५५३।

माप होता चलता है। इस प्रकार की रचना शैली में धारावाहिकता, मार्मिकता और ओज पाया जाता है, जो सहज मे पाठकों के मन को मुग्ध कर लेती है।

विवेचनात्मक शैली के अन्तर्गत लेखक अपनी रचनाओं मे निहित मूल थीम की आलोचना-प्रत्यालोचना करता है। विवेचना-प्रणाली को ग्रहण करके लेखक अपने उद्देश्य से पाठकों को परिचित कराता है तथा जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन करता है जिनके आधार पर व्यक्ति और समाज का क्रम सुख और शान्ति-पूर्वक चलता है।

अलकृत शैली के द्वारा लेखक की काव्य-रसिकता दृष्टिगोचर होती है। उसका पाण्डित्य और विद्वत्ता उनकी रचना शैली में स्थान स्थान पर प्रतिबिम्बित होती है। पात्रों के वार्त्तालाप में आलंकारिकता, रसपूर्ण वक्रता और भाव-भगिमा परिलक्षित होती हैं। कहीं कहीं सुन्दर प्रकृति वर्णन पाया जावेगा कहीं भावुकता के वशीभूत होकर सुन्दर माधुर्यपूर्ण कल्पना की उड़ानें उपलब्ध होंगी। गोस्वामी किशोरीलाल की रचनाओं मे तीनों प्रकार की शैली उपलब्ध हुई है। उपन्यासों मे इतिवृत्तात्मक और विवेचनात्मक शैली के रूप हैं तथा उनका सम्पूर्ण साहित्य अलकृत शैली का सुन्दर उदाहरण है। उनमें व्यक्ति प्रधान शैली के गुण भी दृष्टिगोचर होते है, जिसमे गोस्वामीजी के व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है।

गोस्वामीजी की रचनाओं मे पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। उनके मुसलमान पात्रों की उर्दू का नमूना, जो मामूली उर्दू नहीं है वरन् अरबी-मिश्रित उर्दू है। यहाँ तक कि अनेक अवसरों पर हिन्दू-पात्र भी मुसलमान मित्रों के साथ वार्त्तालाप करते समय उर्दू भाषा का ही प्रयोग करते हैं। उनकी प्रसिद्ध कृति "लखनऊ की कब्र' उपन्यास की भाषा का एक उदाहरण यह है—

"अल्लाह आलम ? यह नाज, यह नखरे, यह गुस्सा, यह सितम, यह कयामत, यह बेरुखी, खिजलाहट और मचलाहट को दूर करो और इत्मीनान रखो कि मैं अब न तो गैरहाजिर हो रहूँगा और न तुमको या चुपचाप कहीं चले जाने हो दूँगा। चाहे जिस तरह हो, दिन रात में एक मर्तबा तुम से जरूर मिल लिया करूँगा और तुम्हें रंजीदा न होने दूँगा।"[1]

इसी उपन्यास में आगे चल कर एक स्थान पर बुढ़िया बाँदी बहू बेगम को आशीर्वाद दे रही है: "अय मैं सदके, मैं कुर्बान। अय मेरी मिहर्बान, नन्हीं बेगम जान, अल्लाह करे, आपकी उम्र दराज हो, मुरादें दिल का बरसाये, मास औलाद से आँचल भरपूर हो जाय, हमेशा खाविन्द की प्यारी बनी रहो, भोग सोहाग बर्करार रहे और अल्लाह ताला नेकी मे बर्कत दे।"[2]

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "लखनऊ की कब्र," सन् १९०६ की प्रति, पाँचवाँ भाग, पृ० १०५।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "लखनऊ की कब्र," सन् १९०६ की प्रति, पाँचवाँ भाग पृ० ६१।

"तारा" उपन्यास की भाषा का उदाहरण भी पाठकों को आश्चर्य में डाल देता है कि लेखकों को उर्दू तथा फारसी का भी कितना ज्ञान है। तारा और जहानारा (जहानआरा) की बातचीत देखिये—"मैं इस बात से पूरी आगाही रखती हूँ और अब अपने तईं भी मुसीबत में फँसी हुई समझती हूँ। मुझे यह भी मालूम है कि बड़े राजों-महाराजों का भी छुटकारा बादशाह की मर्जी के मुताबिक डोला दिये बगैर नहीं होता तो फिर मेरे पिता बादशाह-सलामत ही के घेर आए हैं और मैं यह भी बखूबी जानती हूँ कि बादशाह की मदूल-हुक्मी करना उनकी ताकत से बाहर है और फिलहाल तो मैं खुद ही आपके सामने मौजूद हूँ, बस आप जो चाहें, मेरे साथ सलूक कर सकती हैं, मगर अफसोस।"[1]

यह हिन्दू-पात्र की बोल-चाल का उदाहरण है,अब मुसलमान की भाषा का नमूना देखा जावे। सलावतखाँ की भाषा का उदाहरण यह है—"अस्त गफरुल्लाह। लाहौल-बलाकूवत। प्यारी, तुम्हें क्या मेरी बातों पर यकीन नहीं होता? अगर तुम्हारी मेहनत से तारा दस्तयाब हुई तो सच जानो, मैं कभी तुम सरीखा हुस्न इखलाक और हसीन माशूकों को अपने दिल से जुदा नहीं करूँगा। बकौल शख्स—

खुदा जुदा न करे तुझ परी के सीने से
कभी हुआ है जुदा नगना भी नगीने से।"[2]

केवल उर्दू ही नहीं, इसके विपरीत देवभाषा पर भी लेखक का असीम अधिकार था। संस्कृतनिष्ठ तत्सम भाषा का उदाहरण भी यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। नरेन्द्रसिंह के मुख से "मल्लिकादेवी" उपन्यास का कथोपकथन प्रस्तुत है—

"सरला—अज्ञात कुलशीला के संग राजकुल का सम्बन्ध सराहनीय नहीं होगा।

नरेन्द्र—न हो। चाहे इस सम्बन्ध से त्रैलोक्य हमसे विमुख हो जाय, किन्तु सरला! मल्लिका के संग सघन कानन में भी हम स्वर्गीय सुख का अनुभव करेंगे और मल्लिका बिना इंद्र पद भी हमें भार ही विदित होगा। तुम निश्चय जानो, मल्लिका की प्राप्ति की आशा ही से हम अभी तक जीवन धारण कर रहे हैं।"[3]

गोस्वामी किशोरीलाल बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, उर्दू और हिन्दी आदि सब भाषाओं के अपूर्व ज्ञाता थे। सम्पूर्ण साहित्य का उन्होंने मदन किया था और अपनी लेखनी से उसे स्थान-स्थान पर अंकित किया है। उनके उपन्यासों की शैली के विषय में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने विचार प्रकट किये हैं, जो बहुत कुछ सही जान पड़ते हैं—

"उपन्यासों की एक शैली तो पुरानी कहानी कहने वालों की है। ऐसा प्रतीत होता है मानों लेखक ध्यान लगाये बैठे श्रोताओं को कोई कहानी सुना रहा है। वह

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा," प्रथम भाग, सन् १९२५, पृ० १९।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा," प्रथम भाग, सन् १९२५, पृ० ४८।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "मल्लिका वा बंग सरोजिनी", सन् १९०५, पृ० १२३।

स्थान-स्थान पर हर एक बात स्पष्ट करता और उपदेश देता चलता है, जैसे 'दृष्टान्त प्रदीपनी' उपन्यासों को। दूसरी शैली वह है जिसके अन्तर्गत लेखक पाठकों का ध्यान रखे बिना प्राकृतिक दृश्यों, घटनाओं, पात्रों, वातावरण आदि का विस्तृत वर्णन देता है। ऐसी शैली में कहीं-कहीं पात्रों का समापण भी करा दिया जाता है। आलोच्य काल में यही शैली प्रमुख रूप से मिलती है।"[1]

स्काट की शैली पर लिखे गये हिन्दी के उपन्यासकारों को बंगला साहित्य से शैली की प्रेरणा प्राप्त हुई। कथानक, कथोपकथन, मानवीय भावनाएँ, और घटना वैचित्र्य के लिए सुन्दर शैली की उत्पत्ति हुई। किशोरीलाल के 'लवंगलता' और 'हृदय हारिणी' दोनों उपन्यास बंगला शैली के आधार पर ही रचे गये हैं। यह नितान्त सत्य है कि पश्चिमी उपन्यासकारों की शैली का गोस्वामीजी पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा है, वरन् बंकिमबाबू की शैली से विशेष रूप से प्रभावित होकर उन्होंने आलोच्य-काल की शैली से विशेषरूप से प्रभावित होकर उन्होंने आलोच्य काल की शैली को ही ग्रहण किया है, जिसका मूल उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना तथा उन्हें यथार्थ से परिचित करा नैतिक शिक्षा प्रदान करना है। सन् १८९८ में "उपन्यास" नामक मासिक पत्र निकाल कर किशोरीलाल गोस्वामी ने उपन्यास के क्षेत्र में नूतन शैली को जन्म दिया है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने उन्हें 'मौलिक उपन्यासकार' का स्थान दिलाया है। पत्रकार, सम्पादक, लेखक तथा प्रकाशक सब श्रेणियों में अनुभव प्राप्त करके गोस्वामीजी की लेखनी प्रौढ़ बन गयी है।

आचार्य विजयशंकर मल्ल ने गोस्वामीजी के उपन्यासों की भाषा के विषय में कहा है—"गोस्वामीजी के उपन्यासों में तीन प्रकार की भाषा मिलती है, उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में संस्कृतनिष्ठ, समास बहुला और अलंकृत भाषा का व्यवहार हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यासों में मुसलमान-पात्रों अथवा मुसलमानों से बातें करते हुए हिन्दू-पात्रों की भाषा प्रायः क्लिष्ट उर्दू हो गयी है।"[2]

मल्लजी का दूसरा कथन देखिये—"उनके कई समकालीनों की तरह कहीं-कहीं उर्दू ढंग के वाक्य-विन्यास भी इनकी भाषा में मिलते हैं। प्रेम के प्रसंग आने पर इनके बीच के उपन्यासों में भाषा उर्दू की ओर प्रायः झुक जाती है। कहीं-कहीं अंग्रेजी की तरह के भी वाक्य मिलते हैं। जैसे 'चपला' उपन्यास के इस वाक्य में, "वे (मदन) संसार में एक वृद्धा स्त्री और एक पुत्र के अलावा और कुछ भी नहीं रखते थे।" पर यह भाषा-सम्बन्धी तत्कालीन विभिन्न प्रवृत्तियों का किंचित प्रभावमात्र है। गोस्वामीजी की प्रतिनिधि भाषा द्वारा निर्दिष्ट उस आदर्श हिन्दी का ही विकसित रूप है, जिसमें संस्कृत के

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : "आधुनिक हिन्दी साहित्य", पृ० १८६।
२. विजयशंकर मल्ल : "आलोचना", उपन्यास अंक, अक्टूबर सन् १९५४, विशेषांक पृ० ७५।

तद्भव और देशज तथा उर्दू-फारसी के दैनिन्दन व्यवहार में आने वाले शब्दों का हिन्दी कृत रूप व्यवहृत होता है। सन् १६०१ में प्रकाशित 'राजकुमारी' और सन् १६१८ में प्रकाशित 'अँगूठी का नगीना' की भाषा ऐसी ही है। हिन्दी के उपन्यासों के उपयुक्त यही भाषा है, जिसका प्रेमचन्द ने अपने ढंग से और सुधार किया है। गोस्वामीजी की इस प्रकार की मध्यमार्गीय हिन्दी उपन्यासों के लिए एक देन है। इसमें शुद्ध हिन्दी मुहावरों और कहावतों का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। गोस्वामीजी की प्रतिनिधि भाषा को जब हम अन्तरंग परीक्षा करते हैं तो कहीं-कहीं इनकी रूप-वर्णन क्षमता का बहुत सुन्दर रूप सामने आता है। यद्यपि इनके अधिकांश रूप-वर्णन परिपाटी-विहित और कृत्रिम प्रतीत होते हैं पर जहाँ इन्होंने अपने स्वतन्त्र निरीक्षण का उपयोग किया है, वहाँ नायिकाओं के रूप चित्र किंचित ऐन्द्रिय होने पर भी प्रभावोत्पादक हो गए हैं। हाँ, विशेषणों के प्रयोग में गोस्वामीजी अवश्य अपव्ययी ज्ञात होते हैं। इसका कारण यह है कि वे पात्रों के सम्बन्ध में अपने मनोभावों को तुरन्त कह देने के लिए उतावले हो उठते हैं और काव्यात्मक संयम के साथ संकेत से अथवा कार्य-कलाप के द्वारा पात्रों की विशेषताओं के ध्वनित होने तक रुकते नहीं। यद्यपि घटनाओं की गतिमयता बनाये रखने पर उनका ध्यान रहता है और वर्ण्य-वस्तुओं का चित्रांकन करने में भी उन्हें प्रायः सफलता मिलती है पर पात्रों के विषय में अपना मन्तव्य प्रकाशित करने और उपदेश देने की उतावली के कारण प्रायः इनके उपन्यासों में कथाप्रवाह रुक-रुक जाता है। पर यह उल्लेखनीय है कि अपने सम-कालीनों में यह दोष इनमें सबसे कम है और उन्होंने उपन्यासों की वर्णन शैली का निश्चित रूप से पूर्वापेक्षा अधिक मनोरंजक और कथानुरूप बनाया है। इन्होंने सम्वादों को अधिक स्वाभाविक बनाया और कुल मिलाकर हिन्दी की औपन्यासिक भाषा को शिष्ट व्यवहारिक भाषा के अधिक से अधिक निकट लाने का उद्योग किया है।"[1]

गोस्वामी किशोरीलाल उस प्रकाशदीप के समान हैं जिन्होंने भावी पीढ़ी के लिए उपन्यास साहित्य का द्वार खोला है। गोस्वामीजी के उपन्यासों ने सारी पार्श्व-भूमि प्रेमचन्द के लिए तैयार कर दी, जिससे उनके आगमन के साथ ही हिन्दी उपन्यास अपनी विभिन्न शैलियों में प्रकट होने लगा। भाषा और शैली का मूलाधार स्वाभाविकता में निहित है, इसलिए गोस्वामीजी की भाषा में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और अंग्रेजी सब प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं तत्सम रूप हैं तो किन्हीं दूसरे स्थानों पर तद्भव शब्द प्रयोग में आये हैं। "तारा" उपन्यास में जब राजकुमारी तारा बादशाह की शहजादी से वार्त्तालाप करती है तो उस अवसर पर भाषा का रूप उर्दू होता है, पर जब वही तारा अपनी हिन्दू सखी रमा से बातचीत करती है तो उस समय के बोल-चाल की भाषा सरल हिन्दी होती है। इस भाषा में मुहावरे तथा तद्भव शब्दावली का भी प्रयोग होता है। अंग्रेजी के यथावत् अथवा उर्दू व

---

१. विजयशंकर मल्ल : "आलोचना," उपन्यास अंक, सन् १६५४, पृ० ७६।

फारसी के शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं पर भाषा को अस्वाभाविक बना देता है तथा उसका शुद्ध साहित्यिक रूप विकृत हो जाता है, पर प्रत्येक कलाकार साहित्य-निर्माण के समय अपनी प्रतिभा से पूर्ण प्रभावित रहता है। उसकी विद्वत्ता की छाप उसकी रचनाओं पर होती है। गोस्वामीजी ने व्याख्यान, भाषण, उपदेश और विल (Will) को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है, जिसके द्वारा उनकी व्यवहारपटुता भाषा में दिखायी देती है। पात्रों के कथोपकथन सशक्त हैं, पर जहाँ लम्बे हो जाते हैं, वहाँ पर वे या तो व्याख्यान हैं या उपदेश हैं, इसलिए शैली में लेखक को कभी-कभी व्याख्यान और उपदेश-प्रणाली को ग्रहण करना पड़ता है। प्रत्येक युग का इतिहास उस समय के साहित्य, लिखित अथवा मौलिक, लोकोक्तियाँ अथवा मुहावरे, जन-रुचि, परम्पराओं और रीतिरिवाजों के आधार पर लिखा जाता है। गोस्वामीजी के उपन्यासों ने उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की झलक अपनी रचनाओं में दी है। लेखक के लिए अपने लक्ष्य-प्रधान से प्रभावित होकर शैली को ग्रहण करना होता है—

डॉ० साहब—तो खैर, आगे की परोसी हुई थाली तो खाली करो, क्योंकि धार्मिक हिन्दुओं को थाली में उतना ही जूठा छोड़ना चाहिए जितना कि 'दास-दासी' या 'कुत्ते-कौवे' के लायक हो, बहुत ज्यादा जूठा छोड़ना मानो भगवती अन्नपूर्णा देवी का अपमान करना है।"[1]

गोस्वामीजी की रचनाओं में नारीजाति सम्बन्धी अनेक प्रकार के उपदेशपूर्ण व्याख्यान प्राप्त हुए हैं। गोस्वामीजी की विचारधारा के अनुसार प्रत्येक नारी हीन विचारों की प्राणी है, जो सहज में सांसारिक भोग-विलासों में फँस जाती है। वह कुपथ पर चलना प्रारम्भ कर देती है। अतः उस अबला की रक्षा के लिए पुरुषों की सबलता की आवश्यकता है, जिसके संरक्षण में रह कर वह सदैव जीवन के सद्मार्ग पर चले जिससे समाज में धर्म की प्रतिष्ठा हो सके।

"माधवी माधव" में डॉक्टर साहब और माधवप्रसाद शर्मा का वार्तालाप गोस्वामीजी की विचारधारा को पुष्टि करता है—"संसार में ऐसा कोई कर्म नहीं है जिसे स्त्रियाँ अनायास न कर डालें। इनके मुख में अमृत और हृदय में हलाहल भरा रहता है। हाँ, ऐसी कुल्टा स्त्रियाँ मुँह से कैसी मीठी-मीठी बातें करती हैं, कैसा प्यार करती हैं, कितनी चाह झलकाती हैं और किस तरह प्रेम का बर्त्ताव करती हैं जिसका कोई ओर-छोर नहीं है, पर उनकी इन चतुराइयों पर न भूलना चाहिए क्योंकि उनका हृदय तीखे छुरे की धार से बढ़कर कुटिल और तीक्ष्ण होता है। इसी से लोगों ने कहा है कि स्त्रियों के चरित्र देवता भी नहीं जान सकते हैं फिर तो मनुष्य बापुरा किस गिनती में है।"[2]

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी : "माधवी माधव", भाग २, पृ० ८१।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "माधवी माधव", पृ० १७७।

दूसरा कथन है—'देखो ! सती नारियों का हृदय कैसा कोमल होता है, मन कैसा सरल होता है और चित्त कैसे अपूर्व प्रीति प्रेम से परिपूर्ण रहता है, इस बात का मर्म बिना अनुभव किये किसी की समझ में समझाने से नहीं आ सकता। देखो जो स्त्री सच्ची सती है, वह अपने पति से बढ़कर परमेश्वर को भी नहीं समझती, वरन् निज पति को ही ईश्वर जानती है। ऐसी स्त्री अपने पति के प्रतिकूल कभी नहीं चलती, पति की आज्ञा कभी भंग नहीं करती, पति का अनादर कभी नहीं करती। पति के अतिरिक्त किसी की ओर भूल कर भी कभी नहीं देखती और न कभी किसी अन्य पुरुष का मन में ही चिन्तन करती है। अहा—ऐसी स्त्री साक्षात् दुर्गा है।'[1]

डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने गोस्वामीजी की भाषा और शैली के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं—"यदि वे उर्दूदानी दिखान के विचार से अपनी लेखनी न उठाते तो अवश्य ही उनकी भाषा में क्रमशः वैयक्तिकता का विकास होता। इस अवस्था में दो भिन्न भिन्न शैलियों का रूप सम्मुख देखकर उनकी भाषा का कोई रूप स्थिर करना अनुचित होगा, परन्तु इतना मान लेने में कोई आपत्ति नहीं दिखायी पड़ती कि जिस स्थान पर उनकी भाषा उपन्यास के एकान्तिक क्षेत्र में प्रसन्न रही है, वह स्वच्छ, चमत्कारपूर्ण और भाव-बोधकता में साफ है। स्थान स्थान पर मुहावरेदार होने के कारण उसमें कुछ विशेषता अवश्य आ गया है। परन्तु सब मिलाकर वह इतनी बलवती नहीं हो सकी है कि गोस्वामीजी के लिए एक स्वतन्त्र स्थान का निर्माण करे। देवकीनन्दन की कलात्मक भाषा-शैली से यह अधिक साहित्यिक है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसमें विचारात्मक कथा और भावात्मक विषय का प्रकाशन अपेक्षाकृत अधिक सफलता से हो सकता है। यही कारण है कि उन्होंने इस भाषा में चरित्र-चित्रण और घटना का मनोरम रूप से वर्णन सफलतापूर्वक किया है। उपन्यासों में जहाँ उन्होंने शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया है, वहाँ इनकी भाषा का शुद्ध रूप अच्छा दिखायी पड़ता है। उनके उपन्यासों के बाहर की भाषा कुछ अधिक चलती और धारावाहिक हुई है।"[2]

डॉ० शर्मा के कथन से हम पूर्ण सहमत हैं। गोस्वामीजी साहित्य के पण्डित और मनीषी कलाकार थे। उनकी मौलिक प्रतिभा साहित्य के विभिन्न अंगों में से प्रस्फुटित हुई है। जहाँ पर उन्होंने शुद्ध हिन्दी भाषा के लिए अपनी कलम उठायी है, वहाँ पर उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। हिन्दी भाषा के प्रति उन्हें अपार निष्ठा थी तथा उसी के विकास के लिए इतनी रचनाओं को जन्म दिया। भारत की राष्ट्रभाषा एकमात्र हिन्दी ही उनकी दृष्टि में हो सकती थी और इसीलिए २८ दिसम्बर सन् १९२१ में अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन के इक्कीसवें अधिवेशन के झाँसी स्थान के

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "माधवी माधव", पृ० १७७-१७८।
२. जगन्नाथप्रसाद शर्मा : "हिन्दी की गद्य शैली का विकास", सन् १९५६ का संस्करण, पृ० ११२-११३।

सभापति-पद से उन्होंने जो भाषण दिया है, उसमें उनकी उच्च कोटि की भाषा का स्वरूप तथा प्रभावोत्पादक धारावाहिक शैली के दर्शन होते हैं। इसका एक संकेत इन पंक्तियों से प्राप्त होता है—"महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, बंगाल, आदि भारत के विभिन्न भागों में राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि नागरी में जो भिन्नता प्रतीत होती है, वास्तव में वह भिन्नता नहीं है क्योंकि ये सभी संस्कृतमूलक हैं। अतएव मराठी, गुजराती, पंजाबी, बंगला, उड़िया, सिन्धी आदि भाषाओं को हिन्दी भाषा ही मानना चाहिए क्योंकि भिन्न भिन्न पात्रों में अनेक रूप प्रदर्शित होने पर भी जल का वास्तविक गुण और रूप नष्ट नहीं होता और न घट मठ आदि अवयवों में आकाश ही छिन्न भिन्न हो सकता है।"[1]

इस प्रकार के लम्बे भाषणों में उनके विचारों की स्पष्टता सराहनीय है। धारावाहिक रूप से शुद्ध हिन्दी में वे अपने प्रौढ विचारों की पुष्टि सबल तर्कों से करते जाते हैं, जो बोधगम्य और स्पष्ट हैं। "कविता" के विषय में उनकी धारणा है—"कवि को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए और उसे बंधनों में बाँधना नहीं चाहिए क्योंकि व्याकरण, पिंगल आदि कवि का अनुसरण करते हैं, वह कवि लक्षणा व्यंजना, ध्वनि, रस, अलंकार, छन्द आदि का दास नहीं होता, वरन् ये सब अपने आप उसके काव्य में आश्रय पाते रहते हैं, कविता भूमण्डल की किसी भी भाषा में हो यदि उसमें कवि के हृदय के स्वाभाविक उद्गार प्रवाहित हुए होंगे तो वह पढ़ने और सुनने वालों को तृप्त करने में समर्थ होगी।"[2]

इसके बाद गोस्वामीजी ने अंग्रेजों के प्रसिद्ध छायावादी कवि शैली (Shelley) की प्रेम-सम्बन्धी काव्योक्तियाँ सभापति-पद से सुनाई हैं और हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा हिन्दी के प्रेमी सज्जनों को भाषा और साहित्य सम्बन्धी नूतन दिशा बतलाई है। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामीजी ने तुलनात्मक दृष्टिकोण से प्रेरित होकर पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन किया होगा। उपन्यासों के माध्यम से गोस्वामीजी का काव्य-प्रेम परिलक्षित होता है। 'प्रेममयी' उपन्यास के अन्त में लेखक ने संसार का सबसे बढ़कर पदार्थ प्रेम को ही बतलाया है—

"आनन्द-अनुभव होत नहिं, बिन प्रेम जग जान।
कै वह विषयानन्द के, ब्रह्मानन्द बखान॥
जेहि बिन जाने कछुहि नहिं, जान्यों जात बिसेस।
सोई प्रेम जेहि जानि के, रहि न जात कछु सेस॥

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सभापति पद से भाषण", हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २१वाँ अधिवेशन, झाँसी, २८ दिसम्बर सन् १९३१, पृ० ४।
२. किशोरीलाल गोस्वामी "सभापति पद से भाषण", हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २१वाँ अधिवेशन, झाँसी, २८ दिसम्बर सन् १९३१, पृ० १७।

रस मय, स्वाभाविक बिना, स्वारथ, अचल महान।
सदा एक रस शुद्ध सोई, प्रेम अहै रसखान।"[1]

और भी—

प्रेम एव परोधर्मः,
प्रेम एव परं तप।
प्रेम एव पर ज्ञान,
प्रेम एव परा गतिः॥"[2]

गोस्वामीजी की गद्य-शैली में भी सरस काव्य की मिठास प्राप्त होती है। रसात्मकता की सृष्टि की ओर उनकी सदैव चेष्टा रही है। अतएव उन्होंने अपने उपन्यासों में कहीं भी नहीं आने दी है, इसलिए स्थान-स्थान पर हँसी-विनोद, चुटकियाँ और चुहलपूर्ण प्रसंगों की भी अवतारणा की है। गोस्वामीजी के उपन्यासों में सरस रस-वर्णन हुआ है। "तरुण-तपस्विनी" में अनेक रसपूर्ण प्रसंग प्राप्त होते हैं। रीतिकालीन कवियों की अभिरुचि का पता उससे चलता है। गद्य-काव्यों के विकास में भी रसपूर्ण वर्णन अंकित पाये जाते हैं। "जब से उसके हृदय क्षेत्र में प्रेम का बीज अंकुरित हुआ है तब से चपला की आँखों की नींद जाती रही। पिपासा है पर जल पीने को जी नहीं चाहता, भूख लगी है पर भोजन की ओर देखने की इच्छा नहीं होती और बेकाम बैठी है पर किसी काम के करने की रुचि नहीं होती। वह दिन तो ज्यों त्यों काटती है पर पहाड़ सी रात जल्दी नहीं कटती, इसलिए वह दो तीन घड़ी रोते रह उठकर घर का काम काज करती, चित्र लिखती, कविता करती, कसीदे काढ़ती, वस्त्र सीती व गृहस्थित उद्यान में पुष्करिणी के तीर जाकर गीत गाती।"[3]

गद्य-रचनाओं में भी प्रकृति-वर्णन की भावुक तथा आकर्षक शैली का दूसरा उदाहरण देखिये—"बरसात का भी क्या ही मनोहर दृश्य है। प्रकृति कैसे भीषण अथवा मनोहर वेश से सुसज्जित होकर विचरण कर रही है। उसका मनोहर दृश्य देखते ही नैन, मन और प्राण शीतल होकर शान्ति लाभ करते हैं। आकाश में श्वेत, काले, पीले, धुमिले, हरे, मटमैले, बैगनी, आसमानी, लाल, गुलाबी आदि अनेक रंग के मेघ, पवन के झोंके और जल के बोझ से एक-दूसरे पर कला मुंडी खाते, गिरते पड़ते, गरजते, कड़कते, दसों दिशाओं में व्याप्त हो रहे हैं। रह-रह कर चपला चमक कर आँखों में चकचौंधी चला देती है और नन्हीं-नन्हीं बूँदों की बहार बिहारने से मन महामुदित हो जाता है।"[4]

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेममयी", सन् १६१४।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेममयी", पृ० ३५-३६।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "तरुण तपस्विनी", पृ० ५।
४. किशोरीलाल गोस्वामी "तरुण तपस्विनी", पृ० १६।

"अँगूठी का नगीना" उपन्यास में मदनमोहन पात्र के मुख से नायिका का चित्र-वर्णन अपूर्व सरस रसीला होकर व्रजभाषा में चित्रित हुआ है—

"सुन्दर सजीले सहजीले सर सीले कोर,
काजल कजीले त्यों चकोर सकुचाने से।
नाचत न सीले काम मामक वसीले,
चहकीले चटकीले मटकीले औ अमाने से।
छाजत छबीली के छबील ये रंगीले नैन,
हो सनि हसीले स्त्रौन चूमत दियाने से।
रसिक किसोरी नेह-लाजनि लजीले चारु,
सुधा से रसीले द्वै सरोज सकुचाने से।"[1]

लेखक की स्वयं की रची हुई कविता कथोपकथन के मध्य समय-समय पर अवतरित हुई है। इतना ही नहीं, प्रसंगानुसार कालिदास, श्रीहर्ष वाल्मीकि आदि महाकवियों की रचनाओं में से उक्तियाँ उन्होंने उद्धृत की हैं। इसी उपन्यास में दूसरी ओर जब लेखक "राय साहेब की विल" (Will) का वर्णन करता है तब उनकी भाषा का उदाहरण अत्यन्त गठित एवं व्यावहारिक मिलता है। कहाँ तो नायिका वर्णन में कल्पना की स्वच्छन्द उड़ानें जिसे पढ़कर पाठक चित्रलिखित से रह जाते हैं और दूसरी ओर, व्यवहारिक भाषा शैली का सच्चा रूप 'विल' में दिखाई देता है—"राय साहेब की सालाना आमदनी पचास हजार रुपये की है, जिसमें नीचे लिखे मुताबिक सात मद में यों खर्च किया जायगा—

(क) राय साहब के हाथ खर्च के लिए तीन सौ रुपये महीने।
(ख) बिहारीजी के मन्दिर के व्यय के लिए दो सौ रुपये महीने।
(ग) इस्टेट खर्च के लिए हजार रुपये महीने।"[2]

संक्षिप्त कथोपकथन की बोल-चाल की शैली का रूप भी उनके अनेक उपन्यासों में प्राप्त होता है जिससे कथानक के विकास में पूरी सहायता मिलती है—

"वैष्णवी ने कहा—इसके उपरान्त।

सन्यासिनी—इसके उपरान्त क्या? मेरे घर आने के अनन्तर वे जाग उठे तब मैं वहाँ ठहरना उचित न जान के चली पर वे दौड़ के मुझे पकड़ना चाहते थे। तब मैं अँधेरे में लुक गयी, उन्होंने कोलाहल करके नौकरों को पुकारा, घर में बड़ा हुल्लड़ मचा, उसी अवसर में मैं भी वहाँ भागी।

वैष्णवी—तुम्हारा भाग आना उत्तम नहीं हुआ, उनसे भेंट करना उचित था।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "अँगूठी का नगीना", पृ० ८१।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "अँगूठी का नगीना", पृ० १४६।

सन्यासिनी—न जाने क्यों मेरा कलेजा काँपने लगा, अतः मैं उनके सम्मुख न जा सकी।

वैष्णवी—इस तरह कब तक चुप-चाप बैठी रहोगी ?

सन्यासिनी—जब तक विधाता ने भाग में लिखा होगा। भाग्य लिपि कौन मिटा सकता है ?"[1]

'आत्मचरित्र-प्रणाली' का सुन्दर उदाहरण "माधवी माधव" उपन्यास है, जहाँ चरित्र नायक ने अपने मुख से ही अपनी जीवन कथा सुनायी है—"मेरा नाम है माधवप्रसाद शर्मा—यमुना किनारे बसी हुई आगरा नगरी में मेरे पिता-पितामह आदि पूर्व पुरुषों का निवास था किन्तु अब मैं आगरे में नहीं रहता। बहुत थोड़ी उम्र में मेरी माता का स्वर्गवास हुआ था।"[2]

लेखक के उपन्यासों का पैमाना (Span) जब विशाल हो जाता है, उदाहरण के लिए "चपला", "तारा" और "लखनऊ की कब्र" में तब लेखक एक-दो प्रसंग कहकर पाठकों को पुन. भूतकालीन कथावस्तु से परिचित कराने की चेष्टा करता है। हम मानते हैं कि यह पुनरावृत्ति है और काव्य में इसे दोष भी ठहराया जाता है, परन्तु प्राचीनकालीन कवियों और लेखकों ने इस आख्यान प्रणाली को सहर्ष अपनाया है, जिससे कथानक के प्रसंग यथावत् फिर से पाठकों के मानस-पटल पर विचरण करने लगते हैं।

"चपला" उपन्यास में लेखक का कथन है—"पाठकों को समझना चाहिए कि चपला और घनश्याम को कैद करने वाला शख्स वास्तव में पाजी कमलकिशोर ही था। पाठकों को स्मरण होगा कि जब भैरोंप्रसाद ने भोला के खूनी की हुलिया मदनमोहन से कही थी तो उन्होंने मन ही मन कमलकिशोर को पहिचान लिया था पर बिना कोई प्रबल प्रमाण के पाये वे इतने बड़े शख्स के ऊपर इतना बड़ा इल्जाम क्योंकर लगा सकते थे ?"[3]

"तारा" उपन्यास में गोस्वामीजी ने पाठकों को बार-बार कथावस्तु की घटनाओं की ओर प्रेरित किया है। इस प्रकार के अवतरणों की शैली इतिवृत्तात्मक होती है, जहाँ पर धारावाहिक रूप से कथावस्तु के विकास की ओर लेखक का ध्यान रहता है—"पाठकों, कदाचित याद होगा कि जब सलावत और जोहरा के भेष में इनायतुल्ला और रभा दूसरी कोठी में पहुँचे थे तो उनके पहुँचने के बाद ही कई हथियारबन्द सिपाही नक्ली चेहरा लगाये हुए निकल आये थे और उनके सरदार ने इनायतुल्ला तथा रभा से शिनाख्त का ठीक-ठीक जवाब पाकर उन दोनों से दूसरे दरवाजे से जाने के लिए कहा था।"[4]

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "लावण्यमयी", सन् १८६१, पृ० १५-१६।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "माधवी माधव", प्रथम भाग, पृ० १।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "चपला," चौथा भाग, पृ० ६३।
४. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा," तीसरा भाग, पृ० ३६।

कथावस्तु के रचना विधान में अलंकृत शैली के उदाहरण तो गोस्वामी की प्राय समस्त रचनाओं मे पाये जाते हैं। उनकी शैली 'मृत्समागर", "प्रमसागर," "सिंहासन-बत्तीसी", 'सेवासदन' और "कर्मभूमि" के बीच की कड़ी है। उपन्यास की आत्मा का रूप प्रकट करने के लिए उन्हें कलात्मक अलंकृत शैली को स्थान स्थान पर ग्रहण करना पड़ा है। शैली के द्वारा पाठकों को रसानुभूति शीघ्रता से हो जाती है। लेखक के मनोभावों के अनुरूप शैली का वेश विन्यास होता है। गोस्वामीजी रसिक व्यक्ति थे। वे वृन्दावन बिहारी कृष्ण के उपासक और व्रजमण्डल की लीलाओं के सेवन करने वाले प्राणी थे, अत उनकी शैली में अपूर्व रसमय भावावेश है, साथ ही साथ उनका पाण्डित्य और काव्य शास्त्र का ज्ञान प्रतिभासित होता है।

'हृदय हारिणी" उपन्यास को अलंकृत मुहावरेदार शैली का उदाहरण कितना हृदयस्पर्शी है—'हे राम! डाल से छूटे तो पात म अटके!!! अब उपाय। लीजिए अब यह उपसर्ग लगा कि—कुसुम क भ्रमर (नरेन्द्र) का तो नखशिख कहा ही नहीं और कान कटाकर निकल भागने की पड गयी। हरे हरे!! मनुष्य क्या कभी ऐसी आपत्ति क पाले आ पडता है!!! अच्छा ठहरिये, पाठक, हमने, अपने भागने के लिए काव्य वाटिका की खिड़की तो खोल ही रक्खी है तो अब इतना ही कह कर हम नौ दो ग्यारह क्यों न हो कि—अलौकिक कुसुम क लिए जैसे लोकातीत भ्रमर की आवश्यकता होती है, हमारे आख्यान रूपी उद्यान भी शोभा सम्पत्ति कुसुम के अनुरूप ही विधाता ने उसके रस लम्पट भ्रमर को भी बनाया था कि जिस जुगल जोड़ी की रूपमाधुरी पर मन ही मन मदन इतना जला कि वह सदा के लिए अंग खोलकर अनंग बन गया और अर्द्धांग गँवा कर रति की भी मानो सारी रत्ती उतर गयी।'[1]

उपर्युक्त अवतरण से स्पष्ट प्रकट होता है कि लेखक की शैली अलंकृत और वक्रोक्तिपूर्ण है। उसमें एक ओर प्राचीन काव्य शैली क दर्शन होते हैं तथा साथ ही साथ मुहावरे तथा मार्मिक उक्तियाँ है जिनका स्वाद काव्य-प्रेमी पाठक सहज में उठा सकते हैं। एक ही उपन्यास मे नहीं, बल्कि उनकी साहित्य शैली का निखरा हुआ रूप सारे उपन्यासों म अत्यन्त मनोहारी रूप में प्राप्त हुआ है। 'माधवी माधव" उपन्यास के परिच्छेदों का नामकरण उनकी काव्य-रसिकता और रीति-पटुता का सूचक है—"अंकुर, पल्लव, शाखा, पुष्प, सुरभि, पराग, फल, मधु आस्वादन और परितृप्ति, नामों से जिस काव्यरूपक को गोस्वामीजी ने अपने उपन्यास म सृष्टि की है, उससे उनका काव्य शास्त्र का अपूर्व ज्ञान दिखाई देता है। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा का जो रूप 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में प्राप्त होता है, गोस्वामीजी उसी को हिन्दी भाषा का वास्तविक रूप मानते हैं। हिन्दी वही हो जो संस्कृत से निसृत हो और यदि उर्दू का प्रयोग है तो वह शुद्ध फारसी और अरबी से निसृत हो।"

काव्य-रसिकता और पाण्डित्य का दूसरा सहज उदाहरण इस अलंकृत शैली में

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : 'हृदय हारिणी", पृ० ६१।

प्राप्त होता है—"भगवन, कुसुमायुध ! नमस्ते !! रे मूढ़ मन्मथ, त्रैलोक्य विजय कर लेने पर भी तेरी विजय तृष्णा अभी नहीं मिटी ! सच है, विजयाभिलाषी को कभी भी सन्तोष न करना चाहिए, किन्तु मुझे मुझ गरीब ब्राह्मण पर तो तनिक दया करनी थी, पर तेरे पास दया कहाँ, तभी तो तूने शिव, ब्रह्मा और हरि को भी विजय कर लिया तो फिर मेरी क्या गिनती है। किन्तु मुझ दीन की यदि तू उपेक्षा ही कर देता तो तेरे प्रचण्ड प्रताप और पूरे अमल-दखल में क्या खलल आ जाता।"[1]

शैली के अन्तर्गत अनुभूतियों से पूर्ण कथनों का प्रयोग गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में किया है। 'प्रोषित पतिका' और 'अभिसारिका' नायिका-भेद की ओर भी लेखक का ध्यान गया है और वहाँ पर उनकी शैली सरल, सरस तथा विदग्धतापूर्ण हो जाती है।

सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई' की अवस्था का वर्णन चित्रमय शैली में लेखक ने सफलता से प्रस्तुत किया है—"महल में जाकर उसने (पन्ना) पिंजड़ा खोलकर अपनी प्यारी मैना को उड़ा दिया, खिलौने पत्थर से कूच-कूच कर तोड़ फाड़ डाले, बीन को देखते-देखते जलती हुई भट्टी में लगा दिया किताबें फाड़ चोंथ कर दूर फेंक दीं, अपनी लटें खोल और एक मैली सी साड़ी पहन कर अपना 'प्रोषितपतिका' सा स्वाँग बना लिया और बिना दाना पानी छुए ही, पलंग पर पड़कर आँसू बहाना शुरू किया।"[2]

मुसलमान-पात्रों के मुख से शुद्ध उर्दू बल्कि फारसी की अलकृत शैली का प्रयोग गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में कराया है। "मल्लिकादेवी" उपन्यास में चोरी का कथन दर्शनीय है—"हुजूर, मेरी बातों पर अगर एतकाद रखते हो तो मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि यह लड़की इल्म, खूबसूरती और पाक दामनी में अपना सानी नहीं रखती और हर तरह से हुजूर की पतोहू बनने के लायक है। वह खुद शाहजादे पर हजार जान से फरेफ्त है और शाहजादे साहब भी उसके दामे-उल्फत में मुबतिला हैं। ऐसी हालत में इन दोनों के हाथ में एक दूसरे का हाथ थमा देना मस्लहत से खाली नहीं है।"[3]

यहाँ पर दूसरा उदाहरण "लखनऊ की कब्र" से उर्दू की अलकृत-शैली के प्रयोग के लिए दिया जा रहा है—"उसकी बातें सुनकर मैं निहायत खुश हुआ और इसलिए कि तनहाई की हालत में एक खूबसूरत नाजनीं से दोस्ती का हो जाना मैंने गनीमत समझी। बाद इसके मैंने उसका हाथ खेंच कर अपने रूबरू पलंग पे बैठा लिया और चाहा कि उसे गले लगा कर अपने जले हुए दिल को कुछ ठण्डा करूँ लेकिन

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "माधवी माधव", भाग २, पृ० ८८।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई", पृ० ४८।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "मल्लिकादेवी", भाग २, पृ० ६७।

उसने मेरा हाथ झटका और जरा त्योरी बदल कर कहा—सुना, भई, मुहब्बत के दर्मियान इतनी जल्दी ठीक नहीं, क्योंकि अभी तुम मुझे और मैं तुम्हें बखूबी दोस्ती की तराजू में तौल लें और पूरा पूरा एक सर कर लें तब जो कुछ होना हो, सो हो। क्योंकि मर्द की जात निहायत 'एहसान फरामोश' होती है। बस जहाँ उसका मतलब पूरा हुआ कि फिर वह लालची भौंरे के मिसाल नयी कली की खोज में दीवाना हो जाता है और अधखिली या रस लूटी हुई कली की फिर कुछ पर्वा नहीं करता।"[1]

मिश्रबन्धुओं ने गोस्वामीजी की भाषा के विषय में लिखा है—"आप संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के बहुत अच्छे पण्डित थे। आपने कई ग्रन्थ संस्कृत में, प्रायः १०० हिन्दी ग्रन्थ स्फुट विषयों पर, ६५ हिन्दी उपन्यास लिखे और 'उपन्यास' मासिक पुस्तक बहुत दिन तक निकाली। लेखों में आपकी हिन्दी में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य रहता है तथा उपन्यासों में साधारण भाषा का।"[2]

गोस्वामीजी के उपन्यासों में कोरा आदर्शवाद नहीं है, जो भौतिक धरातल पर असत्य और अस्वाभाविक प्रमाणित होता है। उनके साहित्य ने यथार्थ शैली को प्रकट किया है। उपन्यासों की भाषा और शैली यथार्थवादिता के प्रभाव से ओत प्रोत है, अतः शब्दों का प्रयोग कहीं-कहीं पर निम्न धरातल पर भी पाये जाते हैं। आपस की बोलचाल में मित्रों के मुख से एक-दूसरे को गाली-गलौज, दो सहेलियों का एक-दूसरे के साथ हँसी-मजाक की शैली सच्चे यथार्थवाद की सूचक है। उनकी रचनाओं में जिस चुहल और विनोद का प्रयोग हुआ है, वह अधिक अपनेपन की भावना की सूचक है। उनके उपन्यासों में कथोपकथन-शैली भी उनके व्यावहारिक ज्ञान की सूचक है। प० यज्ञदत्त शर्मा ने गोस्वामीजी की रचना-शैली के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं—"सामाजिक उपन्यासों में अश्लील चित्रण होने पर भी यथार्थवादिता की कहीं कहीं लेखक ने अच्छा निभाया है और यही कारण है कि उन स्थलों पर उनके सामाजिक चित्रण कुछ सजीव हो उठे हैं। देश-काल का भी लेखक ने सामाजिक उपन्यासों में ध्यान रखा है। कुछ स्थलों पर कथनोपकथन भी अच्छे हैं परन्तु कुछ स्थलों पर वह इतने अस्वाभाविक हो गये हैं कि पाठक को रूखे और खटकने वाले से प्रतीत होने लगते हैं।"[3]

पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए लेखक ने प्रवचन और उपदेश-प्रणाली को भी अपनाया है। गोस्वामीजी ने जो कुछ लिखा है वह सच्ची लगन और साहित्यिक अभिरुचि के फलस्वरूप लिखा है। कभी-कभी असंयत वाक्यावली उनके उपन्यासों में प्रकट हो जाती है। इसका कारण उनकी भावुकता है और स्वच्छन्द कल्पना से

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "लखनऊ की कब्र", भाग दूसरा, पृ० ७५।
२. मिश्रबन्धु : "मिश्रबन्धु विनोद", चतुर्थ भाग, पृ० १७६।
३. यज्ञदत्त शर्मा : "हिन्दी के उपन्यासकार", पृ० २२।

प्रभावित होने के कारण कहीं पर पत्रादि शैली भी अपनाई है। कहीं प्रवचन-पटुता है और कहीं-कहीं पर रचनाओं के मध्य में पाठकों को सम्बोधन है। वास्तव में, गोस्वामीजी के उपन्यासों की महत्ता इसी में है कि उनमें उस विगत स्वर्णिम युग की स्मृति है जब हिन्दी का आख्यायिका साहित्य रहस्य और कौतूहल की प्रचलित प्रवृत्तियों को छोड़कर समाज की विभिन्न धाराओं में प्रवेश कर रहा था और उपन्यास के उपकरण मानव-जीवन के व्याप्त क्षेत्र से चुनने के लिए लेखक प्रयत्नशील था। गोस्वामीजी के उपन्यासों में कथोपकथन शैली पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है, जो सहज और सबल तथा प्रभावोत्पादक है, पर उनमें जिस अभिव्यंजना शैली के दर्शन होते हैं, उसे आधुनिक युग के उपन्यासों की रचना-शैली की कसौटी पर कसना तो नितान्त भूल होगी। उनमें युगीन यथार्थ रचना-कौशल के दर्शन होते हैं, जिससे उपन्यासों के प्रति पाठकों में अभिरुचि उत्पन्न हो सके।

डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने गोस्वामीजी की रचना शैली के शिल्प के लिए अपने सजे हुए विचार इस प्रकार से प्रकट किये हैं—"हिन्दी उपन्यास की वे आदि साहित्यिक धाराएँ तीन थी—'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के आधार से देवकीनन्दन खत्री की तिलस्मी और ऐयारी धारा, 'त्रिवेणी', 'स्वर्गीय कुसुम', 'हृदयहारिणी' और 'लवंगलता' के आधार से *किशोरीलाल गोस्वामी की सामाजिक एवं ऐतिहासिक* प्रेम-रोमांस धारा और जासूस के आधार से गोपालराम गहमरी की जासूसी धारा।

दूसरी धारा में स्वाभाविकता और सामाजिकता की ओर जाने की सफल प्रेरणा है। इसमें कथा-सूत्र और पात्र-विधान दोनों का यथासम्भव समन्वय है पर इसमें भी अतिरंजना, काल्पनिकता और रोमांसिक प्रेम-सूत्रों का बाहुल्य है। शिल्प की कसौटी पर ठोक-बजा कर हम पाते हैं कि वे उपन्यास नहीं, कथाएँ हैं जिनमें लेखक ही मुख्य है, पात्र तो उस सूत्रधार के कठपुतले हैं। सारा साधारणीकरण सीधे पात्र से न होकर लेखक के माध्यम से तथा उससे भी परोक्ष उनके कथित व्यापारों से होता है। पर सबसे खरे सिक्के दो थे—कथाशिल्प का चातुर्य जिसमें कौतूहल और मनोरंजन के बीज थे तथा सीधीसादी भाषा, स्वाभाविक प्रवाह को लिए हुए जिसमें अभिव्यंजना शक्ति थी।"[1]

गोस्वामीजी ने गद्य की भाषा में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया है जिससे वह प्रभावोत्पादक हो जाती है और उसमें अधिक चमत्कारिकता आ जाती है। भावों को थोड़े शब्दों में प्रकट करने की शक्ति मुहावरों में है, अतः मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग गोस्वामीजी की साहित्यिक प्रतिभा की परिचायक हैं। उनकी रचनाओं में सजीवता के पूर्ण संकेत स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं।

आगे भोजपुरी, अंग्रेजी, उर्दू और ब्रजभाषा के शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं

---

१. डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल : *"आलोचना"*, *उपन्यास विशेषांक*, पृ० १५३-५४, अक्टूबर, सन् १९५४।

जो सहज मे ही गोस्वामीजी की रचनाओं में आ गए हैं। यहाँ भोजपुरी भाषा के शब्दों के कुछ उदाहरण दिए गये हैं—

'हृदय हारिणी' में पटुका, बबुआ, मन्दराज (मद्रास), खटखट (पलग), चौधारे, मादगी।

"मल्लिकादेवी' मे जानजोखा, धुड़ी (धिक्कार), दिखलाइयो, राखयो, धावित हुए।

सस्कृत भाषा के शब्दों का प्रयोग—बृहिस्पत तत्तोधिक, कातरोक्ति, प्रकोष्ठ, परिभ्रण, रोष कषायित, रक्तिमा वर्ण, अज्ञात कुलशीला, दूर सपर्कीया, दैव दुर्विपाकवश, अत सत्वा, अश्रतिपतन पितृमातृ विहीना, मृयमाण, आनुपूर्विक, श्रम वाहुल्य प्रस्वेदकण, कठागत प्राण—(मल्लिकादेवी) मे।

एकोनविंशति, निर्वाणोन्मुख, कर्णगोचर, अस्तोन्मुख, नक्षत्र-मण्डला मडित मलिन मृगाक सूची कम, फलानुगामी, एतदथ, सुखशर्वरी, कोमल वयवा, कबु कठ, विष फलानुमित, गाढालेष, अश्रु विमोचन, गुप्ताभि सन्धि, प्रबोध वाक्य हर्षोत्फुल्ल, द्रापावत सूक्ष्म-स्वासिल-परिष्कृत, कमल कलिका कल्प, अनभ्र वज्रमापत, अगत्या, दावदग्ध, आक्षेप त्रिकालज्ञ, वृत्तात हस्तामलक—(तरुण तपस्विनी) मे।

अयताप, चतुर्दशी, मृत कल्प, अस्थि चर्मावशिष्ठ, अस्त सार शून्य, वक धार्मिक, किम्बा, भस्मसात, पर स्वापहरण, क्षीरोदधि, विद्युत्ताडित, पूर्वजन्मार्जित, हिताहित ज्ञान जनित, अनुतापानल, सर्वावस्था, प्राणाधिका, पचाशत, दु ख पापहारिणी, ईश्वरेच्छा वलायसी, तीर्थस्थान स्वरूपा—(त्रिवेणी) म।

दु शीलता, सापत्न्य ज्वाला, अन्त पुरवर्ती, विधिविडम्बना वश, भोजनाच्छादन, अन्त.पुर, त्रयोदशी, शुक्लवसना, बिभ्रार, पर्यंक, रसातलगत, हास्य प्रिया, विश्रम्भालाप, मधुरेण—(पुनर्जन्म या सौतिया डाह) म।

कान्तर्हिता प्रिया हन्त। राहु ग्रस्तेव कौमुदी (सुभाषितम) शठेशाठ्यम, शठे शाठ्यम समाचरेत। कामा तुराणा न भय न लज्जा। परिणाम, कथा प्रसग, हासविलास, विधि प्रतिकूलता, सप्रदान—(लवगलता) में।

अस्तप्राय, भूप, गजेन्द्र, ध्वस्त, अमुक, ससागरा, विधि विडम्बना, लोकाचार, पापाचाचार, प्रलय, गृहप्रवेश, वध्यपशु, चतुर चूडामणि, मानस रजिनी, नखसिख, गर्वगर्वित, कविकुलगुरु, आबाल वृद्ध वनिता, सर्वांग पशु वृषभ, कुसुमायुध सुधा सरोवर, काव्य वाटिका, कवि बापुरा, अधीन, अलमति विस्तरेण, देवराधण, पुण्यप्रताप, त्रैलोक्य, प्रासाद, उन्नत हृदये, विवाहान्न परसोध्यम—(हृदय हारिणी) में।

अस्ततोगत्वा, रोदन ध्वनि, विनिन्दित, महान्विता, सहस्त्र गुण, द्वादशवर्षीया, मनोवाञ्छा दुस्साहसिक, प्रकृत, स्वापदपूर्ण, जन्तुविहीन, पशुकुल, क्लान्त, प्रौढ़ा सु दश वर्षीया, भ्रूक्षेप, अर्द्ध निद्रित, शाखा प्रशाखा, देहकृश, वस्त्र मलीन, मुखाकृति भयानक,

केश रूक्ष, यावज्जीवन द्वीपान्तर, अज्ञात यौवना, सम्प्रति, उद्यान क्रीड़ा, प्रज्ञातकुल-शीला, प्रार्स्वर्पित, नि.सीम—(लावण्यमयी) में।

शुद्ध तथा तत्सम भाषा को ही गोस्वामीजी हिन्दी राष्ट्रभाषा का वास्तविक स्वरूप मानते थे, अत. उनकी रचनाओं मे दोनों प्रकार के शब्दों का व्यवहार हुआ है। कहीं शुद्ध तत्सम शब्दावली है तो कहीं पूर्ण तद्भाव रूप उपलब्ध है।

उनकी रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग भी स्थान स्थान पर हुआ है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं—

अपने भी पराये हो जाना, निर्धन का आदर कौन करता है, बत्तीसी चमक उठी, धीरज की डाल मे मेवा फलना, मन में चुभ जाना, मन के लड्डू खाना, नींद को भी नींद आ जाना, करवट बदलना, माया के जाल में लालची प्राणी का फँसना, साँप लोटना, जल भुन कर खाक होना, धूल उड़वाना, ऊँच नीच समझाना, हृदय पर पत्थर रखना, कलेजा हाथों उछलना, जुदाई की आग में भुनना, कोरा जवाब दे देना, खोटी बात मुख से निकालना, नौ दो ग्यारह होना, सोना और सुगन्ध होना, पहाड़ ढा देना, टका सा जवाब देना, दूध की मक्खी की तरह अलग करना, बाट जोहना—(तरुण तपस्विनी) में।

आधे पेट खाना, करवट बदलना, गहरी छनना, आँखें ठण्डी होना, दाई से पेट नहीं छुपता, कहाँ की बारात उतरना, बदन में बिजली दौड़ जाना, दूधन नहाव पूतन फलो, नाम लेवा पानी देवा, हाथों हाथ पाना, छठी का दूध याद आना, सब गुन भरी वेतरा सोंठ, चुगली खाना पेट में लम्बी डाढ़ी, आँसू गिराना, बातों में कायल होना, घराने चलना, कोरी बात बनाना, बातों का क्या ठिकाना, मुँह देखी बात करना, सिर पर चढ़ने लगना, मन की बात ताड़ जाना—(अंगूठी का नगीना) में।

लल्लो चप्पो करना, जिसकी लाठी उसकी भैंस, मनौता रंग जमाना, कपट निद्रा को बिदा कर देना, मारे क्रोध के भभक उठना, ऐब छिपाना, लम्बी साँसें खींचना, वैर बिसाहना, बला में फँसना, दिन बिताना—(लवंगलता) में।

मुनादी फेरना, आँखें चौंधिया जाना, घबराहट में फँसना, तितर बितर हो जाना, काना फूँसी करना, जहाँ न जाय रवि वहाँ पहुँचे कवि, चेटी मारना, बैकुंठ सिधारना, आँसू ढलकाना, हाल जान लेना, प्राण तड़पना, जी घुटना, हृदय फटना, दिन दिन छीजना—(हृदय हारिणी) में।

उनकी रचनाओं में अलंकारमयी शैली और रसात्मक शब्दों के प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं—

चपला की चपला सी, मंद मारुत मनुष्यों के मन को मुदित कर रहा था, सरोसी औघी, सुसज्जित सदन, कमल-कलिका-कहर, कुच कुंद कुड्मल, मन मयंक, अजस्र अश्रुधारा, सुख सयम, ज्वलत ज्वाला, अश्रु उपहार—(तरुण तपस्विनी) में।

सलोनी सूरत, चण्डूल चिहुक, विछवाड़े पगार, छैल छबीली, पटापट, शैवारहृद, सुन्दर सजीले सहजाने, काजल कजीले, छाजल छबीली, विशेष विमर्श—(अंगूठी का नगीना) में।

धर्मानुरागी जन, स्नान संध्या, पलित प्राण पतित पावनी, प्रियतमा पत्नी, प्राण प्यारे, अन्तःसार शून्य स्वार्थ, प्रमदा नारी, कुल कामनी, मनो मोदक, कुरंग नयनी, कुटिल कुलटाओं, वर वधू जन, मानसिक माह, क्रिया कौशल, जड़ जीव, परम प्रेमाराध्य, कर्माकर्म, सर्वोत्तम सन्तति, तारतम्य, कल्पनाकृत, मंगलमय—(त्रिवेणी) में।

सोमा सौष्ठव-सम्पन्ना, प्रजा पुत्रवत, पृथ्वी पोषण, परिच्छेद परिधान, सौम्य शील, कराल काल, कालस्य कुटिला, प्रमपथ, विज्ञ वर, प्रीति पियूष कोकिल स्वर, शीघ्रगामिनी तमिस्त्रभिसारिका, प्रेमप्रमाद मग्न, प्रबल प्रकम्पिनी, कुल कलंकनी, प्रणयिनी परिणय, मनुष्य मण्डली मात्र, मूल संवाद—(प्रणयिनी परिणय) में।

हिन्दू धर्मशास्त्रों और पुराणों का गोस्वामीजी ने गूढ़ अध्ययन किया था तथा शुद्ध वैष्णव होने के कारण मन्दिरों की संस्कृति की छाप उनकी भाषा शैली पर कहीं-कहीं स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रारम्भ से ही वैष्णव बालक को गुरु की शाला में संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन कराया जाता है। गोस्वामीजी ने भी अपने मातामह तथा अपनी पूर्व-परम्पराओं से उच्च कोटि की शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त की थी।

उर्दू के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी गोस्वामीजी के उपन्यासों में भरपूर है—

मस्त मानता—(तरुण तपस्विनी) दिल, फेहरिस्त, गुल, असील, हरामजादा, इज्जत आबरू, मर्दाना सिन्ना, कलेजा, जोरू खसम, अर्ज करना, परवरिश, तकलीफ, इन्तजाम, नाजुक, परवाना, वगैरह, सफत, इजलास, हाजिर, मस्ती, मुस्तैदी, होलदिल, सौख ननद, निगोड़ी, कबूल, शैतान, दिल्लगी, चुहलबाजी, शरमा कर, नमना-पैदायश गुलचे, बेतुकी, जिन्दगी, ईमान (अंगूठी का नगीना)। फिरमतवर, मस कुल मौत, निशानी, निस्बत, कब्र, महलसरा, मलका, दास्तान, ख्वाब, कामिल, कयामत, मुख्तसर किस्म, मिहरबानी, फारिग, रोशनदान, नामोनिशान, तबीयतदारी, परास्त, अदाब अर्ज, माहक नजर दोड़ाना, बक्त जाया करना, बेबसी की जंजीर, चिराग रोशने, शमादान, हम्माम, लाहौल बला कूबत, कलेजे में छुरी मारना, माजरा, नापाक रूह, खुशरोजी, पेशतर, यकीन, नाजनी, खाहरूक, प्राशिक, माशूका, बफादार, फाहिशा, पोशीदा, बमजीन, दर्याफ्त किश्ती, रुखसत, मुनासिब, हमराह, बुनियाद, खिदमती, मसरफ, खाक, फजूल, शिद्दत, कतरे कतरे, निहायत, मुकर्रर, मुकाबिला, गनीमत, साबित, अल्हाहुलिल्लाह, जोरा, बेवफा, होशोहवास, दरमस्त, शक्ल, आजाद, गोया, दरसयाब, तहबिल, पर्वरदिगार,

धोतियाँ, गश, उम्दा, माखिर, काबिल, मुसब्बिर, हसीन, कद आदम, दमौर, मुतलक, दर्मियान, एहसान फरामोश, आजमाना, शराफत, बईद, पशोपेश, खुशनुमा, अमोराना, फन, जामतो बरकरार रहे, शैतान की नानी, रंग लाना, बेतरह घूरना, गौर करना, खाक करना, जहन्नुम में जाना, शरारत करना, मुफ्लूक करना, तशरीफ लाना—(लखनऊ की कब्र—भाग २) में उपलब्ध हुए। ये शब्द तो केवल एक दो रचनाओं से लिए गये हैं, यदि "लखनऊ की कब्र" के पाँचों भाग, "तारा" के तीनों भाग अथवा उनकी अन्य ऐतिहासिक रचनाओं की छान-बीन की जावे तो सुन्दर से सुन्दर तथा सार्थक अरबी, फारसी और उर्दू के शब्दों का चलन प्राप्त हो जावेगा। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही पात्र इन भाषाओं का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में करते हैं। गोस्वामीजी मुस्लिम शासन तथा संस्कृति की मान्यताओं से पूर्ण परिचित थे, अतः देवभाषा और हिन्दी के अतिरिक्त भी उन्हें अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है।

अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग तत्सम रूप में भी यदाकदा गोस्वामीजी के उपन्यासों में प्राप्त हुआ है। जैसे—कोर्टशिप, फाटो (तरुणी तपस्विनी) में, डिगरी, लेक्चर (अंगूठी का नगीना) में। पालिसी आदि (प्रणयिनी परिणय) में उपलब्ध हुए हैं।

उनके उपन्यासों के मध्य में अंग्रेजी के वाक्य तथा सूक्तियाँ भी आई हैं, जो यथातथ्य अंग्रेजी में छपी हैं और उनका भावार्थ भी गोस्वामीजी ने हिन्दी में करके रखा है।

"पण्डितवर मैक्समूलर ने बहुत ही ठीक कहा है— ....
अर्थात् मनुष्य का यथार्थ इतिहास उसके मत का इतिहास है।"[1]
"योरोप में नेपोलियन बोनापार्ट ने बहुत ही सत्य और खूब कहा है—...... ...
अर्थात् अगर कोई ईश्वर न हो तो हम लोग एक ईश्वर का अनुमान कर लें।"[2]

सुपरिन्टेन्डेन्ट, मजिस्ट्रेट, म्युनिसपैलिटी, कान्स्टेबिल, लालटेन, मिस्टर, डॉक्टर, फर्स्ट क्लास कम्पार्टमेंट, मेल, रिजर्व, टिकट, ट्रेन, मिडिल पास, स्कूल, सीन, डिस्पेन्सरी, क्लास कॉलिज, फिटन, नोटिस, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नोट, जेन्टिलमैन, मोनोग्राम (M. P , M. D., S. P., D. D. और M. M.)—(माधवी माधव वा मदनमोहिनी) में मिलते हैं।

साहित्य सम्मेलन के सभापति-पद से जब उन्होंने भाषण दिया तो अंग्रेजी के प्रसिद्ध रोमांटिक कवि शैली की पूरी कविता का प्रयोग किया है तथा उस भाषण

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रणयिनी परिणय," पृ० ३१।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रणयिनी परिणय," पृ० ३१।

में उसका हिन्दी अनुवाद भी लेखक ने स्वयं करके रखा है। उनके द्वारा किये गये अनुवाद की भाषा सरल और सहज तथा मार्मिक है।

' निज छंद—गन जे गान माहिं,
मेलन दे मनहरन राग माहिं
आइहि नहिं, करहि हिंग सहित हेत,
पै, आइहि तू यदि उमग चेत।

—शली'

यह गोस्वामीजी के द्वारा किया गया अनुवादित हिंदी रूप है। इसका अंग्रेजी मौलिक स्वरूप भी इस प्रकार से ग्रहण किया है—

Let me set my mournful ditty,
To a merry measure—
Thou wilt never come for pity
Thou wilt come for pleasure"[1]

अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करना सरल कार्य नहीं है तथा उस युग में जब रूढ़िवादी सामन्तीय परम्पराओं ने जनजीवन और लोक व्यवहार में अपनी गहरी जड़ जमा रखी थी। अपने युग को गोस्वामीजी ने नूतन भावी मार्ग दिखाया है जबकि व्यावहारिक बोलचाल की भाषा में भी प्रत्येक मनुष्य को हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू और फ़ारसी का ज्ञान होना आवश्यक हो गया था। राजभाषा, जनभाषा तथा इतिहासों के अध्ययन के लिए सब प्रकार की भाषाओं का ज्ञान विद्वानों के लिए आवश्यक था। गोस्वामीजी की रचनाओं में भाषा और शैली के अगणित रूप उपलब्ध हुए हैं, जो पाठकों को कौतूहल से भर देते हैं। जहाँ पर गोस्वामीजी ने अपने शुद्ध संस्कृत ज्ञान का परिचय दिया है, वहाँ पर भाषा में शुद्ध तत्सम पदावली का प्रयोग होने लगता है। 'प्रणयिनी परिणय' के इस उद्धरण से लेखक की संस्कृत-निष्ठ भाषा का उदाहरण प्राप्त होगा—"अहा! ऐसे सुयोग्यतम, न्यायपरायण, राज्यभारवाहक्षम, प्रजावत्सल, महीपति के राज्य में भी कभी असच्चरित्र, चोर, लपट शठ, बदमाश, उठाईगीरे या डाकू रह सकते हैं? वा उसकी सुशीला प्रजा कभी भी दुष्टों से विविध कष्ट पाकर दुःखी, दरिद्री, पीड़ित और अन्यायग्रस्त हो दीन भाव से रह सकती है? सुतराम सर्वसौख्य लहरि कल्लोल कौतुक का अवगाहन में सन्देह ही क्या है? परन्तु क्या ऐसे कुसमय को सुप्रबन्ध के कारण देख कर फिर महीपति को सन्तोष करना उचित है? क्या राज्य शासन में निश्चिन्तता कभी भी कार्य कारिणी हो सकती है? वह निश्चिन्तता कभी राजा के तत्पर हुए बिना यथावस्था में कभी रह सकती है? बस यही विचार कर रात्रि के परिभ्रमण से राजा कदापि

१ किशोरीलाल गोस्वामी का अध्यक्षीय भाषण" झांसी के साहित्य सम्मेलन पद से, पृ० १८-१९।

विरत नहीं रहता, किन्तु यह मानव प्रकृति है कि अपने कार्य की उत्कृष्टता देख कर मनुष्य के चित्त में अहंकार का संचार होता ही है और अहंकारग्रस्त मनुष्य से आपत्ति के बिना सुप्रबन्ध क्या कर सकता है। यह जानकर राजा अपने राज्य प्रबन्ध के धर्मसिन्धु में मग्न रह कर गर्व रहित हो सदा परमेश्वर ही को धन्यवाद दिया करता था।"[1]

इसके विपरीत दूसरे उपन्यास, "लखनऊ की कब्र" से–व्यावहारिक बोलचाल की भाषा का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है, जिसमें आधे से अधिक शब्द उर्दू के हैं। यह युसुफ और दिलाराम की बातचीत है। इसमें छोटे-छोटे कथोपकथन के माध्यमों से भाषा का स्वाभाविक प्रवाह निखरा हुआ प्रतीत होता है—

"मैंने कहा—तू कौन है ?

उसने कहा—आपकी मददगार दोस्त।

मैं—अल्लाह, तू और मेरी मददगार दोस्त।

वह – (हँस कर) मआज अल्लाह, मेरी सूरत का कोई भी ख्वाहा नहीं।

मैं—खैर यह नाज तो तू अपने किसी हवसी आशिक को दिखलाइयो। मुझे सिर्फ इतना ही बतला कि तू कौन है।

वह—(मुस्करा कर) यह तो मैं पेश्तर ही बतला चुकी।

मैं—क्या बतलाया ?

वह—अब तो मुझे वह बात याद न रही।

मैं—आह ? सितम न ढाह और बतला कि तू कौन है।

वह—मैं आसमानी की रूह हूँ।"[2]

गोस्वामीजी ने उर्दू शब्दों का प्रयोग बहुत किया है, पर इस बात का ध्यान रखा है कि वह हिन्दी भाषा में खप जावें। उनमें आकर पूर्ण मिल जावें। हिन्दी के व्यावहारिक रूप पर ही उन्होंने प्रमुख ध्यान दिया है। भाषा और शैली में सजीवता लाने के लिए छोटी-छोटी प्रश्नोत्तर प्रणाली को लेखक ने अपनाया है। हिन्दी के लोक-प्रचलित शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। यही कारण है कि भोजपुरी भाषा, ब्रज-भाषा और खड़ी बोली के शब्द सब हिन्दी के बन कर ही प्रयोग में आए हैं। 'चौधारे', 'मौदगी', 'नगीच', 'गुल्चे' शब्द बनारस के आस-पास प्रचलित हैं जो वहाँ के जन जीवन में बोले जाते हैं। गोस्वामीजी ने अपने उपन्यासों में इस प्रकार के शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। मुस्लिम समाज का सजीव चित्रण करने में गोस्वामीजी की सफल लेखनी खूब चली है। मुसलमानी राज्य में हिन्दू नारियों की कैसी असहाय अवस्था थी। हिन्दू नारी अपनी सतीत्व की रक्षा के लिए जासूसी, तिलस्मी और ऐयारी मार्ग अपनाकर पुरुषों को बुद्ध बनाने में अपना कौशल प्रकट

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रणयिनी परिणय," पृ० २।
२. किशोरीलाल गोस्वामी 'लखनऊ की कब्र,' भाग २, पृ० २०।

करती रही। "लखनऊ की कब्र", "कनक कुसुम" "हृदय हारिणी", "लवंगलता", 'तारा', "रजिया बेगम" आदि सब उपन्यासों में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, उसमें उर्दू के प्रचलित शब्दों तथा मुहावरों का खूब प्रवेश हुआ है। भाषा का जो स्वरूप गोस्वामीजी ने ग्रहण किया है, वह युग, सामाजिक व्यवस्था तथा परम्पराओं के अनुकूल है। पात्रों के जीवन में जो घटनाएं घटती हैं, उनके अनुसार ही लेखक ने भाषा का प्रयोग कराया है। यह उर्दू कहीं-कहीं पर तो शुद्ध फारसी भी बन गयी है। उसी प्रकार हिन्दू-पात्रों के द्वारा तत्सम एवं विशुद्ध हिन्दी के शब्दों तथा मुहावरों का प्रयोग कराया है। अंग्रेजी के तद्‌भव शब्दों का भी गोस्वामीजी ने हिन्दी में उदार होकर प्रयोग किया है। भावों को प्रकट करने के लिए अंग्रेजी के शब्दों का भी उपयोग हुआ है। यदि धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में गोस्वामीजी अनुदार थे तो भाषा के प्रयोग में वे पूर्ण उदार तथा व्यवहार-कुशल पाये गये हैं। उन्होंने अवसर तथा पात्रों के अनुकूल ही भाषा और शैली का प्रयोग किया है। गोस्वामीजी अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे, अतः उनके पास अनेक भाषाओं के शब्दों का भण्डार था। उन्होंने अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा के शब्दों का बहिष्कार नहीं किया, पर हिन्दी भाषा को व्यापक, सर्वग्राह्य तथा विशाल बनाया, जिसके कारण उनके उपन्यासों के पाठक सब जाति तथा श्रेणी में आ जाते थे।

उनकी भाषा के विषय में कुछ टीका करने से पहले यह कह देना आवश्यक है कि गोस्वामीजी में बहुमुखी साहित्य सृष्टा और युग-द्रष्टा की प्रतिभा थी। केवल उपन्यासकार ही नहीं, कवि नाटक-कार, सम्पादक, प्रकाशक व गीतकार होने के नाते अपनी भिन्न-भिन्न रचनाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग करना उनके लिए आवश्यक था और उन्होंने उसका सफल प्रयोग किया है। जिस प्रकार गोस्वामीजी के हिन्दू-पात्र मुसलमानों से वार्त्तालाप करते समय शुद्ध उर्दू तथा फारसी शब्दों का प्रयोग करते हैं और हिन्दी भाषा के प्रति अपनी हठधर्मी नहीं बतलाते, उसी प्रकार मुसलमान पात्र भी जब हिन्दू-पात्रों के साथ बात-चीत करते हैं तो वे भी अपनी हठधर्मी नहीं बतलाते हैं, और हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिसमें उर्दू के साथ ही साथ हिन्दी भी है। उनकी प्रसिद्ध रचना "मल्लिकादेवी" में भैरवी और तुगरल की बात-चीत में यह प्रकट हो जाता है—

"भैरवी—हमें रोकने वाला संसार में कौन है?

तुगरल—हमने समझा कि तुम भैरवी हो पर इस वक्त तुम हमसे क्या चाहती हो।

भैरवी—हम क्या चाहेंगी। पर तुम्हीं हमसे कुछ चाहें तो?

तुगरल—यह बात उलटी है।

भैरवी—सुनोगे तो सीधा जान पड़ेगो।

तुगरल—ओह ! कहो भी, क्या कहती हो।

भैरवी—क्या तुम वीरेन्द्रसिंह की लड़की को भूल गये।

तुगरल—एँ, कौन वीरेन्द्र ! मुझे इस वक्त कुछ याद नहीं आता।

भैरवी—छिः तुम्हारे प्रेम पर धिक्कार, भागलपुर के मन्त्री को क्या तुम बिलकुल ही भूल गये जिनकी कन्या के लिए तुमने उनका सर्वनाश किया था।"[1]

उसके उपन्यासों की कथावस्तु का आधार प्रेम एवं रोमांस रहा है। उनके उपन्यासों में नायक-नायिका का प्रेमालाप चलता है। नायिकाएँ सुन्दर हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए नायकों के अनेक प्रकार के भेद भरे प्रयत्न चला करते हैं। नायक और नायिकाओं की बात-चीत का भी प्रमुख विषय कामेच्छा की पूर्ति तथा प्रेमालाप है, अतः उनकी भाषा की मूल थीम प्रेमपूर्ण शब्दों से सजी हुई भाषा है, जिसमें किसी भी भाषा के शब्द भावों की अभिव्यक्ति के लिए ग्रहण कर लिये गये हैं—केवल वह भाषा जो नायक को प्रिय हो अथवा नायिका को रिझाने के लिए प्रयोग में आई हो। उस कथोपकथन के द्वारा स्पष्ट प्रकट होता है कि गोस्वामीजी ने भाषा के प्रयोग में एक ओर अपनी पाण्डित्य-प्रतिभा को ध्यान में रखा है, दूसरी ओर भाषा को सहज, सार्थक, स्वाभाविक और सजीव बनाया है। वास्तव में भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा भावों की अभिव्यंजना होती है। भाषा साधन है, जो पात्रों के हृदय के विचारों को प्रकट करती है साध्य नहीं है। कथावस्तु, देश-काल और प्रसंग के अनुकूल लेखक ने भाषा और शैली की अवतारणा की है। सबसे अधिक गौरव की बात तो यह है कि गोस्वामीजी के सामने भाषा का कोई प्राचीन आदर्श उपलब्ध नहीं था। उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों ने भी भाषा का कोई रूप प्रतिष्ठित नहीं किया और सहवर्ती देवकीनन्दन खत्री तथा गोपालराम गहमरी भी जासूसी, तिलस्मी तथा ऐयारी उपन्यासों की रचना में इतने जुझे रहे कि भाषा के रचना-कौशल और शैली-शिल्प की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। केवल भाषा को जनरुचि के अनुकूल चमत्कारपूर्ण बनाया गया है, जो पाठकों का मनोरंजन करती रहे और उपन्यासों को पढ़ने के लिए उन्हें प्रेरित करे। इस भाषा का रूप खिचड़ी या चलती हुई भाषा है जिसमें हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी—सब भाषाओं के चलते हुए शब्दों का प्रयोग हुआ है। यही समस्या गोस्वामीजी के साथ थी, पर उनकी विद्वत्ता और साहित्य-प्रेम ने भाषा के दो रूप हमें दिये—एक तो वह भाषा है जो शुद्ध हिन्दी कहलाती है, जिसमें भोजपुरी, ब्रज-भाषा तथा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है तथा दूसरा रूप वह है जिसमें उर्दू के शुद्ध शब्द हैं जो अरबी तथा फारसी से निसृत होने के कारण कहीं-कहीं पर क्लिष्ट तथा दुरूह भी हो गये हैं। गोस्वामीजी ने "उर्दू भी ऐसी-वैसी नहीं, उर्दू-ए मुअल्ला" और "संस्कृतप्राय समासबहुला भाषा" का प्रयोग

१. किशोरीलाल गोस्वामी "मल्लिकादेवी", दूसरा भाग, पृ० ५३।

अपनी रचनाओं में किया है। इसलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें "मौलिक उपन्यासकार" कहा है, "जिनकी रचनाएँ साहित्यकोटि में आती हैं। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप-रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा-बहुत चरित्र चित्रण भी अवश्य पाया जाता है। गोस्वामीजी संस्कृत के अच्छे जानकार, साहित्य के मर्मज्ञ तथा हिन्दी के पुराने कवि और लेखक थे।"[1]

'माधवी माधव" उपन्यास में माधव प्रसाद और माधवी के कथोपकथन की शैली तथा भाषा का स्वरूप कितना सरल और मनमोहक है—

"माधव—अच्छा, तुम किसी एक भी ऐसे प्रेमी का उदाहरण दो जिसने प्रेम करके अपनी प्रेमिनी को कभी भुला दिया हो ?

माधवी—एक क्या, लाख उदाहरण मैं इस बात पर दे सकती हूँ। देखिए, शकुन्तला दुष्यन्त को कैसा प्यार करती थी पर दुष्यन्त ने उसे बिलकुल भुला दिया।

माधव—तुम अपने इन्हीं थोथे उदाहरणों की पूँजी लेकर मुझसे झगड़ने उठी हो।

माधवी—यह कैसे ?

माधव—भला यह भी कोई उदाहरण है ? इसमें तो दुर्वासा का शाप अन्तराल हुआ है क्योंकि शाप की निवृत्ति होने पर शकुन्तला के विरह में दुष्यन्त की क्या दशा हुई थी, इसका अनुपम चित्र कविकुल गुरु भगवान कालिदास ने खूब ही खींचा है।"[2]

उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में भी प्रसंग के अनुकूल भाषा का प्रयोग गोस्वामीजी ने किया है। काव्य की दृष्टि से सरस तथा मधुर भाषा एवं शैली के दर्शन उनकी कविता की पुस्तकों में होते हैं। उनकी सरस और भावपूर्ण भाषा के लिए "प्रेम रत्नमाला" सुन्दर ग्रन्थ है। अलंकृत, छन्दपूर्ण और अनुप्रासमयी शैली के दर्शन निम्नलिखित अवतरणों से उपलब्ध हो जाते हैं—

(अ) "प्यारी, दीपक-ज्योति पर,
जारि जारि मरत पतंग।
पै दीपक नहिं देत है,
वा पतंग को संग। (३०)

(ब) "प्यारी, चाहत हंस तौ,
मान सरोवर बास।
मान सरोवर को नहीं,
हंसहिं देख हुलास॥" (२९)

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : "हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ५५१-५५२।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : 'माधवी माधव", दूसरा भाग, पृ० १२५।

(ख) "प्यारी बिरवा प्रेम को,
तुव हिय रोप्यो जाय।
सींचत रहियो प्रेम जल,
नेकु नहिं कुम्हलाय॥" (५०)

(ङ) प्यारी प्रेम सबै करैं,
प्रेम न जानत कोय।
जो जाने करि प्रेम तो,
मरै जगत क्यों रोय।" (८७)

(च) "प्यारी तीज सुहावनी, सावन सित शनिवार।
मदन ससि-सर-ग्रहधरा, सकल सुखन को सार॥
प्यारी प्रीतम प्रेम पद, हिय धरि हरषि रसाल।
प्रेम रत्नमाला रची, रसिक किशोरीलाल॥"[1]

गोस्वामीजी के उपन्यासों के अन्तर्गत भी पात्रों के भावावेश के समय जो 'स्वगत कथन' निरूपित हुए हैं, उनमें "काव्य रसिकता" के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। "त्रिवेणी" उपन्यास के एक उदाहरण से यह प्रमाण प्राप्त हो जाता है—

"क्षीरोदधि मभधार उदित वस्हार कलनिकर,
तापर वृन्दावनो छबीली फबी कनक बर,
श्री बिहार रमणीय भूमि वन झूमि कल्पतर,
तापर मण्डप रचित खचित नव नवल रत्न वर,
मधि श्री पीठ सु उदित दुति, सिंहासन मनि दिव्य पर,
राधा सुन्दरि बाल जुत, राजत श्रीगोपाल वर॥१॥"[2]

यह हिन्दी की ब्रजभाषा का 'छप्पय छंद' है तथा इसी पुस्तक से संस्कृत भाषा का उदाहरण भी प्राप्त हो जावेगा। वैसे तो संस्कृत की अनेक सूक्तियाँ गोस्वामीजी के उपन्यासों में स्थान-स्थान पर प्राप्त होती हैं, पर "त्रिवेणी" से यह उदाहरण लिया गया है—

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मनोधर्मो हतो भवेत्॥"[3]

गोस्वामीजी ने हिन्दुओं के पर्व के अनुसार गाने की पुस्तकें भी लिखी हैं। उन्हें स्वयं भी शास्त्रीय संगीत का पूर्ण ज्ञान था। अतः इन गेय पुस्तकों में 'गीतात्मक शैली' के दर्शन होते हैं जिनमें गेयता, मधुरता एवं पूर्ण मिठास है, जो वाद्ययन्त्रों की सहायता से गाये और बजाये जा सकते हैं।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेम रत्नमाला," सन् १६०७, पृ० ८, ६ १४, १३, २६।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "त्रिवेणी," पृ० १३।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "त्रिवेणी," पृ० २६।

उदाहरण के लिए, "सावन सुहावन वा रसीली कजली," "चैती गुलाब की" और "होली वा मौसिम बहार"—तीनों गीत संग्रह लेखक की रसपूर्ण एवं भाव-भीनी शैली को परिचायक हैं। काव्य-रसिकता एवं मर्मज्ञता उनकी रचनाओं से स्पष्ट प्रकट होती है। "सावन सुहावन" के इन उदाहरणों से उनकी अलंकृत तथा भावुक शैली के दर्शन होंगे, जिनमें कोमलकान्त शुद्ध तत्सम पदावली का प्रयोग हुआ है—

"जमुना किनारे हरियाली कैसी छाई रामा—
हरि-हरि फूली फुलवारी सरसाई रे हरी ॥
बसिया बजाई प्यारे नन्द के कन्हाई रामा—
हरि हरि जियरा लोभाई जदुराई रे हरी ॥
कुंजन बुलाई बिलमाई हरजाई रामा—
हरि हरि गरवा लगाई सुखदाई रे हरी ॥
कजरी सुनाई मोको झूलना झुलाई रामा—
हरि-हरि रसिक किसोरी मुसुकाई रे हरी ॥"[1]

"आयो फागुन मास री, गोरी खेल ले होरी,
लाज किये नहीं काम सिरेगा, यह औसर सुख रासरी,
मुख मेल ले रोरी।
चलि कुजन लीजिये रस हिल मिल, क्यों सखि होत उदास री,
झूकि झेल रे झोरी।
रसिक किसोरी प्यारे के सग, मेटहु मदन पियास री,
रति-रंग न थोरी—
आयो फागुन मास री।[2]"

"चाल वही, रंगत नई
बाले जोबना पै, बलमा बस कै लूं हो रामा बाले,
गोरे गाल अमोल री, काले गोदना पै—बलमा
नौसत साज सवारि किसोरी—सुन्दर कगना पै
बलमा बस कै लूं हो रामा—बाले जोबना पै।"[3]

"नाटकों" की भाषा तो उपन्यासों के समान सरल, सहज और बोल-चाल की है। कथोपकथन-प्रणाली में लेखक को उसी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है जो बोल-चाल में ठीक पचे, जैसे "चौपट चपेट" व 'नाट्य संभव" दो भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रहसन और रूपक हैं। दोनों की भाषा-शैली के उदाहरण देख लेने से प्रकट हो जाता है कि चरित्र-चित्रण के लिए इस भाषा का प्रयोग हुआ है।

---

१. किशोरीलाल : "सावन सुहावन "आठवीं चाल, ८१ वाँ पद, पृ० १९।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "होली," १२ वाँ पद, पृ० १३।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "चैती गुलाब," १७, पृ० ५।

"चौपट चपेट" में से—

"मदनमोहन—तुम्हारे लिए, जान साहिबा, जान हाजिर है, एक नहीं, दो करेंगे। जो कहो, सो करें

चपकलता—(स्वगत) तुम मरो तो मैं मैं बचूं (प्रकट) देखो, मैं अबला ठहरी सो निर्दुद्धिवश एक दिन एक प्रतिज्ञा कर बैठी हूँ—उसे पूरी करो तो (रुक गयी)

मदनमोहन—(हँस कर) कहा भी—क्या चाँद का टुकड़ा लाओगी ?

चपकलता—जो मुझे घोड़ पर चढ़ावे—

मदनमोहन—(हँस कर) बस इतनी ही बात। हम एक नहीं, सौ घोड़े पर तुम्हें चढ़ावेंगे। अभी लो (उठना चाहता है)।

चपकलता—बैठो, बैठो। वैसे घोड़ पर अपनी अम्मा को चढ़ाना, बस तुम घोड़ा बनो और मैं चढ़ूं—यही मेरा प्रण है।"[1]

"नाट्य सम्भव" में से यह दूसरा उदाहरण दिया जा रहा है—

'इन्द्राणी—देवर्षि, मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूं। (सब दैत्य नारी सिर झुकाती हैं)।

नारद—पुलोम जे। चिरसुखिनी भव।

(इन्द्राणी को देखते ही इन्द्र बावला हो आसन से उठ खड़ा होता है और वृहस्पति उसका हाथ थाम कर बैठाते हैं)

वृहस्पति—देवेन्द्र सावधान होवो—यह भरताचार्य की ज्वलन्त कृति नाटक है।

इन्द्र—(बैठ कर) हा पुलोम जे—यह दृश्य क्या सत्य है, क्या देवर्षि इसी भाँति तुम्हारा उद्धार करेंगे ?

नारद—इन्द्राणी तेरा वहाँ किसी प्रकार अपमान तो नहीं हुआ ?

इन्द्राणी—केवल पति वियोग और स्वर्ग से यहाँ लाई जाकर अवरुद्ध रहने के अतिरिक्त और मेरा किसी ने कुछ भी अपमान नहीं किया।'[2]

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इक्कीसवें अधिवेशन के सभापति के पद से, जो झाँसी में गोस्वामीजी ने अध्यक्षीय भाषण दिया है, वह सरल हिन्दी में है। उसमें हिन्दी की उत्पत्ति, उसका विकास, उसकी व्यापकता, विशाल शब्द भण्डार और नौ सृष्टि के विचारों को प्रकट करने की शक्ति-सम्पन्नता के विषय में है। तुलनात्मक भाषा का उदाहरण भी इसी भाषण से प्रकट होता है। गोस्वामीजी ने हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू और फारसी के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया है और इसलिए

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "चौपट चपेट", सन् १९१८, पृ० २५।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य सम्भव", सन् १९०४, पृ० ८५

किसी भी भाषा के अनुवाद करने को उनमें विलक्षण प्रतिभा थी। शैली की कविता का दूसरा उदाहरण यहाँ पर दिया जा रहा है—

"Rarely rarely Comest thou,
Spirit of Delight,
Wherefore hast thou left me now,
Many a day and night.

—"Shelley"

इसका अनुवाद गोस्वामी ने इस प्रकार किया है—

कबहूँ कबहूँ तू आई जात,
ऐ री! आत्मा! आनन्द—जात,
मोहि सम्प्रति छोड्यो कौन दोस?
अनगिनतिन जाये रन घोस।"[1]

—"शैली"

"जंगनामा" का सम्पादन राधाकृष्णदास के साथ गोस्वामी किशोरीलाल ने किया। उसके सम्पादकीय लेख की भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दी का नमूना है—"आगरा में घोर युद्ध हुआ, उसमें हार कर जहाँदारशाह लालकुँअर के साथ दिल्ली भाग आया, उसने भेष बदलने के लिए डाढ़ी मुड़वा डाली थी। यह लाग एक बैलगाड़ी पर दिल्ली आये, लालकुँअर अपने घर चल दी, जहाँदारशाह अकेला असदखाँ (जुलफिकारखाँ के पिता) के यहाँ गया, जुलफिकारखाँ एक दिन पहले दिल्ली पहुँच गया था। पिता-पुत्र ने निश्चय किया कि अब फर्रुखसियर से लड़ना व्यर्थ है, उससे मिल जाना ही अच्छा होगा, उसने अभागे जहाँदारशाह को कैद कर लिया और फर्रुखसियर के दिल्ली पहुँचने पर उसे पेश कर बहुत कुछ उन्नति की आशा की।"[2]

जासूसी उपन्यासों की शैली और भी अजीब प्रकार की है। "गुप्त गोदना", उपन्यास रचने की प्रेरणा उन्हें अपने सहवर्ती लखक देवकीनन्दन खत्री से मिली और गोस्वामीजी की कुशल लेखनी ने उस भी सफलता से लिख दिया है। भाषा के अन्दर बोलचाल के साधारण तथा व्यावहारिक शब्द प्राप्त होते हैं, जो मिश्रित भाषा का उदाहरण है—"सितारा, उस मुए ने एक दिन महल की दूसरी ड्योढ़ी से निकलते वक्त मेरी कलाई पकड़ ली थी। मैंने उस वक्त बड़ा शोरोगुल मचाया, यहाँ तक कि वह हल्ला शाहजादी रोशनआरा बेगम के कानों तक भी जा पहुँचा, लेकिन उन्होंने

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी का "अध्यक्षीय भाषण", इक्कीसवाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, झाँसी, पृ० १८-१९।
२. किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा सम्पादित, "जंगनामा", पृ० ५।
(सम्पादकीय लेख से)

उस कम्बख्त को अछूता छोड़ दिया और मुझे भी समझा दिया कि "आज पीछे सूरजमल तुझे कभी न छेड़ेगा"। क्यों भाई! यह कैसी बात हुई? मेरी भावज की तरफ बेगम साहब ने कतई ध्यान न दिया और वह कम्बख्त उनके ऐसे काम का आदमी निकला कि उसे यों अछूता ही छोड़ दिया। यह बात तो मेरी समझ में मुतलक न आई।"[1]

गोस्वामीजी की रचनाओं में सब प्रकार की भाषा-शैली के दर्शन होते हैं, अतः अन्वेषणकर्त्ता के सामने कठिनाई उपस्थित होती है कि क्या निष्कर्ष निकालें, पर हिन्दू धर्म और संस्कृत के पुजारी, प्रतिष्ठाता और प्रवर्तक होने के नाते उनकी भाषा में देवभाषा संस्कृत और हिन्दी के प्रति अपूर्व निष्ठा पाई जाती है। हिन्दी भाषा का सच्चा रूप उनकी दृष्टि में ब्रजभाषा में ही पाया जाता है। वृन्दावन, ब्रज के कुंज, मथुरा की आलोकित परम्पराएँ और चौरासी धाम तथा वहाँ की रसिकता गोस्वामीजी को अत्यन्त मनभाई है। "गुप्त गोदना" उपन्यास में एक पात्र 'रोशनआरा' के मुख से उन्होंने, 'ब्रजभाषा' को फारसी' से भी बढ़कर बताया है—

रोशनआरा कहती है—हिन्दू जो यह कहते हैं कि श्रीकृष्ण यहाँ पर विराजते और श्री राधिकाजी व और बहुतेरी सखियों के साथ रास विलास किया करते हैं, यह कहना बिलकुल सच हो सकता है क्योंकि वह जगह ऐसी ही प्यारी है और यह भी मानी हुई बात है कि वहाँ की जबान (भाषा) थोड़ा शायरों की जबान है, जिसके आगे फारस के शायर को भी सिर झुकाना और यह मानना पड़ा था कि फारसी से बढ़कर ब्रजभाषा में रियायत और फसाहत भरी हुई है, यहाँ तक कि महज पनिहारियाँ भी ऐसी फसीह जबान बोलती हैं कि जिसके आगे दुनियाँ की शायरी झख मारे।"[2]

जीवन में अनेक बार गोस्वामीजी ने सम्मेलनों का अध्यक्षीय स्थान ग्रहण किया और हिन्दी भाषा और हिन्दू संस्कृति की सराहना की। संस्कृत को देवभाषा मानकर उसका अपना स्थान उन्होंने निर्धारित किया है। गोस्वामीजी का दृढ़ विश्वास था कि मूल भाषा संस्कृत है और भोजपुरी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली तथा अवधी इत्यादि सब उससे उपजी हैं। शासन की भाषा का भी साहित्यकारों के जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ना आवश्यक है, इसलिए भारतेन्दु युग की जागृति, भाषा-आन्दोलन, राष्ट्र प्रेम, संस्कृतिनिष्ठा तथा हिन्दू और हिन्दी के प्रति लगन गोस्वामीजी की रचनाओं में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। स्वतन्त्र प्रकृति के रसिक लेखक गोस्वामीजी थे, जिन्होंने उपन्यासों की रचना-शैली को अपनी इच्छानुसार मोड़ा है

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "गुप्त गोदना", तीसरा भाग, पृ० ७२।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "गुप्त गोदना", तीसरा भाग, पृ० ३५, सन् १९२३ का संस्करण।

तथा कहीं-कहीं पर जोड़ा-तोड़ा भी है। भावी पीढ़ी के लिए उन्होंने एक प्रकार की गद्य-शैली का निर्माण कर दिया है जिसमें सैकड़ों रचनाएँ निर्मित हो सकें।

भारतेन्दु बाबू ने हिन्दी की भाषा और शैली को सुधारने का बीड़ा उस युग में उठाया, जब अदालतों की भाषा उर्दू थी। गोस्वामीजी ने युगीन प्रवृत्तियों को भली-भाँति समझा तथा लगनपूर्वक निर्माण-कार्य में लगे रहे। उनके व्यक्तित्व की छाप उनकी शैली पर पूर्णतया दिखाई दी है। गोस्वामीजी की प्रतिभा ने भाषा का स्वरूप स्थिर किया तथा उनकी रचनाओं की गणना साहित्यकोटि में होने लगी।

किशोरीलाल गोस्वामी की समस्त कृतियाँ

उनकी रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार होगा—

कविता

(१) समस्यापूर्ति मजरी (२) भागवतसार पचासी (३) युगल रस माधुरी
(४) आध्यात्म-प्रकाश (५) कण्ठ-माला (६) अश्रु धारा
(७) प्रेम-पुष्पांजलि (८) चन्द्रोदय (९) आकाश कुसुम
(१०) वीरेन्द्र विजय काव्य (११) प्रणयोपहार (१२) कन्दर्प-विजय काव्य
(१३) कविता सग्रह (१४) काशी कवि समाज की समस्या पूर्ति (१५) सुजान रसखान
(१६) रसखान शतक (१७) प्रेम रत्नमाला (१८) प्रेम पुष्पमाला
(१९) प्रेम वाटिका (२०) कविता मजरी (२१) कवि माधुरी
(२२) बाल कुतूहल (२३) वनिता विनोद (२४) वीर बाला
(२५) एकनारी व्रत (२६) सावित्री (२७) होली रग घाली

गाने की पुस्तकें

(१) सावन सुहावन (२) होली मौसिम बहार (३) वर्षा विनोद
(४) ठुमरी का ठाट (५) मजुपदावली (६) नित्य कीर्तन मालिका
(७) वर्षोत्सव कीर्तन मालिका (८) जातीय सगीत (९) सगीत शिक्षा
(१०) गैंदो गुलाब (११) बसन्त बहार

विविध विषय

(१) वेद शिक्षा (२) हठ योग (३) अष्टाग योग
(४) ज्ञान सकलिनी तन्त्र (५) तन्त्र रहस्य (६) निरालम्बोपनिषद्
(७) पाशुपोपनिषद (८) वैराग्य प्रदीप (९) तीर्थ महिमा
(१०) कुम्भ पर्व व्यवस्था (११) गगा स्थिति सिद्धान्त

उपन्यास

(१) चपला (चार भाग) (२) तारा (तीन भाग) (३) लीलावती
(४) रजिया बेगम (५) मल्लिकादेवी (६) राजकुमारी

(७) कुसुमकुमारी
(८) तरुण तपस्विनी
(९) हृदय हारिणी
(१०) लवंगलता
(११) याकूती तख्ती
(१२) कटे मुड की दो दो बातें
(१३) कनक कुसुम
(१४) सुखशर्वरी
(१५) प्रेममयी
(१६) गुलबहार
(१७) इन्दुमती
(१८) लावण्यमयी
(१९) प्रणयिनी परिणय
(२०) जिन्दे की लाश
(२१) चन्द्रावती
(२२) चन्द्रिका
(२३) हीराबाई
(२४) लखनऊ की कब्र (८ भाग)
(२५) पुनर्जन्म
(२६) त्रिवेणी
(२७) माधवी माधव
(२८) राज राजेश्वरी
(२९) जड़ाऊ कगन में काल भुजग
(३०) आरसी में हीरे की कनी
(३१) बिहार रहस्य
(३२) ठगिनी
(३३) भोजपुर की ठगी
(३४) जगदीशपुर की गुप्त कथा
(३५) राजगृह की सुरंग
(३६) प्रसन्न पथिक वा पथ प्रदर्शिनी
(३७) कुँवरसिंह
(३८) बनारस रहस्य
(३९) हमारी रामकहानी
(४०) अँगूठी का नगीना
(४१) इसे जिन्दा कहैं या मुर्दा
(४२) सदा-सोहागिन
(४३) दिल्ली की गुप्त कथा
(४४) जनानखाने मे दीवान
(४५) प्रेम परिणय
(४६) पातालपुरी
(४७) दो सौ तीन
(४८) औरत से औरत का ब्याह
(४९) रोहितास गढ़ की
(५०) अँधेरी कोठरी
(५१) काजी की मिट्टी
(५२) राज कन्या
(५३) राक्षसेन्द्र राक्षस वा घड़ा भर विष
(५४) साँप की बाँबी
(५५) सेज पर साँप
(५६) राजबाला
(५७) इसे चौधराइन कहैं या डाइन
(५८) आप आप ही हैं
(५९) नरक नसैनी
(६०) अँधेरी रात
(६१) सोना और सुगन्ध
(६२) आदर्श प्रणय
(६३) शान्ति निकेतन
(६४) वार विलासिनी
(६५) शान्ति कुटीर

नाटक रूपक

(१) मयक मंजरी
(२) चौपट चपेट
(३) भारतोदय
(४) नाट्य संभव
(५) सावित्री सत्यवान
(६) प्रणयपारिजात
(७) प्रबन्ध पारिजात
(८) प्रिय दर्शिका
(९) स्वर्ग की सभा
(१०) प्रभावती परिणय
(११) कन्दर्प केलि
(१२) वर्षा विहार गोष्ठि
(१३) चाण्डाल चौकड़ी
(१४) पोंगा बसन्त
(१५) बी जान
(१६) दिवा मीत
(१७) पँचाल नन्दन
(१८) धाला बाबू
(१९) काला साहब
(२०) यमराज और हम
(२१) गोबर गणेश

(२२) जोरूदास (२३) वैश्य वल्लभ (२४) एक एक के दो दो
(२५) स्वर्ग की सीढ़ी

जीवन-चरित्र

(१) अर्ल मेयो (२) हम्मीर (३) मेवाड़ राज्य
(४) मराठों का उदय (५) औरंगजेब की राजनीति (६) लार्ड रिपन
(७) बुद्ध देव (८) मयंक चरितावली (९) वर्द्धमान राजवंश
(१०) मधुच्छका का सोपान (११) जोजेफाइन (१२) नैपोलियन
(१३) श्रीकृष्ण चैतन्यदेव (१४) बाबू श्यामसुन्दर दास, बी०ए० (१५) बाबू राधाकृष्णदास
(१६) प० मदनमोहन मालवीय (१७) सर एन्टानी मैकडानल्ड (१८) राजा लक्ष्मणसिंह
(१९) बाबू रामकाली चौधरी (२०) मैक्समूलर भट्ट (२१) राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द
(२२) प० अम्बिकादत्त व्यास (२३) वाल्मीकि चरित्र (२४) भीष्म पितामह
(२५) पंच पाण्डव

धर्म कर्म की पुस्तकें

(१) नित्य कृत्य चन्द्रिका (२) युग लोचन कौमुदी (३) वर्षोत्सव मयूख
(४) सम्प्रदाय सिद्धान्त (५) सम्प्रदाय दिवाकर (६) ब्रह्म मीमांसा
(७) धर्म मीमांसा (८) सन्ध्या प्रयोग (९) सन्ध्य संक्षिप्त
(१०) सन्ध्य भाषा (११) गायत्री व्याख्या (१२) आचार्य चरित्र
(१३) हंसावतार चरित (१४) शाण्डिल्योपनिषद (१५) कपिल सूत्र।

पत्र-पत्रिकाओं में स्फुट लेख

पत्रों के नाम	लेखों की सं०	पत्रों के नाम	लेखों की सं०
(१) सार सुधानिधि	५७	(२) उचित वक्ता	११
(३) भारत मित्र	२२	(४) आर्यावर्त	४
(५) पीयूष प्रवाह	७	(६) चम्पारण चन्द्रिका	५१
(७) हरिश्चन्द्र कौमुदी	१०	(८) क्षत्रिय पत्रिका	२
(९) विद्या धर्म दीपिका	६	(१०) द्विज पत्रिका	१
(११) बिहार बन्धु	६२	(१२) सारन सरोज	४०
(१३) भारत जीवन	३	(१४) भारतवर्ष	१०१
(१५) ब्रह्मावर्त	१	(१६) हिन्दी प्रदीप	७
(१७) ब्राह्मण	१	(१८) भारत धर्म मण्डल	११
(१९) हिन्दोस्थान	२५	(२०) राजस्थान समाचार	१२

(२१) दिनकर प्रकाश	१	(२२) विद्याविनोद	१
(२३) भारत भगिनी	१	(२४) श्री वैंकटेश्वर समाचार	२
(२५) भाषा भूषण	७	(२६) विश्व वृन्दावन	३८
(२७) सर्वहित	३२	(२८) सत्य वक्ता	८
(२९) सुदर्शन चक्र	१	(३०) नागरी नीरद	६
(३१) विहार भूषण	३	(३२) रसिक मित्र	१
(३३) सज्जन कीर्ति सुधाकर	१	(३४) सरस्वती	२८
(३५) नागरी प्रचारिणी पत्रिका	२	(३६) नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला	१
(३७) बाल प्रभाकर	५	(३८) मित्र	३
(३९) मर्यादा	१५	(४०) यादवेन्द्र राघवेन्द्र	४
(४१) कलकत्ता समाचार	६[1]		

संस्कृत की पुस्तकें

(१) मधुप मालिनी (२) प्रणयोच्छ्वास (३) शृंगार रत्नमाला
(४) शृंगार सुधाकर (५) शृंगार सुधार बिन्दु (६) साख्य सुधाकर
(७) संक्षिप्त साख्य तत्व समास कारिका।

जीवन-चरित्र

(१) महारानी विक्टोरिया का जीवन-चरित्र (डायमन्ड जुबिली पर)
(२) श्री हरिश्चन्द्र किंवा भारतेन्दु-भारती (सं० १९५१)

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में गोस्वामीजी ने अनेक रचनाओं को जन्म दिया, जिनका ज्ञान हिन्दी जगत को धीरे-धीरे होता जा रहा है। सर्वप्रथम गोस्वामीजी की रचनाओं की तालिका पण्डित रामनरेश त्रिपाठी के परिश्रम से "काव्य कौमुदी" के दूसरे भाग से प्राप्त हुई है। इस पुस्तक की प्रामाणिकता के लिए इसके सम्वत् १९७७ से १९८३ तक के तीन संस्करण प्रयाग में प्रकाशित हुए और उन्होंने गोस्वामी किशोरीलाल की कृतियों के विषय में एक लम्बी सूची प्रकाशित की है। उनकी रचनाओं की गणना करने से छत्तीस काव्य-सम्बन्धी पुस्तकें, पच्चीस नाटक, पच्चीस जीवन चरित्र, ग्यारह विविध विषयों पर कृतियाँ और पैंसठ उपन्यासों की संख्या का पता चलता है। इसके अतिरिक्त लगभग चार सौ लेख भिन्न-भिन्न पत्र और पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। इतना ही नहीं, 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के इक्कीसवें अधिवेशन के सन् १९३१ में गोस्वामी किशोरीलाल सभापति बनाये गये, जो झाँसी जैसी हिन्दी नगरी में हुआ था और वहाँ उन्होंने अध्यक्षीय अभिभाषण दिया जो प्रकाशित हुआ। सन् १९१४ में जातीय महासभा

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : "कविता कौमुदी," दूसरा भाग, पृ० २१४, सम्वत् १९८३ के संस्करण से उद्धृत।

'श्रीमती गौड़ महासभा' का अठारहवाँ वार्षिक अधिवेशन आगरा में हुआ। उस समय गोस्वामी किशोरीलाल को सभापति के पद पर सम्मानित किया गया। वहाँ पे हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की व्यापकता, उदारता तथा शाश्वता पर उनके द्वारा भाषण दिया गया। इसी समय उन्होंने अपना प्रसिद्ध उपन्यास "अँगूठी का नगीना", रचा था। इसके बाद डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने "हिन्दी पुस्तक साहित्य" नामक विशाल ग्रन्थ रचा जिसमें सन् १८६७ से १९४२ तक की हिन्दी रचनाओं की सूची क्रम तथा विषय के अनुसार प्रकाशित हुई है। इसमें गोस्वामीजी के उपन्यासों को ही प्रधानता प्राप्त हुई है, जिन्हें डॉ० गुप्ता ने चार धाराओं में विभाजित किया है—(१) सामाजिक, (२) ऐतिहासिक, (३) ऐयारी तिलस्मी तथा (४) जासूसी। उन्होंने गोस्वामीजी के सामाजिक उपन्यासों को भी चार उप-विभागों में बाँटा है—

(अ) उद्देश्य प्रधान, (आ) रस प्रधान (इ) वस्तु प्रधान, (ई) चरित्र-प्रधान।

इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा है—"सत्या में कम पर कला की दृष्टि से लिखे गए उपन्यासों की यह परम्परा आने वाले युग में विकसित हुई। इन उपन्यासों में भी यद्यपि प्रधानता प्रेम की ही रही, किन्तु वह एक वासनापूर्ण प्रवृत्ति के रूप में नहीं बल्कि जीवन की एक साधना के रूप में ही प्रायः इन उपन्यासों में प्रस्फुटित हुआ है।"[1]

इतना ही नहीं "नाट्य-सम्भव" नाटक जो सन् १९०४ में प्रकाशित हुआ, डॉ० माताप्रसाद ने उसे 'प्रतीकवादी' नाटक की श्रेणी में रखा है। इसके पात्र मानव नहीं हैं पर वहाँ पर मानवीय भावों का पात्रों के रूप में प्रदर्शन हुआ है। इसके पश्चात् नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से प० राजबली पाडे के सम्पादकत्व में अभी कुछ दिन हुए "हिन्दी में उच्चतर साहित्य" नामक विशालतम ग्रन्थ सम्वत् २०१४ में प्रकाशित हुआ है, जिसमें सम्वत् २०१४ तक हिन्दी के प्रकाशित सभी उच्च ग्रन्थों की सूची है। विभिन्न विषयों के अन्तर्गत लेखक-क्रम से ग्रन्थों की सूची दी गयी है, जिसका लाभ हिन्दी जगत भरपूर उठा रहा है।

इसके अन्तर्गत किशोरीलाल गोस्वामी के दो नाटकों का उल्लेख है—(१) "चौपट चपेट", जो राजस्थान यन्त्रालय, अजमेर से सन् १८९२ में प्रकाशित हुआ तथा (२) "मयंक मंजरी" जो नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सन् १८९७ में प्रकाशित हुआ।[2] इसके अतिरिक्त "चौपट चपेट" का *द्वितीय संस्करण* सम्वत् १९७५ में सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से भी स्वयं लेखक ने प्रकाशित किया।

"कविता" के अन्तर्गत किशोरीलाल की निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाश में आई हैं—(१) "प्रेम वाटिका", जिसका प्रकाशन स्वयं लेखक ने वृन्दावन से सन् १९०२

---

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त : "हिन्दी पुस्तक साहित्य," पृ० ३०।
२ प० राजबली पाडे : "हिन्दी में उच्चतर साहित्य", पृ० ३०८।

मे किया है। (२) "प्रेम रत्नमाला वा प्रणयोपहार", जिसे स्वय लेखक ने सन् १९०३ में और फिर सन् १९३० में काशी से प्रकाशित किया। (३) 'बसन्त बहार' का प्रकाशन भी सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से हुआ। (४) "विक्टोरिया अष्टक" का प्रकाशन सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से सन् १८९८ में हुआ। (५) "होली रग घोली", वृन्दावन से सम्वत् १९७२ वि० म प्रकाशित हुई।"[1]

आर्य भाषा पुस्तकालय नागरी प्रचारिणी सभा, काशी म "समस्या पूर्ति मंजरी" एक काव्य पुस्तक और देखने म आई जिसका प्रकाशन गोस्वामी किशोरीलाल ने उस समय कराया होगा, जब वे आरा म थे, इसलिए यह खगविलास प्रेस बाँकीपुर, पटना से सन् १८६७ में पहली बार छपी है। उन्होने जीवनी, आत्मकथा और संस्मरण के क्षेत्र मे अनेक रचनाऍ रची होगी, पर प० राजबली पाडे ने 'गोस्वामी नन्हेलाल शर्मा का जीवन चरित्र' का उल्लेख किया है जो स्वय लखक ने सुदर्शन प्रस, वृन्दावन स प्रकाशित किया।"[2]

इसके अतिरिक्त आर्य भाषा पुस्तकालय का सूची के अनुसार गोस्वामीजी के द्वारा प्रणीत 'श्री वृन्दावन' नामक इतिहास की प्राप्ति हुई है, जिसम वृन्दावन कृष्ण-धाम की अलौकिक शोभा तथा पुण्य लोक की महिमा है। इसका प्रकाशन भी स्वय लेखक ने सन् १९१५ म प्रथम बार स्वय ही किया।

"श्री हरिश्चन्द्र हृदय किंवा भारतेन्दु भारती" की रचना गोस्वामी किशोरीलाल ने सम्वत् १९८१ म की, जो पचदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, देहरादून के प्रतिनिधियों को लखक द्वारा समर्पित की गयी। इसका प्रकाशन जमुना प्रिन्टिग वर्क्स, मथुरा से हुआ।

"श्री हरिश्चन्द्र हृदय" तो वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की महान् गरिमा के वशीभूत होकर गोस्वामीजी ने साहित्यिक भाषा मे 'जीवन चरित्र' लिखा है। इसके अन्तर्गत भारतेन्दु के माता-पिता का नाम, उनकी जन्म-तिथि, मृत्यु तिथि, उनकी रचनाओ के नाम, उनके द्वारा सम्पादित पत्र और पत्रिकाओं के नाम और यहाँ तक कि उनके पुत्र, कन्या, फुफेरे भाई आदि सबकी नामावलियाँ काव्य माधुरी मे पान कराकर गोस्वामीजी द्वारा समग्र जीवनी लिखी गयी है।

उपन्यासो' का तो गोस्वामीजी ने वृहद भण्डार ही खोल डाला है। प० राजबली पाडे ने निम्नलिखित उपन्यासों की तालिका दी है—

(१) अँगूठी का नगीना	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	सन् १९१८
(२) इन्दुमती वा वनविहगनी	बालमुकुन्द वर्मा, काशी	सन् १९०६
(३) कटे मूड की दो-दो बात	बालमुकुन्द वर्मा, काशी	सन् १९०५

---

१. राजबली पाडे 'हिन्दी मे उच्चतर साहित्य", पृ० २६०-२६१।
२ प० राजबली पांडे : हिन्दी मे उच्चतर साहित्य", पृ० ४७३।

(४) कनक कुसुम	वृन्दावन	
(५) कुसुमकुमारी	छबीलेलाल गोस्वामी, वृन्दावन	सन् १९१५
(६) गुप्त गोदना—दो भाग	मथुरा	
(७) चन्द्रावती	ज्ञानवापी, बनारस	सन् १९०४
(८) चन्द्रिका	काशी	सन् १९०५
(९) चपला—चार भाग	वृन्दावन	सन् १९१६
(१०) जिन्दे की लाश	वृन्दावन	सन् १९०६
(११) तरुण तपस्विनी	हितचिंतक प्रेस, काशी	सन् १९०५
(१२) तारा—तीन भाग	काशी	सन् १९१०
(१३) त्रिवेणी	काशी	सन् १९०७
(१४) पुनर्जन्म	काशी	सन् १९०७
(१५) प्रणयिनी परिणय	भारतजीवन प्रेस, काशी	सन् १८९०
(१६) प्रेममयी	वृन्दावन	सन् १९१४
(१७) मल्लिकादेवी	काशी	सन् १९०५
(१८) माधवी माधव	वृन्दावन	सन् १९०९
(१९) याकूती तख्ती	वृन्दावन	(संदिग्ध)
(२०) राजकुमारी	ज्ञानवापी, काशी	सन् १९०२
	वृन्दावन	सन् १९१६
(२१) लखनऊ की कब्र—आठ भाग	वृन्दावन	
(२२) लवंगलता	वृन्दावन	सन् १९१५
(२३) लाल कुँवर	रामदयाल अगरवाला, इलाहाबाद	
(२४) लावण्यमयी	भारतजीवन प्रेस, काशी	सन् १८९१
(२५) लीलावती	वृन्दावन	सन् १९०६
(२६) सुख शर्वरी	भारतजीवन प्रेस, काशी	सन् १९४८
(२७) सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई—दो भाग	वृन्दावन	सन् १९१२
(२८) स्वर्गीय कुसुम	वृन्दावन	(संदिग्ध)
(२९) हीराबाई	ज्ञानवापी, काशी	सन् १९०४"[1]

लेखक ने साहित्य के "उपन्यास" युग से प्रभावित होकर "उपन्यास" मासिक पत्र ही प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया, जिसने हिन्दी में उपन्यासों की बाढ़ सी ला दी। स्वयं अपने लिखे उपन्यास तो उन्होंने प्रकाशित किये ही पर अन्य लेखकों को भी इस पत्र से पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। सन् १९१३ में इन्होंने वृन्दावन में

---

१. डॉ० राजबली पांडे : "हिन्दी का उच्चतर साहित्य," पृ० ४०२-४०३।

"सुदर्शन प्रेस" नाम का एक अपना छापाखाना भी खोल दिया जिसमें वे स्वयं और उनके पुत्र छबीलेलाल गोस्वामी दोनों ही लेखक, मुद्रण और प्रकाशन का काम लगन-पूर्वक करते थे, यहाँ तक कि उपन्यासों का विज्ञापन, समालोचना, ख्याति, प्रसार और विक्रय सब विभागों की उचित व्यवस्था स्वयं करते थे। मुझे खोज के द्वारा ज्ञात हुआ है कि गोस्वामी किशोरीलाल जी ने लेखक और प्रकाशक का जीवन व्यतीत कर लाखों की सम्पत्ति उस युग में पैदा की जब हिन्दी को राष्ट्र में गौण स्थान प्राप्त था और अंग्रेजी की चकाचौंध ने जनमात्र को भ्रम में डाल रखा था कि उसका कल्याण-कारी साहित्य किस भाषा में रचा जाना चाहिए। किशोरीलाल ने उस समय अपनी रचनाओं के आधार पर रईसी जीवन व्यतीत किया है। महीनों हो जाते थे और वे कभी भी अपने घर से बाहर जीविकोपार्जन के लिए नहीं निकले। लेखन और प्रकाशन का सारा काम घर बैठे चलता था। हिन्दी भाषा की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका "सरस्वती" के प्रथम वर्ष के सम्पादकों में गोस्वामीजी थे। 'नागरी प्रचारणी पत्रिका", "नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला", 'बाल सखा" इत्यादि के सम्पादक तथा उप-सम्पादक गोस्वामीजी रहे हैं। २५ वर्ष तक "उपन्यास" मासिक पत्रिका निकाली है। इन्होंने दस वर्षों तक "वैष्णव सर्वस्व" नामक मासिक पत्र भी निकाला है।

प्रारम्भ में वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के भी सभासद रहे थे और इतना ही नहीं, उन्होंने बहुत दिनों तक आरा में अपना साहित्यिक जीवन व्यतीत किया है। आरा में उस समय तक हिन्दी का कोई पुस्तकालय नहीं था, अतः वहाँ पर भी "आर्य पुस्तकालय" नामक एक संस्था गोस्वामीजी ने स्थापित की, जिसके द्वारा हिन्दी भाषा का सच्चा प्रचार हुआ। गोस्वामीजी का हिन्दी के प्रचारकों में उच्च और आदर-णीय स्थान है। केवल हिन्दी में ही नहीं, संस्कृत भाषा में भी इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध विज्ञ भारतेन्दु बाबू इनके मातामह गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्यदेव के साहित्य-शिष्य थे, इसलिए इनका सम्बन्ध भी बाबू हरिश्चन्द्र के साथ अत्यन्त निकटता का रहा। राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से इन्होंने हिन्दी में "प्रणयिनी परिणय" नामक पहला उपन्यास लिखा और आरा से काशी में निवास करने के लिए चले आये। वहाँ का साहित्यिक वातावरण उन्हें रुचिकर लगा।

उपन्यासों की महिमा प्रतिपादित करने के उपरान्त गोस्वामी किशोरीलाल का स्थान निर्धारित करने से पहले हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनकी अन्य रचनाओं के विषय में भी कुछ विचार प्रकट किये जावें। उनके द्वारा निर्मित साहित्य भण्डार अथाह है। उन सबकी खोजना तथा मूल्यांकन करना इस छोटे से प्रबन्ध के सामर्थ्य के बाहर है, अतः जैसे सागर की लहरों के बहाव को देखकर वायु के वेग का ज्ञान मल्लाह को हो जाता है और किसी भी निपुण पाक-शास्त्री को एक कण चावल का सीजा हुआ देखकर पूरी सामग्री की पक्वता का पता चलता है उसी प्रकार गोस्वामीजी

के साहित्य के विभिन्न अंगों में से बानगी के लिए एक-एक ग्रहण कर लेना और उनको दृष्टिकोण की परख उसी आधार पर कर लेना, हमें उचित जान पड़ता है।

सर्वप्रथम, गोस्वामीजी के द्वारा प्रतिपादित काव्य-दर्शन ग्रहण करें। उनकी रसिकता तथा रीतिपटुता प्रत्येक काव्य-पुस्तक से स्पष्ट प्रतिभासित हो रही है। उनकी काव्य-भाषा मूल रूप से सरल ब्रजभाषा है, पर उसके अन्तर्गत हिन्दी के अन्य रूपों का बहिष्कार नहीं किया गया है। संस्कृत में इन्होंने न्याय, योग, व्याकरण, पिंगल, वेदान्त और ज्योतिष का काशी जाकर अध्ययन किया है और साहित्य में आचार्य की परीक्षा तक गहन अध्ययन किया है। इनका सारा जीवन साहित्यमय है और साहित्य के गहन अध्ययन तथा पाण्डित्य के नाते इनकी काव्य-पुस्तकों में साहित्य नैपुण्य स्पष्ट भवित हुआ है। 'प्रेम रत्नमाला या प्रणयोपहार" गोस्वामी किशोरीलाल की प्रसिद्ध सरस काव्य-पुस्तक है, जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट बोध होता है। "प्रेम एव परोधर्मः" सिद्धान्त को जीवन में धारण कर ही उनकी कवि-लेखनी भाव-पूर्ण होकर प्रस्फुटित हुई। सन् १८०७ तक तो तीसरी बार इस पुस्तक का संस्करण हितचिन्तक प्रेस, काशी से प्रकाशित हो गया था। इसका समर्पण अपनी प्यारी को ही लेखक ने किया है क्योंकि काव्य का मूल-सूत्र प्रणयिनी से ही उपलब्ध हुआ है। वैष्णव होने के नाते इन्होंने पुस्तक के मंगलाचरण में भगवान कृष्ण और राधा की जुगल जोड़ी की भाँकी मनोहर ढंग से प्रस्तुत की है—

"प्यारी प्रीतम जुगल छवि, प्रति रीति दरसाय।
हिय मे जिय मे बसि रहो, रोम-रोम मे छाय॥
प्यारी प्रीतम की छटा, गौर स्याम रस धाम।
निरखत पुलकि सनेह नव, उर उपजत अभिराम॥"[१]

इस पुस्तक में १०६ दोहों की आयोजना है, जो ब्रजभाषा में रसिकजनों के मनोविनोद के लिए रची गयी है। "प्रेम रत्नमाला" के माधुर्य में पग कर पाठकों को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि रसखान अथवा घनानन्द की कविता का पान किया जा रहा है। कवि का रसिक रूप, प्रेम में विह्वलता, आत्म-समर्पण, मिलन की उत्कण्ठा, वियोग में विलाप और हृदय की मार्मिकता की अभिव्यञ्जना सुन्दर तथा सरस हो सकी है—

"प्यारी, अब तो विरह हो,
भभकि उठी हिय आग।
छिपै छिपाये कौन विधि,
लगी लालची लाग"॥[२]

'प्रेम को फाँसी' का लौकिक रूप कवि के काव्य से प्रत्यक्ष लक्षित होता है।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेम रत्नमाला", सन् १८०७ भूमिका से।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेम रत्नमाला", पृ० ५, दोहा १६ वाँ।

'प्रेमी और प्यारी' दोनों का लोक व्यवहार और प्रेम की रीति का सुन्दर वर्णन गोस्वामीजी ने किया है। प्रेमी के हृदय की हूक और प्यारी की निष्ठुरता से ही "प्रेम रत्नमाला" पिरोयी गयी है—

"प्यारी, फाँसी प्रेम की,
डारि लियो मन छोरि।
अब तो तेरे कर पर्यो,
कबै छूटै बहोरि।"[1]

प्रेमी के हृदय में प्यारी से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा है। सयोग की दशा में जिन वस्तुओं के उपभोग में सुख उपजता था, जो मन को शीतल करने वाली थी, वे ही वियोग की अवस्था में हृदय को दग्ध एवं टीस पहुँचाने वाली बन जाती हैं। 'विरह की तीव्रता' और 'प्रेम की पीर' की सुन्दर तथा मर्मस्पर्शी अभिव्यञ्जना गोस्वामीजी की कविता में हुई है। रीतिकालीन प्रेम परिपाटी तथा काव्य-प्रवृत्तियों की सुन्दर अभिव्यक्ति करने में किशोरीलाल सफल कवि के रूप में अवतरित हुए हैं। जिस प्रकार आचार्य केशव रीतिकाल के मूल प्रवर्त्तक माने जाते हैं, उसी प्रकार भारतेन्दु और द्विवेदी युग के सन्धि-काल में किशोरीलाल वर्तमान युगीन कवि होते हुए भी अपनी काव्य-रचनाओं में रीतिकालीन पद्धति को अभिव्यञ्जित करने में पूर्ण सफल हुए हैं। अनुप्रासमयी शैली, भावों की सरस अभिव्यंजना, भाषा में शब्द-चमत्कार, रचना कौशल, उपमा, रूपक, यमक और श्लेष तथा उत्प्रेक्षाओं की भरमार गोस्वामीजी की विशेषता है। 'विरह-व्यथा' के दो चमत्कारपूर्ण उदाहरण देख लिये जावें तो प्रमाण और भी प्राप्त हो जावेंगे।

"प्यारी, विरह बिथा बुरी,
काहू को नहिं होय।
लगे आँख ते आँख जब,
लगै आँख नहीं रोय।।"[2]

× × × ×

"प्यारी, प्रेम सबै करै,
प्रेम न जानत कोय।
जो जाने करि प्रेम तौ,
मरै जगत क्यों रोय।।"[3]

"प्रेम रत्नमाला" के निर्माण-काल के विषय में लेखक ने स्वयं ही अन्त में "दीपपूरण" में लिख दिया है जिससे अन्वेषकों का काम सरल हो जाता है—

१. किशोरीलाल गोस्वामी : प्रेम रत्नमाला" पृ० ७, दोहा २३ वाँ।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेम रत्नमाला", पृ० २१, दोहा ७८ वाँ।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेम रत्नमाला", पृ० २३, दोहा ८७ वाँ।

"प्यारी तीज सुहावनी,[१] सावन सित सनिवार।
संवत ससि-सर ग्रह धरा, सकल सुखन को सार॥
प्यारी प्रीतम प्रेम पर, हिय धरि हरषि रसाल।
प्रेम रत्नमाला रची, रसिक किशोरीलाल॥"[१]

गोस्वामीजी के घर पर सदा रसिकों की मण्डली जुटी रहती थी। व रईस थे और उनका मन भी रईस था। आगत अतिथियों का स्वागत-सत्कार तथा मनोरंजन करने में वे अपना सानी नहीं रखते थे, इसलिए कीर्तन, भजन, गायन और कजरी इत्यादि की आयोजना वर्ष में समय-समय पर उनके यहाँ हुआ करती थी। दूर दूर से कलाकार और गवैये तथा साहित्यकार आकर भाग लिया करते थे, इसलिए उन्होंने भी "रसीली कजरी वा सावन सुहावन" पुस्तक की रचना की है। इसमें 'सब चाल की सलौनी कजरियाँ' हैं। उन चालों की पद्धति भी कजरी के प्रारम्भ में गोस्वामीजी ने दे दी है। 'कजरी' की रचना की प्रेरणा गोस्वामीजी को भी संगीत-प्रेमी होने के नाते प्रचलित लोक-साहित्य से मिली है। उन्होंने स्वयं लिखा है—*"गँवारों का सब अश्लील और उज्जडपने की कजरियों के प्रचार के रोकने के लिए भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पण्डित बदरीनारायण चौधरी, मझौली नरेश लाल खंग बहादुर मल्ल, पण्डित रामकृष्ण गौड़ और हमने इस ढंग की कजरियाँ बनाईं कि जिसमें कजरी वालों को इन कजरियों में अनुराग हो और वाहियात कजरियों का देश छूटे। सन् १८८६ में मिर्जापुर की कजरी के देखने का अवसर हमें मिला था। तभी से हमारी इच्छा थी कि यहाँ पर जितनी चाल की कजरियाँ प्रचलित हैं, उतनी चाल की नये ढंग की कजरियाँ बनाई जायँ। इस विषय में हमारे परम मित्र पण्डित जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी ने हमें विशेष उत्साहित किया और हमने सन् १८८७ में २५ कजरियाँ छाप कर वितरण कीं और सन् १८९१ में 'सावन सुहावन' नामक पुस्तक बिहारबन्धु पत्र के साथ हिन्दी रसिकों की सेवा में भेजा। आज वही पुस्तक पाँचवीं बार कुछ घटा-बढ़ाकर और शुद्ध करके छापी गयी है।"*[२]

संगीत-प्रेमियों के लिए "सावन सुहावन" अनुपम पुस्तक है, जो तान, आलाप तथा तबूरे और तबला के साथ के साथ गायी जाती है। इसकी उत्पत्ति के विषय में गोस्वामीजी ने लिखा है—*"राजा आल्हा ऊदल के समय में कजरी की उत्पत्ति हुई* और यह 'महोबे' से आई और ब्रजभाषा से मिलकर नैनागढ़ (चुनार) में आकर फैलने लगी। फिर कतिथ नरेश दानूराय के समय में, जो समय औरंगजेब बादशाह का था, मिर्जापुर में यह आई और तबसे मिर्जापुर ही कजरी की उत्पत्ति का आदि-

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "प्रेम रत्नमाला", पृ० २१ "दीपपूरण" से।
२. किशोरीलाल गोस्वामी . "सावन सुहावन," सन् १९२६ का संस्करण भूमिका से उद्धृत।

कारण हुआ, फिर तो यह काशी आदि देश-देशान्तरों में फैली और अब सर्वत्र व्यापक हो रही है।"[1]

दूसरी चाल की रसीली कजरी का उदाहरण गोस्वामीजी की कजरी-पटुता के लिए नीचे दिया जा रहा है। लेखक ने सबसे पहले ही बताया है—

"नाहीं लागे जियरा हमार बिनु सयाँ रे" की चाल पर यह कजरी गायी जावेगी—

"मत चलो बटियाँ इतान साँवर गोरिया ॥ रे ॥
धारी सी उमिर मतवारे रे जोबनवाँ, जुलुम करत मुसकान साँवर गोरिया।
रसिक किशोरी तोरे तिरछे नयनवाँ, मारत करेजवा मे बान साँवरिया ॥ २७ ॥
तोरी है रसीली मुसकान साँवर गोरिया ॥ रे ॥
छतियाँ उठान मुरि-मुरि मचलान सखी, काहे के मारत नैना बान साँवर गोरिया।
रसिक किसोरी तोरे उमँगे जोबन पर, लुटि जैहें सकल जहान साँवर गोरिया ॥२८॥"[2]

"सावन सुहावन" में सब चालों पर १३१ रसीली कजरियाँ गोस्वामीजी ने रची हैं, जो रसिक-समाज के गले का हार बन गयीं। उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते कजरी की धुनें यहाँ वहाँ सुनाई देने लगीं। 'मल्हार' राग मे कजरी ने जनसाधारण का अत्यन्त मन मोह लिया।

"होली वा मौसिम बहार" भी गोस्वामी किशोरीलाल की रसिकतापूर्ण गीत-पुस्तक है। सावन की 'कजरी' और होली पर 'फाग' गाने से जन-जीवन में जो अपूर्व आनन्द की लहर छा जाती है, इस पुस्तक में लखक ने उसी रसिक-जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। मथुरा में और कृष्ण की नगरी वृन्दावन मे चारों ओर होली पर अपूर्व उल्लासपूर्ण वातावरण छा जाता है। वहाँ के वैष्णव-मन्दिरों मे— राधा और कृष्ण की होली, गोप-गोपियों के द्वारा 'युगल छवि' को रंग की पिचकारी से सराबोर करना, कालिन्दी के तट पर केलि क्रीडाएँ—वसन्त-पचमी के दिन से होलिका-दहन तक रसरंग इतना मनोहर हो जाता है कि दूर दूर से भक्तजन भगवान की अनुपम छवि का दर्शन करने के लिए पधारते हैं। रसिक-किशोरी राधिका अपने प्रियतम कृष्ण के साथ मदमाती होकर प्रतिदिन होली खेलती है। कभी-कभी कृष्ण रस की पिचकारी गोपियों पर भी डाल देते हैं। "होली वा मौसिम बहार" पुस्तक में समस्त राग और रागनियों का समावेश हुआ है। कवि की रसिकता और पाण्डित्य-प्रतिभा का अपूर्व समागम "होली" पुस्तक में प्रकट होता है। सुन्दर सरस ब्रजभाषा और सगीत-शास्त्र के साँचे पर ढली हुई राग-रागनियाँ कवि की लगन को प्रतिपादित

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सावन सुहावन", सन् १९२६ का संस्करण, भूमिका से उद्धृत।

२. किशोरीलाल गोस्वामी : "सावन सुहावन", सन् १९२६ का संस्करण, भूमिका से उद्धृत, पृ० ७ से।

करती है। कवि पूर्णरूप से शास्त्रीय संगीत का ज्ञाता था, जिसने रागों के आधार पर काव्य-रचना की है।

राग बसन्त, ध्रुपद बसन्त, खम्माज, काफी, ठुमरी, झमोटी, पीलू, सोरठा, सावनी, देस, प्रभाती, कलिंगड़ा, धनाश्री, अहीरी, होली सफेरी, राग सारंग, कान्हड़ा, सिंध भैरवी, जंगला, यथारुचि, राग गौरी, ईमन कल्यान, चाचरि, हमीर, जागिया, इत्यादि रागों की आयोजना अवसरों के अनुकूल हुई है। उपन्यास-लेखक गोस्वामीजी की काव्य और संगीतपटुता सहज में मानव को आश्चर्य में डाल देती है।

अब सब चालों के उदाहरण यदि "होली" में से दिये जावें तो यह कार्य बहुत विशाल हो जावेगा। गोस्वामीजी की काव्य-रचनाओं पर तो हिन्दी में पृथक् रूप से ही विशेष अध्ययन होना चाहिए। केवल उदाहरण के लिए, निम्नलिखित रागों का उल्लेख करना पर्याप्त है—

चाचरि राग धुन सारंग

"मोहन खेलत होरी हो वृन्दावन में धूम मची है
घर-घर तें धाई सब बनिता, कोउ साँवर कोउ गोरी हो,
वृन्दावन में धूम मची हो।
चलो सीस धरि कनक-कमोरी, लै गुलाल भरझोरी हो
नाचत गावत रंग बरसावत, बोलत हो हो होरी हो॥वृन्दा०॥
नख सिख कियो सिंगार मनोहर, सुन्दर रूप दिखारी हो
नैन लड़ाई करे चित चोरी, कोउ चपल कोउ भोरी हो॥वृन्दा०॥"[1]

होली, ठुमरी, खम्माज

"जोरा जोरी चटक चुनरि रंग बोरी रे॥ टेक॥
करि बर जोरी मुख रोरीसों मलोरी मोरी,
चोलिया पकरि झकझोरी रे॥ जोरा जोरी॥
बहियाँ मरोरी गोरी गोरी दोनों मोरी मोरी,
गावत मधुर धुन होरी रे॥ जोरा जोरी॥
कीनी रस घोरी प्यारे सीनी पत मोरी सब,
रसिक किसोरी चित चोरी रे॥ जोरा जोरी॥"[2]

राग सोरठ

"आयो फागुन मास री, गोरी फाग मचाओ
गाय बजाय जाय ब्रज खोरिन, लाल गुलाल उड़ाओ री
गोरी रंग बरसाओ॥

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "होली वा मौसिम बहार", राग ७२, पृ० ४१।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "होली वा मौसिम बहार", राग १, पृ० १०

बैठि रही करि मान कहा इत, लालन कंठ लगाओ री
गोरी सुख सरसाओ ।।
रसिक किसोरी जोरि जुग नैनन, मन की मौज मिटाओ री
गोरी मत सकुचाओ ।।"[1]

इस प्रकार 'होली' में ११६ राग हैं। ३१ चालें हैं। पद दोहे, सोरठे और अनेक कवित्तों की रचना की गयी है, जिसमें काव्य-माधुर्य आदि से अन्त तक ओत-प्रोत है।

राधा और कृष्ण का मान, मनुहार, प्रेम-लीलाएँ, हिंडोला, रास-लीला, बरसाती कुंजों मे प्रेम-विहार, यमुना मे जल-क्रीडाएँ, सखियों का स्यामा-स्याम को झुलाना, चीर-लीला, गेंद उछालना आदि प्रसिद्ध मनोहारी प्रसंगों को गोस्वामीजी ने अपनी 'कजरी' रचना में समावेश किया है। हिन्दी साहित्य में यह अनूठी तथा रसीली पुस्तक है। वैष्णव-मन्दिरों, वल्लभ-सम्प्रदायी संस्थाओं तथा निम्बार्क मतावलम्बियों में 'कजरी' सबको प्राणप्रिय हो गयी है। मजीरे और ढोलक पर भी घर-घर में इसकी तान सुनाई देने लगी। सखी-सम्प्रदाय के मानने वाले कृष्ण की प्रेम-लीलाओं में स्वयं भी भाग लेकर अपने को अहोभाग्य समझने लगे।

"सखियाँ स्यामा स्याम झुलावें।
करि किलोल मधुरे बोलन सों, हिय अनुराग जनावें।
लचमच पैंग दई दुहूँ दिसि सों, नैनन सैन चलावें।
रसिक किसोरी हिये लहि सो सुख, जिय की तपनि बुझावें।।"[2]

'कजरी' के समान दूसरी "चैती गुलाब की" गोस्वामीजी की अनुपम सरस गाने की पुस्तक है। सन् १९१४ में पहली बार यह वृन्दावन से छबीलेलाल गोस्वामी के द्वारा प्रकाशित हुई। राधा और कृष्ण की युगल छवि की मनुहार इस पुस्तक में अंकित है। 'चैती' घाटों का अनुपम चित्र है—

"चैती गुलाब की—लेत सुगन्ध, मलिन्द अमन्द अनन्द विथारी,
चाखत डोलत हैं रस भौंर, करें चहुँ रोर कवी फुलवारी।
अन्त लौं तन्त लसन्त लहै, छवि अन्त अनन्त बसन्त विहारी,
बागन में बनितानि लिए, विहरैं रसिकेस निकुंज बिहारी।।"[3]

गोस्वामीजी के द्वारा चालों, दोहा और कवित्तों में इस पुस्तक की रचना हुई है। इसकी भाषा सरल ब्रजभाषा है। इसमें संगीतात्मकता कूट-कूट कर अनुप्राणित हो रही है। यदि एक ओर अनुप्रासों की छटा छिटक रही है तो दूसरी ओर रसमाधुरी की वर्षा हो रही है, जिसके द्वारा रसिकजनों का मन रसप्लावित हो रहा है। नवयौवन की बहार, मदमाती सखियाँ, अपने कटाक्षपूर्ण हाव-भावों से

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "होली वा मौसिम बहार", राग १२।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "सावन सुहावन", १२३ वाँ पद, पृ० ३०।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "चैती गुलाब की", पृ० १।

रसिकजनों को मुग्ध कर रही हैं। मधु-मास में प्राकृतिक छटा और सुन्दर गुलाब पर मँडराने वाले व्याकुल भँवरे की-समता नवोढा नायिका और उनके नवल-रसिक प्रेमिकों की हास-विलास-का भवन-गोस्वामीजी के रसिक-हृदय ने सुन्दरता से चित्रित किया है। उनकी काव्य-पुस्तकों का अध्ययन करने से कोणार्क और खजुराहो की विलासपूर्ण आकृतियाँ नैनों के सामने विचरण करने लगती हैं। नायिकाओं का खीभना, रूठना, हाव भाव, मान-मनौवल, हठ और नायकों का छेड़ना,-अंग-स्पर्श करना, अनेक प्रकार के प्रसाधनों के द्वारा उन्हें सहमत करना एवं शृंगार की समस्त क्रीड़ाओं को गोस्वामीजी ने यथावत् चित्रित किया है। उदाहरण के लिए,-निम्नांकित पद्य पर्याप्त होंगे—

> "बैठे हैं गुलाब बाग बीच रसिकेस दोऊ
> बाजत हैं बाजे गावें धारों 'चैंत' चैनोसों
> आवत सुगंध मन्द मलय-मलिन्द जा में,
> कोटिन अनन्द चैन चाँदनी की रैनी सों।
> गहत पयोधर कपोल चूमि लागि गरे,
> बोलत अमोल बोल लोल पिक बैनी सों
> करत विहार जाको पार न निहार देखो
> नेक ना नियारे होत चैंत सुख दैनी सा॥"[1]

काव्य में अनुप्रास, उपमा और श्लेष-अलंकारों की भरमार है, इसलिए उर्दू तथा फारसी के शब्द भी तद्भव होकर अपने स्वाभाविक रूप में काव्य में आ गये हैं। समस्त पद तानपूरा, सारंगी और सितार आदि वाद्य-यन्त्रों की सहायता से गाये जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए, एक नायिका काम-पीड़ित है, गोस्वामीजी ने उसके हृदय की विदग्धता का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्रण किया है—

दूसरी चाल—

> "चुनरी रंगा दे रामा, सखी मोरी गौने की रात, मोरे रामा हो,
> चुनरी रंगा दे।
> अँगिया में कसीली लहिरौं, मदन दहत सब गात, मोरे रामा हो,
> चुनरी रंगा दे।
> रसिक किसोरी रंगमहल में, हूँ हैं सबै विधि घात, मोरे रामा हो,
> चुनरी रंगा दे।"[2]

काव्य-रचना के अतिरिक्त गोस्वामीजी को रामलीलाओं के देखने और

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "चैती गुलाब की", पृ० १०।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "चैती गुलाब की"; चाल, दूसरी, पद १२, पृ० ४।

उनमें सक्रिय भाग लेने का भी अद्भुत चाव था। रामनगर (काशी) में होने वाली "रामलीला" को प्रेमभाव से वे नित्य देखने जाया करते थे, अतः नाटक, नौटकी, लीलाएँ, रास तथा कजरी साहित्य के समस्त अंगों के निर्माण की ओर उनकी पैनी दृष्टि सदा गयी है तथा उन्होंने विशेष रुचि के साथ अपना पाण्डित्य प्रदर्शित किया है।

'नाटक' के विषय में गोस्वामीजी के मौलिक विचार 'नाट्य संभव' में प्रकट होते हैं—जबकि प्रस्तावना में 'सूत्रधार' के द्वारा उन्होंने 'नाटक' की व्याख्या कराई है—"संसार में जब-जब जिस जिस देश की उन्नति हुई, तब तब उस उस देश के साहित्य कारण। पर हाय! कैसी लज्जा की बात है जिस साहित्य के प्रधान अंग नाटक से यह देश एक समय उन्नति की सीमा लाँघ कर भूमण्डल के सभी देशों का शिक्षा गुरु बना था, आज उसी की ऐसी दुर्दशा हो और यहाँ के निवासी आँखों पर पट्टी बाँधे हुए रसातल को चले जाते हो (खेद नाट्य करता है)। सभी कोई इस बात को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करेंगे कि यह अलौकिक गुण नाटक ही में है कि जिसके द्वारा अनेक विभिन्न समाज और विभिन्न प्रकृति के लोगों का मन एक रसमय हो जाता है। चाहे तो कोई कैसी ही प्रकृति का क्यों न हो पर नाटक से उसकी मति जिधर चाहे उधर फेरी जा सकती है और जैसा चाहे वैसा काम निकाल लिया जा सकता है। (घूमकर) और देखो, नाटक से बढ़कर कोई ऐसा दूसरा उपाय नहीं है जिससे सर्वसाधारण को सामाजिक दशा का वर्तमान चित्र दिखाकर उसका पूरा-पूरा सुधार किया जाय।"[1]

"नाट्य संभव" का प्रकाशन सन् १९०४ में लहरी प्रेस, काशी से हुआ। लेखक ने स्वयं इसे 'रूपक' कहा है और इसके निर्माण की प्रेरणा उन्हें सन् १८९१ में प्राप्त हुई, जब वे द्वितीय बार कलकत्ता गये। वहाँ पर सम्पादक पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, 'सार-सुधानिधि' सम्पादक पण्डित सदानन्द मिश्र, धर्म-दिवाकर पण्डित देवीसहाय मिश्र के साथ गोस्वामी किशोरीलाल नाटक देखने जाया करते थे और "सो एक दिन 'स्टार' थियेटर में एक ऐसी अच्छी नकल देखने में आयी जो चित्त में चुभ सी गयी और उसी के मूल पर हमने इस 'नाट्य संभव' रूपक को लिखा जिसे उपर्युक्त मित्र-मण्डली ने सराहा और पसन्द किया।"[2]

बाबू देवकीनन्दन खत्री के प्रयत्नों से यह नाटक छपकर हिन्दी साहित्य-सेवियों के सामने आ सका। उस समय गोस्वामीजी आरा में साहित्य-सेवा करते थे। एक बार सूर्य पुराधिपति राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह बहादुर ने इस रूपक को आदि से अन्त तक सुना और वे गोस्वामीजी की प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुए।

"नाट्य संभव" संस्कृत के प्राचीन 'रूपक' की परिपाटी पर रचा गया है। इसमें 'प्रस्तावना' की अवतारणा की गयी है, जहाँ सूत्रधार व पारिपार्श्वक—दोनों पात्र रंगमंच पर पहले अवतरित होते हैं और सूत्रधार अपने मुख से "नाट्य संभव" रूपक का

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य समव", पृ० १-२।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य समव", भूमिका से उद्धृत।

उद्देश्य दर्शकों को घोषित करता है। वह 'नाटक' की महत्ता समझाता है। हिन्दुओं की अधोगति के कारण, उनकी हीन दशा तथा राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह के द्वारा नाटक खेलने की अनुमति तथा रसिक और सुलेखक गोस्वामी किशोरीलाल का परिचय अपनी वाक्पटुता तथा चतुराई से दर्शकों को देता है। 'नाट्य संभव" के पात्र सरस्वती, शची, उर्वशी, मेनका आदि नारियाँ हैं और बृहस्पति, नारद, माल्यवान, भरत, इन्द्र इत्यादि पुरुष-पात्रों की अवतारणा हुई है। 'नेपथ्य' आदि दृश्यों की अवतारणा करके लेखक ने नाटक के शास्त्रीय अंग स्पर्श किये हैं। विष्कम्भक, प्रकावतार इसके प्रमाण हैं। नन्दनवन के दृश्य में नाटक की कथावस्तु प्रारम्भ होती है जबकि देवराज इन्द्र अपनी प्रियतमा महारानी शची के विरह में व्याकुल हैं। भगवान इन्द्र ने यक्ष को शाप देकर उसकी प्रणयिनी से उसका विछोह करा दिया था जिसके फलस्वरूप कालिदास ने 'मेघदूत' काव्य रचा और अब देवेश की प्राणप्रिया शची का हरण राक्षसों ने कर लिया है। देवेश इन्द्र की व्याकुलता से महामुनि भरत तथा देवगुरु बृहस्पति सब दुखी हैं। नन्दनवन उदासीन और विरक्त हो गया है। गन्धमादन पर्वत पर राक्षसों के शिविर में इन्द्राणी शोकमग्ना है। भरत मुनि सरस्वती देवी की उपासना करते हैं और भगवान इन्द्र को प्रसन्न रखने का वरदान माँगते हैं। महामुनि भरत से देवी सरस्वती प्रसन्न हो जाती हैं और "नाट्य संभव" रूपक पुस्तक रूप में उन्हें अर्पित कर दिया। इस पुस्तक को प्रदान करके देवी सरस्वती ने उन्हें 'नाट्य शास्त्र' के प्रथम आचार्य के रूप में पदारूढ़ किया। इस पुस्तक के प्रथम भाग में श्रव्यकाव्य है, उसके भेदों का वर्णन है तथा दूसरे भाग में दृश्यकाव्य का निरूपण किया गया है। इस (पुस्तक) ग्रन्थ के नाटक भाग में रूपक और उपरूपकों का वर्णन है। नाट्याभिनय देखकर देवता या मनुष्य सबका हृदय शृंगार, वीर या करुण रस से तादात्म्य स्थापित कर सकेगा। देवी सरस्वती ने भक्त भरत मुनि से कहा कि पहले नाट्यशाला जाकर सजाओ और उसमें नाट्य-रचना, नेपथ्य की परिपाटी, दृश्य के पट और पात्रों को ठीक करके नाटक का प्रारम्भ करो। इस वरदान के बाद महामुनि ने नाटक खेलने का प्रबन्ध किया, जिसे देखकर स्वामी सुरेन्द्र इन्द्र अपने मन को शान्त कर सकें तथा अपनी प्राणप्रिया का दुख भूल सकें।

"नाटक नाटक नाटक नाटक।
रूप का हाटक रस का फाटक।
तम का काटक दुख का छाटक।
विरहा बाटक आनंद धाटक।"[1]

भरत मुनि ने इन्द्र की सभा में नाटक खेला—गुरु बृहस्पति भी महामुनि भरत की इस योजना से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। समस्त देवी देवता भी आनन्द-मग्न हो जाते

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य संभव", पृ० ६२।

हैं कि आज से सुरेश का मानसिक त्रास दूर हो जावेगा और नन्दनवन में फिर से रस की सृष्टि होगी।

"नाट्य संभव" में गोस्वामीजी ने नाटक के अन्दर नाटक की अवतारणा की है। "नाट्य संभव" का कथावतार सुधर्मा सभा के सामने रंगशाला, परदा उठना, *गन्धमादन पर्वत का दृश्य*, दैत्यराज बलि का अहंकार, इन्द्राणी का हरण करने का घमंड और इन्द्राणी के विरह में इन्द्र को मकर्मण्य बना देना जिससे इन्द्रलोक विजय करने में सरलता हो जाना, नारद मुनि का दैत्यराज के पास जाना और बलि के द्वारा पुरानी कथा सुनाना कि इन्द्र हमारी प्रपितामही (हिरण्यकश्यप की स्त्री) को दैत्य नारियों के साथ बाँध कर स्वर्ग को ले गया था, इसलिए इन्द्र से बलि का बदला लेना —पर नारद मुनि की बुद्धिमत्ता से इन्द्राणी को बन्धन-मुक्त करना और बलि का हत-प्रभ होकर रह जाना, नाटक की कथावस्तु को देखकर भगवान सुरेश का व्याकुल हो जाना, नाटक की सजीवता पर महामुनि भरत को बधाई देना, महामुनि भरताचार्य की ज्वलन्त कृति 'नाटक' है। भरत मुनि के इस नाटकरूपी इन्द्रजाल ने भगवान इन्द्र को अत्यन्त मुग्ध कर दिया। इन्द्र तथा समस्त देवी देवताओं का आश्चर्यचकित होकर चिन्ता करना—इसी समय महामुनि नारद का पधारना और उनके साथ अवगुण्ठन-वती इन्द्राणी का प्रवेश—एक ओर नाटक अभिनीत हुआ और दूसरी ओर विरही इन्द्र को वास्तव में इन्द्राणी प्राप्त हो गयी। भाग्य की लीला और विधाता के विधानस्वरूप दुख और सुख जीवन में क्रम से आते रहते हैं। उनके बाद सब देवताओं द्वारा नाटक की सफलता पर आनन्द-उत्सव मनाना और इसके साथ "नाट्य संभव" की समाप्ति गोस्वामीजी ने की है—

"जैसो सुख सरिता बहै, नाटक माँहि सुजान।
वैसो सुखद न वस्तु है, तीन लोक में आन॥"[1]

इस नाटक में पात्रों की भाषा और शैली आलंकारिक तथा पद्यमय है। कथोपकथन में दोहे, कविता तथा सोरठे हैं—राग है और गाने की टेक है।

राग खम्माज, राग मारू, मुलतानी त्रिताल, राग सबारचि, राग कलगड़ा, राग सूहा, राग बिहाग, राग ऐमन आदि सहज ही नाटक में अवतरित हुए हैं। गद्य-लेखन के साथ ही साथ गोस्वामी को संगीत-कला का शास्त्रीय ज्ञान था। ये राग वाद्य-यन्त्रों की सहायता से सुमधुर ध्वनि से गाये जा सकते हैं—

राग सूहा—

"अहा, अपूरब नाटक सुख की रासी,
सब सुखदायक, परिचायक मोह विनासी।

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य संभव", पृ० ६६।

सुभ पवन बहे मंगल नव कुसुम फुलौन,
जहँ प्रेमी जन के मन मधुकर मरमाने।
सब मिट आप संताप, सदा सुख होवे,
छिन में यह मन को सब व्याधि को खोवे।"[1]

राग खम्माज—

"जय जय अखिल भुवन की बानो।
कवि की रसना माहिं जासुको मन्दिर बेद बखानो॥
अतुल रूप, गुन अमित, विस्व में जाकी छटा समानी
जेहि लहि पुनि कछु करें आस नहिं सुर-नर मुनि विज्ञानी॥"[2]

'नाट्य संभव' में इन्द्र के विरहपूर्ण कथन का उदाहरण दर्शनीय है—"प्यारी के बिना आज यह माधवी कुंज सापिन सी डसे लेती है (पन्ने की शिला पर बैठ कर) और यह पन्ने की शिला आज कांटे की भांति शरीर में चुभ रही है (ठहर कर) हाय! हमने जो यक्ष को श्राप देकर उसकी प्रणयिनी को असह्य विरह की यातना दी थी, उसी की हाय के भभूके से हमारा हृदय आज भुना जाता है।"[3]

गोस्वामीजी ने इस रूपक की सृष्टि में शास्त्रीय परम्पराओं को ही प्रमुख महत्ता प्रदान की है तथा उनका दूसरा नाटक "चौपट चपेट" हास्यरस से पूर्ण प्रहसन है। इसमें लम्पटों की दुर्दशा का मनोहर चित्र है। इसका प्रकाशन छबीलेलाल गोस्वामी ने सम्वत् १९७५ में सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से दूसरी बार किया था। सर्वप्रथम आरा से, जबकि गोस्वामीजी 'आर्य पुस्तकालय' में कार्य करते थे, सन् १८९१ में मई की २ तारीख को इस प्रहसन को रचा गया। भारतेन्दु बाबू के रूपकों के पश्चात् हिन्दी साहित्य में एकदम अभाव सा आ गया; तब उनकी मृत्यु के बाद गोस्वामी किशोरीलाल ने यह प्रहसन रसिकजनों को उपहार के रूप में दिया है। इसकी रचना का मूल उद्देश्य हिन्दी भाषा की उन्नति तथा समृद्धि था। जब "चौपट चपेट" का दूसरा संस्करण सन् १९१८ में छपा तब तो हिन्दी गद्य एवं पद्य के क्षेत्र में अनेक मनीषी साहित्यकार निर्माण-कार्य में तत्पर दिखाई देने लगे थे।

इसके शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि लेखक ने लम्पट-पात्रों की दुर्दशा कराई है। मदनमोहन नगर का एक रईस है और छबबूलाल उसका मित्र है। रजनीकान्त मदनमोहन का बिगड़ा हुआ वकील मित्र है। चंपकलता बाबू मन्मथकुमार की पतिव्रता स्त्री है। बैजूबावला का भेष बनाये हुए मन्मथकुमार है, जो नगर का एक जमींदार है।

लेखक ने 'प्रहसन' में छः अंकों की अवतारणा की है। प्रथम अंक में मदन-

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य संभव", पृ० ९१-९२।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य संभव", पृ० १३।
३. किशोरीलाल गोस्वामी : "नाट्य संभव", पृ० १०।

मोहन और रजनीकान्त तथा प्रभयकुमार की मित्र-मण्डली जुड़ी हुई है। प्रापस में ये मित्र पतिव्रता नारी की मर्यादाओं पर तर्क कर रहे हैं। नायक मदनमोहन रईस ने धन से समाज म नाना प्रकार क व्यभिचार फला रखे हैं और प्रभयकुमार (बैजूबावला) की सती पत्नी पर ही हाथ साफ करने की चेष्टा है। प्रभयकुमार सज्जन पात्र है, जो भारतीय संस्कृति, धर्म, समाज, आर्थिक व्यवस्था सबके पतन पर खेद प्रकट करता है। गुलफाम नामक कामुक जुलाहा सुन्दर साड़िया की विक्रय करने के लिए प्रभयकुमार के घर जाता है। उसकी पत्नी चपकलता कवल एक साड़ी साड़ी खरीदती है। वह उससे साड़ी के दाम नहीं लता, तब चपकलता उस नीच क कलुषित विचारों को समझ जाती है और वह गुलफाम क साथ चली जाती है। उस मुसलमान का हिन्दू बनने के लिए कहती है। वह दूसरी शाम को हिन्दू बनकर आने की प्रतिज्ञा करके चलना चाहता है। इतने म अदृश्य से प्रभयकुमार प्रकट हो जाता है और उसकी खूब मरम्मत करता है। चपकलता अपने पति को बताती है कि प्राज उसने मदन-मोहन, छक्कूलाल, रजनीकान्त, गुलफाम सबको भोजन के लिए आमन्त्रित किया है। प्रभयकुमार पत्नी को प्राश्वासन देता है कि द्रोपदी के चीर क समान भगवान श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे, तब चपकलता कहती है कि प्राज यह भी देखना कि भारत की सती नारियाँ अपने सतीत्व की रक्षा किस प्रकार करती हैं। प्रभयकुमार अत्यन्त प्रसन्न होता है और बैजूबावला (प्रभयकुमार) को फिर से ससार की मोहमाया मे प्रविष्ट होना पड़ता है। चपकलता की दासी गुलाब भोजन के निश्चित समय पर सब अतिथियों का स्वागत करती है जो पहले गुलफाम, तत्पश्चात् रजनीकान्त, छक्कूलाल तथा अन्त मे मदनमोहन को चपकलता के घर मे प्रवेश देती है। चपकलता थोड़ी देर बाद प्रकट होती है और मदनमोहन रईस का मूर्ख बनाती है। वह जलपान मँगाती है। इतने में बैजूबावला (प्रभयकुमार), जो वहीं पर छिपा कर रखा गया है, निकल आता है और गुलाब दासी के हाथ से चाबुक छीन कर मदनमोहन को मारता है। मदनमोहन को वह अपना घोड़ा बनाता है। चपकलता की चतुराई से चारों लम्पटों को बहुत दण्डित तथा लज्जित होना पड़ा। प्रभयकुमार ने मदनमोहन को चाबुक से पीटा और नारी-सम्मान का पाठ पढ़ाया। गुलफाम, रजनीकान्त व छक्कूलाल की भी यही दशा की जाती है। वे नाक रगड़ व थूक चाटकर क्षमा-याचना करते हैं। उसके उपरान्त प्रभयकुमार और चपकलता सुखपूर्वक जीवन यापन करते हैं। इस प्रहसन की भाषा सरस व चुटकुले विनोद और व्यग्य से परिपूर्ण है। इस प्रहसन के पढ़ने से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के "भारत दुर्दशा" नामक प्रहसन का स्मरण हो आता है। हास्य, विनोद और व्यंग्य की परिपाटी के द्वारा उन प्राचीन पीढ़ी के कलाकारों ने समाज-सुधार के कार्य में अपूर्व सहयोग दिया। इस प्रकार के प्रहसनों को अभिनीत करने से लम्पटों पर सुप्रभाव पड़ेगा। अपने दुष्कार्यों से उन्हें लज्जा आवेगी और समाज में नारी-मर्यादा तथा सतीत्व की रक्षा को बल मिलेगा। फिर कोई भी पति कहलाने वाला

पुरुष अपनी पत्नी रूपी नारी को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखेगा और न कभी अकेला छोड़ जाने का साहस करेगा। चपकलता रूपी पतिव्रता नारी, सती-साध्वी पत्नी और गुलाब जैसी स्वामिभक्त दासी से ही भारत की संस्कृति अभी तक चिरस्थायी है और उसका मस्तक ऊपर उठा हुआ है। पापमयी एवं कलुषित भावना लाने से मदनमोहन, छक्कूलाल, रजनीकान्त सबको असह्य शारीरिक पीड़ा सहन करनी पड़ी है। उत्कट पाप का फल पापियों को इसी जगत में मिल जाता है। गोस्वामीजी ने इसी जगत को अपने-अपने कर्मों के अनुसार पाप और पुण्य से भरा हुआ कहा है। "चौपट चपेट" की भाषा का उदाहरण इस ग्रंथ में प्राप्त हो जावेगा—

चतुर्थांक में गुलाब का स्वगत कथन—"बस, अब सब काम निपट गया। एक टोकनी गोबर मिट्टी भी ले आई हूँ। अलक्तरा की नांद और सोटा गुड़ की अपरी भी भाड़ में रखी है। अब मिट्टी का तेल अलकतरा में डालकर गोद का ढकना ढक दूँ। (जाती है और फिर आकर बैठती है) बस, बस अब ठीक ठाक मामला है। दुष्टों की बुद्धि तो देखा। गिरस्ती की बहू बेटियों पर ऐसी बुरी नजर। सो भी कोई कुलटा कुचाली नहीं है, खासी निर्मल गंगाजल है। उसके बिगाड़ने को इतना बखेड़ा। गल जायेंगे सत्यानाशी, गल जायेंगे। (नेपथ्य में द्वार का खटखट शब्द) (झुँझला कर स्वगत) यह पाजी गुलपू केसा आया, जाऊँ किवाड़ खोलकर उसका सराध करूँ।"[1]

राधाकृष्णदास के साथ गोस्वामी किशोरीलाल ने "जगनामा" का सम्पादन किया है, जिसके मूल लेखक श्रीधर कवि थे। यह भी उनके काव्य-प्रेम का जीता-जागता उदाहरण है, जिसका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से सन् १६०४ में हुआ था। इसकी भूमिका, इसका इतिहास स्वयं गोस्वामीजी की लेखनी से लिखा गया। औरंगजेब के बेटे बहादुरशाह और उनके वंशजों का इतिहास, गद्दी के लिए नोच-खसोट, भाई-भाइ का एक-दूसरे पर आक्रमण, दिल्ली और आगरा का रण-क्षेत्र बन जाना, सन् १७१२ में जहाँदारशाह का लालकुँवर नामक वेश्या को अपने हरम में डाल लेना, जहाँदारशाह का अनाप-शनाप खर्च, ऐश-आराम, करोड़ों रुपया पानी की तरह खर्च करना, नाच-तमाशे, रोशनी आदि में अपव्यय, सारी वस्तुओं का मँहगा हो जाना, हिन्दुओं की दयनीय अवस्था का इसमें चित्रण है। घोर युद्धों की अवतारणा से चारों ओर अशान्ति और अराजकता की स्थिति है। जहाँदारशाह का कैद हो जाना और फर्रुखसियर का दिल्ली पहुँचकर जहाँदारशाह को मारने वाले जुलफिकारखाँ को दण्डित करके स्वयं दिल्ली की गद्दी पर आरूढ़ हो जाना ही "जंगनामे" की कथावस्तु है। जहाँदारशाह और फर्रुखसियर का भी युद्ध हुआ था। फर्रुखसियर का राजत्व-काल का विस्तारपूर्वक "जगनामे" में वर्णन है। श्रीधर को

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "चौपट चपेट", पृ० १८, सन् १६१८ का संस्करण।

सम्पादक ने सुकवि बतलाया था। इस ग्रन्थ में कई प्रसंगों का वर्णन है तथा अनेक कविताओं का भी इस प्रति में संग्रह है। कहीं राग एवं रागनियाँ हैं तो कहीं नायिका-भेद का वर्णन है, कहीं फर्रुखसियर का जंगनामा है और कहीं उस समय के अमीर, राज्य-कर्मचारियों तथा राजाओं की प्रशंसा में कविताएँ हैं। राधाकृष्णदास ने तो इस श्रीधर कवि के सम्बन्ध में कहा है कि यह "बड़ा मंगन और खुशामदी था और लोगों की बड़ाई गा गा कर कविता करते फिरने का इसका व्यवसाय था।"[1]

इस ग्रन्थ के सम्पादन में सम्पादकों को साहित्य की उपयोगिता परिलक्षित हुई है, जैसा उन्होंने स्वयं कहा है—'कुछ यह भी सम्भव है कि युद्धारम्भ से कुछ पहले ही शुभ मुहूर्त में यात्रा की हो और उसी का वर्णन किया हो परन्तु ग्रन्थवर्णन से यह स्पष्ट है कि कवि स्वयं आँखोंदेखी घटना कहता है।"[2]

फर्रुखसियर का "जंगनामा" तो फारसी में मौलिक रूप से रचा गया है और अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। श्रीधर कवि ने इसे हिन्दी में रचा और किशोरीलाल गोस्वामी ने इसका सम्पादन किया।

"कपिल सूत्रम" तथा 'सन्ध्या प्रयोग" जैसी उपलब्ध रचनाएँ गोस्वामीजी ने संस्कृत देवभाषा में रचीं। "कपिल सूत्रम" का प्रकाशन सन् १६१५ में प्रथम बार सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से हुआ। गोस्वामी किशोरीलाल ने महर्षि कपिलदेव-प्रणीत सूत्रों की कारिका तथा भावार्थ सहित व्याख्या की है। बोध के लिए सांख्य-तत्वों का भी वर्णन है। पुरुष, प्रवृत्तियाँ, विकार, त्रिगुण, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, देहस्थ वायु, अविद्या, नवधा सन्तोष, आठों सिद्धियाँ, दसों मौलिक पदार्थ की व्याख्या हिन्दी में अर्थसहित की है।

"सन्ध्या प्रयोग" भी भाषा-प्रयोग सहित किशोरीलाल निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य ने रचा जिसका प्रकाशन सम्वत् १६७२ में प्रथम बार श्री सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन से हुआ। इसे संस्कृत से हिन्दी में किशोरीलाल गोस्वामी ने संकलित और सम्पादित किया है। 'सन्ध्या उपासना' की विधियाँ इसमें वर्णित हैं। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर स्नान करना, शौच, स्नान का मंत्र, आसन पर बैठकर जल छिड़क कर सन्ध्या के तीन मंत्रों—'केशवाय नमः,' 'नारायणाय नमः,' 'माधवाय नमः.' का जाप करना, तीन कुश लेकर ओंकार के सहित गायत्री मन्त्र से चोटी में तीन गाँठें लगाना और विधिपूर्वक आचमन करना, इस पुस्तक में वर्णित है। संस्कृत की उक्तियों तथा हिन्दी भाषा में उनकी व्याख्या गोस्वामीजी ने की है।

"मनोरमा", "सुधा", "ब्राह्मण", "प्रदीप" इत्यादि मासिक पत्रों में भी समय

१. किशोरीलाल गोस्वामी : राधाकृष्णदास द्वारा सम्पादित सम्पादकीय "जंगनामा", पृ० २१।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : राधाकृष्णदास द्वारा सम्पादित सम्पादकीय "जंगनामा", पृ० २४।

निकाल कर गोस्वामीजी लेख लिखा करते थे। सन् १६२८ की अप्रैल मास की "मनोरमा" नामक पत्रिका में जो बैलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ करती थी, गोस्वामीजी का अन्तिम लेख प्राप्त हुआ है, जिसका शीर्षक है "विवाह-विभ्राट", जिसके आधार पर गोस्वामीजी की गद्य और पद्य दोनों में ही निपुणता दिखाई देती है। "विवाह विभ्राट" भी एक प्रकार का व्यंग्यपूर्ण प्रसंग है जिसमें लाला मलूकचन्द अपने आप को 'साठे में भी पाठे' सोचते हैं। वृद्ध होकर भी नवयुवती बाला से पुनः विवाह करने का स्वप्न देखते हैं। लेखक के हृदय में समाज-सुधार की भावना लहरा रही है। लाला साहेब के घर में चार नवयुवक पुत्र, चार नवयुवती पुत्रियाँ, भरापूरा समूह—फिर भी पाँच हजार में एक षोडशी शान्ता का अपने विवाह के लिए सौदा तय करना, यद्यपि उसका विवाह एक सुन्दर युवक सत्यव्रत, बी० ए० से पहले ही तय हो चुका था, पर मलूकचन्द के प्रयत्नों से शान्ता का पिता कुड़मल तैयार हो गया। अपनी धर्मपत्नी का त्रैमासिक श्राद्ध करके निलज्ज मलूकचन्द विवाह की तैयारी करने लगे। समाज में चारों ओर से उनकी भर्त्सना होने लगी। उन्हें लोग मार्ग चलते व्यंग्य सुनाने लगे, फिर भी एक दिन शान्ता का विवाह मलूकचन्द से चाँदी की जूती के बल पर हो गया, पर प्रथम रात्रि को ही शान्ता ने तड़ातड़ जूतों का प्रसाद दिया जिससे मलूकचन्द घबरा गये। अब यह बात नगर में बिजली की तरह फैल गयी। सत्यव्रत के एक साथी ने उसकी बहुत मदद की और कुड़मल का मलूकचन्द से झगड़ा दूर करवाया। फिर शान्ता का विवाह उसके मनचाहे वर सत्यव्रत से विधिपूर्वक हो गया। लाला कुड़मल को रुपये वापिस लौटाने पड़े और मलूकचन्द के चारों पुत्रों ने भी कुड़मल का साथ दिया। मलूकचन्द को वृद्धावस्था में अपमानित होना पड़ा। उन्हें शिक्षा देने के लिए एक नाटक खेला गया और वृद्ध विवाह के दुष्परिणाम बतलाये गये, जिसके फलस्वरूप उन्होंने खाट पकड़ ली और इस दुख से मौत ने ही उन्हें छुटकारा दिलाया। अपने कार्यों का उन्हें फल मिला—शान्ता और सत्यव्रत सुखी हुए। उसने एम० ए० भी पास कर लिया। इस रचना का निर्माण करके गोस्वामीजी ने समाज के सामने अपना सुधारवादी दृष्टिकोण रखा है और वृद्ध-विवाह के दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है तथा बतलाया है कि अबला कहलाने वाली नारी भी आपत्ति के समय सबला हो जाती है और अपनी रक्षा भली-भाँति कर सकती है। नारी-समस्याओं पर भी प्रत्यक्ष रूप से लेखक ने पर्याप्त प्रकाश अपनी रचनाओं में डाला है।

'जीवन चरित्र' की ओर भी उनका ध्यान गया और "हरिश्चन्द्र हृदय अथवा भारतेन्दु भारती" नामक काव्य-पुस्तक किशोरीलाल ने रची, जो छबीलेलाल गोस्वामी द्वारा प्रकाशित हुई तथा पचदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, देहरादून के प्रतिनिधियों को सम्वत् १९९१ में सादर समर्पित की गयी।

"भारतेन्दु भारती" के आधार पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की माता का नाम पार्वती और पिता का नाम गिरधरदास था। सम्वत् १९०७ में भारतेन्दु का जन्म

माना गया है। उनके द्वारा 'हरिश्चन्द्र मैगजीन", "कविवचन सुधा", "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" और "बाल बोधिनी" नामक चार पत्र निकाल गये तथा उनके द्वारा समस्त रचे हुए ग्रन्थों की सूची इस 'जीवन-चरित्र' में प्राप्त हो जाती है। लेखक ने इस जीवनी के साथ अपना नाम जोड़ा है—

"अति पावनि सब सोक नसावनि, जन मन भावनि
छवि छावनि छिनि, रसिक किसोरी मंगल गावति ।।
नेह-निभावनि-महामूढ़ता सूल मिटावनि
हिय हरखावति, रसिकन को रस पान करावनि
यह कहो जीवनी जगमगी, कविवर हरिचन्द की
सुभ रहैं दया जा पर सदा, श्री राधा नद नँद की"[1]

इनकी विद्वत्ता को पूर्ण मान्यता प्रदान करने की दृष्टि से अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इक्कीसवें अधिवेशन, झाँसी में किशोरीलाल २८ दिसम्बर १९३१ को सभापति बनाये गये। अध्यक्षीय मंच से जो सभापति का भाषण आपने दिया, उसकी प्रत्येक पंक्ति में आपकी विद्वत्ता परिलक्षित हो रही है। भाषण का प्रारम्भ ही पाण्डित्य का द्योतक है और गोस्वामीजी के पद्य और गद्य के प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करता है। अध्यक्षीय भाषण की भाषा विद्वत्ता से पूर्ण शुद्ध तथा प्रचलित हिन्दी है, जिसका वर्ण्य-विषय हिन्दी तथा हिन्दी साहित्य की जग में प्रतिष्ठा करना और कराना है। हिन्दी भाषा के पक्ष में उनका मत इस प्रकार था—"हिन्दी के लिए यह कहना कि यह अमुक भाषा अथवा भाषाओं से निकली, नितान्त भ्रमात्मक और हास्यास्पद है। एक व्यक्ति अपने शैशव, यौवन, प्रौढ़ और वार्धक्य अवस्थाओं में जिस प्रकार रूपान्तरित होता रहता है, उसी प्रकार संस्कृत भाषा भी रूपान्तरित होकर अपने राष्ट्रीय आसन पर हिन्दी के रूप में समासीन है।"[2]

इस भाषण के द्वारा प्रकट होता है कि गोस्वामीजी को इतिहास, भूगोल तथा संस्कृत और अन्य भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान था। हिन्दी साहित्य का इतिहास तो उन्हें मुखाग्र सा हो गया था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यों के वे सदैव प्रशंसक रहे। इस भाषण में हिन्दी-सेवियों को हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति और उसे आगे बढ़ाने के लिए गोस्वामीजी ने कई सुझाव दिये हैं, जैसे सेठ-साहूकार, राजा-महाराजा, जमींदार, धनवान वर्ग यदि थोड़ा त्याग करने को तैयार हो जावें तो हिन्दी की सेवा वास्तव में हो जावेगी। सम्मेलन के लिए भी नरेशों का संरक्षण प्राप्त करने का गोस्वामीजी ने सुझाव दिया है। जबलपुर के सेठ गोविन्ददास का हिन्दी-

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "भारतेन्दु भारती", पृ० १३।
२. किशोरीलाल गोस्वामी का "हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पद से अध्यक्षीय भाषण", २८ दिसम्बर १९३१, पृ० ४।

प्रेम और हिन्दी के प्रचार की लगन को गोस्वामीजी ने सराहा है। सम्मेलन के लिए मुख्य कार्य गोस्वामीजी ने 'नागरी प्रचार' का ही रखा है। "सम्मेलन के मुख्य कार्य *नागरी लिपि विस्तार और हिन्दी भाषा-प्रसार होने चाहिए एवं पुस्तक प्रकाशन और कला-कौशल-संरक्षण गौण।* साथ ही सम्मेलन को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिष्ठित संस्थाओं अथवा जिम्मेदार व्यक्तियों के द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास रूप में जो कुछ कहा जाय, वह व्यक्तिगत आक्रमण और पक्षपात के रूप में न होने पावे, साथ ही अरुचिकर एवं अश्लील साहित्य की बाढ़ भी रोकी जावे।"[1]

कविता के विषय में आपने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—"कविता किस भाषा में हो, यह कवि की इच्छा पर निर्भर रहे, तुकान्त अतुकान्त की उसे स्वाधीनता हो, पिंगल आदि के बन्धनों से यह जकड़ी जावे और भाव व्यंजना की उसे पूर्ण स्वतन्त्रता हो।"[2]

यह अध्यक्षीय भाषण चौबीस पृष्ठों का था, जो पण्डित अयोध्याप्रसाद शर्मा के प्रयत्नों से स्वाधीन प्रेस, झाँसी में प्रकाशित हुआ। गोस्वामीजी का साहित्यिक हृदय अत्यन्त भावुक और चिन्तनशील था। वे जो कुछ कहते थे, उसे अत्यन्त मनन और चिन्तन के पश्चात् प्रकट किया करते थे। हिन्दू धर्म और संस्कृति के अटूट भक्त होते हुए भी उन्होंने साहित्य के भविष्य की रूपरेखा पहले ही निश्चित कर दी थी। गोस्वामी किशोरीलाल ने हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों के प्रणयन में अपनी रुचि दिखलाई है तथा अपनी लेखनी से उस महत्तर कार्य को करके अपना पाण्डित्य स्थापित किया है। साहित्य का कोई भी कोना उनसे अछूता नहीं छूटा है, पर 'उपन्यास' अंग उन्हें इतना प्रिय लगा है कि वे वहीं पर अपना घर बनाकर बैठ गये हैं। उनकी लेखनी से उपन्यासों की धारावाहिक सरिता प्रवाहित होने लगी थी, जिसका मधुर जल उनके जीवन-काल में कभी सूखने नहीं पाया। पुराने पत्र तथा पत्रिकाओं में उनके द्वारा रचे गये विभिन्न लेख प्राप्त होते हैं, जिनमें भारतेन्दुयुगीन समस्याओं पर विचार किया गया है। गोस्वामीजी की लेखनी में सदैव गतिशीलता रही है। वे निरन्तर लेखन-कार्य में जुटे रहे, यही उनके जीवन का लक्ष्य तथा भौतिक जगजीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बन गया था। उनके हृदय ने कभी किसी की पराधीनता स्वीकार नहीं की। अपने स्वच्छन्द विचारों का विश्लेषण उन्होंने अपनी रचनाओं में निर्भीक होकर किया है। गोस्वामीजी अपने युग के प्रमुख विधायक साहित्यकार थे, जिन्होंने युगद्रष्टा के रूप में साहित्य को विभिन्न धाराओं को प्रवहमान बनाया है। जीवन में रस की सृष्टि की है और रस को ही काव्य का मूल लक्ष्य

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी का "अध्यक्षीय भाषण", २८ दिसम्बर, सन् १९३१, पृ० २१।

२. किशोरीलाल गोस्वामी का "अध्यक्षीय भाषण", २८ दिसम्बर, सन् १९३१, पृ० १६।

बतलाया है। लौकिक रस का उपभोग करके ही जीव अलौकिक पथ की ओर बढ़ता है, लेखक ने इसी भौतिक जगत के कर्मों से देवलोक की सृष्टि की है।

जीवन का मूल मन्त्र 'प्रेम' है, चाहे वह लौकिक हो अथवा दैविक, पर इसी के माध्यम से भक्त भगवान की प्राप्ति करता है, प्रमी अपनी प्रेमिका से भेंट करता है और ससार के समस्त सुखो का मूल 'प्रेम' है। गोस्वामीजी की रचनाओं की रीढ़ यही 'प्रेम-बेलि' है, जो समस्त साहित्य में फली-फूली है। भौतिक प्रेम लीलाओं के सच्चे तथा यथार्थ चित्र गोस्वामीजी ने चित्रित किये हैं जिनसे पाठकों की जिज्ञासा को तुष्टि प्राप्त होती है, पर इस प्रकार के साहित्य को निम्न कोटि का मान लेना सरासर अज्ञानता होगी। युगीन जनरुचि तथा माँग के आधार पर ही प्रत्येक लेखक साहित्य का निर्माण करता है। गोस्वामी किशोरीलाल ने भी प्रेम तथा वासनाओं के यदि सच्चे चित्र उतारे हैं तो उसका मूल कारण जन-जीवन की माँग थी। लेखक के लिए प्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने साहित्य के लिए पाठकों का समाज तैयार करे और गोस्वामीजी के उपन्यास तो छपते-छपते ही बिक जाते थे। यह उनकी प्रसिद्धि का स्पष्ट संकेत है। गोस्वामीजी में अपूर्व आत्मविश्वास की भावना थी, जिसके फलस्वरूप उन्हें साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त हुई है। कथा, कहानी, नाटक, चम्पू, कवित्त अथवा गीतों की रचना में उनकी पूर्ण प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है।

एकादश अध्याय

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे गोस्वामीजी का अपूर्व योगदान

गोस्वामी किशारीलाल हिन्दी साहित्य-ससार मे उस ध्रुव-नक्षत्र के समान हैं जो आकाश म सन्ध्या की गाधूलि मे सर्वप्रथम उदित होता है और अपने प्रकाश से समार को जगमगाता है तथा जब अन्य नक्षत्र एक के बाद एक उसी स्थान पर उदित होने लगते हैं तो हृदय-जगत के प्राणी उस प्रथम उदित नक्षत्र को भूल जाते हैं तथा अन्य नक्षत्रा की ओर देखने में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि अपने ज्योतिपुंज मार्ग-द्रष्टा को भूल जाते हैं, पर यह नक्षत्र ता जहाँ पर सुशोभित है, वहीं पर जगमगाता रहेगा। उसकी अमर ज्योति भुलाने पर भी नहीं भुलाई जा सकेगी। हो सकता है कुछ दिना तक विस्मृति के गर्भ मे वह पडी रहे, पर कालचक्र तो सदैव गतिशील है। उसकी धुरी पर चढकर फिर से वही विस्मृति-कण स्मृति-पटल पर ज्योतिर्मान होने लगते हैं। स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् ता देश का महान् कर्त्तव्य हो जाता है कि इन प्राचीन माहित्य के कर्णधारों का स्मरण करें। उनकी महान् प्रतिभा, विधायक शक्ति अमर रचनाएँ तथा हिन्दी साहित्य में उनके अपूर्व योगदान का अन्वेषण करें, विशेषत हिन्दी जगत के साहित्यकारों का तो यह प्रथम लक्ष्य होना चाहिए कि वे अपने अगुआ पूर्वजों की रचनाओं को खोज खोज कर प्रकाश मे लावें। कहीं ऐसा न हो कि काल के गर्भ में वे सदा के लिए विलीन हो जावें। जो है सो तो रहेगा ही और यह पीढी उसके मर्म मे आवेगी ही और चेष्टा करने पर भी नहीं भूल सकेगी क्योंकि जो है, वह तो हमारे चारों ओर है तथा हमारे जीवन का अविच्छिन्न अग बन गया है। हमारी समस्याएँ उसकी समस्याएँ हैं, हमारे उत्तर उसके जीवन के जटिल प्रश्नों के उत्तर हैं। वह हमारे जीवन के पग-पग पर हमारे साथ गतिशील है। पर जो था, उसे हम कैसे स्मरण करें? पूर्ण लगन के साथ निष्ठाभावना में पग कर ही हम यथार्थ खोज कर पावेंगे। मूल को खोजकर पाना वर्तमान साहित्यकार की सच्ची सफलता होगी। उस काल का जन-जीवन, तब की सास्कृतिक परम्पराएँ, धार्मिक निष्ठाएँ, रीति-रिवाजों, सामाजिक समस्याएँ, समाज मे मानव-सम्बन्धी धारणाएँ, राजनैतिक स्थिति, साहित्यिक गतिविधियाँ, इन सब प्रश्नों को खोज लेना और उसके घेरे मे उस युग के साहित्यकार का परीक्षण

करना ही किसी भी समीक्षक की वास्तविक कसौटी समझी जावेगी। यदि कोई भी अन्वेषक आज की तुला पर उस युग के साहित्यकार को तौलेगा तो यह उसकी महान् भूल होगी और उस साहित्यकार के साथ महान् अन्याय हो जावेगा। जिस स्थान और काल की वह वस्तु है, उसी समय की तुला पर तौलने एवं उसी युग की कसौटी पर कसने से उस युग के निर्माता का मूल्य वास्तव में आँका जा सकेगा। गोस्वामी किशोरीलाल के साथ भी अभी तक यही हुआ है। जिन समीक्षकों ने उनका मूल्यांकन किया है, वे आधुनिक युगीन मान्यताओं के घेरे में उन्हें बिठाकर उनका मूल्य आँकते हैं, अतएव गोस्वामीजी के विषय में जो न कहना चाहिए, वह भी कह डालते हैं। आज तक गोस्वामीजी की रचनाओं का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

आधुनिक साहित्यकार अपने अटूट परिश्रम के बाद भी सुखद जीवन-यापन नहीं कर पाता है और गोस्वामीजी ने अपनी रचनाओं की बिक्री तथा प्रकाशन से इतना रुपया उपार्जन किया था कि उनकी गिनती बनारस के प्रसिद्ध रईसों में होती थी। फिर भी आज का उपन्यास-जगत उनकी रचनाओं से अपरिचित है।

महामनीषी गोस्वामीजी ने अपने विषय में स्वयं कभी कुछ नहीं कहा है। यत्र-तत्र बिखरे हुए हीरे के कण एकत्रित करने से लेखक को किंचित झाँकी सी प्राप्त हो जाती है। साहित्य सम्मेलन के इक्कीसवें अधिवेशन के समय सभापति के स्थान से उन्होंने अपने विषय में स्वयं कहा है—

"जो व्यक्ति गत ५५ वर्षों से सरस्वती के एकान्त मन्दिर में बैठा हुआ अहर्निश राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-लिपि के द्वारा जगद्गुरू भारत खण्ड की यत्किंचित सेवा करता रहा हो और सार्वजनिक झंझटों से अपने को बचाता भी रहा हो, उसके लिए सम्मेलन का सभापतित्व किस स्टैण्डर्ड से प्रदान किया गया।"[1]

गोस्वामी किशोरीलाल ने निष्ठापूर्वक हिन्दी साहित्य की सेवा की थी। उन्होंने सब प्रकार की रचनाओं को जन्म दिया है, फिर भी उपन्यासकार के रूप में वे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। वे हिन्दी उपन्यास के मूल जन्मदाता थे, जिन्होंने विश्वासपूर्वक प्रथम बार हिन्दी साहित्य में 'उपन्यास' की आकृति खींची थी। उन्होंने उपन्यास की व्याख्या की और आख्यायिका तथा उपन्यास दोनों का परस्पर-सम्बन्ध हिन्दी जगत को बतलाया। गोस्वामीजी ने पैंसठ उपन्यास लिखे, जो काल के गर्त में खो से गये हैं और आज अत्यन्त कठिनाई से थोड़े से उपन्यास प्राप्त हो पाये हैं। वृन्दावन, मथुरा और काशी की खोजों के फलस्वरूप गोस्वामीजी का जो साहित्य मिल सका है, उसके आधार पर अपना मत निर्धारित करना सरल हो जाता है कि गोस्वामीजी के मतानुसार 'उपन्यासों' की मूल जन्म-भूमि भारत ही है, विदेश नहीं। गोस्वामीजी

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "अध्यक्षीय भाषण", २८ दिसम्बर सन् १६३१, पृ० १।

ने हिन्दी उपन्यासों को प्राचीन परिपाटी को आगे बढ़ाया तथा लोकप्रिय कराया है। प्राचीन परिपाटी के उपन्यासकारों में मूल रूप से दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं—

प्रथम प्रकार के वे उपन्यास हैं जिनमें मुख्य रूप से सुधारात्मक और नीति-प्रधान ध्येय है। दूसरे प्रकार में रोमांस, जासूसी, तिलस्मी तथा कथित ऐतिहासिक एवं विलासपूर्ण प्रवृत्तियाँ हैं। प्रथम परिपाटी में बाबू देवकीनन्दन खत्री का योगदान है तो दूसरी परिपाटी के कर्णधार पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें प्रथम साहित्यिक उपन्यासकार कहा है—

"उपन्यासों का ढेर लगा देने वाले दूसरे मौलिक उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी (जन्म सं० १६ २—मृत्यु सं० १९८९) हैं, जिनकी रचनाएँ साहित्यकोटि में आती हैं। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा-बहुत चरित्र-चित्रण भी अवश्य पाया जाता है। गोस्वामीजी संस्कृत के अच्छे जानकार, साहित्य के मर्मज्ञ तथा हिन्दी के पुराने कवि और लेखक थे। सम्वत् १९५५ में उन्होंने 'उपन्यास' नामक पत्र निकाला और इस द्वितीय उत्थान काल के भीतर ६५ छोटे बड़े उपन्यास लिख कर प्रकाशित किये। अतः साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए। द्वितीय उत्थान काल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर वे वास्तव में उपन्यासकार न थे और चीजें लिखते लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पड़ते थे। पर गोस्वामीजी वहीं घर कर बैठ गये। एक क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुन लिया और उसी में रम गये।"[1]

उनके उपन्यास का आधार प्रेम का अखण्ड स्रोत है, जो उस समय तक प्रवाहित होता रहेगा, जब तक सृष्टि का क्रम चल रहा है। गोस्वामीजी ने स्वयं 'लावण्यमयी' की भूमिका में अपने विचार प्रकट किये हैं, जब वे आरा में आर्य पुस्तकालय में सम्पादक की स्थिति में कार्य कर रहे थे—

"साहित्य जगत का उपन्यास प्राण है, सब समय नाटक सकल विषयों को विशद् रूप से प्रकाश नहीं कर सकते, अतएव आदि काल से कवियों ने हृदयगत उद्गार और सांसारिक समस्त भावों का प्रत्यक्ष दिखलाने के लिए काव्य के मुख्यतम अंग 'उपन्यास' की सृष्टि की है। कौतुकपूर्ण, ज्ञानपूर्ण, आमोदपूर्ण, सामाजिक और लौकिकपूर्ण साहित्य-मय भावों से पूर्ण तथा अनेक विविध विषय विभूषित उपन्यास ही है। प्रेम का रत्नाकर, प्रेम का विकसित प्रसून, प्रीति की विकसित लता, प्रणय की ज्वलन्त छवि, चाह का अपूर्व खेल, युवक-युवती के जीवन के अंग्प्रत्यंग, यौवन का लीला, अनिर्वचनीय आनन्द का

१. रामचन्द्र शुक्ल "हिन्दी साहित्य का इतिहास", सम्वत् १९९९ का संस्करण, पृ० ५५१-५५२।

यथार्थ चित्र, प्रेमसागर से यौवन वायु विचारित तरंग, मन्द मन्द हिल्लोरित तरंगाघात, मनोमय मधुर प्रकृति लीला प्राकृतिक लहरी 'उपन्यास' ही है।"[1]

पूर्व-प्रेमचन्द युग मे जो स्थान किशोरीलाल का उपन्यास के क्षेत्र मे है, वही नाटक के क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का है। गोस्वामीजी के उपन्यासो मे समाज के सजीव चित्र देखने को मिलते हैं। उनकी अधिकांश रचनाएँ साहित्यिक हैं। उन्होंने प्रेम-तत्व का समावेश करके हिन्दी उपन्यासो का बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाने का प्रयास किया और सफल भी हुए हैं।

गोपालप्रसाद व्यास ने 'हिन्दी उपन्यासो की प्रवृत्तिगत विकास" नामक लेख में लिखा है—"प्रेम अन्तर की वस्तु है। गोस्वामीजी के उपन्यास हिन्दी मे पहले अन्तर्मुखी उपन्यासकार कहे जा सकते हैं।"[2]

उन्होंने साहित्य समाज की बहिर्मुखी वृत्ति को भी सुरक्षित रखा और अन्तर्मुखी वृत्तियो का अधिक चित्रण करने के लिए मानव की सहज एवं स्वाभाविक मनोवृत्ति प्रेम-तत्व का विस्तृत चित्रण किया है। चरित्र-चित्रण में भी उन्हें यथेष्ठ सफलता मिली है। हिन्दी मे सर वाल्टर स्कॉट की शैली पर उपन्यास लिखने वालो में किशोरीलाल गोस्वामी का प्रथम स्थान है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे किशोरीलाल गोस्वामी का उदय वास्तव में एक चमत्कारपूर्ण विशेष घटना थी। जिस प्रकार आधुनिक युग मे सबसे अधिक महत्व उपन्यासों को दिया जाता है, प्राचीन काल में उन्हें हीन कोटि के साहित्य के रूप मे देखा जाता था। मुद्रण-कला का प्रचार होने के उपरान्त छापेखाना के मालिक सस्ते लेखको के द्वारा अश्लील उपन्यास लिखवाते थे, जिन्होंने जनता की साहित्यिक रुचि का परिष्कार करने की अपेक्षा अपने नाटको मे कुवासनाओ को भर दिया था।

विपिनबिहारी श्रीवास्तव ने अपने "हिन्दी मे मौलिक नाटको की आवश्यकता" शीर्षक लेख मे लिखा है—"एक समय वह था जब हिन्दी मे उपन्यासो की बडी धूम मच रही थी। कोई भी कलम चला बैठता और एक मनगढ़न्त उपन्यास तैयार करके अपने को लेखकों के वर्ग मे समझने लगता था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी मे अश्लील, अयोग्य और निन्दनीय उपन्यासो का भण्डार बढ़ गया। उपन्यासो की ओर बढ़ती हुई अभिरुचि को देखकर कुछ प्रेसों ने तो यहाँ तक किया कि कई मियाँ जी और भैया जी को पाँच रुपये के वेतन पर उपन्यास-लेखकों के रूप मे अपने यहाँ नौकर रख लिया। फिर क्या? रोज एक नवीन, एक उपन्यास तैयार होकर साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण करने लगा। 'किस्सा साढे तीन यार', 'नौलखा हार', 'रात की

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी: "लावण्यमयी" के आभार का प्रथम पृष्ठ, भारतजीवन प्रेस, काशी से सन् १८९१ में प्रकाशित।
२. "साहित्य सन्देश", उपन्यास अंक, अक्टूबर-नवम्बर, सन् १९४०, पृ० ७२।

दो दो बातें' इत्यादि पुस्तकें जिनका नाम लेने में भी हिचकिचाता है, बड़ी सजधज के साथ इन प्रेसों से छप कर निकलने लगीं। यह देख कर कुछ दूसरे वर्ग के लेखकों का ध्यान भी साहित्य क्षेत्र में टाँग अड़ाने के लिए आकर्षित हुआ और उन्होंने भी हिन्दी साहित्य के पक्ष में लम्बी-चौड़ी भूमिका देते हुए 'चोर से बढ़ कर चोर', 'चाँद का टुकड़ा', 'दरोगा कैद से छूटे', 'चाचा का खून', 'डाकू का पैर', 'लेखक का सिर,' इत्यादि के समान अनेक जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी कहानियाँ लिख कर उपन्यास का बाजार गर्म कर दिया।''[3]

गोस्वामी किशोरीलाल निर्द्वन्द्व प्रकार के कलाकार थे। उनकी तुलना किसी अन्य उपन्यासकार से करना विशेष लाभप्रद नहीं जान पड़ती है। प्रत्येक लेखक का अपना रहन-सहन होता है, अपनी धार्मिक तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ होती हैं और अपने विचार तथा दृष्टिकोण होते हैं। गोस्वामीजी में स्वच्छन्दता की भावना जड़ जमाए हुई थी। साहित्य में जो विभिन्न धाराएँ दिखाई देती हैं, उनका मूल आधार लेखकों के जीवन की विभिन्न विचार-प्रणालियाँ हैं, अतः तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा किसी भी लेखक का मूल्यांकन करना उचित नहीं जान पड़ता। प्रत्येक लेखक की प्रवृत्तियाँ और उसकी परिस्थितियाँ सदैव स्वतन्त्र हैं। उन्हीं के चक्र में गतिशील होकर वह कल्पना के जगत में विचरण करता है। गोस्वामीजी ने जन-जीवन के अनुभव और प्रचलित परिपाटियों का पर्यवेक्षण करके तथा उसमें अपनी कल्पना-शक्ति का योग देकर महान् साहित्य का सृजन किया है। गोस्वामीजी यथार्थवादी साहित्यकार थे। समाज की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, जातीय तथा साहित्यिक समस्याओं का यथावत् चित्रण उनकी कृतियों में उपलब्ध होता है। उन्होंने यथार्थ पर पर्दा डालना उचित नहीं समझा। वे यदि यथार्थ पर पर्दा डाल कर साहित्य सृजन करते तो शायद गोस्वामीजी की गणना हिन्दी के उच्च आदर्शवादी कलाकारों के साथ होती, पर यथार्थ को सुधारने के लिए उन्होंने यथार्थ का नग्न चित्र उतारना आवश्यक समझा है। यदि 'चपला' या 'माधवी' काम-पीड़ित नारियाँ हैं, तो लेखक ने उनकी वासनाओं का सजीव चित्रण किया है। उसमें झूँठी आड़ तथा दिखावा नहीं है। वृत्तियों का दमन नहीं दिखाया गया है। इस यथार्थ चित्रण के ही कारण गोस्वामीजी की रचनाओं में आलोचकों को अश्लील तथा वासना-पूर्ण चित्र दिखाई देने लगते हैं। जीवन का जो नग्न सत्य है, उसका जैसा का तैसा अंकन गोस्वामीजी ने किया है।

हम देखेंगे कि गोस्वामी किशोरीलालजी का युग नाना प्रकार की धर-पकड़ का युग था। चारों ओर एक अनोखा उद्भ्रान्त वातावरण छाया हुआ था। युगीन जन-समाज को तो चार भागों में हम बाँट लेते हैं—एक तो राजा-महाराजाओं का

3. एकादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन (कलकत्ता), सम्वत् १८०३—कार्य विवरण, भाग २, पृ० ६४।

वर्ग, जो अपनी सम्पन्नता के कारण अपने में ही सीमित रहता था। दूसरा वर्ग जमींदारों तथा पूंजीपतियों का है, जो भोग विलासों में लीन रहा करते थे। तीसरी श्रेणी नवशिक्षित और समाज-सुधारकों की थी, जो कार्य भी करना चाहते थे पर समाज के प्रकोप से भयभीत भी रहते थे और चौथा वर्ग किसान, मजदूर, कारीगर, सेवकों तथा चापलूसों का था, जो अपना जीवन धनवानों की सेवा-चाकरी में ही व्यतीत किया करते थे। तीसरी श्रेणी के जन-वर्ग ने अपनी कर्मण्यता का परिचय दिया है। इस समय पूर्वी और पाश्चात्य संस्कृति का संधिकाल उपस्थित हुआ है। एक अपूर्व हलचल सी मच गयी थी। युग और समाज में बड़ी कशमकश थी। एक ओर यदि समाज में कुछ आधुनिक स्वतन्त्र विचारों को जन्म मिला है तो दूसरी ओर पग-पग पर प्रायश्चित का विधान भी था क्योंकि अगुआ लोगों की आत्मा अभी भी प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों से भयभीत थी, अतः प्राचीन और अर्वाचीन विचारधाराओं में मेल बैठाने की भरपूर चेष्टा युग के महान् कर्णधारों के द्वारा की जा रही थी। नवयुग के उदय के साथ ही विचार-स्वातन्त्र्य भी दिखाई दिया है। यद्यपि साहित्य में बहुत अधिक पुरानी परिपाटी की विचारधाराएं प्रचलित थीं, फिर भी राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों की छाप किशोरीलाल गोस्वामी पर पर्याप्त पड़ी हुई दिखाई देती है।

प्रत्येक कलाकार के लिए युगीन विचारधाराओं से अछूता रहना अत्यन्त कठिन होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हिन्दी लेखकों और कवियों पर इस पुनर्जागरण का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देने लगा। हिन्दी के प्रथम उत्थान का यह पूर्व-काल था, जिस समय साहित्य उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में नहीं मिला जा सकता है। द्वितीय उत्थान सन् १६०० से मानना पड़ेगा जिस समय "सरस्वती" पत्रिका का जन्म हुआ है।

डॉ० सत्येन्द्र ने इस काल के लेखकों में निम्नलिखित साहित्यकारों को ग्रहण किया है—"द्वितीय उत्थान में प्रथम उत्थान के पटेबाज इनमें कुछ पुराने युग के कर्णधार भी है। राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्णदास, मुंशी देवीप्रसाद के नामों से ही भारतेन्दु का स्मरण हो जाता है। इस प्रथम उत्थान में इनके अतिरिक्त श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, गदाधरसिंह, रामशंकर व्यास, गोपालराम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, अयोध्यासिंह उपाध्याय भी परिगणनीय हैं। बालकृष्ण भट्ट तथा बालमुकुन्द गुप्त और नाव-निर्माण के विशेष कर्णधार थे।"[1] इस युग के उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य नैतिक शिक्षा और मनोरंजन था, अतः कभी नीति-व्यवहार, आचरण और नैतिक धर्म, पूजा-पाठ की शिक्षा कथावस्तु में निहित

१. डॉ० सत्येन्द्र : "प्रेमचन्द से पूर्व कहानी उपन्यास का इतिहास", 'नयी धारा', वर्ष २ अंक ३, जून सन् १६५१, पृ० ५४।

रहती थी, जिसकी व्याख्या के लिए समाज में से प्रमाण और साक्षियाँ एकत्रित करनी पड़ती हैं।

डॉ० सत्येन्द्र ने आगे कहा है—"हम सन् १६०० के लगभग आ पहुँचे। उपन्यासों की भरमार हो उठी। उसमें नये-नये उद्योग और प्रयोग भी होने लगे। किशोरीलाल गोस्वामी के कथानकों और उनके वर्णनों में वक्रिम का सा अन्तर्विवरण मिलता है, पर वह प्रकट होने में इतना चपल और रसिक हो गया है कि निम्न रुचि को रिझाने की सामग्री से ही परिपुष्ट लगने लगता है। यही कारण है कि साहित्य में विशिष्ट गम्भीरता और सात्विकता के मानने वाले विद्वान् किशोरीलाल को साहित्य के इतिहास में उपन्यासों के महान् लेखक बतलाते हुए भी श्लाघ्य नहीं समझते। कोई कोई तो उन्हें निकाल फेंकते हैं। नि:सन्देह गोस्वामीजी पर अंग्रेजी के रेनाल्ड्स नामक लेखक का प्रभाव पड़ा होगा। 'लन्दन रहस्य' की वीभत्स प्रमाधाराओं में उन्हें बेचने योग्य सामग्री मिली और एक महान् सा हृदयहारी तथा लखना का अधिकारी अपना आत्म-समर्पण कर बैठे। सन् १६०० में गोस्वामीजी 'सरस्वती' के सम्पादक थे। इस वर्ष से हिन्दी में गम्भीरता का समावेश होने लगा। उसकी रुचि और भावनाएँ परिमार्जन की ओर अग्रसर हुई और हिन्दी में कहानियाँ लिखने के उद्योग भी होने लगे।"[1]

डॉ० सत्येन्द्र के उपर्युक्त कथनानुसार गोस्वामीजी के द्वारा ही 'हिन्दी में गम्भीरता' का समावेश हुआ। पर यह सत्य है कि गोस्वामी की प्रतिभा पर जनरुचि का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। उनके कौतूहलवर्द्धन तथा रोमांचकारी उपन्यासों ने एक हलचल सी मचा दी, यहाँ तक कि ऐतिहासिक उपन्यासों में भी चरित्र तो उन्होंने इतिहास से ग्रहण कर लिया है, पर उसके जीवन का क्रम तथा कुत्सित प्रसंगों का विशद् वर्णन गोस्वामीजी ने युगीन माँग के अनुकूल किया है। उदाहरण के लिए—"रजिया" या "लखनऊ की कब्र" है। रजिया बेगम का एक गुलाम से प्रेम करना ऐतिहासिक सत्य है, पर रजिया और गुलाम के मध्य जो गुप्त प्रेम का निम्न स्तर गोस्वामीजी ने अपने उपन्यास में वर्णित किया है, उसमें कौतूहल और अद्भुत चमत्कारपूर्ण रंगीन घटनाएँ हैं। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में स्वयं ही "तारा" की भूमिका में कहा है—

"इसलिए हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को 'गौण' और अपनी कल्पना को 'मुख्य' रखा है और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार भी कर दिया है। इसलिए हमारे उपन्यास के प्रेमी पाठक अभिप्राय को भलीभाँति समझ लें कि यह 'उपन्यास' है, 'इतिहास' नहीं, यहाँ कल्पना का राज्य है, यथेष्ठ लिखित इतिहास का नहीं और इसमें आर्यों के यथार्थ गौरव का गुण कीर्तन है।"[2]

---

१. सत्येन्द्र : "प्रेमचन्द्र से पूर्व कहानी-उपन्यास का इतिहास", 'नयी धारा', वर्ष २ अंक ३, जून सन् १९५१, पृ० ५९-६०।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", तृतीय संस्करण के निवेदन से उद्धृत।

गोस्वामी किशोरीलाल ने बाबू देवकीनन्दन खत्री से पहले 'कुसुमकुमारी' की रचना की थी, किन्तु विपरीत परिस्थितियों के कारण इसका प्रकाशन सन् १९०१ से पहले नहीं हो सका, जबकि देवकीनन्दन खत्री की "चन्द्रकान्ता" का प्रकाशन सन् १८९१ में हो चुका था। केवल पुस्तक-प्रकाशन की दृष्टि से देवकीनन्दन खत्री किशोरीलाल से थोड़ा पहले प्रकाश में आ जाते हैं, पर रचना कौशल और उपन्यास-शिल्प की दृष्टि से किशोरीलाल देवकीनन्दन से बहुत पहले ही साहित्य के प्रांगण में उतर आये थे। डॉ० रामरतन भटनागर ने प्रेमचन्द को प्रत्यक्ष रूप से किशोरीलाल की धारा का परिपोषक बतलाया है। इससे गोस्वामीजी का महत्व बहुत स्पष्ट हो जाता है।

डॉ० रामरतन भटनागर ने लिखा है—'प्रेमचन्द से पहले हिन्दी उपन्यास में तीन धाराएँ बह रही थी जो क्रमशः इस प्रकार आईं—

(१) देवकीनन्दन के उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' के साथ तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास;

(२) किशोरीलाल गोस्वामी के साथ सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक प्रेम, रोमांचपूर्ण उपन्यास,

(३) गोपालराम गहमरी के साथ जासूसी पुलिस और साहसिक उपन्यास।

ये तीनों धाराएँ प्रेमचन्द के समय (सन् १९१६) तक साथ-साथ चलती रहीं और जब प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में 'सेवासदन' के साथ पदार्पण किया तो वे वास्तव में किशोरीलाल गोस्वामी के क्षेत्र में उतर रहे थे।'[1]

गोस्वामीजी की रचनाओं में कथा शिल्प का कौशल मनोरंजन के बीच उपलब्ध था, जिसका पूर्ण विकास प्रेमचन्द की रचनाओं में पाया गया। प्राचीन पीढ़ी के सभी समालोचकों ने गोस्वामी किशोरीलाल की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, पर अन्यतम युग बीत के पश्चात् समीक्षक यह कहने को विवश हो जाते हैं कि वे अपने युग की मान्यताओं तथा सीमाओं से बँधे हुए थे, फिर भी गोस्वामी किशोरीलाल को सर्वप्रथम हिन्दी का मौलिक कहानी लेखक तथा साहित्यिक उपन्यास लेखक होने का गौरव प्राप्त है। जून सन् १९०० में उनकी "इन्दुमती" कहानी सर्वप्रथम "सरस्वती" में प्रकाशित हुई, जिसे उन्होंने स्वयं लघु उपन्यास के नाम से मान्यता दी है। सर्वप्रथम उपन्यास "कुसुमकुमारी" उन्होंने रचा है। उसकी कथावस्तु सबसे पहले उनके मन-मस्तिष्क में साकार हुई। डॉ० श्रीकृष्णलाल की इस विषय में विचारधारा है—'इस ग्रन्थ की प्रेरणा उन्हें रीति कवियों से मिली, जिन्होंने अपने मुक्तक काव्यों के लिए नायिका भेद एक ऐसा विषय चुना, जिसका सम्बन्ध मूल रूप से नाटकों से ही था। किशोरीलाल स्वयं उसी परम्परा के कवि थे। उन्होंने नायिका-भेद तथा अन्य रीति-साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। इसलिए जब वे उपन्यास लिखने बैठे तब उन्हें

---

१. डॉ० रामरतन भटनागर : "प्रेमचन्द—एक अध्ययन," पृ० ३१८-३१६।

केवल एक सुसंगत प्रेम-कहानी की कल्पना करनी पड़ी और उसमें उन्होंने प्राचीन कवियों की परम्परानुसार प्रेम-सम्बन्धी विविध प्रसंगों को यथावसर अनेक अध्यायों में गद्यात्मक भाषा में जड़ दिया। उनके 'तारा', 'अंगूठी का नगीना' तथा अन्य उपन्यास हर्ष और राजशेखर के संस्कृत प्रेम-नाटकों का स्मरण दिलाते हैं। परम्परागत प्रेम, अभिसार, मान, परिहास इत्यादि इसमें भरे पड़े हैं।"[1]

गोस्वामीजी के पश्चात् के उपन्यासकारों ने संस्कृत के प्रेम-नाटकों और रीति-काव्य से प्रेरणा ग्रहण करना छोड़ दिया और उस समय के प्रचलित पारसी थियेटरों और उर्दू काव्यों की परिपाटी पर उपन्यास-रचना प्रारम्भ की। रामलाल वर्मा का "गुलबदन" उपन्यास तो उस समय के बाजार में हाथों-हाथ बिका और उसके कई संस्करण निकले, लेकिन गोस्वामी किशोरीलाल ने भारतवर्ष के सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास का अध्ययन किया था तथा उन्होंने देखा कि संस्कृत ही देवभाषा और वेदों की वाणी के रूप में पूजी जाती है, अतः उन्होंने भी अपने साहित्य-निर्माण के लिए संस्कृत साहित्य में से मूल स्रोत खोजा। वहीं उनको प्रेरणा का अखण्ड भण्डार प्राप्त हुआ। वहीं उन्हें अपने उपन्यासों के अवयव प्राप्त हुए हैं।

जनार्दनप्रसाद द्विज' ने भी "प्रेमचन्द की उपन्यास-कला" नामक पुस्तक में गोस्वामीजी के साहित्यिक योगदान के लिए अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं— "उपन्यासों का पर्वत खड़ा करने वाले दूसरे मौलिक उपन्यास-लेखक थे पंडित किशोरीलाल गोस्वामी। उनकी रचनाओं में साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव नहीं है किन्तु वह सौन्दर्य कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक चटकीला और कुप्रभावोत्पादक हो गया है। उनकी रस-संचार की प्रणाली कुछ कुछ अप्राकृतिक भावों और दृश्यों को भी अपने साथ रखती हुई सी दिख पड़ती है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने मौलिकता के नाते, हिन्दी के इस क्षेत्र में बड़ी मुस्तैदी से काम किया और उनमें उपन्यासकार होने की सच्ची क्षमता थी।"[2]

किशोरीलाल गोस्वामी ने युग और साहित्य का पूरा लाभ उठाया है। जो संस्कृत में था, उसे ग्रहण किया और अपना बना लिया, जो अंग्रेजी में था, उसको लेने में हिचकिचाहट नहीं दिखाई और जो उर्दू तथा फारसी साहित्य में था, उसको भी परखा तथा जिसका प्रभाव उनकी भाषा-शैली पर पड़ा है। जब उन्हें उर्दू लिखने का शौक हुआ तो उर्दू भी ऐसी-वैसी नहीं, "उर्दू-ए-मुअल्ला और संस्कृतप्रायः समासबहुला भाषा' है, जिसका उदाहरण "मल्लिकादेवी" में उपलब्ध हुआ। दोनों भाषाओं की रचना पर अपना पूरा अधिकार उन्होंने प्रकट किया है। गोस्वामीजी के युग में तटस्थता काम नहीं कर पाती एवं हिन्दी साहित्य की विभिन्न धाराओं के विकास के लिए यह

---

१. डॉ० श्रीकृष्णलाल : "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (सन् १६००-१६२५)", पृ० २७८।
२. जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' : "प्रेमचन्द की उपन्यास-कला," पृ० ८।

आवश्यक था कि प्राचीन पूर्वी साहित्य का मथन कर डाला जावे। गोस्वामीजी का साहित्यिक योगदान आँकने से पहले संक्षेप में एक बार फिर युग-विशेष पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक हो जाता है। देश और काल की परिस्थितियाँ सघर्षपूर्ण थीं। कुछ व्यक्ति और सस्थाएं इस हलचल में तल्लीन हो कर लगी हुई थीं। उदाहरण के लिए, 'कॉंग्रेस' नामक सस्था राजनैतिक जागृति के लिए भरसक प्रयत्न कर रही थी। यह प्रथम सुधारक-सस्था थी, तत्पश्चात् यह क्रान्तिकारी महासभा बन गयी। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर शासकों से इसने असहयोग करना प्रारम्भ कर दिया। दूसरी ओर, 'आर्यसमाज' का बोलबाला था। उसके सस्थापक स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व का प्रभाव इतना अटूट और अमिट था कि समस्त उत्तराखण्ड में यह सस्था सुधार-आन्दोलन को बड़ी तेजी से आगे बढ़ा रही थी शुद्धि-आन्दोलन, नारी-उद्धार, जीव और प्रकृति व स्त्री और पुरुष के समान अधिकार, आश्रम, वर्ण शिक्षा- गुरुकुल प्रणाली, मुसलमानों को हिन्दू बना लेना आदि सभी प्रतिक्रियावादी क्रियाएँ अत्यन्त वेग से जनसाधारण में प्रचलित हो रही थीं। अछूतों एव अस्पृश्या का उद्धार, मास मदिरा का सेवन वर्जित, विधवा विवाह, दहेज-प्रथा का निषेध, बाल-विवाह तथा सती-प्रथा का विरोध आदि रीतियाँ प्रचलित हुई। स्वामी दयानन्द ने घूम-घूम कर आर्य धर्म का कोने-कोने में प्रचार किया। गुरुकुल और आर्य-मन्दिरों की स्थापना हुई, जिससे हवन, सध्या और शुद्धि-आन्दोलन को बल मिला। उसी समय तीसरी सस्था 'ब्रह्मसमाज' थी जिसको पूर्व में, विशेषकर बगाल और बिहार में, राजा राममोहनराय ने स्थापित की थी। वे भी स्वामीजी के समान कर्मठ ऋषि थे। ये सब एक ही पथ के अनुयायी और प्रचारक थे। हिन्दू जाति और धर्म इस समय उस राजमार्ग पर आकर स्थित हो गया था, जब भिन्न-भिन्न कर्णधार उसमें परिवर्तन लाने के लिए कटिबद्ध हो रहे थे। राजा राममोहनराय ने पाश्चात्य परिपाटी को भी महत्व दिया। नये-नये उद्योग प्रारम्भ हुए तथा अधिकारों की चर्चा चली। घर, परिवार, समाज, साहित्य, राष्ट्र, धर्म सबके नियमों की रचना प्रारम्भ हुई। प्रचलित अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, अन्ध-भक्ति, दासता, स्त्री वर्ग पर अत्याचार, स्त्री को त्याज्य समझना, अछूतों का अपमान, दैवी और अमानुषिक शक्तियाँ, भूत, प्रेत और चुड़ैलों का जो विकट भय समाज पर था, वह इस पूर्वी और पाश्चात्य जागृति के कारण धीरे-धीरे दूर होने लगा। पाश्चात्य अँग्रेजी साहित्य के समाचार पत्रों, पुस्तकों, उपन्यासों और कहानियों के ससर्ग में भी भारतीय जनता आयी। पाश्चात्य और पूर्वी चिन्तन-प्रणाली में सघर्षण हुआ। इस समय यह सोचना कि भारत बाह्य प्रभावों से बच जावे, सरासर अज्ञानता थी। कहीं पर फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति, रूस-जापान की लड़ाई, आदि विदेश घटनाओं का भी भारतीय जन-जीवन पर प्रभाव पड़ा। भारत में स्वदेश प्रेम और राष्ट्र-भक्ति की भावना प्रज्ज्वलित हुई। जापान की विजय ने भारत को आशा का दीपक दिखलाया। रूस जैसे महान् राष्ट्र की हार और जापान की जीत ने भारतीयों के हृदय में आमूल क्रान्ति की भावना ला दी। इतिहास का पठन-पाठन चालू था,

जिसका प्रभाव सर्वप्रथम बंगला साहित्य और संस्कृति पर पड़ा है। बंगला उपन्यासों में कई सामयिक सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा की गयी है। बंकिम, शरत व रवि बाबू की लेखनी में पुनरुत्थान की भावना बलवती होकर आयी और देश-प्रेम की पुकार उनकी रचनाओं ने गुंजा दी। धर्म की समस्या, अंग्रेजी का प्रभाव, नारी का स्थान, शिक्षा, देश की दुर्दशा, गुलामी, मातृभाषा का प्रेम, प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों का नया दृष्टिकोण ग्रहण करना आदि अनेक प्रश्नों ने इस युग के लेखकों के मन को आलोकित कर दिया। हिन्दी साहित्य में इस युग के उपन्यासकारों ने 'नारी' को समस्त पापों और अवनति की जड़ मानकर अपनी रचनाओं में जो निरूपित किया है, उसी तर्क से प्रभावित होकर गोस्वामी किशोरीलाल ने अपने प्रिय उपन्यास "माधवी माधव" में एक पापिन स्त्री की मृत्यु पर उसके प्रमुख पात्र 'माधवप्रसाद' के मुख से कहलाया है—"पर मैं बहुत खुश हुआ क्योंकि ऐसी पापिनी स्त्रियों से यह संसार जितनी जल्दी खाली हो, उतना ही अच्छा है। कारण इसका यह है कि देश समाज को रसातल भेजने के हेतु ऐसी ऐसी कुलटा स्त्रियाँ ही हैं न कि हरिहर सरीखे दुराचारी पुरुष। क्योंकि यदि स्त्री भली हो तो उसे कोई भी नारकी पुरुष नहीं बिगाड़ सकता। इस विषय में गोसाईं तुलसीदासजी ने बहुत ही सही कहा है कि—

हिय न शम्भु शरासन कैसे,
कामी वचन सती मन जैसे।"[1]

मन्मथनाथ गुप्त ने किशोरीलाल गोस्वामी का उचित मूल्य आँकते हुए कहा है, "किशोरीलाल गोस्वामी ने ६० से अधिक उपन्यास लिखे हैं। प्रेमचन्द के पहले हिन्दी जगत में उनके उपन्यास तथा देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास सबसे अधिक पढ़े जाते थे। बिना किसी प्रतिवाद के भय के यह कहा जा सकता है कि प्राक् प्रेमचन्द युग के वे सबसे बड़े उपन्यास-लेखक थे, इसलिए यह उचित ही था कि उनकी सेवाओं के कारण उनका अभिनन्दन करने के लिए वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के २१ वें अधिवेशन के सभापति बनाये गये। नाम की दृष्टि से देवकीनन्दन का ही अधिक नाम हुआ तथा उनके उपन्यास हिन्दी जगत में अधिक प्रचलित हुए, किन्तु जैसा कि भटनागर ने लिखा है कि वे ही नवीन युग का निर्माण कर रहे थे न कि देवकीनन्दन। देवकीनन्दन तो अपने उपन्यासों में एक बीते हुए युग, बल्कि एक मृतप्राय शैली का अनुसरण कर रहे थे। नवीन युग में उनका कोई स्थान नहीं था। अपनी रीतिबद्धता तथा एक हद तक गतानुगतिकता के बावजूद हम देखेंगे कि किशोरीलाल ही प्रेमचन्द के प्रत्यक्ष साहित्यिक पूर्वज हैं न कि अन्य कोई लेखक।"[2]

गोस्वामीजी के उपन्यासों ने नई पीढ़ी के उपन्यासों को झलक दी है। उनमें

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी - "माधवी माधव", दूसरा भाग, पृ० २०३-२०४।
२. मन्मथनाथ गुप्त व रमेन्द्रनाथ वर्मा : "कथाकार प्रेमचन्द," पृ० ३१-३२।

नवीन मान्यताओं को स्थान मिला है। इसीलिए "कुसुमकुमारी", "अँगूठी का नगीना", "माधवी माधव" तथा "चपला" में प्रथम दर्शन तथा प्रथम सम्मिलन से ही प्रेम की उत्पत्ति होती है। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने कहा है—'किशोरीलाल गोस्वामी रचित 'अँगूठी का नगीना, कुसुमकुमारी' इत्यादि इसी वर्ग के उपन्यास हैं जिनमें नायक-नायिका से रेल में, नाव में अथवा पानी बरसने के कारण भागकर खड़े हुए किसी घर के बरामदे में मिल जाया करते हैं और प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो जाता है जो प्रेम पत्र, अभिसार इत्यादि रीतियों से सिंचित होकर क्रमशः पल्लवित होता है और संयोग तथा दैवी घटनाओं की सहायता से उनका मिलन भी हो जाता है।'[1]

ऐसे प्रसंगों की अवतारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामीजी का दृष्टिकोण नवीन युग की धारा से पूर्ण परिचित था। वे जड़वादी साहित्यकार नहीं थे वरन् समय की गति के अनुसार अपने उपन्यासों की कथावस्तु ढालना उचित समझते थे। उनकी "इन्दुमती" के लिए कहा जाता है कि उस पर शेक्सपियर के नाटक "टेम्पेस्ट" की छाप है तथा इन्दुमती 'मिरांडा' के समान विन्ध्याचल के सघन वनों में अपने पिता के साथ जीवन-यापन करती है और अपने पिता के अतिरिक्त कोई पुरुष उसने नहीं देखा है। एक दिन वह अचानक एक पेड़ के नीचे अजयगढ़ के राजकुमार चन्द्रशेखर को देखती है और उससे प्रेम करने लगती है।

गोस्वामीजी ने 'कोर्टशिप' का भी पाश्चात्य पद्धति के अनुसार एक चित्र "चपला" उपन्यास में अंकित किया है, जबकि हरिनाथ कामिनी से प्रथम मिलन के अवसर पर हाथ पकड़ कर उसका नाम पूछता है और नाम जानने पर कहता है—"खैर, तो जब तक कोई बात पक्की न हो, तब तक तुम मुझको अपना भाई समझो" और फिर यही भाई बनने वाला हरिनाथ हाथों पर, भुजाओं पर चुम्बन ग्रहण करता है। इसी भारतवर्ष के 'नव्य समाज' की रूपरेखा "चपला" की भूमिका में कही गयी है, 'यह उपन्यास किसी देश, जाति, धर्म, समाज या व्यक्ति विशेष के ऊपर अकारण आक्षेप करने की इच्छा से नहीं लिखा गया है, वरन् एक दीन हीन परिवार की सोचनीय स्थिति के साथ वर्तमान, शिथिल, उच्छृंखल और बन्धुविहीन समाज का चित्र इस इच्छा से यथावत चित्रित किया गया है कि हमारे आर्य भ्राता लोग इसे विशृंखला-बद्ध करने के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा से प्रयत्न करने में तत्पर हैं।'[2]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी कहा है—"सन् १८८२ से लेकर सन् १९१५ तक हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक और संक्रान्ति-काल रहा है। इस काल के प्रतिनिधि उपन्यास लेखकों में श्री देवकीनन्दन खत्री, श्री किशोरीलाल गोस्वामी और श्री व्रजनन्दन सहाय के नाम उल्लेखनीय हैं।"[3]

---

१. डॉ० श्रीकृष्णलाल : "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास," पृ० ३०० ।
२. किशोरीलाल गोस्वामी : "चपला", सन् १९१५ का संस्करण, निवेदन से उद्धृत ।
३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : "आधुनिक साहित्य," पृ० १३९ ।

गोस्वामीजी को उपन्यास लिखने का अत्यन्त शौक था। एक उपन्यास छप कर तैयार नहीं होता था कि उसकी पीठ पर दूसरे आगामी उपन्यास का विज्ञापन भी छप जाया करता था। 'उपन्यास' मासिक का कम वार्षिक मूल्य तथा अनेक प्रकार की छूटें पाठकों को सच्चे रूप में उपन्यासों की ओर पढ़ने के लिए प्रेरित कर रही थीं। किशोरीलाल ने जिस सक्रान्ति-काल में जन्म लिया, वह स्वयं उन्हें आगे प्रगति के राजमार्ग की ओर घसीट रहा था। वे समाज की सब बुराइयों से पूर्ण परिचित थे, अतः यथार्थ चित्रण द्वारा पाठकों के लिए सोचने की सामग्री उपस्थित कर देते थे और 'कर्मफल' का विधान भी निश्चित कर देते थे। पापी को दुःख और दण्ड तथा पुण्यात्मा को सुख और यश प्राप्त होता था। समाज के लिए यही नैतिक आदर्श था। गोस्वामीजी के उपन्यासों के अन्वेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चाहे उनके उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजनमात्र रहा हो पर उसके ऊपर भी उनके उपन्यास किसी नये आदर्श की ओर इंगित कर रहे हैं। आधुनिकयुगीन मनोवैज्ञानिक उतार-चढ़ाव गोस्वामीजी की रचनाओं में खोजना समालोचकों की बड़ी भारी भूल होगी। गोस्वामीजी के उपन्यास अपने युग की चिरस्मृति के रूप में हैं जबकि हिन्दी के अन्य उपन्यास रहस्य और कौतूहल के घेरे से अपने को दूर हटाकर समाज को बहुमुखी परिस्थितियों से अपने आपको निहत कर रहे थे। शिवनारायण श्रीवास्तव ने गोस्वामीजी की रचनाओं के विषय में अपने महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं—

"यह सब होते हुए भी गोस्वामीजी को तत्कालीन समाज का अच्छा ज्ञान था और उनके सामाजिक चित्रण में पर्याप्त सजीवता है। अपने सामाजिक उपन्यासों में उन्होंने देश काल का भी ध्यान रखा है। कथोपकथन में भी उनको अच्छी सफलता मिली है, यद्यपि कहीं कहीं पात्रों की अस्वाभाविक बात-चीत बहुत खटक जाती है। उनके वर्णन का ढंग बहुत ही चित्ताकर्षक होता है। उपन्यास के प्राणस्वरूप चरित्र-चित्रण में गोस्वामीजी को बहुत कम सफलता मिली है। उनकी चरित्र-सृष्टि सामान्य मानव-सृष्टि के मेल में बहुत कम आती है, फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि भले या बुरे चरित्र चित्रण की ओर संकेत करने वाले किशोरीलाल ही हैं और इसीलिए इन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना असंगत भी नहीं।"[१]

गोस्वामीजी निम्बार्क सम्प्रदाय के मानने वाले पक्के वैष्णव थे, अतः वे अपना नैतिक कर्त्तव्य समझते थे कि अपने निर्मित साहित्य के द्वारा हिन्दू धर्म, हिन्दी भाषा और हिन्दू धर्म की रक्षा करें, इसीलिए उनके उपन्यासों में स्थान स्थान पर नैतिक शिक्षा की आयोजना की गयी है। यह प्राचीन कवियों और लेखकों की परिपाटी रही है कि वे उपदेशक के रूप में भी अपनी रचनाओं में अवतरित हुए हैं। चाहे सूर, तुलसी, कबीर हों अथवा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, श्रीनिवासदास अथवा किशोरीलाल हों, वे स्वयं भी समाज को बुराइयों से अवगत कराना चाहते थे। पर

---

१. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास," पृ० ८२।

जब गोस्वामीजी ने आर्यसमाज का प्रचार देखा तब उनके साहित्य ने फिर करवट बदली तथा एक बार फिर सनातन धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए अपनी रचनाओं को केन्द्र-स्थल बनाया। यज्ञ, रामायण पाठ, वेदों और स्मृतियों के प्रसंग, पुराणों की कथाएँ, पापों के प्रायश्चित का विधान, गोदान, रामलीला, ब्रह्म-भोज, तीर्थ यात्रा, साधु और सन्तों का सग, दुष्टों का त्याग, दान, पुण्य, मन्दिरों का निर्माण, ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा, वर्णाश्रम धर्म, नारी की स्वामिभक्ति, पुरुष की श्रेष्ठता, नारी की हीनता और दयनीय अवस्था इत्यादि प्रसगों की अवतारणाओं से उन्होंने तत्कालीन समाज की विविध समस्याओं का अपने उपन्यासों में चित्रण किया है। पारिवारिक और सामाजिक गुप्त लीलाएँ, भ्रूण-हत्या, उनको छिपाने की चेष्टा और समाज तथा शासन का डर तथा उनसे मुक्ति पाने के उपाय गोस्वामीजी की रचनाओं म साकार प्रकट हो रहे हैं। उनके उपन्यासों के नाम चरित्रों पर हैं और उनके प्रमुख चरित्रो म कोई न कोई अबला या सबला नारी है चाहे वह 'चपला' हो अथवा 'मस्तानी' या 'तारा' या 'कुलटा प्रणयिनी' या 'लावण्यमयी' या 'माधवीलता'। सभी न यिकाएँ सुन्दर हैं। कुछ भारतीय सस्कृति के भार, लज्जा और प्रेम से दबी हुई हैं, जिनका प्रेम सयत एव गम्भीरता से भरा है अथवा कुल की आन और समाज के गौरव का पूरा ध्यान है, अथवा कुछ नायिकाएँ कामुक, सुन्दरी तथा उद्दाम वासना से पीड़ित हैं जो प्रथम बार में ही प्रेम की पीर स व्याकुल हो जाती हैं और आसक्ति की भावना से स्वय पतित होती हैं और नवयुवकों के अस्थिर तथा कामुक मन को भी दूषित करती हैं। उनके प्राय सभी नायक स्वभाव स कामुक हैं और किसी भी नारी का उद्धार करके उससे विवाह सूत्र मे बँध जाना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते हैं तथा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ही उस बाला को विपत्ति से छुटकारा दिलाते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों की अपेक्षा गोस्वामीजी को सामाजिक और पारिवारिक उपन्यासों के निर्माण मे अधिक सफलता मिली है, पर फिर भी गोस्वामी किशोरीलाल ही हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। यह प्रकट है कि उन्होंने इतिहास का स्वल्प अध्ययन किया, फिर भी भारत के इतिहास को मुस्लिम युग की घटनाओं से वे बहुत प्रभावित रहे हैं। उन्हें मुसलमान बादशाह तथा नवाबों की रईसी, उनका हिन्दुओं पर अत्याचार, मन्दिरों को तोड़कर मस्जिद बनाना, हिन्दुओं की बेटियों को भगाकर ले जाना, उनके साथ जबरदस्ती विवाह कर लेना तथा हिन्दू धर्म और संस्कृति पर कुठाराघात गोस्वामीजी को जरा भी प्रिय नहीं था, अत: इसी भावना से प्रभावित होकर उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। इस प्रकार की भावना के कारण उनकी रचनाओं में कहीं कहीं वेशभूषा और खान-पान के वर्णन करने में दोष भी आ गये हैं, जैसे बादशाह जहाँगीर और शाहजहाँ को गोस्वामीजी ने कोट-पतलून पहना दिया है तथा बादशाह अकबर के सामने हुक्का या पेचवान रखने की बात कही है, फिर भी वह प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने अंग्रेजों के

स्कॉट की शैली पर हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों को जन्म दिया। इतिहास से सूत्र लेकर अपनी कल्पना की रंगीनियों से अपने उपन्यासों को अलंकृत किया है तथा स्वयं ही अपने ऐतिहासिक उपन्यास के 'रचना-विधान' के विषय में अपने विचार प्रकट कर दिये हैं। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में जिस निष्पक्षता और सहानुभूति की आवश्यकता होती है वह गोस्वामीजी में नहीं थी, इसलिए मुसलमान पात्रों के काले कारनामे बहुत बढ़ा-चढ़ा कर गोस्वामीजी ने चित्रित किये हैं क्योंकि "तारा" उपन्यास में रानी चन्द्रावती का अपने भाई से कथोपकथन ही उनका अपना दृष्टिकोण रहता था— 'भारतवर्ष के भाग्य विपर्यय का प्रत्यक्ष इतिहास आँखों के आगे नाच रहा है तो भी स्वार्थ से अन्धे होकर तुमने यवनों पर अन्धविश्वास कर लिया है। भाई, जागो और मोह निद्रा को छोड़ सनातन धर्म और क्षत्रिय कुल की गौरवता पर दृष्टि डालो।"[1]

शिवनारायण श्रीवास्तव ने गोस्वामीजी के उपन्यासों का ऐतिहासिक मूल्य आँका है—"गोस्वामीजी की कृतियों का यदि साहित्यिक मूल नहीं तो उनका ऐतिहासिक मूल्य बहुत बड़ा है। उनके उपन्यास जासूसी तिलस्मी उपन्यासों और स्वर्गीय प्रेमचन्दजी के सामाजिक उपन्यासों के बीच की कड़ी हैं। चरित्र चित्रण की ओर थोड़ा उत्साह दिखाकर नवीन उत्थान के लिए उन्होंने भूमि को उर्वर बनाया।"[2]

गोस्वामीजी ने निरन्तर प्रयास किया है कि प्राचीन परम्परा से चली आई रूढ़ियों को लाँघ कर उपन्यास के क्षेत्र में जीवन के विभिन्न पहलुओं के चित्र उतारे जावें। इतना ही नहीं, संख्या तथा परिमाण की दृष्टि से भी गोस्वामीजी ने जितने उपन्यास लिखे हैं, वे अन्य किसी लेखक के लिए असम्भव है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने गोस्वामीजी के साहित्यिक योगदान के लिए कहा है—"किशोरीलाल गोस्वामी के पात्र और चरित्र मध्यवर्गीय समाज के प्रतिनिधि हैं। यद्यपि उनका चित्रण सामाजिक वास्तविकता पर न होकर परम्परागत प्रेम-पद्धति की भूमिका पर हुआ है। गोस्वामीजी ने ऐतिहासिक, सामाजिक, गार्हस्थ्य और काल्पनिक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे, परन्तु सबके मूल में प्रेम चर्चा ही प्रधान रूप से आई। रीतिकाल की नायक-नायिका-चर्चा का यथेष्ट प्रभाव उनके उपन्यासों में दिखाई देता है।"[3]

डॉ० रामरतन भटनागर ने तो यहाँ तक कह डाला है—"रचना-क्रम की दृष्टि से उनकी सामाजिक रचनाएँ पहले आईं—इसका सर्वोत्तम विकास 'सेवासदन" (सन् १९१६), 'प्रेमा" (१९०१, १९०४, १९०६) जो 'हम खुरमा और हम-स्वाब' और

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "तारा", पृ० ४१।
२. शिवनारायण श्रीवास्तव : "हिन्दी उपन्यास", पृ० ७७।
३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : "प्रेमचन्द—साहित्यिक विवेचन," पृ० ६-७।

'प्रतिज्ञानामा' से परिवर्तित व परिवर्द्धित हुआ, "वरदान" (१६०४), "सेवासदन" (१६१६), "निर्मला" (१६२३) और "गबन" (१६३१) में हुआ। इन उपन्यासों में प्रेमचन्द किशोरीलाल गोस्वामी की भूमि पर चलते और उसे कई तरह से विकसित करते दिखलाई देते हैं। बीसवीं शताब्दी के पहले सामाजिक क्षेत्र में बड़ी रस्साकशी चल रही थी—एक ओर आर्यसमाज और प्रगतिशील हिन्दू और दूसरी ओर रूढ़िवादी।"[1]

किशोरीलाल गोस्वामी ने भावी पीढ़ी के उपन्यासकारों के लिए मार्ग दिखाया है। वे स्वयं उपन्यास कला के राजमार्ग पर आकर अन्य लेखकों को नवीन उपन्यासों के निर्माण के लिए संकेत दे रहे थे। उपन्यास लिखना उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। उन्होंने बंकिमचन्द्र के "इन्दिरा" और "राजसिंह" जैसे उपन्यासों का बंग भाषा से हिन्दी में उत्तम अनुवाद किया, पर वास्तव में उनके जीवन का लक्ष्य स्वयं की कल्पना के आधार पर उपन्यासों की रचना करना था, जिसके फलस्वरूप कई दर्जन मौलिक उपन्यास लिखे हैं। घटना-वैचित्र्य और चमत्कार भी उनके उपन्यासों में अपनी सहज स्वाभाविक गति से प्रायोजित हुआ है। पात्र, चरित्र चित्रण, सुन्दर और चित्ताकर्षक वर्णन व समाज के यथार्थ चित्र उनके उपन्यासों में स्वाभाविक रूप से चलायमान हो गये हैं। बातचीत तथा तर्क-वितर्क में गोस्वामी स्वयं पूर्ण पटु थे, अतः उनके उपन्यासों में भोजपुरी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी तथा बनारसी बोली का भी पुट प्राप्त होता है, जिससे कथोपकथन में वक्रता और सजीवता आ गयी है। इनके पिताजी बहुत दिनों तक आरा में रहे थे एवं उनके साथ ही ये भी आरा रहे। वहाँ पर कोई पुस्तकालय नहीं था। इन्होंने 'आर्य पुस्तकालय' की वहाँ पर स्थापना की जिसके द्वारा हिन्दी भाषा का उचित प्रचार हुआ है। आरा के अतिरिक्त पटना में भी गोस्वामी किशोरीलाल का नाम अत्यन्त आदर से लिया जाता है, जहाँ पर स्वयं रह कर इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार किया। आरा के प्रसिद्ध वैद्यराज पण्डित बालगोविन्द त्रिपाठी की सहायता से "वर्णो धर्मोपयोगिनी" नाम की एक सभा इन्होंने स्थापित की जिसके अन्तर्गत 'वर्णो धर्मोपयोगिनी' पाठशाला स्थापित कराई। सम्वत् १६४७ में उसी सभा से प्रतिनिधि बन कर ये दिल्ली में 'भारत धर्म महामण्डल' के अधिवेशन में सम्मिलित हुए।

महाप्रवर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र इनके मातामह गोस्वामी श्रीकृष्ण चैतन्यदेव के साहित्य शिष्य थे। इसके फलस्वरूप गोस्वामी किशोरीलाल की भारतेन्दु बाबू से अभिन्न मित्रता रही थी। राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दु बाबू की प्रेरणा से इन्होंने हिन्दी में अपना पहला उपन्यास "प्रणयिनी परिणय" लिखा। उसके बाद ये आरा से आकर काशी में ही रहने लगे। सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका "सरस्वती" के प्रथम वर्ष के सम्पादक गोस्वामीजी थे। इसके अतिरिक्त "नागरी प्रचारिणी पत्रिका", "नागरी

---

१. डॉ० रामरतन भटनागर : "प्रेमचन्द", पृ० २४८।

प्रचारिणी ग्रन्थमाला", "बाल सखा" आदि के भी सम्पादक और उप-सम्पादक गोस्वामीजी रहे। आठवें वर्ष में "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के सम्पादन का कार्य बाबू श्यामसुन्दर दास को सौंपा गया और नवें वर्ष किशोरीलाल गोस्वामी की नियुक्ति उनकी सहायता के लिए हुई। "हीरक जयन्ती अंक" (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) में डॉ० श्रीकृष्णलाल ने "सरस्वती" मासिक पत्रिका की सम्पादक-समिति में गोस्वामी किशोरीलाल के नाम का उल्लेख किया है।[१]

गोस्वामीजी नागरी प्रचारिणी सभा के सभासद थे और डॉ० श्यामसुन्दर-दास के साथ साहित्य-मैत्री-भावना थी। काव्य-शास्त्र और उसकी परिपाटी का इनकी रचनाओं में स्थान स्थान पर परिचय प्राप्त होता है। डॉ० श्रीकृष्णलाल ने इनकी रीतिपटुता पर प्रकाश डालते हुए कहा है—"वियोग की दशा में लेखकगण विरह की एकादश दशाओं का विस्तृत वर्णन करते हैं और संयोग की दशा में वे हाव, भाव, हेला का चित्रण करना नहीं भूलते। किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने प्रेमाख्यानों में इनका वर्णन विशेष रूप से किया है। इनके उपन्यासों में सभी प्रकार के नायक और नायिकाओं के दर्शन होते हैं। "कुसुम कुमारी" में नायिका सामान्या है, "अँगूठी का नगीना" में स्वकीया है और "चपला" में परकीया के भी दर्शन होते हैं और इसी प्रकार नायक भी अनुकूल और दक्षिण सभी प्रकार के मिलते हैं। प्रेम-चित्रण की प्रेम-परम्परा मिलती है। तीन सौ वर्षों से हिन्दी में इस प्रकार का प्रेम चित्रित किया जा रहा है और उपन्यासों में भी इसी प्रेम को स्थान मिला।"[२]

गोस्वामीजी के उपन्यास कथा-प्रधान हैं, जिनमें कथा के आरम्भ और अन्त की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। कथा को ध्यान में रख कर ही लेखक पात्रों की सृष्टि करता है, इसलिए कोई पात्र प्रेमी है, अथवा दुष्ट तथा कोई ऐयार है अथवा निर्दयी डाकू। लेखक चरित्रों का उत्थान-पतन कथावस्तु के विकास के आधार पर ही ग्रहण करता है। भले चरित्र हिन्दू शास्त्रों के नियमों का पालन करते हैं और दुष्ट पात्र तो सदा निन्दा, पापाचार, चोरी और लम्पटता के कार्यों में लगे रहते हैं, इसलिए गोस्वामीजी ने सृष्टि के मुख्य आधार कर्म-सिद्धान्त को ग्रहण किया है। "जो जस करे, तो तस फल चाखा" यही उद्देश्य लेखक ने अपने उपन्यासों में प्रधान रूप से ग्रहण किया है।

गोस्वामीजी उपन्यास को 'प्रेम का विज्ञान' मानते थे और सामाजिक दृष्टि से शिक्षा का साधन भी। अपने प्रसिद्ध उपन्यास "सुखशर्वरी" के निदर्शन में गोस्वामीजी ने लिखा है—"जो बात झूठ सच से नहीं होती, तन्त्र मन्त्र से नहीं बनती,

---

१. श्रीकृष्णलाल (सम्पादक) : "हीरक जयन्ती अंक", काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ९१।
२. श्रीकृष्णलाल (सम्पादक) : "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास", पृ० ३०७।

वह प्रेम के विज्ञान "उपन्यास" से सिद्ध होती है। इसके पढ़ने से मनुष्य के हृदय के ऊपर बड़ा असर होता है और सब बात बनती है।"[1]

विजयशंकर मल्ल ने लिखा है—"इन्होंने सभी प्रकार के उपन्यास—सामाजिक, तिलस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक लिखे हैं। पहले घटना-वैचित्र्यमूलक उपन्यासों के कई हथकण्डों को काम में लाते रहने पर भी गोस्वामीजी ने पहली बार एक पूरी प्रेम-कथा को उपन्यास के भीतर इस तरह नियोजित किया कि प्रेमानुभूति की विभिन्न स्थितियाँ चित्रित हो जायें। पहले की संक्षिप्त या अधूरी प्रेम-कथाओं में इतना प्रसार और इतनी गहराई नहीं मिलती। पूर्वापेक्षा चारित्र्य सृष्टि पर भी इनके विशिष्ट उपन्यासों में कुछ न कुछ अधिक ध्यान अवश्य दिया गया है। मूल कथा के साथ बहुसंख्यक उपकथाओं को जोड़ने में इन्होंने कहीं-कहीं बहुत स्वतन्त्रता दिखलाई है, पर प्रधान कथा के विन्यास में बहुधा नाट्यादर्शों का पालन किया है। इनके अधिकांश उपन्यासों का नाम नायिका और कभी-कभी नायक के नाम पर रखा गया है और पूरी कथा में इन्हीं (नायक या नायिका) के द्वारा अन्विति स्थापित हो पाती है। दुखान्त सामाजिक उपन्यास इन्होंने एक भी नहीं लिखा, हाँ एकाध ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के अनुरोध से शोक पर्यवसायी अवश्य हो गये हैं। कई दुखान्त बंगला उपन्यासों का अनुवाद करते समय इन्होंने उन्हें सुखान्त बना दिया है।"[2]

गोस्वामीजी ने समाज के यथार्थ चित्रों को अंकित करके भी अपने उपन्यासों का अन्त आदर्श एवं सुखान्त स्थिति में किया है। कहीं कोई उलझन तथा अनैतिकता नहीं दिखाई पड़ती है। कट्टर सनातनी होने के साथ ही साथ गोस्वामीजी स्वाभिमानी व्यक्ति थे और समाज में प्रतिष्ठा के साथ अपना जीवन बिताना जानते थे। जीवन में कभी भी नेवकाई नहीं अपनाई, वरन् पौराणिक और साहित्यिक वृत्ति से ही सम्पन्न एवं सुखी जीवन व्यतीत किया। अपने प्रत्येक उपन्यास का उद्देश्य और अपनी धारणाओं की अभिव्यक्ति गोस्वामीजी ने उस रचना के प्रारम्भ होने से पहले कर दी है।

बाबू ब्रजरत्नदास ने लिखा है—"गोस्वामीजी ने काफी से अधिक उपन्यास लिख डाले हैं और उपन्यासकारों की श्रेणी में इनका स्थान आदरणीय है। साहित्य के सभी अंग विकसनशील हैं, इस कारण वर्तमान उपन्यास-कला को दृष्टि में रखकर पहले के उपन्यासों को साहित्य कोटि से निकाल देना उचित नहीं है। हिन्दी का साहित्य शब्द अपने अर्थ में विस्तृत है, संस्कृत का संकुचित नहीं, अतः केवल रस संचार, भाव-विभूति या चरित्र-चित्रण की कमी या अभाव से कोई रचना साहित्य के बाहर

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी : "सुखशर्वरी" के निदर्शन से उद्धृत।
२. विजयशंकर मल्ल : "उदय-काल—प्रेमचन्द के आगमन तक", 'आलोचना', उपन्यास अंक, अक्टूबर सन् १९५४।

नहीं की जा सकती। सभी का अपना-अपना क्षेत्र है और उनके अन्तर्गत उनकी सफलता ही उनका परिचायक है।"[1]

गोस्वामीजी प्रथम मौलिक उपन्यासकार हैं जिन्होंने स्वयं अपनी रचनाओं का सूत्र संस्कृत से जोड़ा है और जो हिन्दी के सुकवि, नाटककार और मँजे हुए उपन्यासकार थे। इन्होंने संस्कृत के न्याय, योग, व्याकरण, वेदान्त, ज्योतिष आदि विषयों का गम्भीर अध्ययन किया था, जिसके संकेत इनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ने गोस्वामीजी की रचनाओं के महत्व के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं—"विशेषकर किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में इनकी औपन्यासिकता तथा सामाजिकता की समस्याएँ दोनों सफलता से प्रदर्शित हुई हैं। 'त्रिवेणी' में इन्होंने सनातन धर्म के पक्ष में आवाज उठाई है तथा आर्यसमाज, ईसाई और इस्लाम धर्म की मान्यताओं को चुनौती दी है। 'स्वर्गीय कुसुम' में बिहार के राजा नर्रासिंह की पुत्री कुमारी की करुण कथा है। इसमें भी सामाजिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रतिष्ठापित हुई है। कलात्मक दृष्टि से इस उपन्यास में घटना-बाहुल्य, प्रेम की प्रधानता, षड्यन्त्र, ऐयारी, जासूसीपन और स्वाभाविकता की अवतारणा हुई है तथा इन सबके समन्वय में आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। 'हृदय हारिणी' और 'लवंगलता' में तत्कालीन राजनैतिक समस्याओं को स्थान मिला है तथा उनके प्रकाश में इन उपन्यासों की संवेदनाओं को पूर्ण विकास मिला है तथा जीवन की आदर्श मान्यताओं की प्रतिष्ठा हुई है।"[2]

गोस्वामीजी का साहित्यिक दृष्टिकोण अत्यन्त विस्तृत एवं सर्वांगीण था, इसलिए उस युग की लोक-प्रचलित दन्त-कथाओं तथा ऐयारी और तिलस्मी कारनामे और कपोलकल्पित गाथाओं से वे बहुत ही अधिक प्रभावित हुए थे। रहस्यपूर्ण घटनाएँ गोस्वामीजी के "लवंगलता" उपन्यास में बहुत कुशलता से आयोजित हुई हैं तथा "स्वर्गीय कुसुम" में भी तिलस्मी घर तथा कमरे प्राप्त होते हैं। प्राचीन युग के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों की श्रेणी में गोस्वामीजी का सर्वोच्च स्थान है। क्या मिश्रबन्धु और क्या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सभी साहित्य के इतिहासकारों ने गोस्वामीजी की प्रतिभा को साहित्य-निर्माण के लिए आवश्यक अंग माना है। वे उच्च कोटि के गद्य-स्रष्टा तथा रसिया सुकवि थे, जो बहारों तथा जीवन की रस-लहरी में अपने आपको तल्लीन कर देते थे।

आचार्य शुक्लजी ने प्रशंसा के साथ ही साथ उनमें कुछ अभाव भी खोजे हैं। हमें इन अभावों को प्रकाश में लाने में तनिक भी संकोच नहीं है। प्रत्येक मानव में गुण और निर्बलताएँ दोनों का ही सम्मिलन होता है, तभी उसे मानव कोटि में

१. डा० ब्रजरत्नदास : "हिन्दी उपन्यास साहित्य", पृ० १५६।
२. लक्ष्मीनारायणलाल : "कहानियों की शिल्प विधि का विकास," पृ० ४४।

रखा जाता है। मानवीय निर्बलताएँ आवश्यक हैं। इस भौतिक जगत में नरदेह धारण करके देवोपम बन जाना दुर्लभ ही नहीं वरन् असम्भव है, अतः गोस्वामीजी जैसे यथार्थवादी सृष्टा में देवोपम गुण खोजना अथवा काल्पनिक आदर्शवाद की सृष्टि करना किसी भी समीक्षक का दुरूह प्रयास होगा। अतः हमारी भी स्पष्ट धारणा है कि इस महान् गद्य लेखक की भूलों को निष्पक्ष होकर देखें, उनका परीक्षण करें तथा उनको सत्य की कसौटी पर कस कर जाँच करें। गोस्वामीजी के हृदय में मुस्लिम संस्कृति के लिए कट्टर वैर की भावनाएँ थीं अतः स्थान स्थान पर उन्होंने मुसलमान पात्रों को दुष्ट पतित तथा हेय रूप में अंकित किया है। लेखक स्वयं उन्हें लांछित करता है और पाठकों के द्वारा भी उन्हें धिक्कारता दिलवाता है। उनका शाश्वत सनातन धर्म हिन्दू धर्म था। उसकी जय जयकार उनके प्रत्येक उपन्यास में है चाहे वह सामाजिक हो अथवा ऐतिहासिक। प्रत्येक रचना लेखक के अपने विचारों की प्रतिच्छाया है' यही बात किशोरीलाल के लिए लागू होती है। वे शुद्ध और कट्टर वैष्णव थे, अतः अन्य धर्मों का मान घटाए उन्हें असह्य बर्बर था। उन्हें अपनी हिन्दू धर्म की संस्कृति में अपूर्व निष्ठा था। उन्होंने अपने उपन्यासों में ही उन बुराइयों को भी प्रदर्शित किया है जो उस समय के समाज में प्रचलित थीं। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को लिखना पड़ता है— और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर वे वास्तव में उपन्यासकार न थे और चीजें लिखते लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पड़ते थे। पर गोस्वामीजी वहीं घर करके बैठ गये। एक क्षेत्र उन्होंने अपने लिए चुन लिया और उसी में रम गये।[1]

दूसरी ओर, गोस्वामीजी के लिए शुक्लजी ने यह भी कहा है— यह दूसरी बात है कि उनके बहुत से उपन्यासों का प्रभाव नवयुवकों पर बुरा पड़ सकता है उनमें उच्च वासनाएँ व्यक्त करने वाले दृश्यों की अपेक्षा निम्न कोटि की वासनाएँ प्रकाशित करने वाले दृश्य अधिक भी हैं और चटकीले भी। इस बात की शिकायत 'चपला' के सम्बन्ध में अधिक हुई थी।'[2]

यदि 'चपला" में चटकीले तथा चंचल और नौजवानों को उच्छृंखल बनाने वाले चित्र हैं तो यह तो उस युग की माँग थी। लेखक को युगीन अभिरुचि पर भी ध्यान देना होता है। गोस्वामीजी के वमवशाली रसिक जीवन के ये उदाहरण हैं। शुक्लजी ने गोस्वामीजी की भाषा के लिए भाषा के साथ मजाक शब्द का प्रयोग किया है पर आगे चलकर उन्होंने ही स्पष्ट कर दिया है कि एक ओर गोस्वामीजी की भाषा 'ऐसी वैसी नहीं वरन् उर्दू ए मुअल्ला' और दूसरी ओर समास बहुला भाषा जो संस्कृत से निःसृत तत्सम शब्दावली को लिए हुए है। बोलचाल की चलती हुई भाषा के

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास" पृ० ५५२।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास," पृ० ५५२।

भी नमूने इनकी रचनाओं में प्राप्त हुए हैं। एक ओर, गोस्वामीजी की रचनाओं के प्रभावों की ओर समीक्षकों का ध्यान जाता है, दूसरी ओर, वही आलोचक इन कमियों को गुणों का आवश्यक अंग मानते हैं। गोस्वामीजी की विशेषता है कि यदि कहीं से उन्होंने कुछ ग्रहण किया, तो उसी समय उपन्यास के आदि या अन्त में प्रथम कृतज्ञता स्वीकार कर लेते थे। उदाहरण के लिए, "याकूती तख्ती वा यमज सहोदर" (१६०६) उपन्यास के अन्त में मूल लेखक के प्रति लेखक कृतज्ञता स्वीकार कर लेता है—"बंगाली लेखक बाबू दीनेन्द्रकुमार राय के 'हमीदा' नामक उपन्यास की छाया पर यह उपन्यास लिखा गया है। 'हमीदा' वियोगान्त उपन्यास है पर हमने इसे संयोगान्त बनाया है। हमारा यह उपन्यास हमीदा का अनुवाद नहीं है वरन् इसे अपने ढंग पर पूरी स्वाधीनता से लिखा है।"[1]

गोस्वामीजी ने बंगला, फारसी, अंग्रेजी तथा संस्कृत ग्रहण करने का प्रयत्न किया है पर उनकी मौलिकता की छाप अमिट है। मौलिक प्रतिभा छुपाने पर भी नहीं छिपती है। उन्होंने सामाजिक उपन्यासों को सफलतापूर्वक रचा, उसमें दीन-दुखियों और पतिताओं के यथार्थ चित्र अंकित किये हैं। "चपला" उपन्यास के द्वारा एक नूतन समाज का चित्र उपस्थित किया है।

ये प्राचीन लेखक उस मील के पत्थर के समान दृढ़ हैं, जो स्वयं तो दृढ़ता से अड़े हो हैं पर और जाने वालों को अपने अस्तित्व से प्रेरणा और कार्य करने की शक्ति प्रदान करते हैं। पैतृक धरोहर के रूप में गोस्वामीजी के उपन्यास वर्तमान हिन्दी-जगत को प्राप्त हुए हैं, जो अनमोल रत्न हैं।

डॉ० कौतमीरे ने गोस्वामीजी की प्रशंसा में कहा है—"इस काल विभाग में सामाजिक, अर्द्ध-सामाजिक, धार्मिक, तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी आदि उपन्यासों का निर्माण हो रहा था लेकिन ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की वृत्ति गोस्वामीजी को छोड़कर किसी में भी नहीं दिखलाई पड़ती। गोस्वामीजी ने 'तारा' (१६०२), 'कनक कुसुम' (१६०३), 'मल्लिकादेवी' इस (१६०५) आदि ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य का श्रीगणेश किया। उन्होंने अपने उपन्यासों की ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना के द्वारा चित्रित करने का प्रयत्न किया। इसलिए उनमें ऐतिहासिक तथ्य का विश्लेषण नहीं मिलता। अतः उनके उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक नहीं हैं। उनके उपन्यासों में कहीं-कहीं ऐतिहासिक सत्य की हत्या की गयी है, फिर भी उपन्यासों के इस प्रारम्भिक युग में इस प्रकार की ऐतिहासिक कमियाँ प्रशंसनीय हैं।"[2]

---

१. किशोरीलाल गोस्वामी "यमज सहोदर" की भूमिका से, सन् १६०६ का संस्करण।
२. ब० ल० कोतमीरे: "हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपों का उद्भव और विकास," पृ० १६३।

यद्यपि गोस्वामीजी के उपन्यासों मे उस उपन्यास-कला की कोई विशेषता नहीं दिखलाई पडती, जिसका विशद् विकास प्रेमचन्दकालीन उपन्यासो मे प्राप्त होती है, पर यह निश्चित है कि आधुनिक उपन्यासों के लिए सुदृढ और विकसित मार्ग तैयार करने का सारा श्रेय गोस्वामीजी और उनके साथियो को है, जो लगन के साथ उपन्यास-रचना में अपना निरन्तर योगदान देते रहे हैं।

'भाषा के साथ मजाक' के विषय में हमारी धारणा है कि जहाँ पर गोस्वामीजी ने शुद्ध सस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग किया है, वहाँ पर उनकी साहित्य-पटुता प्रकट हो जाती है, पर जहाँ उन्होंने अपने उपन्यासो मे उर्दू तथा फारसी को घसीटा है, वहाँ पर उन्होंने बुरी तरह से भाषा के साथ खिलवाड कर डाला है। यदि वे अपनी पाण्डित्यपूर्ण भाषा लिखते, जिसका उदाहरण सभापति के पद से प्रसारित अध्यक्षीय भाषण में दिया है तो उनके उपन्यासो का साहित्यिक गौरव बहुत बढ जाता, फिर भी उन्हें आचार्य प्रवर शुक्लजी ने प्रथम साहित्यिक उपन्यासकार कहा है।

बाबू ब्रजरत्नदास ने और भी लिखा है—"यह सब होते हुए भी गोस्वामीजी ने काफी से अधिक उपन्यास लिख डाले हैं और उपन्यासकारों की श्रेणी मे इनका स्थान आदरणीय है। साहित्य के सभी अग विकसनशील हैं, इस कारण वर्तमान उपन्यास कला को दृष्टि मे रखकर पहले के उपन्यासो को साहित्य की कोटि से निकाल देना उचित नही है। हिन्दी का साहित्य शब्द अपने अर्थ में विस्तृत है, सस्कृत सा संकुचित नही, अतः केवल रस-संचार, भाव-विभूति या चरित्र-चित्रण की कमी या अभाव से कोई रचना साहित्य के बाहर नहीं की जा सकती। सभी का अपना-अपना क्षेत्र है और उनके अन्तर्गत उनकी सफलता ही उनकी परिचायक है। गोस्वामीजी के उपन्यासों का अब कम प्रचार भी देखा जाता है और उनमे से कितने ही अप्राप्य भी हो गये हैं।"[1]

ये प्राचीन रचनाएँ आधुनिक उपन्यासो का मूल्य बढाने मे दिन पर दिन सहायक हो रही हैं। जैसे-जैसे समय की गति आगे बढ रही है, वैसे ही इन प्राचीन उपन्यासों का मूल्य बढ़ता जा रहा है। ये उन नवरत्नो के समान हैं, जो खोजने पर तथा अधिक गहराई में जाने पर और भी अधिक चमकेंगे तथा उपलब्ध होंगे। ये प्राचीन उपन्यासकार उस ज्योति स्तम्भ के समान हैं, जो जीवन के चतुष्पथ पर स्थित होकर चारो ओर आने जाने वालों को मार्ग बतलाने का निरन्तर कार्य करता रहता है। गोस्वामी किशोरीलाल वर्तमान हिन्दी उपन्यासकारो के प्रौढ पूर्वज हैं, जो आशा, निराशा, दुःख, वैभव, दयनीयता, मनोरंजन और चमत्कार-पूर्ण प्रसगो पर उनका मार्ग दर्शन करते रहते हैं। गोस्वामीजी हिन्दी साहित्य के कर्मठ और निर्माणकारी महामनीषी थे। किशोरीलाल और प्रेमचन्द के उपन्यास सीमा-जगत के दो सुदृढ स्वर्णिम केन्द्र-बिन्दु हैं जिनके मध्य मे उपन्यासों की एक

१. बाबू ब्रजरत्नदास : "हिन्दी उपन्यास साहित्य", पृ० १२६।

विशद साहित्यिक एवं सामाजिक पीयूषिणी प्रवाहित हो रही है। हिन्दी उपन्यासों की इस महान् सेवा-भावना के लिए गोस्वामी किशोरीलाल का नाम युगद्रष्टा तथा स्रष्टा के रूप में चिरस्मरणीय रहेगा। उपन्यास-लेखन के प्रारम्भिक युग में इन्होंने ही पाठकों तथा अन्य लेखकों की अभिरुचि को आकर्षित करके साहित्य को समृद्ध तथा अमूल्य बनाया है।"

"हिन्दुस्थान" त्रैमासिक पत्रिका, जिसका सम्पादन 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी', इलाहाबाद करती थी, उसके जुलाई सन् १९३२ के अंक के सम्पादकीय लेख में वृन्दावन के प्रतिष्ठित साहित्यिक गोस्वामी किशोरीलाल की मृत्यु पर श्रद्धांजलि दी गयी है। "पं० किशोरीलाल गोस्वामी भी हमारे वयोवृद्ध साहित्य सेवी थे, परन्तु साहित्य-सेवा में आपका उत्साह भी अन्त तक अक्षुण्ण बना रहा। अभी पिछले वर्ष ही झाँसी में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप सभापति हुए थे। पण्डित किशोरीलाल जी के पिता गोस्वामी वासुदेवशरण देवाचार्य जी संस्कृत, व्रजभाषा, हिन्दी और बंगला के अच्छे विद्वान् हुए हैं। आप वृन्दावन के रहने वाले थे, परन्तु किशोरीलाल जी का पठन-पाठन अपने मातामह श्रीकृष्ण चैतन्यदेव गोस्वामी जी के यहाँ काशी में हुआ। आपने संस्कृत में न्याय, योग, व्याकरण, वेदान्त, ज्योतिष आदि विषयों का अध्ययन किया और साहित्य में आचार्य परीक्षा तक के ग्रन्थ पढ़े।

भारतेन्दु इनके मातामह के साहित्य शिष्य थे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द उनके पड़ोसी, अतएव इन दोनों महानुभावों से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था और इनके साहित्य-प्रेम का प्रादुर्भाव इसी समय हुआ था। आपने कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया था। आपके रचे हुए ग्रन्थों की संख्या १०० से ऊपर है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की संख्या तो कई सौ तक पहुँचती है। कविता, नाटक, चम्पू, उपन्यास, जीवन चरित्र-सम्बन्धी पुस्तकों के अतिरिक्त धर्म सम्बन्धी तथा अन्य पुस्तकें भी लिखी हैं। आपका काशी नागरी प्रचारिणी सभा से चिर सम्बन्ध रहा है और आप कुछ काल तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक भी रहे। आपकी मृत्यु विगत ९ जून को वृन्दावन में हो गयी। हम आपके कुटुम्बियों से श्रद्धापूर्वक संवेदना प्रकट करते हैं।"[1]

आधुनिक हिन्दी साहित्य का महान् दुर्भाग्य है कि ऐसे साहित्य-प्रवर उपन्यास-कार तथा लेखक की रचनाओं का पाठकों को लाभ नहीं हो रहा है। स्वतन्त्र राष्ट्र के नवोत्थान में हमें इस प्रकार के सांस्कृतिक और कलात्मक युग प्रवर्तकों की रचनाओं को तो और भी खोज-खोज कर ढूँढ निकालना है। वर्तमान युग के साहित्य का यथार्थ परीक्षण तभी हो सकता है जब समीक्षा की तुला पर एक ओर प्राचीन साहित्यकारों का

---

१. "हिन्दुस्थान", त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई सन् १९३२ का तीसरा अंक (हिन्दुस्तानी ऐकेडमी द्वारा प्रकाशित), पृ० ३६४-३६५।

निर्माण-कार्य हो और दूसरी ओर आधुनिक रचनाएँ। घोर अध्ययन तथा सूक्ष्म अनुसन्धान के उपरान्त दो युगों का साहित्य भी एक-दूसरे से एकदम भिन्न है, पर इस भिन्नता में भी एकता का सूत्र पिरोया हुआ है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। एक-दूसरे की पूरक विधाएँ इसी प्रकार के साहित्य ने निर्मित की हैं, अतः वर्तमानयुगीन साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व सहज में ही हमारी दृष्टि अपने पूर्वजों के द्वारा निर्मित साहित्यिक परम्पराओं और रूढ़ियों को जानने के लिए व्याकुल होने लगती है, अतः साहित्यकारों तथा साहित्यिक संस्थाओं का प्रथम और महान् कर्त्तव्य हो जाता है कि इन प्राचीन साहित्य मनीषियों की रचनाओं को चिरतन बनाये रखें। यह महान् कार्य है तथा गोस्वामीजी जैसे युग निर्माताओं के लिए यही अपूर्व कोटि की श्रृद्धाजलि है। यह विश्वास अटल होता जा रहा है कि प्रत्येक साहित्यकार अपने जीवन में उचित सम्मान नहीं पाता है तथा उसका युग उसकी प्रतिभा से सदैव अपरिचित रहता है पर कम से कम उसकी मृत्यु के उपरान्त तो यह महान् कर्त्तव्य बन जाता है कि उसकी अपार प्रतिभा तथा अटूट सेवा के लिए अमर स्मारक रचा जावे और उसकी रचनाएँ भी उसकी सच्ची स्मृति-मालाएँ हैं, जिन्हें पिरोकर व चमकाकर रखना वर्तमान पीढ़ी का कार्य है।

गोस्वामी किशोरीलाल के ६५ उपन्यासों म से अनेक उच्च कोटि के आदर्श आख्यान हैं, जिनका पुन: मुद्रण होना नितान्त आवश्यक है। हिन्दी साहित्य को जीवित रखने के लिए तथा उसकी प्राचीन परम्पराओं से नवयुग को परिचित कराने के लिए भी उनकी रचनाओं का पुनः प्रकाशन कराना अत्यन्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए, "इन्दुमती", "सुखशर्वरी", "प्रणयिनी परिणय", "लवंगलता", "हृदय हारिणी", "माधवी माधव", "कुसुमकुमारी", "लीलावती", "अंगूठी का नगीना", "मल्लिका-देवी", "सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई", "तरुण तपस्विनी", "प्रेममयी" और "त्रिवेणी" जैसी उच्च कोटि की रचनाओं को तो शीघ्र ही मुद्रित करा लेना चाहिए। जिस प्रकार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट तथा श्रीनिवासदास की रचनाओं के संग्रह प्रकाशित हो गये हैं, उसी प्रकार काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कर्णधारों का प्रथम कर्त्तव्य है कि वे अपनी नगरी के प्रतिष्ठित साहित्यकार हिन्दी भाषा और हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्रतिष्ठापक गोस्वामी किशोरीलाल की रचनाओं का संकलन शीघ्र ही प्रकाशित करें और उनकी सेवाओं के लिए उन्हें उचित सम्मानसूचक श्रृद्धाजलि अर्पित करें। केवल काशी ही नहीं, समस्त ब्रजमण्डल साहित्य महासभा एवं आरा (बिहार) नागरी प्रचारिणी सभा को भी इस दिशा में उचित ठोस कार्य करना चाहिए। अटल-बिहारीजी का मन्दिर, जो अपनी भग्नावस्था में वृन्दावन में आज भी है तथा साहित्य-रसिक गोस्वामी किशोरीलाल की स्मृति को अपनी स्वर-लहरी में प्रतिध्वनित कर रहा है, उसका जीर्णोद्धार नितान्त आवश्यक है। वहीं पर किशोरीलाल की रचनाओं के

अध्ययन के लिए 'साहित्य पीठ' की स्थापना हो तथा भारत के 'आर्य पुस्तकालय' में भी गोस्वामीजी का पूरा तैलचित्र लगाया जावे जिससे उनके कर्त्तव्यों के लिए आधुनिक हिन्दी जगत कुछ जागरूक रह उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करे।

अमर साहित्यकार गोस्वामी किशोरीलाल की कीर्ति गंगा-यमुना की शीतल धारा के समान हिन्दी साहित्य के पाठकों के लिए पीयूषिनी का सदैव कार्य करती रहेगी और अमूल्य रत्नों की खोज करने के लिए पथ प्रशस्त करती रहेगी।

किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा लिखित पुस्तकों की तालिका
(काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सौजन्य से प्राप्त)

काव्य

विषय	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	संस्करण-सवत्	
८२३. १ कि. ०४	प्रेम पुष्पमाला	सुदर्शन प्रस, वृन्दावन		१९१४ ई०
८२३. १ कि ०५	प्रेम रत्नमाला वा प्रणयोपहार	ग्रन्थकार, काशी	२	१९०३ ई०
८२३. १ कि. ०६	विक्टोरिया अष्टक	व्यवस्थापक वित्त, वृन्दावन (मथुरा)		१८९७ ई०
८२३. १ कि. ०७	समस्यापूर्ति मजरी	खगविलास प्रस, बाँकीपुर, (पटना)	१	१८९७ ई०
८२३. १ कि. ०८	होली रग घोली	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	१	१९७२वि०
	धार्मिक व पौराणिक नाटक			
८३२ १ कि. ००१	नाट्य सभव	लहरी प्रस, काशी	१	१९०४ ई०
	सामाजिक नाटक			
८३३. १ कि. ०१	मयंक मंजरी	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	१	१८९१ ई०
	सामाजिक उपन्यास			
८४३. १ कि ०१	अंगूठी का नगीना	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	२	१९१५ ई०
८४३. १ कि. ०२	कुसुम कुमारी	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	२	१९१५ ई०
८४३. १ कि. ०३	चन्द्रावली	ग्रन्थकार, ज्ञानवापी, काशी	१	१९०४ ई०
८४३. १ कि. ०४।१-४	चपला, भाग १-४	सुन्दर प्रेस, वृन्दावन	२	१९१६ ई०
५४३. १ कि ०५	तरुण तपस्विनी	हितचिंतक प्रस, काशी		१९०५ ई०
८४३ १ कि. ०६	त्रिवेणी या सौभाग्य श्रेणी	प्रभाकारी यन्त्रालय, काशी	१	१९०७ ई०
८४३. १ कि. ०७	पुनर्जन्म या सौतिया डाह	ग्रन्थकार, काशी	१	१९०७ ई०
८४३. १ कि. ०८	प्रणयिनी परिणय	भारतजीवन प्रेस, काशी	१	१८९० ई०
८४३. १ कि. ०९	प्रेममयी	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन		१९१४ ई०
८४३. १ कि. १०।१-२	माधवी माधव वा मदनमोहिनी, भाग १-२	व्यवस्थापक, 'उपन्यास', वृन्दावन (मथुरा)		१९०६ ई०
८४३. १ कि. ११	याकूनी तख्ती या यमज सहोदर	ग्रन्थकार, वृन्दावन		

८४३. १ कि. १२	राजकुमारी	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	२	१९१६ ई०
८४३. १ कि. १३	लावण्यमयी	भारतजीवन प्रेस, काशी	१	१८९१ ई०
८४३. १ कि १४	लीलावती	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	३	१९२६ ई०
८४३. १ कि. १५	सुखशर्वरी वा इन्दुमती	भारतजीवन प्रेस, काशी	१	१९४९ ई०
८४३. १ कि १६	हीराबाई वा चन्द्रिका	ग्रन्थकार, काशी	१	१९०४ ई०

ऐतिहासिक उपन्यास

८४३. २ कि. ०१	कनक कुसुम	ग्रन्थकार, ज्ञानवापी, बनारस		१९०३ ई०
८४३. २ कि. ०२	तारा, तीन भाग	किशोरीलाल गोस्वामी, काशी		१९१० ई०
८४३. २ कि. ०३	मल्लिकादेवी	छबीलेलाल गोस्वामी, वृन्दावन (मथुरा)	२	१९१७ ई०
८४३ २ कि. ०४	प्रणयिनी परिणय	भारतजीवन प्रेस, काशी	१	१८९० ई०
८४३. २ कि. ०४	रजिया बेगम	किशोरीलाल गोस्वामी	१	१९०४ ई०
८४३. २ कि ०५	इन्दिरा राजसिंह } अनूदित	खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना		१९१० ई०
८४३ २ कि.०६।१-४	लखनऊ की कब्र	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	१	१९१६ ई०
८४३ २ कि ०६।५-८	लखनऊ की कब्र	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	१	१९१६ ई०
८४३. २ कि. ०७	लवंगलता वा आदर्श बाला	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	२	१९१५ ई०
८४३. २ कि. ०८	लाल कुँवर	किशोरीलाल गोस्वामी, काशी		१९१३ ई०
८४३. २ कि. ०९	सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई	ग्रन्थकार, वृन्दावन		१९०९ ई०
८४३. २ कि. १०	मान की राख	ग्रन्थकार, वृन्दावन		
८४३. २ कि. ११	हृदय हारिणी वा आदर्श रमणी	सम्पादक, 'उपन्यास', ज्ञानवापी, काशी		१९०४ ई०

जासूसी उपन्यास

८४३. ४ कि. ०१	खूनी औरत के सात खून	छबीलेलाल गोस्वामी, वृन्दावन	१	१९७५ वि०

तिलस्मी उपन्यास

८४४. कि. ०१	कटे मूड की दो दो बातें	'उपन्यास' कार्यालय, काशी	१	१९०४ ई०

नाटक (हास्य-रस)

८८२ - कि. ०१	चौपट चपेट	राजस्थान यन्त्रालय, अजमेर		१८९२ ई०
८८२ कि. ०१क	चौपट चपेट	ग्रन्थकार, वृन्दावन	२	१९७५ वि०

इतिहास

९३०. कि. ०१	श्री वृन्दावन	सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन	१	१९१५ ई०

परिशिष्ट (१)

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

श्यामसुन्दर दास — हिन्दी कोविद-रत्नमाला (सचित्र)

बालकृष्ण भट्ट — साहित्य सुमन

सम्पादक विजयशंकर मल्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा — प्रतापनारायण ग्रन्थावली

(सम्पादक, विजयशंकर मल्ल)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग १)

नन्ददुलारे बाजपेयी — आधुनिक साहित्य

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — आधुनिक हिन्दी साहित्य

डा० श्रीकृष्णलाल — आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका

जयशंकरप्रसाद — काव्य कला और अन्य निबन्ध

डा० गुलाबराय — काव्य के रूप

डा० भागीरथ मिश्र — काव्य शास्त्र

देवकीनन्दन खत्री — चन्द्रकान्ता

भदन्त आनन्द कौसल्यायन — जातक (भाग १ २)

अयोध्यासिंह उपाध्याय — ठेठ हिन्दी का ठाट

अयोध्यासिंह उपाध्याय — अधखिला फूल

बालकृष्ण भट्ट — नूतन ब्रह्मचारी

बालकृष्ण भट्ट — सौ अजान, एक सुजान

ठाकुर जगमोहनसिंह — श्यामा स्वप्न

आनन्द (अनुवादक) — हितोपदेश

सत्यकाम विद्यालंकार (अनुवादक) — पंचतन्त्र
बैताल पच्चीसी
सिंहासन बत्तीसी

सदल मिश्र — नासिकेतोपाख्यान

लल्लूलालजी — प्रेमसागर

सैयद इंशाअल्लाखाँ — रानी केतकी की कहानी

लाला श्रीनिवासदास — परीक्षा गुरु

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — कुछ आप बीती—कुछ जग बीती

डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र — भारतीय संस्कृति

श्री जयचन्द विद्यालंकार — भारत भूमि और उसके निवासी

डॉ० रामविलास शर्मा — भारतेन्दु युग

मिश्रबन्धु — मिश्रबन्धु विनोद (भाग ३ और ४)

जैनेन्द्रकुमार — श्रेय और प्रेम

इलाचन्द जोशी — विवेचना
डॉ० श्रीकृष्णलाल — श्रीनिवास ग्रन्थावली
डॉ० बलदेव उपाध्याय — संस्कृत साहित्य का इतिहास
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी — साहित्य साथी
साहित्य परिचय (प्रकाशक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई)
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी — साहित्य शिक्षा
डॉ० श्यामसुन्दर दास — साहित्यालोचन
कन्हैयालाल पोद्दार — संस्कृत साहित्य का इतिहास
डॉ० माखनलाल चतुर्वेदी — साहित्य का देवता
श्री शिवनारायण श्रीवास्तव — हिन्दी उपन्यास
डॉ० प्रेमनारायण टण्डन — हिन्दी उपन्यास में वर्ग-भावना
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी — हिन्दी कथा साहित्य
डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल — हिन्दी कहानी की शिल्प विधि का विकास
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास
डॉ० अब्राहम जार्ज ग्रियर्सन
(अनुवादक: किशोरीलाल गुप्त) — हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास
आचार्य चतुरसेन शास्त्री — हिन्दी साहित्य का इतिहास
प० अयोध्यासिंह उपाध्याय — हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास
डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य
डॉ० सूर्यकान्त — साहित्य मीमांसा
हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास
डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी — अशोक के फूल
डॉ० माताप्रसाद गुप्त — हिन्दी पुस्तक साहित्य
प० राजबली पांडे — हिन्दी का वृहत्तर साहित्य
आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी — साहित्य सदर्भ
रवीन्द्रनाथ ठाकुर — साहित्य
डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' — हिन्दी गद्य काव्य
डॉ० भोलानाथ तिवारी — हिन्दी साहित्य
डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा — हिन्दी की गद्य शैली का विकास
डॉ० देवराज उपाध्याय — आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान
रामधारीसिंह 'दिनकर' — संस्कृति के चार अध्याय
धनंजय भट्ट — भट्ट निबन्धावली (भाग १ और २)
(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग)
द्वारकाप्रसाद शर्मा (सम्पादक) — निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट (माधव मिश्र निबन्ध-माला, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद)
क्षेमचन्द्र 'सुमन' एवं योगेन्द्र-कुमार 'मलिक' — साहित्य विवेचन
बाबूराम विष्णु पराडकर — प्रेमचन्द स्मृति अंक, हीरक जयन्ती अंक
(काशी नागरी प्रचारिणी सभा)

डॉ० शिवदानसिंह चौहान — हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष
प्रभाकर माचवे — जैनेन्द्र के विचार
जैनेन्द्रकुमार — प्रेय और प्रेम
विनोदशंकर व्यास — उपन्यास कला
विनोदशंकर व्यास — योरोपीय उपन्यास
डॉ० एस० पी० खत्री — आलोचना—इतिहास तथा सिद्धान्त
पं० नन्ददुलारे वाजपेयी — नया साहित्य, नये प्रश्न
गिरिजादत्त शुक्ल "गिरीश" — महाकवि हरिऔध
पं० नन्ददुलारे वाजपेयी — प्रेमचन्द साहित्य विवेचन
मन्मथनाथ गुप्त व रमेन्द्रनाथ वर्मा — कथाकार प्रेमचन्द
डॉ० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल — भारतेन्दु का नाट्य साहित्य
त्रिभुवनसिंह — हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
ब्रजरत्नदास — हिन्दी उपन्यास साहित्य
यज्ञदत्त शर्मा — हिन्दी के उपन्यासकार
डॉ० रामरतन भटनागर — प्रेमचन्द—एक अध्ययन
प्रेमनारायण टण्डन — बीसवीं शताब्दी से पूर्व हिन्दी गद्य का विकास
डॉ० रामविलास शर्मा — संस्कृति और साहित्य
मोहनलाल खन्ना — भारतेन्दुजी की भाषा और शैली
रामचन्द्र तिवारी — हिन्दी का गद्य साहित्य
राल्फ फाक्स (हिन्दी संस्करण) — उपन्यास और लोक जीवन
ताराचन्द पाठक — हिन्दी के सामाजिक उपन्यास
डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — भारतेन्दु की विचारधारा
डॉ० गुलाबराय — सिद्धान्त और अध्ययन
गंगाबख्शसिंह — द्विवेदीयुगीन निबन्ध साहित्य
डा० उदयभानुसिंह — द्विवेदी युग
मू० लेखक गार्सां द तासी
(अनुवादक डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय) — हिन्दुई साहित्य का इतिहास
डॉ० ब० ता० कीर्तिमिरे — हिन्दी गद्य के विविध साहित्य
डॉ० उदयनारायण तिवारी — हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास
विश्वनाथप्रसाद मिश्र — हिन्दी का सामयिक साहित्य
हंसराज अग्रवाल — हिन्दी साहित्य की परम्परा
डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — फोर्ट विलियम कॉलेज
डॉ० नत्थनसिंह — गद्यकार बालमुकुन्द गुप्त
पं० बालकृष्ण भट्ट व
डॉ० राजेन्द्र शर्मा — हिन्दी गद्य के निर्माता
पं० दयाशंकर शर्मा — अंग्रेजी साहित्य परिचय
रामधारीसिंह "दिनकर" — मिट्टी की ओर
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — जायसी ग्रन्थावली

संस्कृत पुस्तकों की सूची

अलंकार पीयूष — उत्तरार्द्ध
काव्य-प्रभाकर
काव्यालंकार — भामह
साहित्य दर्पण
ध्वन्यालोक

पत्र-पत्रिकाएं

काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका
साहित्य सन्देश
आलोचना
विशाल भारत
हिन्दुस्तानी
सरस्वती सम्वाद
समालोचक
नयी धारा
सरस्वती
सम्मेलन पत्रिका
माधुरी
प्रेमा
मनोरमा
वीणा
'उपन्यास' (मासिक पत्र) — किशोरीलाल गोस्वामी
प्रदीप — प० बालकृष्ण भट्ट
वेंकटेश्वर समाचार — बम्बई
मनोहर पुस्तकालय, — मथुरा